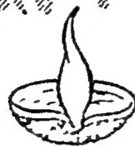
ज्ञानोदय



लेख-सूची

[वर्ष ३ अंक ७ से १२ तक]

सम्पादक

मुनि कान्तिसागर • लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०
कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' • अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्रकाशक

बाबूलाल जैन फागुल्ल



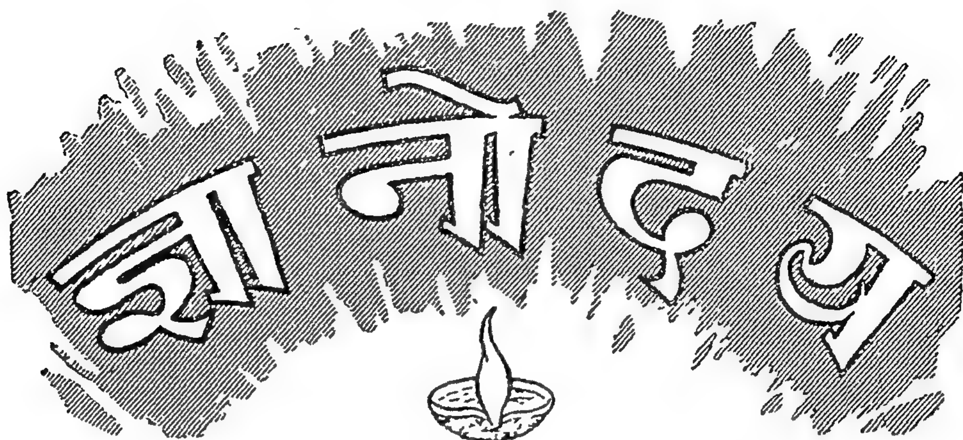
भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

लेखकानुसार लेख-सूची

[अंक ७ से १२ तक]



णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स



वर्ष ३] • काशी, जनवरी १९५२ • [अंक ७

अन्तरात्मा

ज्ञायको नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न मुह्यति ।
कांक्षति चात्मभावान् यः सोऽन्तरात्मा निगद्यते ।।

जो आत्मस्वरूपका ज्ञाता है, संसारसे नित्य उदासीन रहता है, जो न किसीसे द्वेष करता है और न किसी वस्तुपर मोहित होता है तथा जो आत्मिक भावोंकी सदा आकांक्षा करता है, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
आत्मार्पितमनोबुद्धिः सोऽन्तरात्मा निगद्यते ।।

जो योगी सदा सन्तोषको धारण करता है, आत्माको यम-नियमके द्वारा वशमें रखता है, दृढश्रद्धानी है और अपने आत्मामें जिसने अपनी बुद्धि और मनको लगा रक्खा है, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयैर्युक्तः सोऽन्तरात्मा निगद्यते ।।

जिससे कोई प्राणी त्रास नहीं पाता है और जो स्वयं किसी प्राणीसे त्रास नही पाता, जो हर्ष, क्रोध और भयसे सदा मुक्त है, वह अन्तरात्मा कहलाता है ।

श्रीपर्वतकी सजीव कला : बोधि-मुद्रा

श्री दशरथ पाण्डेय

शून्यका साम्राज्य ! विलीन होती अनन्त रेखाएँ—मृत्यु-प्रदेश ।

कल्पनाकी गोदमें खेल रहीं वासना-बालिकाएँ—कर्मभूमि ।

इनके अन्तरालपर चतुर्दिक् अमरत्व बिखेरती शान्ति और करुणाकी अविरल तरंगें—मुक्त बोधित्व प्रवाह ।

चित्रकारकी तूलिका बोधि-चित्तके अपकर्षणमें सतुलित हो कर्मभूमिकी सीमान्त-रेखाको स्पर्श करती नाच रही थी । रंगोंकी कोमल तरलता चित्रकारकी भाव-रश्मिको चित्र-फलकके चारों ओर फैलाती बहिर्मुख हो रही थी । रंग-मयूखोंमें वहाँका वातावरण अवगाहन करने लगा था । चित्रकारकी निरंतर साधनाको सफल करती अन्तर्वृत्तियां भित्तिचित्रकी भूमिकामें विकीर्ण होने लगीं ।

"तुम मेरा वध करोगे, कापालिक ! महाकालकी प्रसन्नताके लिए—सिद्धियाँ प्राप्त करनेके लिए ।"

"हाँ, चित्रकार, आज वैशाखी पूर्णिमा है—वज्रयानोंका महापर्व । हम कापालिक इस महापर्वको अपना पर्व मानते हैं । इस शुभ पर्वके अवसरपर हमें प्राप्त हुआ है एक बौद्ध भिक्षुका महाप्रसाद । यह महाकालकी असीम अनुकम्पा है । निशीथका घंटा-नाद होते ही महाकालका अट्टहास होगा और तुम्हारी समाप्त होगी इहलीला ।"

"जीवन एक लीला ही है, कापालिक ! किन्तु इस लीलाके लिए तुम कापालिकोंको कितना मोह है ! रक्त-पानमें क्या सचमुच तुम्हें सिद्धियाँ प्राप्त होंगी ? मोहमें मोहका निराकरण ! कैसी विडम्बना ? यदि तुम्हें सिद्धियाँ मिलें, तो मैं अभी अपना सिर काटकर तुम्हारे देवताको अर्पित कर दूँ । महाकालके नामपर अपनेको कब तक प्रवचनाका शिकार बनाते रहोगे ? आत्मतत्वका विकास करो, कापालिक ! सिद्धियोंको तुम अपने श्रीचरणोंमें लोटती पाओगे । तथागतके मार्गका अनुसरण करो ।"

"यह तुम्हारा मिथ्या प्रलाप है, चित्रकार । देखो, सिंहलसे त्रिविष्टप* तक वज्रयानकी विजय-वैजयन्ती फहरा रही है । यह हमारे अमोघ शैवतन्त्रकी कृपा है, जिसकी छत्रच्छाया

* तिब्बत ।

में बौद्धोंने हमारे मार्गको ग्रहण कर दिग्दिगन्तमें अपना प्रभाव बढ़ाया है।"

"कापालिक, हिंसा और अनाचारकी वृत्ति बौद्धोंकी नहीं। शुद्ध बौद्धिक वृत्तिका आह्वान करो। वह तुम्हें मिलेगी।"

"वह मुझे नहीं चाहिए। तुमने अपनी नीरस तपश्चर्याके द्वारा महाकालके भैरवी-चक्रकी क्षितिज-रेखाका उल्लंघन कर इस श्रीपर्वतकी पुण्यमयी मेखलाके गह्वरकी प्रस्तर-भित्तिको अपनी तूलिकासे अपमानित किया है। इस पापका प्रायश्चित्त तुम्हें करना है।"

"तुम्हारा यह आरोप निराधार है। मैं चित्रकार हूँ; किन्तु चित्रकला मेरी आजीविकाका साधन नही। मैं अपनी कलाको अमर बनाना चाहता हूँ। अपने प्राण देकर भी यदि ऐसा कर सका तो अपना जीवन सार्थक समझूँगा।"

"इस श्रीपर्वतके अन्धकूप गह्वरमें चित्रकलाकी अमर कृतिका भला क्या उपयोग? दीमक और चीटे ही तुम्हारी कलाका रसामृत पान करेगे।"

"कलाकी भेदन-शक्तिको तुम नही जानते। इस गह्वरकी कला श्रीपर्वतके अणु-अणुको आलोकमय कर देगी। शुद्धबोधि-चित्तसे जो प्रकाश विकीरित होगा उसमें परमानन्दकी धाराएँ फूट सभी जीवोंको आत्मविभोर कर देंगी। अन्तर्जागरणमें सभी स्नान करेंगे।"

"तब तो तुम्हारे-जैसे सिद्ध कलाकारके बलिदानसे हमें अवश्य सारी सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। बम! बम! महाकाल।"

"सिद्धियाँ तुम्हारे पास हैं, कापालिक! यह तुम्हारा भ्रम है जो उनको तुम देख नही पाते। यह अवस्था सारे मानव-समाजकी है। सिद्धियोंका देवता हमारे हृद्देशमें बैठा हुआ है। उसकी ओर दृष्टि करो, तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी होती हैं। नरमेधसे तुम्हारी प्रज्ञा कुंठित हो भ्रष्ट होती जायगी।"

"कलाकार, तुम्हारी कला तो इसका प्रतिपादन नही करती। जगत्‌में प्राणीके तिल-तिल कर मरनेकी अनेक कलाएँ आविष्कृत हो रही हैं। रक्त-शोषण कर मानव कंकाल बनाया जाता है—अर्थ, भोग और ऐश्वर्यकी सिद्धियों के लिए ही तो? हमारी सिद्धियाँ तो लोक-कल्याणके लिए हैं।"

"सभी ऐसा कहते है। लोक-कल्याणके नाम पर पैशाचिक कृत्योंका नग्न नृत्य होता आया है। तुम इसके अपवाद नहीं हो, महाशैव।"

"तो क्या तुम जीवन-मुक्ति चाहते हो?"

"नहीं। चाहता, किन्तु चाहता नही हूँ। अपनी मान्यता और विश्वासके अनुसार तुम्हें इस पुण्य रजनीमें अपने देवताका प्रसाद पानेके लिए मनुष्यका वध करना ही होगा। तुम किसी न किसी मानव-शरीरधारीको अपनी तलवारके घाट उतारोगे ही। अपनेको देकर कमसे कम एककी तो प्राणरक्षा कर सकूँगा। एक बात तुमसे कहूँगा। आज मुझे मध्यरात्रिके पूर्व अपनी कलामें प्राण-प्रतिष्ठा करनी है। मुझे

वलिके जकरेके सदृश बाँधकर न रखो। घटानादके साथ तुम मुझे महाकालके मंदिरके सम्मुख पाओगे।"

"तुम्हारी याचना महाकालने स्वीकार कर ली है। तथास्तु। मुझे ज्ञात है, बौद्ध भिक्षु असत्याचरणमें भीरु होते हैं।"

चित्रकारकी गुफा महाकालके मन्दिरसे कुछ ही दूरपर थी, किन्तु वह झाड और लताओंसे इस प्रकार आवृत थी कि मन्दिरके सिंहद्वारके ठीक सामने अवस्थित रहनेपर भी उसका पता पाना कठिन था। लता-अवगुंठनमें प्रवेश कर चित्रकार भीतर पहुँचा। वहाँ दीपवल्लरीके प्रकाशमें उसकी नवीनतम कृति दीप्तिमती थी। पानियोंके रंग और तूलिका उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। चित्रकार कुशासन पर समाधिस्थ हो गया। चित्रकी अभिव्यंजनामें प्राण-प्रतिष्ठा होने लगी। आज्ञाचक्रका भेदन कर प्रकाश-रश्मियाँ गोमयकलाकी उस उत्कृष्ट अभिव्यक्तिपर खेलने लगी। चित्रकार वहाँ पहुँचना चाहता था जहाँसे परमबोधिकी धाराएँ फूट निकलती हैं। कापालिक-द्वारा कथित 'वज्रयानकी विजय-वैजयन्ती' उसके कल्पना-लोकमें अभिशापकी तरह लहरा रही थी। वह देख रहा था, वह विजय-वैजयन्ती नहीं, पतनकी पताका है जो बौद्धोंकी अन्त्येष्टिकी सूचक है। इस व्यामोहकी उलझनसे ज्यों-ज्यों वह सुलझनेकी चेष्टा करता, उलझता जाता।

चित्रकारकी तूलिकामें विद्युत्-धाराओंके सदृश प्राण घनीभूत हो रहे थे। किन्तु चित्रकारकी उँगलियोंका स्पर्श पाते ही तूलिका ऋणात्मिका हो जाती—प्राण परावृत हो जाते। चित्रकारने बार-बार चेष्टा की, पर सफलता उससे दूर भागती जा रही थी। उसके चित्ताकाशमें *'वज्रयानकी विजय-वैजयन्ती उसी तरह धूमकेतु बनकर मँडरा रही थी। निर्विकार चित्त पर जो वासनाकी छाया तैर रही थी उसे मिटे बिना प्राण चित्रमें प्रविष्ट नहीं हो सकते थे। कलामें योगी चित्रकारने योगकी सिद्धियाँ भर दी थी, किन्तु निष्प्राण कला निश्चेष्ट थी। शान्ति और करुणाकी लहरियाँ बहिर्मुख न होकर केन्द्रकी ओर प्रधावित होनेके कारण अदृश्य थी। अनुभवगम्य नहीं थी और न लोक-कल्याण-कारिणी ही।

अर्द्ध-रात्रिका घंटा बज उठा। चित्रकार कापालिकके सामने खड़ा था। उसकी सारी अभिलाषाएँ धूलमें मिल गई थी। मानव-शरीरके हृदय-गह्वरमें प्रतिष्ठित आत्म-प्रकाशके समान श्रीपर्वतकी उस शैल-गुहामें कल्याणकी लहरें उत्पन्न करनेकी आशा निराशामें परिणत हो चुकी थी। वह अपना वचन पूरा करने वहाँ उपस्थित था।

किस कल्पना-लोकमें विचरण कर रहे हो चित्रकार? धर्मलोकमें आओ। योगिनियोंकी गोदमें बैठ महाकालके प्रसादका आनन्द लो। हम महाकापालिक नागाघोरकी प्रतीक्षामें हैं। उनके इस भूमिमें पदार्पण

* बौद्ध-तन्त्र

करते ही रात्रिका महोत्सव प्रारम्भ होगा। तुम अपना ध्यान महाकालके चरणोंमें स्थिर रखनेकी चेष्टा करो, तुम्हारे लिए यह पुण्य अवसर है।

चित्रकार मौन था—ध्यानावस्थित।

विकराल वेशधारी नागाघोरके मंदिरमें आते ही कापालिकोंकी घोर जयकारके साथ चित्रकारके गलेमें बलि-माला पहिना दी गई। उसके दोनों पार्श्वसे दो असि-धारें चमक उठीं। कापालिकोंके घोर नादसे मंदिरका कण-कण प्रकम्पित था। महामांस*के प्रसादके लिए सबकी जीभें लार टपका रही थीं। अवशेष था नागाघोरका एक महाअट्टहास, और चित्रकारकी गर्दन पर दो तीव्र असि प्रहार।

सहसा एक बौद्ध भिक्षुने कापालिक-समूहमें प्रवेश कर नागाघोरको सम्बोधित कर कहा—महाकापालिक, सामने दृष्टिपात करो। आश्चर्य-चकित हो सबने देखा—चित्रकारकी गुफासे प्रकाशकी किरणें छिटक रही हैं और सिंह, व्याघ्र, भेड़िये आदि वन्य पशु उसी ओर छलाँगें भरते जा रहे हैं। प्रकाशको देखते ही नागाघोर और सभी कापालिक विमुग्ध हो उसी ओर दौड़ पड़े। गुफाद्वार पर कापालिकोंके पहुँचते ही पशुओं और श्वापदोंने उनके लिए रास्ता छोड़ दिया। नागाघोरकी दृष्टि भित्ति-चित्र पर गई। नतमस्तक हो उसने घुटने टेक लिए। दूसरे कापालिकोंने उसका अनुकरण किया।

मानव, पशु और हिंस्र जीव सभी आत्मविभोर थे। सबमें आत्मानन्द लहरें ले रहा था। मृत्यु और वासना पर करुणा प्रतिष्ठित हो जीवन-प्रवाह को मोक्षकी ओर प्रेरित कर रही थी। वासना और मृत्युकी रेखाएँ देखते-देखते अन्तर्हित हो गईं जिस प्रकार बटन पर आकर्षणका आघात होते ही विद्युत्-प्रकाश भर आता है और अंधकार लुप्त हो जाता है।

चित्रकार, भिक्षुकुमार भद्र उसी प्रकार ध्यानमग्न महाकालके सामने खड़ा था।

प्रातः होते ही अरुणोदयकी आभामें नागाघोरने अपने सभी कापालिक शिष्योंके साथ बोधिसत्त्वकी उपसम्पदा स्वीकार की और वहाँ महाकाल बोधि-कलागार की स्थापना हुई और नागाघोर उसका प्रधान स्थविर बना जिसकी प्रेरणाकी देन है, अलोरा और अजंताकी कलाएँ।

चित्रकारकी आँखें खुली तो देखा, उसकी बहन चित्रप्रभा उसके सामने खड़ी है।

"प्रभे ! मैं कहाँ हूँ ?"

"यह महाकालका उद्यापन-कक्ष है।"

"तुम यहाँ कैसे ?"

"तुम्हारी कलाको सजीव करने। मैं भिक्षुवेषमें तुम्हारी खोजमें पिता-जी की आज्ञासे निकल पड़ी। कितने नगर-ग्राम, वन, पर्वत और नदी-नाले छान डाले। इसी पर्वत-प्रान्तरके एक घोषमें इस रात्रिमें निवास किया था। सुषुप्ति अवस्थामें ही मुझे

*नरमांस

कापालिकोने उठाकर यहाँ तुम्हारी गुफामें ला रखा। उनका कदाचित् उद्देश्य था तुम्हारे पश्चात् मेरे वध का। मैंने भित्ति-चित्रको देखा। उसकी रेखाएँ मानो तुम्हारी स्मृति दिलाती हुई मुझसे जीवनकी याचना कर रही थी। मैंने तूलिका उठाई। उसमें प्राणकी तरगें भर रही थी, स्पर्श पाते ही चित्र सजीव हो उठा।"

"तो क्या बोधि-मुद्रा सप्राण हो गई।"

चित्रप्रभाने नतमस्तक हो कहा–हाँ।

चित्रकार गिर पडा। वह निष्प्राण था। उसके बचे-खुचे प्राण भी बोधि-मुद्रामें सन्निहित हो गये।

आज भी श्रीपर्वतकी उस बनखडीमें लहलही लताओ और फल-फूलसे लदे पादपोंका बाहुल्य है और उस गह्वरमें गाय और बकरियोंके साथ कभी-कभी चीते-भेडियोंको देखकर चरवाहे चकित हो जाते है।



बहुरूपिया

सन्यासी कहता है, ससार का सार त्यागमें ही है। त्याग ही धर्म है, त्याग ही ध्येय है।

पुजारी कहता है, प्रतिमाकी उपासनामें ही हमारा निस्तार है, उसे छोडकर हम शाति नहीं प्राप्त हो सकती।

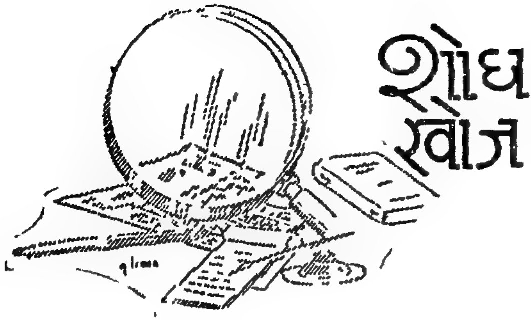
युवक कहता है, प्रेम के बिना ससार फीका है। जिसने प्रेम नहीं किया उसका जीवन ही निष्फल है।

वृद्ध कहता है, यह प्रेम मरीचिका है। इस स्वप्नको छोडकर हमें सयमकी ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

गृहस्थ कहता है, प्रवृत्ति पथ निवृत्त-पथ से उत्तम है, हमें उसीका अनुगमन करना चाहिए। कर्म ही हमारा एक मात्र आधार है।

सबके हृदयमें बसा हुआ स्वार्थ हँसता है और कहता है, लोग मेरे इतने रूपोंकी उपासना करते हैं किन्तु फिर भी मुझे कोई नहीं पहचान पाया!

—'अज्ञेय'



महाकोशलके जैन पुरातत्त्व

मुनि कान्तिसागर

महाकोशल और जैन पुरातत्त्व—

महाकोशल मध्य-प्रदेशका एक विभाग है। इसमें हिन्दी-भाषी जिले सम्मिलित हैं। छत्तीसगढ़ डिवीजनका समावेश भी इसीके अन्तर्गत है। मध्यप्रदेशके प्राचीन इतिहासकी दृष्टिसे महाकोशलका विशेष महत्त्व है, सापेक्षतः प्राचीन ऐतिहासिक घटनायें निर्दिष्ट भू-भागपर ही घटी हैं। एतद्विषयक ऐतिहासिक साधन इसी भू-भागसे प्राप्त हुए हैं। आज भी महाकोशलके वन एवं गिरि-कंदरा तथा खण्डहरोंमें भारतीय शिल्पस्थापत्य एवं मूर्त्तिकलाके मुखको उज्ज्वल करनेवाली व इनके क्रमिक विकासपर—कलाकी दृष्टिसे—प्रकाश डालनेवाली मौलिक कलाकृतियाँ प्रचुर परिमाणमे उपलब्ध होती ही रहती हैं। मुझे विशेष रूपसे यहाँकी मूर्त्तिकलाका अध्ययन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जब १२वी शताब्दीमें अन्य प्रांतोंके कलाकार मूर्ति-निर्माणमें शिथिल पड़ गये थे, उन दिनों यहाँके कलाकार अपनी शिल्प-साधनामें पूर्णतः अनुरक्त थे, जैसा कि उस समयकी उनकी कृतियोसे प्रमाणित होता है। यहाँके पुरातन कलावशेषोंको मुख्यतः ३ भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—जैन, बौद्ध और वैदिक। सापेक्षतः बौद्ध कलाकृतियाँ अल्प मिलती हैं। इन तीनों शाखाओंपर व्यापक दृष्टिकोणसे गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। मेरे द्वारा संकलित व संगृहीत समस्त कलावशेषोके आधारपर एक ग्रंथ लिखा जा चुका है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इसमें तीनों धाराओंकी कृतियोंका अवलोकन किया गया है।

अन्य प्रांतोंकी अपेक्षा महाकोशलमें शिल्पकलाकी दृष्टिसे अनुसंधान-कार्य बहुत ही कम हुआ है। जो हुआ है वह नहीके बराबर है। जनरल **कनिंग्हाम**[1] और **राखालदास**[2] बनर्जी

---

१. आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ् इंडिया, पुस्तक १७।

२. हैहयाज् ऑफ त्रिपुरी एन्ड देअर मान्यूमेन्ट्स।

आदि पुरातत्त्वविदोंने अवश्य ही प्रमुख स्थानोंका निरीक्षण कर इतिवृत्तकी खानापूर्ति की है। परन्तु जितने स्थानोंका विवरण प्रकाशित किया गया है उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान एवं अवशेष आज भी उपेक्षित पड़े हुए हैं, जिनकी ओर केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग एवं प्रान्तीय शासनने आज तक ध्यान नहीं दिया, न देनेवाले सांस्कृतिक कार्यकर्ताओंको प्रोत्साहित ही किया, बल्कि तथाकथित व्यक्तियोंके प्रति अभद्र व्यवहार किया गया। उचित अनुसंधानके अभावमें महत्त्वपूर्ण जैन कलाकृतियोंका प्रकाशमें न आना सर्वथा स्वाभाविक है। यहाँ बिखरे हुए जैन अवशेषोंको देखकर तो ऐसा ही लगता है कि किसी समय महाकोशल जैन संस्कृतिका प्रधान केन्द्र रहा होगा। जैन पुरातत्त्वके अवशेषोंको समझनेमें शुरूसे विद्वानोंने बड़ी भूल की है। जैन-बौद्ध मूर्तिकलामें जो अंतर है, वे समझ नहीं पाते, इसी कारण महाकोशलकी अधिकतर जैन कलाकृतियाँ बौद्धसे पहचानी जाती हैं।

प्राचीनता—

महाकोशल प्रान्तमें जैन संस्कृतिका प्रचार कबसे शुरू हुआ, उचित साधनोंके अभावमें निश्चित रहना कठिन है। क्योंकि तत्कालीन या परवर्ती साहित्यमें इस विषय पर प्रकाश डालनेवाले उल्लेख अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुए, न वैसे प्राचीन लेख ही मिले हैं। हाँ, मध्यप्रदेशके एक भाग बरार-विदर्भसे सम्बद्ध कुछ उल्लेख अवश्य ही प्राप्त हैं। नवांगी टीकाकारसे भिन्न मलधारी 'अभयदेव सूरिजीने अंतरिक्ष पार्श्वनाथकी प्रतिष्ठा बारहवीं शतीके पूर्वार्द्धमें की थी। एलिचपुरका राजा एल या ईल जैनधर्मानुयायी था। एलिचपुर उन दिनों जैन संस्कृतिका अच्छा केन्द्र था। बड़े-बड़े धनपाल जैसे साहित्यसेवी रहा करते थे। आचार्य हेमचन्द्रने भी अपने व्याकरणमें अलचपुरका[2] प्रासंगिक उल्लेख किया है।

१ विक्रम संवत् ११४२ माघशुक्ला ५ रविवारके दिन अन्तरिक्ष पार्श्वनाथकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की थी। यह मन्दिर भूमिगृहमें है। ईलराजाने जिनपूजार्थं श्रीपुर—सिरपुर गांव भी चढ़ाया था। जहाँसे प्रतिमा मिली थी वहाँ जलकुण्ड निर्मित करवानेके उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथसे सम्बन्धित दर्जनों ऐतिहासिक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

२ "अचलपुरे चलो अचलपुरे चकार-लकारयोर्व्यत्ययो भवति अलचपुर।" (२, ११८) निर्वाणकाण्डमें भी अचलपुरका उल्लेख पाया जाता है विक्रम सं० ६८८ का राष्ट्रकूट वंशका एक ताम्रपत्र मिला है जो अचलपुरमें लिखा गया है इसीसे इसकी प्राचीनता सिद्ध हो जाती है। १५ वीं शतीमें अचलपुर निस्सन्देह उन्नतिशील नगर रहा होगा। धम्मपरिक्खाकी समाप्ति धनपालने वि० सं० १०४४ में की थी।

"विक्कमणि वपरियत्तइ कालए ववगए, वरिससहस चौतालए।"

महाकोशलके अन्तर्गत सरगुजा राज्यमें लक्ष्मणपुरसे १२ वें मीलपर **रामगिरि** पर्वत पर जो गुफाएँ उत्कीर्णित हैं, उनमें कुछ भित्तिचित्र भी पाये गये हैं। **रायकृष्णदासजीका** मत है, इनमेंसे **"कुछ चित्रोंका विषय जैन था"**[१]। कारण कि पद्मासन लगाए एक व्यक्तिका चित्र पाया जाता है। इस गुफामें एक लेख भी उपलब्ध हुआ है। भाषा प्राकृत है। डॉ० ब्लाखके मतसे इसका काल ईसवीपूर्व ३ शती जान पड़ता है। इस प्रमाणसे तो यही प्रमाणित होता है कि उन दिनों श्रमणसंस्कृतिका प्रभाव इस भूभागपर अवश्य ही रहा होगा। पद्मासन[२] जैनतीर्थङ्करकी ही विशेष मुद्रा है। बौद्धोंमें इस मुद्राका विकास बहुत काल बादमें हुआ है। यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि अशोकका एक स्तंभ भी रूपनाथमें मिला है, जिस पर उनकी आज्ञाएँ खोदी गई है। तो बौद्ध संस्कृतिका प्रतीक रूपनाथ और जैन संस्कृतिका रामगिरि[३] (रामटेक नहीं, जैसा कि

---

१. भारतकी चित्रकला पृ० २।

२. केटलाग आफ़ दी आर्क्यलाजिकल म्यूज़ियम at Mathura by J. वोगल Ph. D. Allahabad.

३. श्री उग्रादित्याचार्यने अपना कल्याणकारक नामक वैद्यक-ग्रन्थ भी शायद इसी रामगिरिपर रचा था।

वेंगीशत्रिकलिंगदेशजननप्रस्तुत्यसानूत्कटः
प्रोद्यद्वृक्षलतावितानिरतैः सिद्धैश्च विद्याधरैः।
सर्वे मंदिरकंदरोपमगुहाचैत्यालयालंकृते
रम्ये रामगिराविदं विरचितं शास्त्रं हितं प्राणिनाम् ॥

इसमें रामगिरिके लिए जो विशेषण दिये हैं, गुहा मंदिर चैत्यालयोंकी जो बात कही है, वह भी इस रामगिरिके विषयमें ठीक जान पड़ती है। कुलभूषण और देशभूषण मुनिका निर्माणस्थान भी यही रामगढ़ है या उसके आसपास कहीं महाकोशलमें ही होगा।

जैन साहित्य और इतिहास पृ० २१२

प्रेमीजी की उपर्युक्त कल्पनासे मैं भी सहमत हूँ कारण कि कालिदासवर्णित रामगिरि यही रामगढ़ है। वाल्मीकिरामायणके किष्किंधाकाण्डमें शिलाचित्र एवं उनके खास शब्दोंका उल्लेख आया है। ऊपरके सभी उल्लेख इसी स्थानपर चरितार्थ होते हैं। रामटेकमें उल्लेखनीय शिलाचित्रण उपलब्ध नहीं होते। यदि रामटेक ही रामगिरि होता तो मध्यकालीन जैन यात्री या साहित्यिक इसका उल्लेख अवश्य ही करते। इतना निश्चित है कि उपर्युक्त मुनियोंका निर्वाणस्थान महाकोशलमें ही था।

मिराशीजी मानते हैं) अत ईसवीपूर्व ३री शतीमें जैन प्रभाव महाकोशलमे था। परन्तु ईसवी पूर्व ३री शती से लगाकर ८ वी तकका जैन इतिहास अधकारमें है। जब कि बौद्ध संस्कृति-की परपराकी कडियाँ हमें इस बीच भी ज्यो-की-त्यो मिलती है।

शिल्प-स्थापत्य कलाकी विकसित परपराको समझनेके लिए मूर्तिकी अपेक्षा स्थापत्य अधिक सहायक हो सकते है। सम-सामयिक कलात्मक उपकरणोका प्रभाव स्थापत्यपर अधिक पडता है। महाकोशलमें प्राचीन जैन स्थापत्य बच ही नहीं[1] पाये, केवल आरगका एक जैनमदिर बच गया है, वह भी इसलिए कि उसमें जैन मूर्ति रह गई है। यदि प्रतिमा न रहती तो इस जैन-प्रासादका भी कभीका रूपान्तर हो चुका होता। इस मदिरकी आयु भी उतनी नही है कि जो उपर्युक्त विशृखलित परपराकी एक कडी भी बन सके। तात्पर्य कि यह १० वी शतीके पूर्वका नहीं है। यहाँपर जैन अवशेष प्रचुर परिमाणमें बिखरे पडे है। परन्तु जैन तीर्थमाला या किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थमे आरगकी चर्चा तक नही है। परन्तु ९ शती पूर्व वहाँ जैन संस्कृतिका प्रभाव अधिक था, पुष्टि स्वरूप अवशेष तो है ही। एक और भी प्रमाण उपलब्ध है। यह वह कि आरगसे श्रीपुर-सिरपुर जगली रास्तेसे समीप पडता है। वहाँपर भी जैन अवशेष बहुत बडी सख्यामें मिलते हैं। इनकी आयु भी मदिरकी आयुसे कम नही है। ९ वी शताब्दीकी एक धातु मूर्ति-भगवान् ऋषभदेव—मुझे यहीसे प्राप्त हुई थी। यह इस पूर्व बौद्ध संस्कृतिका केन्द्र था। मुझे ऐसा लगता है जहाँ बौद्ध लोग फैले वहाँ जैन भी पहुँच गये। यह पक्ति महाकोशलको लक्ष करके ही लिख रहा हूँ। आरगके मदिरको देखकर रायबहादुर डा० हीरालालजीने कल्पना की है कि यहाँपर महामेघवाहन खारवेलके वशजो का राज्य रहा होगा। इससे फलित होता है कि ९ वी शताब्दी तक तो जैन संस्कृतिका इतिहास मिलता है, जो निर्विवाद है। परन्तु भित्तिचित्रसे लगाकर ८ वी शतीके इतिहास साधन नही मिलते। भारतीय इतिहासके गुप्तकालमें महाकोशल काफी ख्याति अर्जित कर चुका था। इलाहाबादका लेख और एरणके अवशेष इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।

उपलब्ध शिल्पकलाके आधारपर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ८ और ९ वी शताब्दिमे जैन शिल्प-

---

१ महाकोशलमें बहुतसे ऐसे जैन मन्दिरके अवशेष व पूरे मंदिर पाये जाते हैं जो अजैनोंके अधिकारमें है। कुछ ऐसे भी मदिर हैं जो अद्यावधि पहचाने नहीं गये। उदाहरणार्थ—रायबहादुर डॉ० हीरालालने मण्डला-मयूख पृ० ७९ में कुकर्रा मठकी चर्चा करते हुए लिखा है कि "इस मदिरकी कारीगरी नवीं या १०वीं शताब्दीकी जान पडती है। पुरातत्त्वज्ञ इस मदिरको जैनी बतलाते हैं।" बरेठा, बिलहरी और बडगाँवमें ऐसे मदिर व अवशेषोंकी कमी नहीं है।

कलाका इतिहास प्रारंभ होता है। गुफाचित्रोंसे लगाकर आठवीं शती तकका भाग अन्धकारपूर्ण है। इसका कारण भी केवल उचित अन्वेषणका अभाव ही जान पड़ता है।

कलचुरियोंके समय जैनाश्रित शिल्प-स्थापत्य-कलाका अच्छा विकास हुआ। वे शैव होते हुए भी परमत-सहिष्णु थे। जैनधर्मको विशेष आदर-की दृष्टिसे देखते थे। कलचुरि **शंकर-गण** तो जैनधर्मके अनुयायी थे, इनने **कुल्पाकक्षेत्रमें** १२ गाँव भी भेंट चढ़ाये थे। इनका काल ई० सं० सातवी शती पड़ता है। महाकोशल-में सर्वप्रथम **कोक्कल्लने** अपना राज्य जमाया। **त्रिपुरी—तेवर**[1]—इनकी राजधानी थी। कलचूरियोंका पारिवारिक सम्बन्ध दक्षिणी राष्ट्रकूट शासकोंके साथ था। राष्ट्रकूटोंपर जैनोंका न केवल प्रभाव ही था, बल्कि उनकी सभामें जैन विद्वान् भी रहा करते थे। महाकवि **पुष्पदंत** राष्ट्रकूटों द्वारा ही आश्रित थे। **अमोघवर्षने** तो जैनधर्मके अनुसार मुनित्व भी अंगीकार किया था, ऐसा भी कहा जाता है। यद्यपि **बहुरीबंद** आदि कुछेक स्थानोंकी जैन मूर्तियोंको छोड़कर कलचुरि-कालके लेख नहीं पाये जाते, बल्कि स्पष्ट कहा जाय तो कलचुरिकालीन जैन शिल्पकृतियोंको छोड़कर शिलोत्कीर्णित लेख अत्यल्प ही पाये गये हैं। परन्तु लेखोके अभावमें भी उस समयकी उन्नतिशील जैन संस्कृतिके व्यापक प्रचारके प्रमाण काफ़ी हैं। जैन मूर्तियोंके परिकर एवं तोरण तथा कतिपय स्तंभोंपर खुदें हुए अलंकरणोंके गंभीर अनुशीलनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनपर कलचुरिकालमें विकसित तक्षणकलाका खूब ही प्रभाव पड़ा है, कुछेक अवशेष तो विशुद्ध महाकोशलमें ही हैं। कृतियाँ भिन्न भले ही हों पर कलाकार तो वे ही थे या उनकी परंपराके अनुगामी थे। निर्माण-शैली और

---

१. आजका यह तेवर एक समय जैन संस्कृतिका प्रधान केन्द्र था, मुझे यहाँ पर कुछ दिनों तक केवल अन्वेषणार्थ ही रहनेका अवसर गत फरवरीमें प्राप्त हुआ था, यहाँपर मुझे सबसे अधिक जैन अवशेष ही उपलब्ध हुए। यहाँके अवशेष अपने ढंगके निराले हैं। जैनमूर्ति विज्ञानकी विविधताको लिये हुए हैं। कुछेकमें नवीनतम कलात्मक अलंकरणोंका सफल प्रयोग भी दृष्टिगोचर हुआ, जिसका सोदाहरण उल्लेख मैं अन्यत्र कर चुका हूँ। यद्यपि समय-समयपर यात्रियों द्वारा अनेक कला कृतियों का अपहरण, सरकारी उदासीनताके कारण, हो चुका है, पर अभी भी जहाँ कहीं भी खनन किया जाता है, वहाँ जैन मूर्तियाँ, मंदिरोंके अवशेष निकल ही पड़ते हैं। परन्तु भारतीय पुरातत्त्व बार-बार ध्यान आकृष्ट करनेपर भी पूरा उदासीन है। मुझे यहाँकी जनता व जनपदके अधिकारियोंने मूर्तिसंग्रह विषयक कार्यमें पर्याप्त सहायता दी थी। जनताके पाससे भी सैकड़ों अवशेष मिले, जो अपने गृहोंमें छुपाये हुए था।

व्यवहृत पाषाण ही हमारे कथनकी सार्थकता प्रमाणित कर देते है। यहाके इस कालके जैन बौद्ध और वैदिक अवशेषोको देखनेमे ज्ञात होता है कि यहाँके कलाकार स्थानीय पाषाणोका उपयोग तो कलाकृतियोके निर्माणमें करते ही थे पर कभी-कभी युक्त प्रान्तसे भी पत्थर मँगवाते थे। कलचुरिकालके पत्थरकी मूर्तियाँ अलगसे ही पहचानी जाती हैं।

९ से १३ शती तकके जितने भी जैन अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमेसे बहुतोका निर्माण त्रिपुरी और बिलहरीमें हुआ होगा। कारण दोनो स्थानोपर जैन मूर्तियाँ आदि अवशेषो की प्रचुरता है। कैमोरके पत्थरकी जैन प्रतिमाएँ प्राय बिलहरीमें मिली है। और बिलहरीके ही लाल पत्थरके तोरण भी पर्याप्त मिले है। लाल पत्थर पानीसे खराब हो जाता है, प्रक्षालकी सुविधाके लिए कलाकारोने मूर्ति-निर्माणमें कैमोरका मुरा और कोमल-सचिक्कण पत्थर व्यवहृत किया।

प्रसगत सूचित करना आवश्यक जान पडता है, कि जिस प्रकार कलचुरियोके समयमें महाकोशलके भू-भागमें उत्तमोत्तम जैनकलाकृतियोका सृजन हो रहा था, उसी समय-जेजाकभुक्ति-बुदेलखण्डमें चंदेलोके शासनमें भी जैनकला विकासकी चोटी पर थी। आजकी शासन-सुविधाके लिए जो भेद सरकारने किये है, इससे महाकोशल और बुदेलखड भले ही पृथक् प्रदेश जँचते हो परतु, जहाँतक सस्कृति और सभ्यताका सवाल है दोनोमें बहुत ही सामान्य अन्तर है यानी जबलपुर और सागर जिले तो एक प्रकारसे सभी दृष्टिमे बुदेलखडी ही है। सामीप्यके कारण कलात्मक आदान-प्रदान भी खूब ही हुआ है। मुझे बुदेलखडमे बिखरे हुए कुछेक जैनावशेषोके निरीक्षणका अवकाश मिला है, मेरा तो इसपरसे यह मत और भी दृढ हो जाता है कि कलाके उपकरण और अलकरण तथा निर्माण-शैली—दोनामें साधारण अतर है। अधिक अवशेष, दोनो प्रदेशोंमें एक ही शताब्दीमें विकसित कलाके भव्य प्रतीक है। बुदेलखडके जैन अवशेषो का बहुत बडा भाग तो, वहाँके शासकोकी अज्ञानताके कारण, बाहर चला गया, परन्तु महाकोशलके अवशेष भी बहुत काल तक बच सकेंगे या नही? यह एक प्रश्न है। दुर्भाग्यसे इतिहास और कलाके प्रति अभिरुचि रखनेवाले कुछेक व्यक्ति जिसमें जैन भी सम्मिलित है सीमापर है जो इन पवित्र अवशेषोको विक्रय किया करते है। यह घृणित कार्य्य है। वे अपनी सस्कृतिके साथ महा अन्याय कर रहे हैं। इस ओर शासन-मौन खेद व आश्चर्यजनक है।

स्थापत्य—

यहाँ पर पाये जानेवाले जैन अवशेषोको दो भागोमें, अध्ययनकी सुविधाके लिए विभक्त किया जा सकता है—स्थापत्य और मूर्तिकला। स्थापत्य अवशेषोमे आरगके मन्दिरको छोडकर और कृति मेरी स्मृतिमें नही है। हाँ, त्रिपुरी, बिलहरी और बडगाँव आदि स्थानोंमे कुछ स्तम्भ ऐसे पाये गये है जिनपर स्वस्तिक, नन्द्या-

-वर्त, **मीन-युगल** और **कुम्भ कलश** आदि चिह्न अवश्य ही पाये जाते है। निस्संदेह इनका संबंध जैन धर्मसे है। ये स्तंभ जैन प्रासादके ही रहे होंगे। गवेषणा करनेपर इस प्रकारके अन्य प्रतीक मिल सकते हैं। विशाल जैन प्रासादोके कुछ कलापूर्ण तोरण भी उपलब्ध हुए हैं। उदाहरण-स्वरूप दो के चित्र भी दिये जा रहे हैं। कुछ अवशेष मान[1]स्तंभ के भी प्राप्त हुए हैं। इन अवशेषोसे फलित होता है कि महाकोशलमे जैन मन्दिर अवश्य ही रहे थे, पर विन्ध्यप्रांतके समान यहाँ भी अजैनों द्वारा अधिकृत कर लिये गये या विनष्ट कर दिये गये। उपर्युक्त समस्त प्रतीक स्थापत्य कलासे ही सम्बद्ध हैं। जैन स्थापत्य पर विपुल सामग्रीके अभावमें अधिक क्या लिखा जा सकता है।

मूर्तिकला—

महाकोशलमें जितनी भी प्राचीन जैन प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं वे सभी प्रस्तरोत्कीर्णित हैं। कलाकारको अपने भावोंको मूर्त रूप देनेके लिए पत्थरमे काफ़ी गुजाइश रहती है। धातुकी मूर्त्ति, आजतक केवल एक ही ऐसी उपलब्ध हुई है जो कलचुरी पूर्व विकसित मूर्त्तिकलाकी देन है। १९४५ पन्द्रह दिसम्बरको मुझे श्रीपुरके एक महन्तने भेंट स्वरूप दी थी। इसमें ग्रहोंका अंकन स्पष्ट था। पाषाण-पर खुदी हुई जिनप्रतिमाएँ दो प्रकारकी मिली हैं—एक सपरिकर पद्मासन एवं अपरिकर या सपरिकर खड्गासन। सपरिकर पद्मासनस्थ जिनप्रतिमाओंमे सर्वश्रेष्ठ मूर्ति भगवान् ऋषभदेवकी है जो [3]**हनुमानताल-स्थित** जैन मन्दिरमें सुरक्षित है। शिल्पकी दृष्टिसे इसका परिकर इतना सुन्दर एवं भावपूर्ण बन पड़ा है कि इसकी कोटिका एक भी परिकर महाकोशलमें दृष्टिगोचर नही हुआ। कलाकारकी सूक्ष्म भावना, उदात्त विचार-गाम्भीर्य एवं बारीक छैनीका आभास उसके एक एक अंगमें परिलक्षित होता है। यह परिकर अन्य मूर्तियोके उपकरणसे कुछ भिन्न जान पड़ता है। जैन प्रतिमाओंके विभिन्न परिकर एवं उपकरणोंका सूक्ष्म अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि उनके निर्माता शिल्पियोंने अजैन तत्त्वोंका भी प्रवेश करा दिया है। यानी अष्ट प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षिणी एवं उपासक दम्पति तथा ग्रहोंको छोड़कर अन्य भाव अजैन मूर्त्तिकलामें विकसित परिकरोंके समान मिलता है।

---

१. दिगम्बर जैन मन्दिरोंके सम्मुख मानस्तम्भ स्थापित करनेकी प्रथा मध्यकालके कुछ पूर्वकी प्रतीत होती है। बौद्ध स्तम्भोंका यह अनुकरण मात्र जान पड़ता है।

२. चित्र देखिये विशाल भारत १९४६ सितम्बर पृष्ठ १४९.

३. यह मूर्ति त्रिपुरीसे ही लाई गयी है। कलाकी दृष्टिसे यह कलचुरि-कलाका अभिमान है।

इसे प्रान्तीय प्रभाव भी कहना चाहिये।

परिकरहीन पद्मासनस्थ प्रतिमाएँ भी प्रचुर परिमाणमें उपलब्ध हुई हैं जिनमेंसे कुछेक तो निस्सन्देह कला एव अगोपागोकी क्रमिक रचनाका उत्तम प्रतीक है। एक प्रतिमा ऐसी भी प्राप्त हुई है जिसका परिकर केवल नवग्रहोंसे ही बना है। चित्र प्रबन्धमें दिया जा रहा है।

खड्गासनकी परिकरयुक्त प्रतिमाओमें कलाकी दृष्टिसे सर्वोत्कृष्ट मूर्ति जो मुझे जँची उसका चित्र एव विवरण प्रस्तुत निबन्धमें दिया जा रहा है। आरगके वर्णित मन्दिरमें वैविध्य की दृष्टिसे एक परिकरयुक्त त्रिमूर्ति विराजमान है। उसे देखनेसे ऐसा लगता है कि कलाकारके हाथ अवश्य सुदृढ रहे होंगे पर मानस दुर्वल था। भोडी रेखाएँ टेढी मेढी आकृतियोंकी वहाँ भरमार है। किसी शैलीसे आंशिक मिलता-जुलता एक त्रिमूर्तिपट्ट मुझे बिलहरीसे प्राप्त हुआ है। बडे परितापके साथ लिखना पड रहा है कि एक ब्राह्मणने अपने गृहके आगे सीढीमें इसे लगा रखा था। परिकरविहीन खड्गासन मूर्तियाँ स्वतत्र एवम् मन्दिरके स्तम्भोमें पाई जाती हैं।

प्रासगिक रूपसे एक बातका उल्लेख करना अत्यावश्यक जान पडता है कि महाकोशलके कलाकार बहुसख्यक मूर्तियोंके परिकरका निर्माण इस प्रकार करते थे कि उसमें सम्पूर्ण मन्दिरकी अभिव्यक्ति हो सके। शिखर, आमलक और कलशकी रेखाएँ स्पष्ट खोदी जाती थी। जैन मूर्तिकला भी इस व्यापक प्रभावसे अछूती न रह सकी। यही कारण है कि मन्दिरके आगे लगाये जानेवाले तोरणातर्गत मूर्तियोंमें भी उपर्युक्त भावोका व्यक्तिकरण बडी सफलताके साथ हुआ है। यह विशुद्ध महाकोशलीय रूप जान पडता है। सिंहासन शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध है, परन्तु महाकोशलमें वह इतना व्यापक मूर्त रूप धारण कर चुका है कि प्रत्येक मूर्तिके बैठक स्थानके नीचे सिंहकी आकृति अवश्यमेव मिलेगी ही।

यो तो यक्षिणियोंकी प्रतिमाएँ परिकरमें सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती हैं, परन्तु महाकोशल प्रातमें न केवल स्वतत्र विविध भावोको लिये हुए यक्षिणियोकी मूर्त्तियाँ ही निर्मित होती थी अपितु इनके स्वतत्र मदिर भी बना करते थे। लौकिक आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए जैन अजैन जनता मनौती भी किया करती थी। ऐसा एक मदिर कटनी तहसील स्थित बिलहरी ग्रामके विशाल जलाशय पर बना हुआ है। मदिर अभिनव जान पडता है परन्तु गर्भगृहस्थित चक्रेश्वरीकी मूर्त्ति १२वी शतीके बादकी नही है। मस्तकपर भगवान् ऋषभदेवकी प्रतिमा विराजमान है। प्रथम तीर्थङ्करकी अधिष्ठात्री देवीका यह मदिर आज अजैनोकी खैर माई–खैरदैय्या बनी हुई है। इसी प्रकार अबिका और पद्मावतीको प्रतिमाएँ भी मिलती हैं। इनके मस्तकपर क्रमश नेमिनाथ और पार्श्वनाथके प्रतीक रहते हैं।

[क्रमश]

गीत

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

मेरे दीपक जलते रहना।
कभी न बुझना तूफ़ानोंसे
कभी न रुकना चट्टानोंसे
सदा जगत्‌की घातोंमें तुम आग उगलते रहना।
मेरे दीपक जलते रहना।

कहीं मिलेंगी शत-शत हारें
कहीं-कहीं मञ्जुल मनुहारें
विषम विश्वकी लहरोंपर तुम रङ्ग बदलते रहना।
मेरे दीपक जलते रहना।

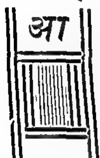
अन्तरमें हैं गान अनेकों
मधु भीगे अरमान अनेकों
दूर लक्ष्यकी राहोंमें बन स्वप्न मचलते रहना।
मेरे दीपक जलते रहना।

आयेंगे दिन याद पुराने
मधुर-मधुर क्षण तुम्हें लुभाने
विगत ज़िन्दगीके सपने लख, सतत उजलते रहना।
मेरे दीपक जलते रहना।

नव जीवनके नवल हास तुम
तम पी-पी देना प्रकाश तुम
लघु-लघु शलभ, शिखासे अपनी कहीं न छलते रहना।
मेरे दीपक जलते रहना।

स्याद्वाद अथवा समन्वय

महासती उज्ज्वलकुमारी • प्रेषक—श्री 'रत्नेश' साहित्यरत्न



आज दुनियाकी सख्या लगभग २ अरब कही जाती है। इन दो अरब मानवोंमें ऐसे दो आदमी भी न मिलेंगे, जिनकी कि आकृति समान हो और जिन्हें देखकर उनके निकटतम सबधी भी भूलमें पड जायें। अत जितने मानव उतनी ही भिन्न-भिन्न आकृतिके सिद्धान्तकी स्वाभाविक ही कल्पना की जा सकती है। इस सिद्धान्तानुसार दो अरब मानवोंकी आकृति दो अरब प्रकारकी होनेपर भी उन सबमें रहा हुआ आत्मा तो एक ही प्रकारका होता है। धर्म और सम्प्रदायका सबध भी शरीर और आत्मा जैसा ही होता है। सम्प्रदाय शरीरकी तरह होते है और उनमें रहा हुआ धर्म आत्माकी तरह होता है। बाह्य दृष्टिसे भले ही सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न दिखाई देते हो, पर उनमें रहा हुआ धर्मका आत्मा तो समान ही है।

प्रत्येक धर्मकी उत्पत्ति आत्म-निष्ठामेंसे ही होती है और मोक्ष उनका चरम लक्ष्य होता है। गगा, यमुना, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र, सिंधु आदि महानदियोंका उद्गमस्थान हिमालय होनेपर भी ये सब भिन्न-भिन्न पथमे प्रवाहित होती है और अन्तमें सभी महासागरमें जाकर मिल जाती है—एक हो जाती है। ऐसे ही आत्मनिष्ठा प्रत्येक धर्मका उद्गम-स्थान है और मोक्षका महासागर विलयका, जिसमें सभी धर्म जाकर समा जाते है। जहाँ आत्मनिष्ठा नही होती है वहाँ धर्मका नामो-निशान ही नही होता है। आत्म-निष्ठाके अभावमे भौतिकता और भोग-विलासका ही सर्वत्र साम्राज्य फैला हुआ रहता है। परन्तु जहाँ धर्मका नाम सुनाई देता है वहाँ कम ज्यादा रूपमें भी आत्मनिष्ठा होती ही है। क्योंकि आत्मनिष्ठावाले मानवोको ही धर्मकी जिज्ञासा होती है और वे ही धर्मके रहस्यको खोजते है। सत्यका स्वरूप क्या है? इसको समझनेका भी वे ही प्रयास करते है। फिर भले ही वे उसे पूर्ण समझें या अपूर्ण, पर उनका प्रयास सत्य स्वरूप-को समझनेका ही होता है। इसीलिए यह कहा गया है कि धर्म आत्म-निष्ठामेंसे ही उत्पन्न होता है।

मोक्ष, जन्म-मरणके चक्करसे

मुक्ति पानेका नाम है, जो कि धर्मका साध्य है। राग-द्वेषसे रहित होना ही इसको पाना है जिसके लिए भिन्न-भिन्न धर्मोंने विभिन्न प्रकारके उपदेश दिये है।

जैनधर्मका आदर्श वीतरागता प्राप्त करना है जिसका अर्थ है राग-द्वेषसे पूर्ण रहित होना। वैदिक धर्मका आदर्श स्थितप्रज्ञ स्थिति प्राप्त करना है। इसका लक्षण वताते हुए गीतामें कहा गया है कि **'वीतराग-भयक्रोधः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते'**—राग, भय और क्रोध जिसके नष्ट हो जाते हैं उसे स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। गीताके दूसरे अध्यायके अन्तिम श्लोकमें स्थितप्रज्ञका लक्षण वताया गया है जिसका महात्माजी प्रतिदिन अपनी प्रार्थनामें दोनों समय पारायण किया करते थे। वौद्धधर्मका आदर्श वोधि-पद प्राप्त करने का है। बोधि-पद पाना यानी राग-द्वेषसे रहित होना। अब सरसरी दृष्टिसे देखें तो इन तीनोंका आदर्श—जैनधर्मकी वीत-रागताका, गीताके स्थितप्रज्ञका, और वुद्धके धम्मपदका राग-द्वेषसे मुक्त होनेका ही है।

इस आदर्शको पानेके लिए जो साधन वताये गये हैं वे भी लगभग सभी समान ही कहे गये हैं। जैनधर्ममें अहिंसादि पाँच महाव्रतोंको वीत-रागता प्राप्त करनेका साधन वताया गया है। वैदिक धर्ममें इन्हीं अहिं-सादि पाँच महाव्रतोंको पाँच यमके नामसे कहा गया है और इष्टसिद्धिका साधन वताया गया है। वौद्धधर्ममें इन्हीं व्रतोंको पंचशीलके नामसे कहा गया है। इस तरह हर एक धर्मके मुख्य सिद्धान्तोंमें भी साम्य प्रतीत होता है।

ईशु ख्रिस्तने भी अपने गिरी-प्रवचनमे ऐसा ही उपदेश दिया है। इन्होंने कहा है कि Thou shalt not kill, thou shalt not tell a lie. Thou shalt not steel,thou shalt not commit adultery. (अर्थात् हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं वोलना, चोरी नहीं करना, और असदाचारका त्याग करना)। आगे वे अपरिग्रहका उपदेश देते हुए कहते हैं कि—'It is lasier for a camel to enter into through the eye of a needle than for a rich man to enter into Kingdom of God. अर्थात् सूईकी नोंकमेंसे ऊँटका निकल जाना आसान है, पर श्रीमन्तोंका ईश्वरीय साम्राज्यमें प्रवेश पाना कठिन है।' इस प्रकार अहिंसादि पाँच व्रतोंका उन्होंने भी उपदेश दिया है। वैरभावको मिटानेके लिए उन्होंने कहा है कि Who soever shall smite thee on thy right cheek turn to him the other also. 'यदि कोई तुम्हारे दाये गालपर थप्पड़ मारे तो तुम अपना वायाँ गाल भी उसके सामने कर देना।' Do good to them that hate you जो तुम्हारा तिर-स्कार करे उसका भी तुम भला करना। Bless them that curse you जो तुम्हें शाप दें उन्हें भी तुम आशीर्वाद देना। इस प्रकार धर्मके आशयको गहराईसे देखेंगे तो प्रतीत होगा कि हिंसादिसे निवृत्त होनेके लिए और द्वेषादि विकारोंको दूर कर

चित्तशुद्धि करनेके लिए सब धर्मोने भिन्न भिन्न रूपमें प्रयास किये हैं।

जैनधर्ममें अहिंसा और अपरिग्रह-पर विशेष भार दिया गया है। अप-रिग्रह पर विशेष भार देनेके दो कारण रहे थे—एक कारण व्यक्तिगत आत्म-विकासका और दूसरा सामाजिक व्यवस्थाका। जो मनुष्य परिग्रहका अधिक सचय करता है या भौतिक वस्तुओका सग्रह बढाता है तो इस सग्रहके भारसे उसकी आत्मा दब जाती है जिससे उसका आत्म-विकासका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। एक अग्रेज तत्त्वज्ञने भी ऐसा ही कहा है कि the less I have the more am I 'भौतिक वस्तुओ का सग्रह जितना कम है उतना ही मै विकसित हूँ।' अत जहाँ परिग्रहका ममत्व होता है वहाँ आत्माका विकास नही हो सकता है। जहाँ परिग्रहका ममत्व होता है, जड वस्तुओंके प्रति रुचि होती है, वहाँ आत्मा भी सकु-चित हो जाती है। जहाँ भोग या भोग-सामग्रीकी वासना होती है वहाँ आत्मविकास सभव नहीं होता है। जैनसूत्रोंमें भी कहा गया है कि महा-परिग्रही सद्धर्म और सद्गतिको प्राप्त नही कर सकता है।

अपरिग्रह पर विशेष भार देनेका दूसरा कारण सामाजिक विषमताको दूर करनेका है। शरीरके भीतर रक्त दौडता है तो शरीर नीरोग रहता है। एक स्थान पर रक्तके एकत्रित हो जाने पर शरीरमें फोडा हो जाता है और कष्ट होने लगता है। यही हाल पैसे (धन) का भी है। समाजमें पैसा फिरता रहे तो सामाजिक व्यवस्था बनी रहती है। परन्तु यदि वह एक ही व्यक्तिके पास इकट्ठा हो जाय तो इससे समाजमें विषमता फैल जाती है। ऐसी विषमता अपरिग्रह व्रतके आराधनसे ही दूर की जा सकती है। आत्मविकास और सामाजिक सुव्यवस्था को कायम रखनेके लिए ही अपरिग्रह पर विशेष भार दिया गया है। इस प्रकार हम देखेंगे तो यह प्रतीत हुए विना नही रहेगा कि सभी धर्म सम्प्र-दायोंमें रहा हुआ धर्म सिद्धात रूपी आत्मा तो एक ही है।

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके क्रियाकाड, विधि-विधान या आचार-प्रणालिका भले ही भिन्न-भिन्न हो पर उनसे धर्मका स्वरूप भी भिन्न समझ बैठना बुद्धि-मानी नहीं है। हमेशा देश-कालको लक्ष्यमें रखकर ही विधि-विधानोकी रचना की जाती है, जो समयके परि-वर्तनके साथ बदले भी जा सकते हैं। परन्तु धर्मके मुख्य सिद्धात कभी भी बदलते नही है। वे तो हमेशा उसी रूपमें रहते हैं और रहेंगे भी। मनुष्य भले ही अपनी अपनी रुचि और अधिकारके अनुसार विधि-विधानोका पालन करने में समर्थ हो, परन्तु उसका लक्ष्य तो आत्मशुद्धिका ही होना चाहिए। अगर ऐसा हो तो विधि-विधानोंके भिन्न-भिन्न होने पर भी धर्म या सम्प्रदायके भिन्न होनेका कोई कारण नही रहता है। एक घरमें दो भाई हो और दोनोकी भोजन-रुचि भी भिन्न-भिन्न हो, पर इससे क्षुधा-तृप्तिका मूल ध्येय थोडे ही बदल जाता है। वह तो दोनोका एक ही रहता है। एक भाई अपनी रुचिके

अनुसार पूड़ी खाकर अपनी क्षुधा शांत करता है जब कि दूसरा रोटी खाकर अपनी भूख मिटाता है। यों दोनों भाई भिन्न-भिन्न रुचिके अनुसार अपनी क्षुधा तृप्त करते है, परन्तु इससे उनके रोटी और पूड़ीके दो नये सम्प्रदाय खड़े नहीं हो जाते हैं। इसी प्रकार क्रियाकांडों और विधि-विधानोंके भेदसे भी धर्मके मुख्य सिद्धांतोंमें भिन्नता नहीं होती है। भले ही आचार-विचारमें भिन्नता प्रतीत होती हो, पर इससे धर्ममें भिन्नता नहीं समझ लेनी चाहिए।

लाल, पीले, हरे और नीले रंगकी भिन्न शीशियोमें एक ही नलका पानी भरा होने पर भी बाह्य दृष्टिसे देखनेवालोंको उनमें हरा, पीला, लाल और नीला पानी दिखाई देगा। पानी तो सबमें एक-सा है, फिर भी रंगभेद होनेसे जैसे वह भिन्न-भिन्न दिखाई देता है, वैसे ही हर एक धर्ममें एक ही प्रकारका शुद्ध सत्य होता है जो कि सम्प्रदायोंकी विभिन्नतासे भी भिन्न नही हो सकता है।

अलग-अलग शीशियोंमें मौक्तिक भस्म जैसी एक ही दवा भरी हो और उनके ऊपर अलग-अलग फार्मेसियों (कम्पनियों) का लेबल लगा हुआ हो तो कम्पनियोंकी विभिन्नतासे उस वस्तुमें भिन्नता नही होती है। मौक्तिक तो एक सरीखा ही सबमें पाया जायगा। ऐसे ही सम्प्रदायोंकी विभिन्नतासे भी सत्यमें भिन्नता नहीं आती है। यही वात हमारे ज्ञानी पुरुष भी कह गये है कि **'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'** एक ही सत्यको विद्वान् पुरुष भिन्न-भिन्न रूपमें बताते हैं। इस व्यापक सत्यकी तरफ़ यदि मानवकी दृष्टि हो जाय तो धर्मोंके लिए होनेवाले ये सब लड़ाई-झगड़े मिट सकते है। दुनियाई वस्तुओंके लिए झगड़े हों तो यह फिर भी क्षम्य कहे जा सकते हैं, पर जो इन झगड़ोंको मिटानेवाला है, उस धर्मके नाम पर ही ये झगड़े हों तो यह कैसे क्षम्य कहा जा सकता है? क्या पूर्वमें और क्या पश्चिम में? इतिहास कहता है कि धर्मके नामपर अनेक लड़ाइयाँ यहाँ और वहाँ लड़ी गई है। रोमन केथोलिक और प्रोटेस्टंटोंके साम्प्रदायिक अत्याचार कम भयंकर नहीं थे। मनुष्यको अपने सम्प्रदायका बनानेके लिए उसपर तरह-तरहके जुल्म किये जाते थे। इनसे भी वह उस सम्प्रदायका नहीं बनता था तो उसे गरम-गरम लोहेके तवेमें डालकर भून दिया जाता था। ऐसे नृशंस उदाहरण भी पश्चिमके इतिहासमें धर्मके नामपर लिखे गये है। पूर्वका इतिहास भी इससे कम नहीं रहा है। यहाँ भी छोटे-छोटे निर्दोष बालकोंको धर्मके नामपर जिन्दे ही दीवालमें चुन दिया गया है। राज्यलिप्सा या धनके लिए भी जो अनर्थ नही हुए हैं, वे सब धर्मके नामपर हुए है। इसका एकमात्र कारण यही है कि भिन्न-भिन्न धर्मोमें रही हुई सत्यकी व्यापक दृष्टिको मानव देख नही सका है।

मनुष्योंको चाहिए कि वे भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और पंथोके झगड़ोंमें अपनी शक्तिका व्यय न करें। वे जिस

धर्ममें अपनी श्रद्धा रखते हो उस धर्मके मनुष्यत्व-प्राप्तिके जो उच्च सिद्धान्त है उनके आचरणमें उन्हें अपनी शक्तिका व्यय करना चाहिए। सिद्धान्तपक्षी नहीं, पर सिद्धान्तसेवी बनना चाहिए। अपना धर्म यदि तुम्हें अत्यन्त प्रिय और श्रद्धास्पद लगता हो तो तुम अवश्य उसके सत्य, अहिंसादि मूल सिद्धान्तोंके आचरण द्वारा अपना जीवन उन्नत बना सकोगे। धर्मके सिद्धान्तोंका आचरण कर जीवन-मुक्त बनना यही धर्म मानका ध्येय हैं।

इस प्रकार धर्माभिमानी नहीं, पर धर्मपरायण बनना चाहिए। एक तत्त्व-चिंतक धार्मिक झगडोको शात करनेके लिए सदैव यह कहा करते थे कि 'भाइयो, तुम धर्मके नामपर झगडा क्यों करते हो? धर्मके सारभूत सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा, शाति, सेवा, उदारता आदि सिद्धान्तोंका पालन करो, इसीमें तुम्हारे जीवनकी सार्थकता हैं।'

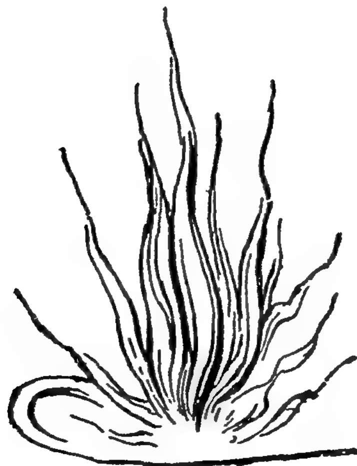
कोई क्षुधातुर मनुष्य आम्रवृक्षके नीचे जाय और आम्र-फल खानेके बजाय यह आम किसने बोया है, कब बोया है, किसने इसे सीच-कर बड़ा किया है, इसकी शाखाएँ कितनी हैं, आदि प्रश्नोंका विचार करने लग जाय और आम खाकर अपनी भूख न मिटावे तो क्या आप उसे बुद्धिमान् मनुष्य कहेंगे? बुद्धिमान् पुरुष तो वही कहा जायगा जो इस तरहकी छानबीनमें न पडते हुए पहले अपनी क्षुधा शान्त करनेका प्रयास करेगा। यही बात धर्मके बारेमें भी हैं। बुद्धिमान् पुरुषको धर्म की चर्चामें या वाद-विवादमें न पडते हुए उसका आचरण किस प्रकार किया जाय इसीका प्रयास करना चाहिए।

एक आफिसमें तीन नौकर थे। एक महाराष्ट्रीय हिन्दू ब्राह्मण था, दूसरा पारसी और तीसरा ऍंग्लोइडि-यन। तीनो ही एक दूसरेकी भाषाको पूरी तरह समझते नहीं थे। एक बार उनके आफिसरने उनको एक रुपया इनाम देते हुए कहा कि बाजारमें से इसकी कोई चीज खरीद कर तुम तीनो उसका समान बँटवारा कर लेना। तीनो आदमी बाजारमें गये। गरमीके दिन थे अत महाराष्ट्रीय हिन्दू नौकरने कहा—'चलो कलिंगर ही खरीद लें।' इस पर पारसी नौकर बोल उठा, 'हम तो तरबूज खरीदेंगे।' यह सुनकर ऍंग्लोइडियन नौकर बोला—'नहीं, नहीं, हम तो Water Milon (वाटर मिलन) खरीदेंगे।' इस तरह तीनो ही आदमी आपसमें अपनी इच्छित वस्तु खरी-दनेके लिए आग्रह करने लगे। अतमें जब किसीने भी अपना आग्रह न छोडा तो वे आपस ही में लडने लग गये। इस बीच एक ऐसा आदमी वहाँ आ गया जो इन तीनो आदमियोंकी भाषाओंको समझता था। उसने इन तीनो आदमियोको झगडते देखा तो वह उनसे बोला—'तुम झगडा क्यो कर रहे हो? लाओ मुझे अपना रुपया दो, मैं अभी तुम्हारी इच्छित वस्तु लाकर दे देता हूँ।' तीनो आदमियोने उसकी बात मान ली और अपना रुपया उसे दे दिया। वह

बाजारमेंसे एक तरबूज खरीद लाया और तीनोंमें उसका समान बँटवारा कर दिया। इससे तीनोंको बड़ा सन्तोष हो गया। बादमें उन्हें यह मालूम हुआ कि हम तीनों ही जिस वस्तुका आग्रह कर रहे थे वह तो एक ही चीज थी। केवल उसके नाम ही अलग-अलग थे। वस्तुके एक होनेपर भी नामोंकी भिन्नताका यह झगड़ा था। इसी तरह कई बार सारभूत सत्यके एक होनेपर भी मानव नामोंके क्षुद्र झगड़ोंमें फँस जाते हैं और इसी नाम मात्रके जालमें फँसकर खींचातानी करने लग जाते हैं। यह नामका जाल ऊपरसे निकाल दिया जाय तो आजके सब लड़ाई-झगड़े शांत हो सकते है। सम्प्रदायोंके नामके ये ऊपरी परदे हटाकर उनमें रहे हुए सत्यका सम्यग्दर्शन किया जाय तो धर्मके झगड़ोंका आसानीसे अन्त आ सकता है।

स्याद्वाद जैनधर्मकी अपनी एक मौलिक विशेषता है। स्याद्वाद यानी सत्यका समन्वय। जहाँ कही भी जितने परिमाणमे सत्य रहा हुआ है, स्याद्वाद उन सबको अपनेमें समा लेता है। स्याद्वाद ही जैनधर्मका प्राण है। यह सत्यको अपने या परायेके रूपमें बाँट नही देता है। सभी धर्मोंके झगड़ोंका अन्त स्याद्वादकी सापेक्ष दृष्टिसे लाया जा सकता है।

हरएक कुआँ, बावड़ी, नदी, तालाब, सरोवर आदिका पानी भिन्न-भिन्न होनेपर भी जैसे वह प्राणिमात्रकी प्यासको बुझानेमें समर्थ होता है, वैसे ही भिन्न-भिन्न धर्मोंके प्रेम, मैत्री, करुणा आदिके आदर्श भी मानव मात्रके विकासमें बड़े उपयोगी साबित होते हैं। इसलिए सम्प्रदायोंके झगड़ोंमें न पड़ते हुए उनके सत्य सिद्धान्तोंको आचरणमें लानेका प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि मानव-तन पाना सफल कहा जा सके।

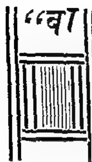




डाकू और फौजी

श्री० 'प्रभाकर'

[१]

“बाबूजी, भगवान् आपका भला करे।”

उसने करुण कण्ठसे पुकारा और वह देहका पूरा जोर लगाकर थोडा-सा मेरी ओर घिसट आया।

देह उसकी दुर्गन्धभरी, कपडे लगभग चीथडे और बाल धूलभरे—उसके घुटनोसे नीचेके पैर उठने न थे, बेकार हो गये थे।

मैंने एक इकन्नी उसके तामलोटमें डाल दी और साथ चल रहे अपने मेजबानसे कहा—'ओह, कितना दयनीय है बेचारा!'

वे उपेक्षासे हँसे! बोले—“यह जालिम सिंह डाकू है। जाने इस हरामजादेने कितने घर उजाडे भाई साहब! सात वर्ष तक इसने जिले भरको नही सोने दिया। जो पुलिसवाला इसके पीछे पडा, उसे ही इसने मारा और नकटा करके छोडा।

एक दिन अचानक यह दो फौजियोंके घट्टे चढ गया, तो उन्होने बन्दूकके कुन्दोंसे इसके घुटने तोड दिये। अब बाजारमें घिसट-घिसटकर अपने कर्मोंके फल भोग रहा है।

मेरे भीतर भर गये जालिम सिंह डाकू और बाजारमें घिसटता यह भिखारी और तब यह वाक्य—'हिंसाने हिंसासे हिंसाको लुज कर दिया कि हिंसा न कर सके और तब समाजमें एक दयनीय भिखारीकी सृष्टि हुई।'

[२]

घर लौटकर भी मैंने उस भिखारीकी चर्चा की, तो मेरे मेजबान बोले—“ऐसे दुष्टोका यही एकमात्र इलाज है भाई साहब!”

बात अपने घरकी हुई, पर मेरे भीतर यह एकमात्र शब्द उमड-घुमड होता रहा और तब मुझे याद आये वाल्मीकि।

वह भी डाकू था। उसे एक दिन मिले कोई ऋषि। डाकूको ऋषि क्या, राव क्या? उसने उनपर भी शक्तिका प्रयोग किया। ऋषि डरे नही। उन्होने उसे ढगसे उसका स्वरूप दिखा दिया और तब यह डाकू ही हो गया स्वय ऋषि!

यह क्या हुआ? यह अहिंसाकी हिंसापर विजय हुई। तो हिंसा बेकार कर सकती है, अहिंसा बदल सकती है!

मन ही मन मैंने कहा—भाई जालिम, तू यदि अपने पुराने कर्मोंपर सन्तोप नही कर सकता, तो वे फौजी भी गौरवके पात्र नही, क्योकि तू भी समाजमें दयनीयोकी सृष्टि करता था और वे भी अपनी शक्तिसे समाजमें एक दयनीय ही बना पाये!



श्री बाबू सूरजमल

श्री लाड़लीप्रसाद सेटी

सहस्राब्दियोसे मानव-जातिके पास सत्पुरुषों की जीवनस्मृतियोकी धरोहर न होती तो कभी की वह बर्बर, पशुवत् तथा विकृत हो गई होती। आजके पतनोन्मुख युगमें भी आत्मविश्वास सहसा प्रबल हो उठता है और हृदयमें आभास होता है कि—युग उत्थान एवं उत्कर्षकी करवट लेगा और अवश्य लेगा। मेरी इस भावनाको जिन-जिन व्यक्तियोंसे बल मिला, उसमें बाबू सूरजमलजी जैनका भी एक व्यक्तित्व है।

मै बाबूजीके सम्पर्कमें आया और संबंध घनिष्ठ हुए, इसकी भी बड़ी मधुर और अमर स्मृति मेरे मनमें है। उसका उल्लेख करना भी मुझे आवश्यक प्रतीत होता है।

मुझे बाल्यकालमे इतना दुलार और स्नेह मिला था कि—उसके अभाव में मेरा जीवित रहना भी असंभव-सा ही हो गया था। विस्तृत और सम्पन्न परिवारमें मेरा जन्म हुआ था। मेरी युवावस्थाके पूर्व ही स्नेही-जन एक-एक कर इस संसारसे विदा लेते गये और सम्पत्ति भी बीतती चली। एक दिन ऐसा आया कि मेरी मातुश्री को अपनी छाती वज्रकी बनाकर एक निःशुल्क छात्रावासमे शिक्षाप्राप्तिके लिए, मुझे इन्दौर भेजना पड़ा। बाबूजी इस छात्रावासके अभिभावक थे। मै स्नातकोंके बीच रहने लगा; परन्तु कभी-कभी रातकी निःस्तब्धता में नीद टूट जाती और मेरी मातुश्री की निर्गुण मूर्ति स्मृतियोंमें सगुण हो जाती और तकिया आँसुओंसे भीग जाता। एक दिन प्रातःकाल बाबूजी ने मेरी मुखाकृति और आँसुओंसे प्रक्षालित आँखोंको देख लिया। देख-कर मन ही मन उन्होंने कुछ समझ लिया। उस समय न वे कुछ बोले और न कुछ पूछा ही। उस दिन मै भोजन करने बैठा तो सही पर कुछ खाया ही नही गया। बाबूजीको अन्य स्नातकों द्वारा इसकी सूचना दे दी गई थी। उन्होंने छात्रावासके चपरासीको अपनी जेबसे एक रुपया देकर बाजारसे पूरी और मिठाई मंगवाकर मुझे बुलाया। पूछा—"लाड़ली! आज तूने खाना क्यों नहीं खाया? क्या खाना अच्छा नहीं बना था?"

बाबूजीके स्वरमें मातृत्व और वात्सल्य सना था। मेरी नज़र जमीन पर थी और आँसू ढल रहे थे।

उन्होंने मेरी ठुड्डी पकडकर ऊपरको उठाई और अपनी ओर देखनेको कहा। फिर पूछा—"तुझे यहाँ कोई तकलीफ है ?"

मैंने गरदन हिला दी।

फिर पूछा—"तो खाना क्यो नही खाया ?"

मेरी इस अवस्थाके अनुरूप, यहाँ मुझे कविवर नवीनजीकी एक कविता की कुछ पक्तियाँ याद हो आई हैं —

"टुक रो लेने दो ज़रा देर,
क्यों छेड़ रहे हो बेर बेर !
आँखोंका नशा उतरता है,
झरना झर झर झरता है,
आश्वासन मुझे अखरता है।
टुक रो लेने दो ज़रा देर
क्यों छेड़ रहे हो बेर बेर !"

बाबूजी ज्यो-ज्यो दुलार रहे थे त्यो-त्यो मुझे फफककर रोना आ रहा था। अन्तमें रूमालसे ढकी हुई मिठाई और पूरी मेरे सन्मुख रख दी और सर पर स्नेहका हाथ फेरते हुए मुझसे खानेकी मनुहार करने लगे। जैसे पानीसे भिन्न की हुई तडपती मछलीको पुन पानी प्राप्त हो जानेपर वह आनन्द, उछाहसे क्रीडामग्न हो जाती है, उसी प्रकार मेरी अवस्था हो गई। अधिक देर तक मैं उनके आग्रहको न टाल सका और मिठाई खानी ही पडी।

कई लोगोंके मुँहसे सुना है कि जगत्में सब कुछ मिल जाता है, परन्तु माँका प्यार नही मिलता। बाबूजीको पाकर यह कथन मेरे लिए झूठा साबित हो गया। मेरी तरह हीं बाबूजी कई लोगोंके लिए माता, पिता, भाई, सलाहकार, सहयोगी, मित्र तथा मार्गदर्शक थे। ऐसा स्नेहालु स्वभाव था उनका।

कुछ दिन और बीते, पुन बाबूजीने सहसा एक प्रश्न किया—"लाडली ! तेरी आँखोंमें एक गहरे विषादकी छाया मुझे क्यो नजर आती है ? तू अनमना, मुरझाया-सा, कुछ बुझा-बुझा-सा भी और हतभग-सा क्यो रहता है ? तुझमें चाचल्य, स्फूर्ति और उमग क्यो नही है ? तेरी उम्रके लडकेमें तो ज़मीन-आसमानके कुलाबे जोड देनेका हौसला होना चाहिए, वह क्यो नही है ? बता।"

बाबूजीने मेरे मर्मको छूते हुए जिस स्नेहसे प्रश्न किया, उसके कारण मुझे अपना अन्त करण खोल ही देना पडा। मेरे पिताश्रीके महाप्रयाणकी वेलाका द्रावक चित्र, एक घनिष्ठ स्वजनकी हीन लोभवृत्ति और अमानुषिक बर्ताव तथा मेरी माताका हृदय-विदारक वैधव्य प्रसग उन्हें ज्योका त्यो कह सुनाया। जहाँ तक मुझे याद है, बाबूजीके सिवा यह करुण प्रसग मैंने किसीको नही सुनाया। मैंने बाबूजीकी आँखोंमें उसी दिन आँसू देखे थे। इसके अलावा एक युगके लम्बे सहवासमें, बडीसे बडी विपत्तिके समय में भी बाबूजीकी आँखसे आँसू ढलते नही देखे। इस प्रसगके बाद उन्होंने मेरे बारेमें मन ही मन यह अनुमान लगा लिया था कि—इस लडकेको यदि स्नेह नहीं मिला तो अवश्य ही यह किसी दिन घुटकर मर जायगा। उसके पश्चात् सदा ही बाबूजी मुझ-पर कमठ-जडकी तरह स्नेह-वर्षण

करते रहे। धीरे-धीरे पारस्परिक संबंध अभिन्न हो गये। आज भी कई लोग मुझे बाबूजीका पुत्र या भाई समझते है।

शनैः-शनैः मुझे बाबूजी अपने साथ रखने लगे। मै भी उनके सार्वजनिक जीवनकी प्रवृत्तियोंमें यथायोग्य हाथ बटाने लगा। इसका परिणाम मेरे लिए यह हुआ कि—आधुनिक मृत और कोरी पुस्तकीय शिक्षाके प्रति मनमें अरुचि उत्पन्न हो गई। मेरे समक्ष बाबूजीके जीवनकी एक सजीव पुस्तक ही खुल गई थी। उसीसे मुझे नया जीवन-दर्शन प्राप्त हुआ। शायद हमारी भारतीय संस्कृतिमें गुरु-परम्पराका यही रहस्य है। इसीलिए गुरुकी—साक्षात् सगुण परब्रह्म कहकर—उपासना की गई है। मेरे लिए बाबूजी माताके तुल्य, पिताके तुल्य, मित्रके तुल्य, गुरुके तुल्य बन गये। दुःखको बाँट लेते थे और सुखको द्विगुणित कर देते थे।

मै बाबूजीकी दिनचर्या देखा करता था। कभी किसी संस्थाका विधान बना रहे हैं। कभी उसका वार्षिक विवरण तैयार कर रहे हैं। कभी पुस्तक-लेखन चल रहा है। कभी किसी नवीन आयोजनकी रूपरेखा बना रहे हैं। कभी किसीका अध्यक्षीय या स्वागत-भाषण लिखा जा रहा है। कभी किसी समारोहको प्रभावशाली बनानेके लिए भटक रहे हैं। आदि आदि अनेकों जन-जागृतिके सूत्र सँजोते रहते थे। मैने बाबूजीको कभी भी निष्क्रिय, मायूस या हतोत्साह नही देखा। ऐसा लगता था मानो सम्पूर्ण जन-जीवनको सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् बना देनेका संकल्प कर रखा हो। इसीमें अपने सम्पूर्ण जीवनको बाबूजीने उत्सर्ग कर दिया।

बाबूजीका व्यक्तित्व एक विशिष्ट प्रकारका था। उनमें कई विशेषताएँ और अनेक गुणोंका सम्मिश्रण था। वे स्वस्थ युगद्रष्टा, कुशल राजनीतिज्ञ, साहित्यिक, चिन्तक समाजशास्त्री और एक स्वच्छ तत्त्व-चिन्तक थे। उनका पाठशालाके विद्यार्थीका जीवन नहीके बराबर ही रहा। परन्तु अपनी कुशाग्र बुद्धिके कारण संस्कृत, मराठी और हिन्दीका व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लिया था। जब उनका मन पढ़नेमें लग जाता था तब कई दिनों तक निरन्तर पढ़ा ही करते थे। जब देखो तब डूबे हुए ही दिखाई देते थे। इस अध्ययनशील और विद्याव्यसनी स्वभावके कारण उनमें विचारोंकी तीव्रता घर कर चुकी थी। और जो साहित्य बाबूजीने लिखा उसमें भी इसीकी छाया उतर आई है। ठोस साहित्य ही उनकी मूल दिशा थी। हलका-फुलका मनोरंजक साहित्य तो लिखना छोड़कर पढ़ते भी नहीं थे।

बेंजामिन फ्रेंकलिनका जीवन-चरित्र, गुरुदेव रवीन्द्रनाथके सम्बन्धी "जीवन-स्मृति", जैन-धर्मका इतिहास चार भागोमें, "सुधारणा और प्रगति", "मराठा और अँगरेज"—एक ऐतिहासिक ग्रंथ तथा कई छोटी छोटी समाजोपयोगी एवं सामयिक साहित्यिक पुस्तकें लिखी है। इन पुस्तकोंको देखनेसे बाबूजीकी रुचिका ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है और मैंने जो विशेषण लगाये हैं उनमें अतिशयोक्तिका अंश भी नहीं दिखाई देगा। केवल लेखनसे ही वे संतुष्ट

होनेवाले नही थे। जो विचार उनके मनमें थे उन्हें वे जनतामें साकार भी देखना चाहते थे।

"मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति" के निर्माणमें हार्दिक योगदान दिया। और उसके अन्तर्गत चलनेवाली विभिन्न प्रवृत्तियोंको भी गतिशील बनानेमें अपनी बहुमूल्य सेवाएँ अर्पित की। राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके सभापतित्वमें जो अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ था उसमें भी एक मुख्य स्तम्भकी तरह काम किया। इस सम्मेलनका ऐतिहासिक महत्त्व है, क्योंकि दक्षिण भारतमें हिन्दी-प्रचार का श्रीगणेश इसी समारोहसे हुआ था, और म० भा० हि० सा० समितिका शिलान्यास बापूके हाथसे इसी अवसर पर किया गया था।

साहित्यक्षेत्रमें बाबूजीके जीवनकी एक स्मरणीय घटना और है। सर्वप्रथम सम्पादक-सम्मेलन इन्दौरमें आयोजित करनेकी मौलिक कल्पना बाबूजीने ही की थी। उस समयके प्रसिद्ध दैनिक 'आज' के यशस्वी सम्पादक श्रीमान् बाबूराव पराडकरजीके सभापतित्वमें प्रथम सम्पादक-सम्मेलन शानदार ढंगसे इन्दौरमें हुआ था। इसमें प्राय बहुतसे उच्च कोटिके पत्रकार बन्धु सम्मिलित हुए थे। इसके पश्चात् तो अ०भा०हि०सा० सम्मेलनके अधिवेशनोंके साथ ही सम्पादक-सम्मेलन भी होने लग गये है। इस आयोजनके साथ ही साथ जो कवि-सम्मेलन हुआ था उसके सभापति हुए थे स्व० प्रो० रमाशंकरजी शुक्ल जो हिन्दी जगत्के एक मौन साधक थे। उनके साहित्यका प्रकाशन जब हिन्दी जगत् देखेगा तब उनकी महत्ताको भली भाँति आँक सकेगा। इसी अवसर पर एक विशाल प्रदर्शनी भी आयोजित की गई थी जिसका उद्घाटन स्व० सेठ जमनालालजी बजाजने किया था। सब मिलाकर इस विराट् आयोजनकी कल्पना करें और बाबूजीकी कार्यशैली पर दृष्टि-पात करें तो मानना पड़ता है कि उनमें एक गजबकी शक्ति थी जो अन्यत्र बहुत कम दिखाई देती है।

बाबूजीमें राजनीतिक सूझ-बूझ भी इतनी ही तीव्र थी। मेरे परिचयसे पूर्व ही वे एक भयंकर राजनीतिक दौरसे गुजर चुके थे। स्थानीय शासक की चरित्रहीनता और अत्याचारोंके कारण एक प्रकारका आतंक छाया रहता था। बाबूजीने इसके खिलाफ एक आन्दोलन उठाया और उसी सम्बन्धमें उन्हें राज्यसे निर्वासित होना पड़ा। उनके कुछ साथी तो क्षमा माँगकर इन्दौर आ गये, परन्तु बाबूजीने क्षमा नही माँगी। कष्ट सहन करने की शक्ति तो उनमें गजब की थी। उस समय देशी रियासतोंमें आन्दोलन करना आसान काम नही था। उँगलियो पर गिने जानेवाले व्यक्ति ही इस क्षेत्रमें दिखाई पड़ते थे। अत उस समय बाबूजी ही एकमात्र राजनीतिक चेतनाके सर्वोच्च सूत्रधार थे। आज इन्दौर नगरमें जो भी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना है, उसकी नींवमें बाबूजीकी सक्रिय और मौन सेवाओंके बीज पल्लवित, पुष्पित और फलित हो रहे है।

सामाजिक क्षेत्रमें भी जब जब वे प्रवेश करते तब तब ही अपनी

ओजस्वी वाणीसे संकल्प जगाया करते थे। उनकी एक पवित्र आकांक्षा थी कि जैन समाज आदर्शोंके अनुरूप वने। जो आडम्बर, मिथ्याचार, दिखावा और कोरे रूढ़िवादका प्रदर्शन होता था, उससे उन्हें भयंकर अरुचि थी। वे सच्चे अहिंसा तत्त्वके अमृतसे समाजको अनुप्राणित देखना चाहते थे। इसलिए उनकी वाणीमें जड़ संस्कारोंपर कठोर प्रहार बरबस फूट पड़ता था। किसीकी व्यर्थ आलोचना करनेके लिए आलोचना नहीं किया करते थे। कुछ धनी-मानी सज्जन उनसे इसी कारण नाराज़ भी रहते थे; परन्तु उन्होंने कभी भी ठकुरसुहाती बात नहीं कही। समाज उनकी महत्ताका ठीक ठीक आकलन नहीं कर सका। उनकी पूर्ति नहीं हो पाई है।

वावूजी जैसा चतुर्मुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति यदि लोकप्रिय हो तो इसमें आश्चर्यकी कोई वात नहीं। वे नगरसेविकाके वर्षो तक सदस्य रहे और एक बार तो नगरसेविकाके अध्यक्ष भी चुने गये थे। उन्होंने इस पद पर रहकर नगरनिर्माणका वहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया था।

वावूजीमें कुछ ऐसे मानवीय गुणोंका प्राधान्य था जिनके संवंधमें उदाहरण सहित उल्लेख करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

उनकी ग़रीव विद्यार्थियोंके साथ वड़ी ही हमदर्दी थी। प्रायः पचासों विद्यार्थी उनके पास आया ही करते थे। भर्ती होने, कितावें माँगने, फ़ीसका प्रवंध कराने आदि आदिके लिए आनेवाले विद्यार्थियों-की सहायता वे निरंतर किया करते थे। यदि अपनी जेवमें हुआ तो वह दे दिया, नही तो किसी धनी मित्रके यहाँसे दिलवा देते थे। कभी-कभी तो दिन-दिन भर इसी कामके लिए भटका करते थे। परन्तु जो भी आता था उसका काम वे अवश्य करवा दिया करते थे। अन्तमें तो उनके कुछ साथियोंने मिलकर एक विद्यार्थी सहा-यक कोष ही निर्माण कर दिया। इससे कई विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सके और आज भी उसका लाभ मिल रहा है।

परपीड़ासे पीड़ित हो उठनेकी उनकी वृत्तिको वे कोरे शब्दोंसे नहीं क्रियात्मक रूपसे पुष्ट करते रहते थे। एक दिन वे अपने एक मित्रकी दूकान पर वैठे थे। मैं भी साथ था। एक मक्कार भिखारी आया। उसके साथ-में उसका एक बालक भी था। भिखारीने गिड़गिड़ाकर कहना आरंभ किया—"हुजूर, इस बालककी माँ अस्प-तालमे मरी पड़ी है। उसके काठ-कफनके लिए दस रुपएका प्रवंध कर दीजिए। आपको बड़ा पुण्य लगेगा। उसकी मट्टी सुधर जायगी।" आदि आदि कहकर करुण विलाप किया। वावूजीको उसपर दया आ गई परन्तु जेव खाली थी। उन्होंने अपने एक मित्रसे कहा—"इसको दस रुपए दे दो। मैं तुम्हें वादमें लौटा दूँगा।"

मित्रने कहा—"अपने सव लोग जो यहाँ वैठे हैं वे चलें और मृतककी अंत्येष्टि क्रिया कर आते हैं। क्या मालूम यह ढोंग करता हो।"

बाबूजी आवेशमें भरकर बोले—"तुम कितने हृदयहीन हो! क्या कोई भीखके लिए अपने घरके व्यक्ति का अमगल सोच सकता है? दुर्दैवसे कभी तुमपर ऐसा समय आ जाय और तुम्हारे साथ कोई ऐसा वर्ताव करे जैसा तुम इस दुखीके साथ कर रहे हो, तो तुम्हें कैसा लगेगा?"

सब मित्रोंने बाबूजीकी बात नहीं सुनी और एकमत होकर अपने हाथों अत्येष्टि क्रिया कर आनेका निश्चय किया। सबके सब उस भिखारीके साथ चलनेको उद्यत हो गये। यह देखकर भिखारीने कहा—"हुजूर! यहाँ पासमें ही मेरा एक रिश्तेदार रहता है, उसको और बुला लाता हूँ, फिर आप लोग चलिएगा।" यह कहकर भिखारी वहाँसे चला गया सो फिर लौटकर आया ही नहीं। कुछ समय बाद सब मित्रोंने बाबूजीकी खूब हँसी उडाई, परन्तु मैं उनके दयाभावकी मन ही मन कल्पना करता रहा। सवसाक्षीभूत विश्वात्मा ही कह सकता है कि बाबूजीको निस किसने ठगा है, परन्तु वे अपने इस स्वभावको अन्त तक नहीं छोड सके। वह भिखारी आज भी इन्दौरकी सडकोंपर उसी प्रकार भीख माँगता फिरता है।

× × ×

बाबूजी मातृ-जातिका अपमान बिलकुल ही बरदाश्त नहीं कर सकते थे। एक बारकी घटना है कि मैं और वे दोनों ही हाटमें सब्जी खरीदने गये। खूब भीड थी। एक मिलिट्रीका ऊँचा-पूरा, तगडा सिपाही एक ग्रामीण बालिकाकी ओर अश्लील वाणीमें बोला। बाबूजीने यह देख लिया। तमककर बोले—"तुम्हारे यहाँ कोई माँ या बेटी नहीं है? क्या तुम्हें ऐसा ही डिसिप्लीन सिखाया जाता है? तुमको तो चाहिए कि दूसरे लोग ऐसा करें तो उनको रोको!" सिपाही कुछ समझदार भी था, उसने क्षमा मागी और आगे सावधान रहनेका आश्वासन दिया। तात्पर्य इसका इतना ही है कि बाबूजीको समाजमें कहीं भी विकृति अच्छी नहीं लगती थी। जो देखते थे उसका प्रतिकार करते थे।

मैं बाबूजीके सम्बधमें विस्तार-पूर्वक लिखूँ तो एक ग्रन्थ बन सकता है। यहाँ तो सक्षेपमें मैंने बाबूजीका एक रेखाचित्र अंकित करनेका प्रयत्न किया है। उनके मूलभूत स्वभाव और गुणोंका कुछ शब्दोंमें अनुमान किया है। वे सचमुच बहुत महान् थे।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि बाबूजीके जीवनकी साधनाका प्रति-बिम्ब चि० भाई ईश्वरचन्द्रमें उतर आया है। मध्यभारतके प्रसिद्ध दैनिक समाचारपत्र "जागरण" के वे सुयोग्य सम्पादक है, और अल्प समयमें ही "जागरण" पत्रको एक ऊँचे दर्जेका दैनिक पत्र बनानेका श्रेय उन्हें प्राप्त हुआ है। साधना कभी अकारथ नहीं जाती। वह सस्कार बनकर पीढियोंमें उतरती है और युगकी सीढियाँ चढती जाती है। मुझे विश्वास होता है कि भाई ईश्वरचन्द्र बाबूजीके गुण-गौरवके अनुरूप ही उत्तरोत्तर अपना जीवन ढाल सकनेमें पूर्ण सफल होंगे।

अन्तमें मैं अपने श्रद्धा-भक्तिके पुष्प स्व० बाबूजीकी स्मृतिमें चढाता हूँ और उनकी अमर आत्माकी सन्निधिमें कामना करता हूँ कि मुझे वही स्नेह देते रहें जो सगुण रूपमें देते थे।

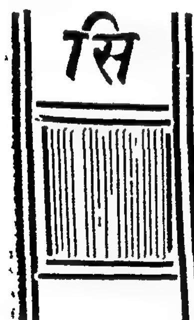


राष्ट्रपिता छातीसे लगाकर बोले—

"तुमने मेरा सर ऊँचा कर दिया है"

सैयद अज़ीज़ हसन 'बक़ाई'

बक़ाई साहब दिल्लीसे प्रकाशित उर्दू साप्ताहिक 'हुर्रियत'के सम्पादक हैं, और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके प्रबल समर्थक। आप मुस्लिमलीगका उस समय भी विरोध करते रहे, जब कि हमारे नेताओंने उसकी अभिलाषाके आगे घुटने टेककर भारत-विभाजन मंज़ूर कर लिया। आपने लीगी गुण्डोंके धमकाने और उत्पातकी तनिक भी चिन्ता नहीं की और उसकी घातक नीतिका मर्दानावार डटकर विरोध करते रहे। लीगके साम्प्रदायिक-विषैले प्रचारके कारण जो घटनाएँ घटित हुईं, उसकी एक बानगी बक़ाई साहबकी ज़बानी सुनिये। यह घटना दिल्लीके उर्दू रियासतसे साभार दी जा रही है।



सितम्बर १९४७ की भयानक रात थी। कोई ११ बजे होंगे। दिल्लीमें ८२ घण्टेका कर्फ्यू लगा हुआ था। मैं मुस्लिम रिलीफ़ कमेटीके दफ़्तरमें काम करके दिन भरका थका-हारा घर आया ही था कि जामा मस्जिदकी पुलिस चौकी के सब-इन्सपेक्टरने सड़क पर खड़े होकर आवाज दी। मैंने सहनमें खड़े होकर देखा, तो सब-इन्सपेक्टरने मेरी सूरत देखते ही कहा—

"वक़ाई साहब! एक सरदारजी आपको बुलाते है।"

मैंने कहा—"इतनी रात गये क्या काम है?"

जवाब मिला—"काम तो वह आपको ही बतायेंगे, लेकिन एक मुसलमान लड़की उनके साथ है!"

मैंने कपड़े बदले, रिवाल्वर भरा और उसे जेबमें डालकर नीचे आया। चौकी पर जाकर देखा, तो एक सूट बूटसे सुसज्जित सिख नौजवानने मेरा नाम लेकर हाथ जोड़कर सलाम किया और कहा—

"आपसे मै अच्छी तरहसे वाक़िफ़ हूँ। आपका अखबार बरसोंसे पढ़ता हूँ। आप अमनके लिए जो काम कर रहे है, उसको मै जानता हूँ, लेकिन आपकी खिदमतमें पहली मरतबा दाख़िल हुआ हूँ। ये मेरी बहन नसरी है, जिसको मै आपके सुपुर्द करता हूँ।" फिर उस मुसलमान लड़कीसे

मुख़ातिब होकर बोला—"वकाई साहब तुम्हारे पिता हैं। तुम इनके पास महफ़ूज़ भी रहोगी और खुश भी।"

सामने कुरसी पर बैठी हुई एक १६-१७ साला नौजवान खातून (महिला) ने कहा—"भाई जी! एक हफ़्ते तक जो आराम मुझे आपने पहुँचाया और जिस तरह खुद खतरेमें रहकर आपने मेरी हिफाजत की है, मुझे बहन समझा है इसके लिए जिन्दगी भर मैं आपकी अहसानमन्द रहूँगी।"

मैंने सिख नौजवानसे कहा—"आपका नाम क्या है? ये साहबजादी कौन हैं? किन हालातमें आपको मिली?"

नौजवान सिखने कहा—मेरा नाम कुलवन्तसिंह है, रिफ्यूजी हूँ। इन्सानियतके नातेसे नसरी मेरी बहन है। मैं शर्मिन्दा हूँ कि मेरे कौमी भाइयोंके हाथों इसको तकलीफ पहुँची और रंजीदा हूँ कि इसको आराम न पहुँचा सका।

मैंने कहा—अज़ीज़ कुलवन्तसिंह, तुम अपनी कौम और इंसानियतके लिए बाइसे फ़ख़् (गौरव योग्य) हो। आपका शुक्रिया अदा करता हूँ। कभी आपने मुझसे कोई खिदमत ली तो मुझे खुशी होगी।"

कुलवन्तसिंहने खड़े होकर मेरे कदम छुए और मुझसे रुखसतकी इजाज़त लेकर मोटर स्टार्ट की। मेरी आँखें उस बहादुर और नेक सिखको देखती रह गईं।

मैंने उस मुसीबतज़दा बच्चीसे पूछा—'बेटी! नसरी! ये सामने मेरा जनाना मकान है। अगर तकलीफ न हो, तो पाँच कदम पैदल चलो। खुदाने चाहा तो तुमको मेरे घरमें कोई तकलीफ न होगी। जब तक तुम्हारे विरसा (अभिभावकों) का पता न चले, तुम इस घरको अपने बापका घर समझकर रहना।

"मुझे पैदलमें कोई दिक्कत नहीं है। कुदरतने हकीकी बाप और भाईके बदले कुलवन्तसिंह-जैसा बहादुर भाई और आप जैसा शफ़ीक (दयालु स्नेही) बाप इनायत किया है। यह उसका करम (कृपा) है, वरना अल्लाह ही जानता है कि मैं इस वक्त कहाँ और किन हालातमें होती।"

सब-इन्सपेक्टरकी आँखोंसे आँसू निकलने लगे। मैं इन दिनोंकी विपतासे काफी सख्तदिल हो गया था, लेकिन आबदीदा था। सब-इन्सपेक्टरने कहा—'क्या रिपोर्ट लिखी जायेगी?' मैंने कहा—'किसी रिपोर्टकी ज़रूरत नहीं। मैं गौर करके सुबह बताऊँगा।'

घर पहुचनेपर मेरे कहनेसे नसीरनने रोकर कहा—'अगर आप सुननेकी ताकत रखते हैं तो सुनिये। मैं पहाड़गंजमें रहती थी। मेरे वालिद सेक्रेट्रियेटमें मुलाज़िम थे। घरमें माँ-बाप और हम दो भाई बहन थे। मैं नवीं क्लासमें पढ़ती थी। भाईने बी० एस० सी० का इम्तहान दिया था। वालिद उन्हें अमरीका भेजनेके इन्तज़ामातमें मसरूफ थे। उन्होंने तकसीमे मुल्ककी सूरतमें हिन्दमें ही रहनेका फ़ैसला किया था। ७ सितम्बर १९४७ को जब मेरे वालिद आफिस गये हुए थे, और हमीद भाई नई देहली, तो पहाड़गंजमें फिसाद शुरू हो गया।

जिन पड़ोसी हिन्दुओंने इन्सानियतका सबूत देते हुए अपने मुसलमान पड़ोसियोंकी जानें बचानेमें मदद दी, उनमें हमारे मुहल्लेका बनिया रामसहाय क़ाबिले जिक्र है। इसने मेरी वालिदाको ख़तरेसे आगाह किया और कहा कि "पड़ोसके मुसलमानकी दीवारमें शिगाफ़ (छेद) करके आप सब मेरे मकानमे आ जायें, शायद इज्जत और जान बच जाये। बड़े पसोपेशके बाद अम्मा और पड़ोसी राजी हुए। वालिदा साहबा, मुझे और जेवर, नक़द रुपया, एक हैण्डबेग लेकर बनियेके घर पहुँची। यहाँ एक रात बड़ी हिफ़ाजतसे हम रहे। मगर अम्मा और मुझे ग़शके दौरे आ रहे थे। खीलका दाना उड़कर दो दिनसे मुँहमें न गया था कि अचानक बलवाइयोंने उस मकानको घेर लिया जिसमें हम और दूसरे मुसलमान पनाहगजीं (शरणागत) थे। अचानक मकानका दरवाजा तोड़ा गया। बलवाई तलवारें और लाठियाँ लिये हुए अन्दर दाखिल हुए और उन्होंने बुलन्द आवाजमें कहा—"हिन्दू औरतें-बच्चे अलग हो जायें और मुसलमान अलग।" रामसहायने बहुत खुशामद की, उसे ठोक दिया गया। मुसलमान मर्द और बच्चे मेरी आँखोंके सामने कत्ल कर दिये गये, मालो-असबाब लूट लिया गया और औरतें आपसमें तकसीम कर ली गई। मेरी वालदाको जब ले जाया जा रहा था, तो वे बेहोश थी। बड़ी मिन्नत और ख़ुशामदसे मैं और वालदा एक ही सिखके हिस्सेमे आई। पहाड़गंजमें हम दोनों एक मकानमें क़ैद की गई। अम्मा सदमेको बरदाश्त न कर सकी और दूसरे दिन मर गई, तो उनकी लाश सड़कपर फेंक दी गई।

एक हफ़्तेके बाद मुझे सरदार कुलवन्तसिहके भाई दरशनसिंहके हाथ एक हज़ार रुपयेमें फ़रोख्त कर दिया गया। हर रोज मुझे शादी पर आमादा किया जाता था और धमकियाँ भी दी जाती थी, लेकिन मै मरनेके लिए तैयार थी और मैंने फ़ैसला कर लिया था कि अस्मत (शील) बचानेके लिए काँचकी चूड़ियाँ चबाकर जिन्दगीका खात्मा कर दूँगी। मुझे इस घरमें तबदील हुए एक हफ़्तेसे ज्यादा हो चुका था और अब मुझपर सख्ती ज़्यादा होने लगी थी कि आज उस घरके सब औरत-मर्द एक शादीमे सब्ज़ीमण्डी गये। मुझे एक कोठरीमें अकेला बन्द करके ताला लगा दिया गया। कई घण्टेके बाद सरदार कुलवन्तसिंहजी आये। उन्होंने मेरे रोनेकी आवाज सुनी, तो ताला तोड़कर मुझसे हक़ीक़त मालूम की। मैंने सारी आपबीती सुनाकर उनके पाँव पकड़कर अपनी रिहाईकी माँग की। सरदार कुलवन्तसिह महात्मा गांधीकी प्रार्थनामे बड़ी पाबन्दीसे शरीक होते थे। अगरचे वह भी अपने बाप-भाईकी तरह लाहौरसे लुटकर और इन्तहाई मजालिम बरदाश्त करके दिल्ली पहुँचे थे, लेकिन बड़े नेक-दिल और शरीफ़ इन्सान है।

मेरी यह हालत देखकर सरदार कुलवन्तसिहने कहा—मै जानता हूँ तुम बेगुनाह हो। मैं यह भी जानता

हूँ कि यह सब इन्सानियतके खिलाफ है और मैं यह भी जानता हूँ कि तुम्हारी रिहाईके बाद मेरे साथ इस घरमें क्या सलूक होगा। मैं तुमको आसानीसे निकाल भी सकता हूँ, लेकिन चन्द कदम चलनेके बाद तुम फौरन पकड ली जाओगी। इसलिए मैं तुमको यहाँसे किसी हिफाजतकी जगह पहुँचाऊँगा, तो उसका भी वही हश्र होगा, जो रामसहाय का हुआ। फिर थोडी देर सोचकर कहा—"बहन नसरी, एक मिनटका तवक्कुफ (विलम्ब) किये वगैर मेरे साथ चलनेके लिए तैयार हो जाओ।"

मेरे लिए तैयारीका सवाल ही न था। मैं फौरन साथ हो गई और वह मोटरमें बिठाकर इस चौकीपर ले आये। रास्तेमें उन्होंने बताया कि मैं तुमको आपके हवाले कर दूँगा। आगे जो मुकद्दरमें लिखा होगा, भुगतना।"

नसीरनकी रोते-रोते हिचकी बँध गई। मैं और मेरे घरकी औरतें भी बराबर रो रहे थे, यहाँ तक कि हमें यह भी ख्याल न रहा कि वह कई वक्तके फाके से है।

मैंने कहा—'बेटी, तुम अब घबराओ मत। तुम्हारी मुसीबतके दिन खत्म हो चुके। वालिदा साहबा तो जिन्दा नही हो सकती। अलबत्ता तुम्हारे बाप और भाईकी तलाश करनेमें कोई दकीका (कोर-कसर) उठा न रक्खूँगा। यह घर अब तुम्हारा घर है। बिला तकल्लुफ अपनी जरूरतका इजहार करो। मेरी बहू और लडकी तुम्हारी बहन हैं। अब मेरी लाशपरसे ही होकर तुम तक कोई गुजर सकता है।

कई रोजकी तलाशके बाद नसीरनके बाप और भाई मिले। मैंने इस वाकयेका तजकरा महात्मा गाधीसे किया, तो उन्होने बडी मसर्रतका इजहार किया और उस नौजवानसे मिलनेकी ख्वाहिश जाहिर की। मैं एक रोज शामको उनकी इबादतमें शरीक था कि कुलवन्तसिंह नजर पडा। मैंने उससे बापूकी ख्वाहिश जाहिर की, तो उसने पहले नसीरनका हाल पूछा और मेरे यह बताने पर कि वह अपने बाप-भाईसे मिल चुकी है, उसका चेहरा खुशीसे चमक उठा। तब उसने कहा—"बापू मुझे क्या जानें, आपने जिक्र किया होगा।"

मैंने कहा—"कुलवन्तसिंह! तुम्हारी नेकी और बहादुरी बापूसे कैसे छिप सकती है?"

बापूने उसको अपनी छातीसे लगा लिया और बोले—'मैंने तुम्हारी बहादुरीका हाल सुन लिया है। तुमने मेरा सर ऊँचा कर दिया है। तुम्हारे जैसे नौजवान ही मेरे मिशनको कामयाब कर सकते हैं। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि जब भी सम्भव होगा और तुम्हें खबर होगी तुम हर अत्याचार-पीडित महिलाकी अपने प्राण सकटमे डालकर भी रक्षा करोगे।"

जगलीपनके उस तूफानमें कुलवन्तसिंहने यह साबित कर दिया कि बहादुर और नेक लोग अभी बाकी हैं और इन्सानियत जिन्दा है।

मिथ्यात्वगर्भित राग

श्री मूलशंकर देशाई

श्रीमान् कानजी स्वामीकी ऐसी धारणा है कि सम्यग्दर्शन होनेमें मिथ्यादृष्टिकी वाणी कारण नही पड़ती है, परन्तु सम्यग्दृष्टिकी ही वाणी कारण पड़ती है। यहाँ सम्यग्दृष्टिका लक्षण निश्चय सम्यग्दृष्टि नही मानना चाहिए'। सम्यग्दृष्टिकी परिभाषा अनेक प्रकारसे की जाती है, जिसका वर्णन यहाँ किया जाता है—

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो
हवेइ सम्मत्तं ।
वणगय असेस दोसो
सयल गुणप्पा हवे अत्तो ॥

अर्थ—'आप्त अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग देव, आगम अर्थात् जिनवाणी, तथा आगममें वर्णन किये हुए तत्त्व, इन तीनोंके श्रद्धान करनेसे, सम्यग्दर्शन होता है, तथा आप्त वही है जो संपूर्ण दोषोंसे रहित हो, और सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त हो।' यहाँ जो सम्यग्दर्शनका लक्षण दिखाया गया है, वह तो आचार्यने चरणानुयोगसे दिखाया है। अभवि भी चरणानुयोगसे सम्यग्दृष्टि हो सकता है।

छह दव्व णय पयत्था पचत्थी
सत्त तच्च णिदिट्ठा ।
सद्दहइ ताणं रुवं सो
सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥

अर्थ—'छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पंच-अस्तिकाय, सप्त तत्त्व, जिनवचनमें कहे हैं उनके स्वरूपका जो श्रद्धान करता है उसको सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।' इस गाथामें जो सम्यग्दृष्टिका लक्षण बताया है, वह करणानुयोगसे-व्यवहारसे बताया गया है। और जिस जीवका दर्शन-मोह नामका कर्म उपशम हुआ हो, क्षय हुआ हो और क्षयोपशम हुआ हो वह जीव करणानुयोगकी दृष्टिमें निश्चयसे सम्यग्दृष्टि है।

जीवादी सद्दहणं सम्मत्त
जिणवरे हिं पण्णन्तं ।
ववहारा णिच्छयदो
अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥

अर्थ—'जीवादि पदार्थका श्रद्धान करना तो व्यवहार सम्यक्त्व है, और अपनी आत्माका श्रद्धान करना निश्चय सम्यक्त्व है, ऐसा जिन भगवान्ने कहा है।' इस गाथामें आचार्यश्रीने द्रव्यानुयोगकी अपेक्षासे निश्चय सम्यग्दृष्टि कहा है।

जिस जीवको देशनालब्धि प्राप्त हुई है, वह जीव करणानुयोगकी अपेक्षासे व्यवहार सम्यग्दृष्टि है। देशनालब्धि भव्य जीव और अभव्य जीव दोनोंको हो सकती है। ऐसे जीवोंके मुखसे यही वाणी सुनी जावे

तो वह वाणी सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने में वाह्य निमित्त पड सकती है। यही बात श्री कुन्दकुन्द स्वामीने नियमसार ग्रन्थके शुद्ध भाव अधिकारमे ५३ वीं गाथामें लिखी है।

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं
तस्स जाणया पुरसा।
अंतरहेऊ भणिदा
दंसण मोहस्स खय पहुदी।

अर्थ—'सम्यग्दर्शन होनेमें वाह्य निमित्त जिनवाणी, तथा जिनवाणी जाननेवाला पुरुष है और अन्तरग हेतु (निमित्त) दर्शन मोह नामका कर्मका क्षय, उपशम और क्षयोपशम कहा गया है।

सोनगढसे गुजराती अनुवाद सहित नियमसार ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसका अनुवाद श्रीमान् हिम्मतलाल भाई जेठालाल शाहने किया है। श्री हिम्मतलाल भाई शास्त्रज्ञ हैं, परन्तु श्री कानजी स्वामीके प्रति अनन्य भक्तिके कारण श्री कानजी स्वामीकी मान्यताका खंडन न हो जावे। ऐसे मिथ्यात्वगर्भित रागके कारण नियमसार ग्रन्थकी गाथा ५३ के अन्वयार्थमें कैसा विपरीत अर्थ उन्होंने लिख दिया है, यह दुःखकी बात है।

उपर्युक्त ५३ की गाथाका संस्कृत श्लोकका अन्वयार्थ जो श्री हिम्मतलाल भाईने किया है, वह निम्न प्रकार है—

अन्वयार्थ—(सम्यक्त्वस्य निमित्त) सम्यक्त्वनुं निमित्त (जिनसूत्र) जिन सूत्र छे (तस्य ज्ञायक पुरुष) जिन सूत्रना जाननार पुरुषोने (अन्त हेतवः) (सम्यक्त्वना) अन्तरग हेतुओ (भणित) कह्या छे, (दर्शनमोहस्य क्षयप्रभृते) कारणके तेमने दर्शनमोहना क्षयादिक छे।

(सम्यक्त्वका निमित्त जिनसूत्र है, जिनसूत्र जाननेवाले पुरुषको (सम्यग्दर्शन होनेमें) अतरग हेतु (निमित्त) कहा है, क्योंकि उनके दर्शन मोहादिकका क्षयादिक है)।

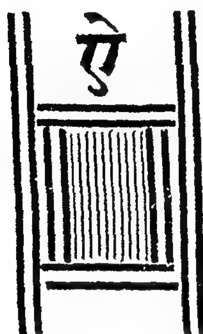
जिस समय अन्वयार्थ हो रहा था उसी समय सोनगढवासियोंको अपनी भूलका ज्ञान हो गया था, किन्तु अपनी मान्यताके अनुकूल कोई पंडित ऐसा ही अर्थ कर दे तो उत्तम, इस अभिप्रायको लेकर श्रीमान दा० वी० सेठ हुकमचंदजी साहबको इन्दौर पत्र लिखकर पूछा गया कि इस ५३वीं गाथाका ठीक ठीक अर्थ क्या हो सकता है? श्री पंडित वंशीधरजी साहबसे अर्थ कराकर भेजें। उसके उत्तरमें श्री पंडित वंशीधरजी साहबने उस गाथाका वही अर्थ जो हमने ऊपर लिखा है, करके भेजा। फिर भी अपनी बातको पकड रखनेके लिए सोनगढवासियोंने क्या अर्थका अनर्थ किया यह सोचनेका विषय है। यह सोनगढवासियोंका दोष नहीं है, मिथ्यात्वगर्भित रागमें ऐसा ही होता है। जैनीका बच्चा बच्चा जानता है कि नोकर्म अर्थात् देव-गुरु शास्त्रादि अन्तरंग निमित्त कभी भी नहीं हो सकते हैं, परंतु अंतरग निमित्त तो द्रव्य-कर्म ही है। यही बात नियमसार ग्रन्थकी गाथा ६८वीं की टीकामें बहुत विस्तारसे लिखी है। जिज्ञासुओंको जान लेना चाहिए।

हमने श्री हिम्मतलाल भाईको सोनगढ पत्र लिखकर पूछा था कि अंतरग निमित्त नोकर्म होता है या द्रव्य कर्म? किन्तु उत्तर प्राप्त न होनेसे इस लेखको प्रकाशित करनेकी आवश्यकता हुई है, ताकि भ्रम दूर हो जावे।

विश्वके ज्ञान-भण्डारसे—

लक्ष्यकी ओर

महान् लेखक—आर० एल० स्टीवेन्सन : अनु० रामनारायण विजयवर्गीय



ऐसा लगता है कि इस संसारमें, जहाँ असंख्य विवादों और घातक युद्धोंका अम्बर-सा लगा है और जहाँ हम कुछ निश्चित घंटोंमें बड़े उत्साह और तेजीके साथ अपने शरीररूपी थैलेमें भोजनका कुछ भाग अन्तिम रूपसे भर लेते हैं, बहुत कुछ प्राप्त करने योग्य है। विहंगम-दृष्टिसे देखनेपर हमें यह भी मालूम होगा कि मानवके जीवन-संग्रामका यह एकमात्र लक्ष्य था कि वह अधिकसे अधिक प्राप्त करे, पर, आत्माके लिए यह सब धोखा है।

सुख, विकासका द्योतक है; एक इच्छाकी पूर्ति दूसरीको जाग्रत करती है, और यह क्रम सदा चलता रहता है। ऊर्ध्व दृष्टिवाले मानवको सदा नया क्षितिज दिखाई देता है। एक छोटेसे ग्रहके निवासी, छोटे-छोटेसे कार्योंमें उलझे हुए और कुछ वर्षोंसे अधिक जिन्दा न रहनेपर भी हमारी आशाएँ तारोंकी तरह पहुँचके बाहर हैं और उनकी अवधि हमारी आयुके अन्त तक लम्बी है।

यह जानना कि हम आरम्भ कैसे करते हैं न कि अन्त, और हम चाहते क्या हैं न कि हमारे पास क्या है, सुखी होनेका सही रूप है। आशा सदा आनन्ददायिनी है, अचल सम्पत्ति की तरह स्थिर, अनन्त सौभाग्य-वर्षिणी एवं प्रति वर्ष सुखद क्रियाके रूपमें आमदनी देनेवाली है। ऐसी बहुत-सी आशाओंका होना दैवी सम्पद् से युक्त होना है। यदि खेल रुचि-कर न हो, तो जीवन केवल एक अत्यन्त रूक्ष एवं अव्यवस्थित रंगमंच ही है; कला और ज्ञानशून्य लोगोंके लिए संसार केवल कुछ रंगोंका रूपक ही है या वह पथरीला पथ, जिसपर चलकर वे अपने घुटने फोड़ सकेंगे।

अपनी इच्छा एवं जिज्ञासाके ही कारण मानव शान्तिपूर्वक रह पाता है, दूसरे लोगों और वस्तुओंको देख-कर मोहित होता है और हर सुबह कर्म और आनन्दकी पुनर्जीवित भूखके कारण जाग उठता है। इच्छा और जिज्ञासा ही वे दो आँखें हैं जिनके द्वारा वह संसारको सर्वाधिक मोहक रंगोंके रूपमें देखता है; वे ही स्त्रियों-

को सुन्दर और ठन्डलोको आकर्षक बनाती है, मानव चाहे दर-दरका भिखारी हो जाय, पर उसके पास यदि ये दोनो तावीज वर्तमान है तो अवश्य ही वह आगत सुखकी सम्भावनासे वैभव-सम्पन्न है। मानो एक ही बार उसने इतना अधिक और पूर्ण भोजन कर लिया है कि उसे भूख कभी लगा ही नही करती, या एक ही दृष्टिमें ससारके सारे रूपोको देखकर उसने ज्ञानकी भूखको सदाके लिए समाप्त कर दिया है,—या अनुभूतिके हर क्षेत्रमें उसका यही दृष्टिकोण है—तो क्या वह आगत सुखके अभावके कारण निधन नही होगा ?

यदि कोई अपने भोलेमें एक ही पुस्तक डालकर पैदल यात्राके लिए चल पडता है, तो उसे बडे ध्यानसे पढता है, कभी चिन्तनके लिए रुक जाता है, कभी-कभी प्राकृतिक दृश्योको या धर्मशालामे लगे चित्रोको देखनेके लिए उसे एक ओर रख देता है, क्योकि उसे सदा अपने आनन्दकी समाप्ति और यात्राके अन्तिम क्षणोमे साथी-रहित हो जानेका भय रहता है। एक युवकने कुछ समय पूर्व थामस कार्लाइलके सम्पूर्ण ग्रन्थोका पठन "महान् फ्रेडरिक" नामक दस भागोंके विशाल ग्रन्थके साथ समाप्त किया। "उफ", आश्चर्यचकित हो वह चीख पडा, "क्या कार्लाइल और नहीं है ? क्या अब मुझे अखबारो पर ही निर्भर रहना पडेगा ?" अलेक्षेंद्र महान् भी इसलिए खूब रोया कि उसके जीतनेके लिए कोई दुनिया ही नही रह गई थी। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक गिबन "रोम साम्राज्यका पतन एव नाश" नामक अपने महान् ग्रन्थकी समाप्ति पर कुछ ही क्षण आनन्दविभोर रहा, और उसने गभीर उदासीनताके साथ अपने कार्यसे विदा ली।

खुशी-खुशी हम चॉदपर व्ययके तीर चलाते है, हमारी आँखें एकटक अप्राप्य स्वर्णनगरीकी ओर लगी रहती हैं, पर यहाँ हम कुछ भी प्राप्त नही कर पाते। बिलकी तरह स्वार्थोकी फसलके कटते ही उनकी नई खेती प्रारम्भ हो जाती है। बच्चा पैदा होनेके बाद हम सोचते है कि बला टली, पर वह तो नई झझटोका आरम्भ ही है, क्योकि दाँत निकलने, शिक्षा समाप्त होने और अन्तत विवाह होनेके बाद, नित्य नये भय और नई तरल सज्ञाएँ उत्पन्न होती है, और अपने पोतोके स्वास्थ्यकी चिन्ता स्वयके समान ही चिन्तनीय हो जाती है। अपनी स्त्रीसे विवाह हो जानेपर हम सोचते है कि हिमालयपर चढ गये और नीचे उतरनेका सरल मार्ग मिल गया, पर, सचमुच, यह तो मेलजोलको समाप्त कर विवाहका आरम्भ ही हुआ है। विद्रोही और तेजस्वी व्यक्तित्वके लिए प्रेम करना और उसमें विजय पाना अक्सर कठिन है, पर प्रेममे मग्न रहना भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योकि उसमे स्त्री-पुरुषको दया और सद्भावनाका रस घोलना पडता है। सच्ची प्रेम-कहानीका प्रारम्भ तो वेदीपर होता है जब कि विवाहित युगलके समक्ष विवेक एव दयाके बहुत ही

सुन्दर द्वन्द्व और अप्राप्य लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए जीवनपर्यन्त संघर्ष उपस्थित होते हैं। अप्राप्य ! सचमुच अप्राप्य, क्योंकि वे भी तो एकके वजाय दो हैं।

"पुस्तक-निर्माणका अन्त नही है", सालोमनने यह शिकायत की, पर वह भूल गया कि साहित्यकी उसने कितनी प्रशंसा की। ठीक भी तो है कि पुस्तक-निर्माण, अनुसंधान-कार्य, यात्रा या धन वटोरनेका कोई अन्त नही है। एक प्रश्न दूसरे प्रश्नको जन्म देता है। जन्मभर हम अध्ययन करें, फिर भी कोरेके कोरे। अपनी कल्पनाके अनुसार हम कभी भी मूर्ति नहीं घढ़ पाये। एक महादेशको खोजना या पर्वतोंकी एक पंक्तिको पार करना आगे वढ़कर दूसरे समुद्र या मैदानकी खोजको प्रारम्भ करना ही है। अनन्त संसारमें हमारे अथक परिश्रमके लिए सदा स्थान रहा है। वह कार्लाइलके ग्रन्थोंकी तरह नही है, जिनके पढ़नेका अन्त है। उसके एक कोनेमें, निजी उद्यानमे, या किसी ग्रामके निकट हवा और मौसम इस खूवीके साथ वदलते है कि जन्म भर वहाँ घूमनेके वाद भी हमें चकित और प्रसन्न करनेके लिए कोई नवीनता नज़र आ ही जाती है।

दुनियामें केवल एक ही इच्छा पूरी होती है, केवल एक ही वस्तु पूर्णतः प्राप्त हो सकती है: मृत्यु। पर कई कारणोंसे कोई हमें कहनेवाला नहीं कि उसका प्राप्त करना उचित है।

हम सदा चलकर, आरामकी पर्वाह न कर, और कल्पनाके पीछे दौड़कर अपना अजीब रूप बना डालते हैं; थकानकी शिकनसे रहित और हर खतरा मोल लेनेवाले नेता जो ठहरे। यह सत्य है कि हम अपने लक्ष्य तक कभी पहुँच नहीं पाते; यह भी सम्भव है कि उसका कोई स्थान न हो; यदि हम शताव्दियों तक जिन्दा रहें और ईश्वरीय शक्तियोंसे युक्त हों फिर भी हम अपने लक्ष्यके समीप स्वयंको कभी नही पायेंगे। हे अथक पदों ! शीघ्र ही, सचमुच शीघ्र ही, कोई न कोई महत्त्वपूर्ण चोटी अवश्य मिलेगी जहाँसे कुछ दूर, सूर्यास्त होते-होते स्वर्ण-नगरीके शिखर दिखाई पड़ने लगें, पर तुम अपने भाग्यको बिल्कुल नहीं जानते; क्योंकि आशाके साथ यात्रा करना लक्ष्यकी प्राप्तिसे अधिक अच्छा है और सच्ची विजय कर्म करते रहनेमें है।





सो गये जब तेरा मकाँ देखा।
मिट गये जब तेरा निशाँ देखा॥

—अज्ञात

दुनियासे हाथ धोके चले कूएयारमें[1]।
जाइज नहीं तवाफ़ेहरम[2] बेवजू[3] किये॥

—अज्ञात

हकीकी इश्ककी इश्केमजाजी पहली मंजिल है।
चलो सूयेखुदा ऐ जाहिदो! कूचे बुताँ होकर[4]॥

× × ×

तुम्हारा ही बुतखाना, काबा तुम्हारा।
है दोनों घरोंमें उजाला तुम्हारा॥

× × ×

ऐ 'दाग' अपनी वजह हमेशा यही रही।
कोई खिंचा खिंचे, कोई हमसे मिला, मिले॥

—दाग

---

१ ईश्वरके यहाँ, २ मक्के या मस्जिदकी प्रदक्षिणा, ३ तात्पर्य यह है कि मृत्युके समय हमें स्नान इसलिए कराया गया है कि हम अपने प्यारे ईश्वरके पास जा रहे हैं, उसके पास पवित्र होकर जाना ज़रूरी है, ४ शायरका तात्पर्य है—मन्दिरोंकी उपासना करते हुए खुदाकी तरफ चलो। यानी साकार पूजा करते-करते निराकार ईश्वर तक पहुँच जाओ।

शामिल हो जिसमें रंज, वोह राहत[1] न कर .कुबूल ।
दोज़खके मुत्तसिल[2] हो तो जन्नत न कर .कुबूल ॥
ग़ैरत नहीं रही तो है बेकार ज़िन्दगी ।
फैलाके हाथ ज़र्फ़ेनदामत[3] न कर .कुबूल ॥

—अदब

आहसे दिलका दाग़ जलता है ।
यह हवामें चराग़ जलता है ॥
मर रहे हैं पतंगे जल-जलकर ।
इसी ग़ममें चराग़ जलता है ॥
आहे-मज़लूम[4] गुल करेगी उसे ।
.ज़ुल्मका कब चराग़ जलता है ॥

—बिस्मिल इलाहाबादी

किसीकी कुछ नहीं चलती कि जब तक़दीर फिरती है ।
.ज़ुलेखा[5] हर गली कूचेमें बेतौक़ीर फिरती है ॥

—अज्ञात

दिल वोह नगर नहीं कि फिर आबाद हो सके ।
पछताओगे सुनो हो, यह बस्ती उजाड़ कर ॥

× × ×

'मर्ग[6] इक मान्दगीका[7] वक़्फ़ा[8] है ।
यानी आगे चलेंगे दम लेकर ॥

× × ×

सरापा[9] आरज़ू[10] होनेने बन्दा[11] कर दिया हमको ।
वगर्ना हम .खुदा थे गर दिले बेमुद्दआ[12] होते ॥

× × ×

अहदेजवानी[13] रो-रो काटी पीरीमें[14] लीं आँखें मूँद ।
यानी रात बहुत थे जागे सुबह हुई आराम किया ॥

—मीर

---

१ सुख-चैन, २ नज़दीक, ३ निर्लज्ज जीवन, सम्पत्ति, ४ अत्याचार-पीड़ितोंकी आह, ५ मिस्रके बादशाहकी रूपवती मलका, जिसने अपने जीवनमें काफ़ी कष्ट उठाये, ६ मृत्यु, ७ शिथिलताका, ८ समयकी अवधि, विश्रामस्थल, ९ सिरसे पैर तक, आदिसे अन्त तक, १० अभिलाषी, ११ पुजारी, सेवक, १२ वांछा-रहित हृदय, १३ युवावस्था, १४ वृद्धावस्थामें ।



दुर्जन किनके समान होते हैं ?

श्री अमृतलाल जैनदर्शनाचार्य

स्तोकेनोन्नतिमायाति, स्तोकेनायात्यधोगतिम् ।
अहो सुसदृशी वृत्तिस्तुलायष्टे खलस्य च ॥१॥ अज्ञात

अहो ! तराजूकी डंडी और दुर्जनकी कैसी समान वृत्ति है । दोनों ही जरामें उठ जाते हैं और जरामें नीचे गिर जाते हैं ।

दर्पणस्य खलु दुर्जनस्य च ब्रूत हन्त सुजना ! किमन्तरम् ।
यावदेव पुरतो वसेज्जनस्तावदेव हृदयेऽस्य वर्तते ॥२॥ अज्ञात

सज्जनो ! यह तो बताइए कि दर्पण और दुर्जनमें क्या भेद है, क्योंकि जब तक इन दोनोंके सामने कोई मनुष्य रहता है तभी तक उसका, इनके हृदयमें स्थान रहता है ।

शिरसि निहितोऽपि नित्यं यत्नादपि सेवितो बहुस्नेहैः ।
तरुणीकच इव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति ॥३॥ अज्ञात

सिर पर धारण किये गये और खूब तेल लगाकर सजाये गये युवतीके केशपाशके समान सिर चढाया गया और खूब स्नेहसे सम्मानित किया गया भी दुर्जन कुटिलता नहीं छोडता ।

ये वर्धयन्ति पापर्द्धि-कौतुकं पृथिवीपतेः ।
विशेषः कतरस्तेषां पिशुनानां शुनामिव ॥४॥ श्रुतधरराम

जो नरेशोंकी पाप-वृद्धि (शिकार) के कौतुकको बढ़ाते हैं, उन दुर्जनों और कुत्तोंमें क्या भेद है ?

वैरस्यैकनिधेः क्रूरसत्त्वस्य च जडात्मनः ।
पयोऽप्यपेयं भवतिं क्षाराम्भोधेः खलस्य च ॥५॥ अज्ञात

नीरसताके निधि, क्रूर जन्तुओंके घर, जलमय खारे समुद्रके समान वैरनिधि, क्रूरहृदय और मूर्ख दुर्जनका पानी भी पीने योग्य नहीं होता ।

नौश्च दुर्जनजिह्वा च प्रतिकूलविसर्पिणी ।
परप्रतारणायैव निर्मिता केन दारुणा ॥६॥ रिसुक

केवल दूसरोंको ठगनेके (पार उतारनेके) लिए प्रतिकूल बोलनेवाली (प्रत्येक घाटपर जानेवाली) नौका और दुर्जनकी जीभ किस कठोरहृदय (लकड़ी) द्वारा रची गईं !

जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुत्थिताः ।
किं कनिष्ठा उत ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥७॥ क्षेमेन्द्र

जीविका (जल) ग्रहण करते समय नम्र और ग्रहण करनेके बाद उद्धत (उन्नत) दुर्जन घटीयन्त्र (रहँट) से छोटे हैं या बड़े ?

अहो प्रकृतिसादृश्यं श्लेष्मणो दुर्जनस्य च ।
मधुरैः कोपमायाति कटुकैरुपशाम्यति ॥८॥ अज्ञात

अहो ! कफ और दुर्जनमें कैसी समानता है । मधुर रस (भाषण) से दोनों कुपित होते हैं और कटुक रस (भाषण) से शान्त ।

यथा गजपतिः श्रान्तश्छायार्थी वृक्षमाश्रितः ।
विश्रम्य तं द्रुमं हन्ति तथा नीचः स्वमाश्रयम् ॥९॥ अज्ञात

जैसे थका हाथी छायाकी चाहसे जिस वृक्षके नीचे जाता है विश्रामके बाद उसीको उखाड़ डालता है वैसे नीच दुर्जन भी परेशान होकर शान्ति पानेके लिए जिस पुरुषकी शरण जाता है मतलब निकलते ही उसे मार डालता है ।





[इस स्तम्भके अन्तर्गत हम 'ज्ञानोदय'के हर अंकमें तीर्थों और कलापूर्ण बने हुए प्राचीन मन्दिरोंका परिचय देना चाहते हैं। पहले अंकोंमें दिल्लीके नये मन्दिर और कुण्डलपुर तीर्थक्षेत्र तथा सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरिका परिचय दिया जा चुका है। अजमेरकी प्रसिद्ध जैन नशिया और खजुराहोके भव्य मन्दिरोंके चित्र भी प्रकाशित किये हैं। हम तीर्थों और मन्दिरोंके व्यवस्थापकोंसे निवेदन करते हैं कि वे अच्छे लेखकोंसे लिखवाकर अपने यहाँके तीर्थ अथवा मन्दिरका सुरुचिपूर्ण सचित्र परिचय भिजवाएँ। यात्रियोंसे भी हम सानुरोध प्रार्थना करते हैं कि वे तीर्थ-यात्रा सम्बन्धी विवरण भिजवानेकी कृपा करें। हज़ारों यात्री प्रति वर्ष यात्रा करते हैं, उनमें विद्वान् और लेखक भी काफ़ी होते हैं, किन्तु कितने आश्चर्यकी बात है कि यात्रा-सम्बन्धी विवरण हमारी समाजमें लिखनेकी परिपाटी क़तई नहीं है। हालाँ कि यही जैन यात्री, काश्मीर, शिमला आदिकी सैरको जाते हैं तो पत्रोंमें बड़े गर्वके साथ भ्रमण-वृत्तान्त छपवाते हैं। यदि जैन-तीर्थों मन्दिरोंका भी सुविस्तृत और रोचक वर्णन लिखा जाय तो जैनेतर जनताका भी ध्यान इधर आकर्षित होनेसे उन तीर्थोंकी लोकप्रियता बढ़ेगी और एक आवश्यक महत्त्वपूर्ण साहित्यका सृजन भी हो जायगा।—*गोयलीय*]



श्री सिद्धक्षेत्र रेशंदीगिरि (नैनागिरि)

श्री वि० नरेन्द्र बी० ए०, साहित्याचार्य

प्रान्त-परिचय—

यह प्रभु-पद-रजमयी पुनीत
प्रशस्य भूमि है।
रमे राम बुन्देलखण्ड वह
रम्य भूमि है॥
तीर्थमयी जो सकल साधना-
साध्यभूमि है।
अति आस्तिक बुन्देलखण्ड
आराध्यभूमि है॥
—स्व० मुंशी अजमेरी जी

यह है वह परम पुनीता बुन्देल वसुधा जिसको न केवल वीरोंके कारण, विद्वान् विदुषियोंके कारण, कला और कारीगरोंके कारण इतना सन्मान मिला अपितु १४ वर्षके लिए वनवासार्थ निकले हुए उन विश्ववन्द्य, रामके विहारस्थल होनेके कारण, अनेक तीर्थोंके कारण, तीर्थङ्करके विहार और मुनीश्वरोंकी निर्वाणभूमि होनेके कारण भी इसे वह अतुल सन्मान प्राप्त है जिसकी तुलनामे संसारका सारा वैभव तुच्छ है। यही वह सिद्ध क्षेत्र रेशन्दीगिरि है जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य और भव्य दर्शन दर्शककी आँखोंको लुभा देता है, उनको लालायित कर देता है।

स्थान—

यह सिद्धक्षेत्र पहिलेके पन्ना राज्य और अबके छतरपुर जिलेके बकस्वाहा तहसीलमें है। सागर जिलेकी ईशान सीमापर जी० आई० पी० रेलवे स्टेशन सागरसे ३५ मीलकी दूरीपर है। सागरसे दलपतपुर तक २७ मील पक्की सड़क है और दलपतपुरसे ८ मील कच्चा रास्ता है। घोड़ा, बैलगाड़ी और रिजर्व मोटर ठीक रेशंदोगिरि तक जाती है।

क्षेत्रमन्दिर—

धर्मशालासे लगभग १ फर्लांगकी दूरीपर, मामूली सी चढ़ाईपर, छोटी सी पहाड़ी पर, बहुत ही सुन्दर, पच्चीस जिनमन्दिर देखकर हृदय फूल उठता है। देव-दर्शनकी इच्छा हुई कि १५ मिनिटमें ही धर्मशालासे पहाड़पर और तन्मयतासे अच्छी तरह दर्शन कीजिये तब केवल एक घण्टामें ही अपने स्थानपर वापिस आ जाने पर प्रतीत होगा जैसे स्वप्नमें दर्शनकर जाग उठे हों या किसीके काल्पनिक उड़नखटोलेपर से यहाँ आ उतरे हों? यहाँ सबसे पुराना एक मन्दिर सं० १७०८ का है। इसके निर्माणकर्ता श्रीमान् पतरिया गोत्रवाले एक गोलापूर्व सज्जन हैं। इस मन्दिरमें प्राचीन कालकी एक बहुत ही सुन्दर मूर्ति है। यह मन्दिर जैन बन्धुओंकी असावधानीसे जंगली वृक्षोंसे घिरकर कांटेदार सघन झाड़ियोंमें छिप गया था। कुछ समय बाद बम्हौरी (पन्ना) निवासी श्रीमान् स्व० चौधरी श्यामलालजी

चौंसगने सं० १९२१ में इसका जीर्णोद्धार कराया। अपने न्यायोपार्जित द्रव्यसे पात्रोत्सव कराया। तबसे यह क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ है। पार्श्वनाथ स्वामीकी एक विशाल शुभ्रमूर्ति जिसका मूल्य १० हजार रुपये है पधराई जा रही है। क्षेत्रकी विशेष प्रसिद्धिके लिए प्रतिष्ठाके समय कोई विशेष महोत्सव किया जायगा।

तीर्थराज!

दर्शनको तेरे यात्रीगण,
आबालवृद्ध हैं यह चाले।
करमें वसुद्रव्य पवित्र लिये,
धारे तनपर निर्मल वाने॥
नतमस्तक हो करते वन्दन,
रेशन्दीगिरिका अभिनन्दन।

दशनाथ आई हुई आबालवृद्ध जनोकी टोलियोको शुद्ध वस्त्र पहिनकर, हाथमें पूजाकी थाली लेकर जाते हुए देखकर आप स्वयं आगे हो लेंगे।

पहुँचे गिरिपर आकुल-से हो,
प्रभुदर्श किये हमने वैसे।
वह शान्ति मिली जिनदर्शनसे,
हम भी निर्द्वन्द्व हुए जैसे॥
करते जय ध्वनिका स्पन्दन,
रेसन्दी गिरिका अभिनन्दन॥

पर्वतपर पहुँचनेपर, भगवान्‌के दर्शन करनेपर आत्माको वह शांति प्राप्त होगी जिससे आत्मनिर्द्वन्द्वता का भान अपने आप होने लगेगा। जयजयकार करते हुए ही आप वहासे लौटेंगे।

आते जाते सब यात्रीगण,
कहते जाते हैं—"जय जिनेन्द्र!"
वात्सल्य-भरे शुभ भावोंसे,
दर्शन कर हम भी हैं महेन्द्र!
करता भू विजित स्वर्ग कम्पन,
रेशन्दीगिरिका अभिनन्दन।

लौटते समय मार्गमें ऐसा पवित्र वातावरण दिखाई देगा कि जिनेन्द्रप्रवाहित वात्सल्य-गंगामें गोता लगाकर ही आप निकले हो। शत्रु हो या मित्र, परिचित या अपरिचित देखते ही या तो आप 'जयजिनेन्द्र' कह उठेंगे, या आप चूके तो वह! वात्सल्यकी इस पुनीत भावनासे जब हृदयके विकार शान्त दिखते हैं तब कोई भी अपनेको पूजनके अधिकारी महेन्द्रसे कम नहीं समझते। उन्हें उस समय भूतलपर स्वर्ग दिखाई देता है। चारो तरफ सघन वन है। एक नाला भी है जिसमें सदा स्वच्छ जल बहता रहता है।

जलमन्दिर—

पर्वतके नीचे एक सुन्दर सरोवर है। सरोवरके बीचोबीच सेठ जवाहरलालजी सासदावालो द्वारा बनवाया हुआ एक भव्य मन्दिर है जिसके दर्शनके लिए वहाँ तक पहुँचनेको एक पुल बना हुआ है। पूज्य वर्णीजीको यहाके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अपनी जीवनगाथामें उन्होने लिखा है—"सरोवर अत्यन्त रम्य था। चारो ओर सारस आदि पक्षीगण शब्द कर रहे थे। चकवा आदि अनेक प्रकारके पक्षीगणोके कलरव हो रहे थे। कमलोके फूलोंसे वह ऐसा सुशोभित था मानो गुलाबका बाग ही हो। (पृ० ३३) मन्दिरको देखकर पावापुरके जलमन्दिरका स्मरण हो आता है।" (पृ० ५२३) सरोवरका बँधान चँदेल राजाका

बँधाया हुआ है। इसी परसे पर्वतपर जानेका मार्ग है। इस मार्गसे जाते समय कमसे कम मुझ जैसा भी सहृदय बँधानपर खड़े होकर यह एक कल्पना तो कर ही सकता है–

जलमन्दिरका तालाब आज,
बन्धनमें पड़कर आन फँसा।
श्रद्धाञ्जलि तरल तरङ्ग हाथ,
विकसित अरविन्द लिये तरसा।
क्या नहिं करते हम भी वन्दन,
रेशंदीगिरिका अभिनन्दन?

जलमन्दिरका यह वेचारा तालाब मूक है तो क्या हुआ? इस बँधानको तो आखिर वह वन्धन ही समझकर पछता रहा है। अपने हृदयकी पूँजी फूले हुए कमलपुष्पोंको अपने हाथोंमें—तरंगोंमें—लेकर भगवच्चरणमें चढ़ानेको उत्सुक है परन्तु बँधानका वन्धन उसे कब ऐसा करने देता है? सोचता है यदि मैं स्वतंत्र होता तो क्या इन यात्रियोंकी तरह इस पावन भूमिके दर्शन न करता? अवश्य करता।

नीचेके मन्दिर—

धर्मशालाके बाहर एक उच्च स्थानपर अनेक भव्य जिनालय हैं। मूर्तियाँ प्रायः सभी मनोहर हैं।

समवशरणभूमि और निर्वाणभूमि—

समवशरण श्री पार्श्व जिनेन्द्र
रेशंदी गिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पञ्च ऋषिराज
ते वन्दों नित धरम जहाज॥

यह वही समवशरणभूमि है जहाँ श्री १००८ देवाधिदेव भगवान् पार्श्वनाथका समवशरण आया था। कितना सुन्दर होगा वह दृश्य जब भगवानकी उस धर्मसभा-समवशरण-में सिंह-हिरण, साँप-नेवला, भंगी-ब्राह्मण, सुर-नर सबको समान शरण और समान उपदेश प्राप्त हुआ होगा? जहाँ मिट्टीकी धलि उड़ती है वहाँ रत्नधूलि उड़ी होगी। जहाँ झोपड़ियाँ हैं वहाँ मायामय भव्य भवन होंगे? सागर विद्यालयके मेरे बचपनके सहपाठी रेशंदीगिरिके भूतपूर्व छात्र पर्वतराजके एक शून्य सघन जंगली प्रदेशमें ऐसी शिलाकी चर्चा किया करते थे जिसपर बैठनेसे अनुपम शान्तिका अनुभव होता है। उनकी तर्कशक्तिके अनुसार उस शिलाके पार्श्ववर्ती प्रदेशको समवशरणभूमि माननेको वाध्य होना पड़ता है। यहाँ एक शिलालेख पुरातत्त्ववेत्ताओंकी प्रतीक्षामे है। उसके पढ़े जानेपर क्षेत्रकी ऐतिहासिक महत्तापर प्रकाश पड़नेकी संभावना है।

निर्वाणकाण्डकी "वरदत्तादि पंच ऋषिराज" वाली पंक्तिसे यह वरदत्त आदि पाँच मुनीश्वरोंकी निर्वाणभूमि सिद्ध ही है। इस तरह यह समवशरण और निर्वाणभूमि होनेसे पवित्र तीर्थस्थान हो गया है। वर्णीजी-जैसे व्यक्ति भी "मन्दिरोंके दर्शनादिका भव्य पुण्योंपार्जन करते हुए संसार-स्थितिके छेदका उपाय करते हैं" (जी० गा० पृ० ५२३)। इस महिमाके वन्धनसे ऐसे बँधे कि "चित्त जानेको नही चाहता था। चित्तमे यही आता था कि सर्व विकल्पोंको त्यागो और यही धर्मसाधन करो...। प्रस्थानके समय आँखोमे अश्रुधारा आ गई, चलनेमें गतिका वेग न था, पीछे-पीछे देखते गये, और आगे-आगे चलते



अम्मा के बरतन

महात्मा भगवानदीन

[१]

विष्णुदत्तजी बात करते बोले, 'जरा ठहरिये, अम्मा आई है, मैं अभी थोड़ी देरमें आता हूँ।'

'है! आपकी अम्मा! पचास, पचपनके तो आप खुद हैं, और आपका कहना है आप अपने भाइयोंमें सबसे छोटे हैं, तो क्या आपकी अम्मा अभी जीवित हैं ?'

'यह मैं फिर बताऊँगा' कहते हुए वह खट-खट जीनेसे नीचे उतर गये।

मुझमें अचरज जागा और मैं चुपकेसे गैलरीमें खड़े होकर, ऊपरसे उनकी अम्माके स्वागत, और उनकी अम्माको देखने लगा। वह आईं तो बुरका पहिने, पर मुँह खुला था। आते ही उन्होंने बुरका उतारकर, विष्णुदत्तकी स्त्री सुलोचनाको पकड़ाया और उनकी लड़की कनकलताको 'मुन्नी' कहकर गले लगाया, उसके सिरपर हाथ फेरा।

जैसे ही कनकलता उनसे अलग हुई वैसे ही सुलोचनाने उनके पाँव छुये और असीस पाई। इसके बाद वह उस कुर्सीपर बैठ गई, जो इस अरसेमें विष्णुदत्तने आँगनमें लाकर रख दी थी।

मैं बड़ा चकराया कि यह मामला

क्या है! वह चूड़ीदार पायजामा पहिने हुए थीं, एक मलमलका कुर्ता उनके बदनपर और था, पाँवमें एड़ी पिचकी सलीमशाही जूती थी, एड़ीसे चोटी तक वह बिल्कुल मुसलमान थी, इसमें कोई शकका सवाल ही न था। मै समझ ही न सका कि एक ब्राह्मण-की मुसलमान अम्मा कैसी'? कही इनके बाप मुसलमान तो नही हो गये थे, पर इन्होंने ऐसी बात कभी मुझसे कही नही। यह अपने बापका नाम सोमदत्त बताते हैं। यह सोचते-सोचते मेरे मनका पाप जागा, हो, न हो, यह इनके बापकी रखैल हो,—पर रखैल भी तो कोई हिन्दू होनी चाहिए और फिर उसके साथ भी तो इस सारे घरका इतनी श्रद्धाका बर्ताव कैसे हो सकता है, यह हिन्दू भी नही है। हो सकता है पहिले हिन्दू रही हों फिर मुसलमान हो गई हों, पर अगर ऐसा होता तो यह इतनी श्रद्धाकी अधिकारी न रह जातीं। तरह-तरहके पाप मेरे मनमें आये पर तसल्ली न हो पाई और आगे चलिये, उनके हाथ धुलाये गये, उनके सामने मेज रखी गई, वह खड़ी हुई, अपनी पीठके पीछेवाले दालानमें गई, जिसके एक कोनेमें चक्की और दूसरे कोनेमें दो मुगदर खड़े थे। बाक़ी दो कोनोंमें टूटी-फूटी चीजोंका ढेर था। उसीमें एक अलमारीके ऊपर-के डाटदार ताकसे दो शीशेकी तश्तरी और एक शीशेका गिलास लिया। उनको बाहर लाकर मोरीके पास धोया, कनकलताने पानी डाला। वह कुर्सी पर बैठ गईं, मेजपर उन बर्तनों-को रख लिया। उनको खाना परोस दिया गया। उन्होंने खा लिया। अपने बरतन साफ़ किये और फिर उन बरतनोंको वही पहुँचा दिया, जहाँसे वह आये थे।

औरतोंकी पार्टी पासके कमरेमें चली गई और बातोंमें लग गई, विष्णु-दत्तजी ऊपर चले आये। मै उनके आनेसे पहिले चुपचाप कमरेमें जा बैठा—मानों मैने कुछ देखा ही न था।

[२]

'कहिये विष्णुदत्तजी, आप अपनी अम्मासे छुट्टी ले आये।'

'हाँ, ले आया।'

'तो सुनाइये अब उनका हाल।'

'लीजिए सुनिये'—

अहमद रजा नामके यहाँके कल-क्टरके एक सरिश्तेदार थे, बड़े ही नेक थे। उनसे दसियोंकी दिक्क़तें दूर होती थीं, बीसियोंको नौकरियाँ मिल जाती थीं। एक-दो जेलखाने जानेसे बच जाते थे। मेरे पिता सोमदत्तजीके वह बड़े दोस्त थे। मेरे पिताजी जब कभी उनके एहसानों-की कथा कहने बैठते थे तो ख़तम ही न होती थी। मेरे पिताजीके बाद उन्होंने मुझको भी एहसानोके बोझसे इतना लादा कि मै इन अपनी अम्मा-की कितनी भी सेवा करूँ उस बोझसे हलका नहीं हो सकता, और फिर यह सेवा भी तो नहीं चाहती—पैसा यह नहीं चाहतीं, कभी कोई छोटा-मोटा काम यह मुझे करनेको नही कहतीं। कभी आती है तो दो-तीन महीनेमें, मकान कुछ दूर नहीं, सवारी भेजूँ तो आतीं नही, जब जीमें आया, बुरका

हुसेन साहब कान्फरेंसमें शामिल होने-के लिए चले गये।

[५]

विष्णुदत्तजी किसी कामसे बाहर गये हुए थे, मैं ऊपरके कमरेमें बैठा कुछ लिख रहा था, इतनेमें मेरे कानमें आवाज पड़ी—

'बेटी मुन्नी, यहासे वह तश्तरी और गिलास क्या हुए।'

आवाज़ साफ उन्ही अम्माकी थी जो दो-तीन महीने पहिले आई थी, मैं आवाज पहचानकर फिर गैलरीमें जा खड़ा हुआ, आवाज फिर आई—

'बेटी मुन्नी, न तश्तरी मिलती है न गिलास, बता तो, वह हुए क्या, उन्हें तो यहाँसे कोई हटाता नहीं था।'

'बड़ी अम्मा, मैं ढूंढ लूगी, यही होंगे, जायेंगे कहाँ, जब तक आप कमरेमें बैठें।'

'बेटी तू कहाँ ढूंढेगी, तू उनको कैसे छू सकती है? आखिर उनको हटाया किसने?'

'आप कमरेमें बैठिये तो, मैं सब पता लगा लूगी।'

'इस घरमें आज तो यह नई बात हो रही है, आज तक तो कभी ऐसा हुआ नही कि उनकी जगह बदली गई हो। मालूम होता है, किसीसे गिरकर फूट गये हैं और नये मँगा लिये गये है।'

'नही अम्मा, न फूटे हैं, न नये मँगाये गये हैं।'

'तो फिर जगह क्या तब्दील हुई, बता तो, कहाँ रखे है, वहींसे ले आऊँ और फिर यहासे हटाये ही क्यों गये? कमरेकी सफेदी भी नहीं हुई मालूम होती।'

'क्यों हटाये गये, यह तो मैं नहीं जानती पर हटाये हैं खुद पिताजीने।'

'आखिर रखे कहाँ है?'

'आप कमरेमें बैठिये, पिताजी आते होंगे, वही सब बतायेंगे।'

'है आज यह नई बात, अच्छा बैठती हूँ।'

'लीजिये अम्मा, खाना लीजिये।'

'बेटी पहिले बरतन तो बता।'

'बड़ी अम्मा, बर्तन तो मिलते नही, इसी थालीमें खा लीजिए।'

'बेटी, तू समझती नही, तेरी नई उमर है, भला काँसेकी थाली कहीं मुसलमानोंको दी जाती है, जा, जा ढूँढकर मेरे बरतनोंका पता लगा।'

'नही, नही, बड़ी अम्मा—इसी थालीमें खा लीजिए।'

'बेटी, तू बड़ी भोली भाली है। ऐसा नहीं हुआ करता। तू समझती नहीं है, भला कहीं मुसलमानको काँसेकी थाली दी जाती है। बता न, बरतन कहाँ रखे है, तुझे नहीं मालूम तो अपनी अम्मासे पूछ।'

'मैं अम्मासे पूछकर ही थाली लाई हूँ।'

'तू अँगरेजी पढ़कर आलसी हो गई है और इसीलिए ज़िद करती है। धरम-करम समझती नहीं। ले, मैं ही तेरी अम्माके पास चलती हूँ।'

बड़ी अम्मा उठे उठें कि सुलोचना आ पहुँची और बोली—

'अम्माजी मैंने ही थाली भेजी है, आप इसीमें खा लीजिये।'

'बहू, तुझे हो क्या गया है। आज विष्णु घरपर नहीं है तो तू धरम-करमकी भी परवाह नहीं करेगी।'

'नहीं अम्माजी, अबतक आपके साथ अधरम-अकरमका व्यवहार हुआ, धरम-करम तो यही है, हम बच्चोंसे भूल हुई, माफ़ करना।'

'बेटी, इसमें भूलकी क्या बात,–तुम अगर मुझे इस थालीमें दोगी तो दस बुरा-भला कहेंगे——और इस थालीमें खाकर मेरा कुछ बनेगा नहीं। बहू, तुम ऐसी भूल न करो। मुझे मेरे बरतन बता दो, मैं उन्हींमें खाकर खुश हूँ।'

'अम्माजी, अब वह बरतन तो आपको न मिल सकेंगे। हम अपनी भूल जब जान गये तो कैसे दोहराएँ? हमें माफ़ कीजिए और इसी थालीमें खा लीजिए।'

आज विष्णु घरपर नहीं है तो न जाने तुमको क्या हो गया है। यह भूल, भूलकी बात कैसी और यह माफ़ करनेकी बात क्या? बेटी, रिवाज ही तो धरम होता है। रिवाज टूटा तो धरम टूटा।

'अम्माजी, आप कुछ भी कहें, काँचके बरतन तो अब आपको न मिलेंगे। उनको वही कहीं रख गये हैं।'

'अम्मा, मुझे मालूम है, तिजोरीमें रख गये हैं।'–बीचमें मुन्नी बोल उठी।

'या अल्लाह, आज मैं क्या सपना देख रही हूँ–विष्णु, और मेरे बरतन, और तिजोरीमें रखे जायँ। यह सब मामला क्या है?'

'अम्माजी, अब आप ज्यादा हठ न कीजिए, आपको वे बरतन न मिलेंगे। इसी थालीमें खा लीजिए।'

'मैं विष्णुकी गैरहाजिरीमें तुम [illegible] तुम्हारा धरम न [illegible] अच्छा, मैं इसी थालीमें खाके इसे अपने साथ घर ले जाऊँगी।'

'अच्छा यही सही, खाइये तो।'

वह खाना खाती रहीं और न जाने क्या सोचकर आँसू ढलकाती रहीं, खाना खाकर जैसे ही बाहर थाली रख हाथ-मुँह धोनेमें लगीं कि कनकलताने माँके इशारेपर जूठी थाली उठाई और झट माँजने लगी, यह देख बड़ी अम्मा हाथ मुँह धोना छोड़ उधर लपकीं, पर थाली कनकलताने उन्हें न दी। अब तो आँखोंमें आँसू भरे सुलोचनासे बोलीं कि 'बहू यह तूने किया क्या? आज तुझे हो क्या गया? विष्णु मुझे क्या कहेगा।'

'अम्माजी, आप कुछ भी फ़िकर न करें, वो कुछ नहीं कहेंगे। यह सब जानकर तो वह खुश होंगे। आपको नहीं मालूम, उन्होंने किस भक्तिके साथ आपके काँचके बरतनोंको तिजोरीमें रखा है। वह तो उन्हें पूजाकी चीज समझते हैं। मुझसे कहते थे, आज मैं हल्का हो गया, आप उनकी बिल्कुल फ़िकर न करें।'

'आज मैं जरूर सपना देख रही हूँ, तुम सब जितनी बातें कह रही हो यह सपनेकी हो सकती हैं, जागनेकी नहीं।'

बड़ी अम्मा, अपनी बात खतम न कर पाई थीं कि विष्णुदत्त आ पहुँचे। बस अब क्या था, बड़ी अम्मा बिफर गईं और बोलीं——

'देख तो विष्णु–ऐसा मालूम होता है, आज इन माँ-बेटियोंने भाँग पी ली।'

'क्या हुआ अम्मा, [illegible]'

'हुआ क्या, [illegible] गया

और उनके [illegible] गया

गड़-गड़कर वह रही है, और फिर मुझे ताँबेकी थालीमें खानेको मजबूर किया, मैंने यह सोचा कि मैं उस थाली-को घर ले जाऊँगी, मैं अभी हाथ ही धो रही थी कि मुन्नी मेरी झूठी थाली लेकर माँजने बैठ गई।'

'हैं, तो इस मुन्नीने धरम भी खो दिया।'

'मुन्नीने क्या, मुन्नीकी अम्माने खोआया।'

'हाँ अम्मा, ऐसा मालूम होता है, इन्होंने भाग पी रखी है, भला देख न, इन्होंने आज ये घर क्या टाला।'

'अच्छा अम्मा, यह सब छोड़ो। मुन्नी, लाओ वह थाली लाओ, अम्मा उसे अपने साथ ले जायँगी, पर खाली तो क्या ले जायँगी, उसमें एक आदमीका खाना परोसकर लाओ, खाने समेत थाली भेजना ठीक रहेगा।'

× × ×

'लीजिए बाबूजी यह थाली।'

'अरे एक कटोरी दही तो और लाओ।'

'ना क्या थालीके साथ एक कटोरी और जायगी।' बड़ी अम्मा बीचमें बोल उठीं।

'नहीं, यह मुरादाबादी गिलास भी जिसमें आपने पानी पिया है, थोड़ी देरमें दही आ गया और गिलास भरकर पानी आ गया—और विष्णुदत्तजी वहीं बैठकर उस थाली-का खाना खाने लगे।

'या अल्लाह, यह घरका घर पागल हो गया है।'

थोड़ी देरमें सुलोचनाने वह थाली, गिलास और वह कटोरी साफ कर दी और अम्माके सामने लाकर रख दिये और विष्णुदत्तजी बोले—

'लीजिए अम्मा, अब इन्हें ले जाइये।'

अब बुढ़ियासे न रहा गया, उसने विष्णुको खींचकर अपनी गोदमें बिठा लिया और बोली—

'अब इन्हें क्या ले जाऊँगी, अब तुझे ले जाऊँगी।'

× × ×

दूसरे दिन बड़ी अम्माके यहाँ घर भरकी दावत थी और मैं भी साथमें था।

× × ×

बड़ी अम्मा अब नहीं रही पर विष्णुदत्तजी जो भी उनके घर में नया आता है उसको वह काँचके बरतन दिखा देते हैं और उनकी कथा सुना देते हैं।



कलकत्तेका कार्तिक-महोत्सव

श्री भँवरलाल नाहटा

कलकत्तेका कार्तिक-महोत्सव—जैन रथयात्रा-उत्सव भारत-विख्यात वार्षिक पर्व है। इस मनोहर और प्रभावोत्पादक उत्सवको प्रत्येक दर्शक आजन्म नही भूल सकता। यों तो कलकत्तेमें आये दिन बंगाली, सिक्ख, मुस्लिम, हिन्दू व इतर समाजके नाना प्रकारके जुलूस निकलते ही रहते है, पर इसकी विशालता, व्यापकता और सुव्यवस्था अनूठी होनेके कारण कोई भी इसके समकक्ष नहीं आ सकते। श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय समाजका मिलकर लगभग एक मील लम्बा जुलूस हो जाता है। दर्शकोंको पहिलेसे प्रबन्ध न करनेपर बैठनेके लिए स्थान प्राप्त होना भी दुर्लभ हो जाता है। सड़कों पर उभय पक्षके जुलूसमें जनता जनार्दन नदीकी भाँति उमड़ पड़ती है और घण्टों तक निर्निमेष दृष्टिसे जुलूसका निरीक्षण करती रहती है। मकानोंकी छतें, बरामदे, प्रवेश-द्वार, गलियोंके मुहाने, गाड़ियोंकी छतें, वृक्षोंकी शाखाएँ और बिजलीके स्तम्भ भी दर्शकोंसे लदे प्रतीत होते हैं। श्री पार्श्वनाथ भगवान्के नामसे प्रसिद्धि-प्राप्त श्री धर्मनाथ स्वामीकी शोभा-यात्रा और राय बद्रीदास बहादुर द्वारा निर्मापित श्री शीतलनाथ जिनालयके कारण जैन धर्मको बंगालका बच्चा-बच्चा जानता है। बद्रीदासजीके बग़ीचेमें किसी भी समय जाकर देख लीजिये, दर्शकोंका मेला लगा हुआ मिलेगा, जिसमें बंगाली स्त्री-पुरुष व बच्चोंका ही आधिक्य रहता है। यहाँ जैन धर्म और अहिंसाके प्रचारका कार्य किया जाय तो सहज ही में अच्छी सफलता मिल सकती है।

कार्त्तिक-महोत्सवकी रथयात्रा भगवान्के विहारका प्रतीक है। जिस प्रकार भगवान्के आगे इन्द्रध्वज चलता हुआ शोभायमान होता था, उसी प्रकार सबसे आगे पंचवर्णी पताकाओं वाला इन्द्रध्वज सर्वधर्मसमन्वय एवं अनेकान्तवादका अमर पाठ पढ़ाता है। नाना प्रकारके वाद्ययन्त्र-देव-दुदुभ्यादि तथा विशालकाय श्वेत हाथी सौम्यता एवं बलका प्रतीक है। रजतमय नौबतखाना और उसके ऊपर घूमनेवाली पुत्तलिकाएँ नृत्य-नाटकादिका आभास कराती है। गत वर्षके इस नयनाभिराम दृश्यका कुछ अनुभव पाठकोंको कराया जा रहा है।

कच्छी जैन युवकों तथा बंगीय संभ्रान्त युवकोंकी कतिपय वाद्य मण्डलियाँ, अपने नाना प्रकारके

वादित्रोंमे ध्वनि प्रमाणितकर व्योम-मण्डलको गुञ्जायमान करती थी। टमाओंका निनाद निकटस्थ व्यक्ति की वाणीको भी सुननेमें वाधक होता हुआ सुदूर गगनमण्डलमें परिव्याप्त हो रहा था। जैन सभा, दिगम्बर जैन युवक मण्डल, जैन क्लब, श्वे० जैन मित्रमण्डल, कोचर मण्डली आदिकी टोलियाँ अपने सुमधुर कण्ठध्वनिसे भक्ति और उल्लास पूवक भजन गाती हुई दशकोंका ध्यान आकृष्ट कर रही थी। सजावटकी सामग्री भी बोधदायक एव भावपूर्ण थी। रजतमय पड्लेश्या-वृक्ष, शिविका, सिंहासन, दीपमन्दिर, कल्पवृक्ष, चतुर्दश महास्तम्भ, सुमेरुगिरि, लघुसमवशरण इत्यादि नाना अलकरणोंके पश्चात् धमनाथ स्वामीके समवशरणका दशन होता था। स्वण-रजतमय गुरुतर समवशरणको आठ भाग्यशाली पुरुष वहन कर रहे थे। जिस प्रकार प्रात स्मरणीय पूज्यपाद श्री भगवत अष्टकमलोपर पैर रखते हुए विचरते थे उसी प्रकार आठ भव्यात्माओंके वहन करनेका भाव ठीक भगवान्की विद्यमानताका भाव हृदयमें उत्पन्न कर देता था। समवशरणके उभयपक्षमें चामर, छत्र, किरणियादि वहन किये जा रहे थे। इतने लम्बे जुलूसकी व्यवस्था कायम रखनेके लिए झडियोंका प्रयोग सावधानतापूर्वक किया जाता था, जिससे मार्गमें सूनापन न दृष्टिगोचर हो। जुलूसमें सम्मिलित होनेवाले महानुभाव नगे पैर चल रहे थे। बाहरी भीडको भीतर आनेसे रोकनेके लिए डोरीके द्वारा कतारबद्ध मनुष्यों-की पक्ति उभयपक्षमें अपने कार्य सतर्कतापूवक करनेमें सलग्न थी। श्वेताम्बर समाजके बाद ही दिगम्बर भाइयोंकी रथयात्रा प्रारभ होती है। वे लोग रथपर भगवान्को विराजमान करते हैं एव उनके साज-समानोंमे भी काफी अभिवृद्धि हुई है अत दर्शनीय है। बाँसतल्लाकी भीडसे लगाकर वहाँ तक दोनोंकी सयुक्त अभिवर्द्धित लवाई रहती है जहाँ तक बेलगछिया दि० जैन मदिर व श्वे० दादाबाडीकी ओर जानेके मार्ग अलग न हो जायँ।

चातुर्मास धर्मध्यानका केन्द्र है। निरन्तर विहार करनेवाले मुनिराज भी एक स्थानपर वर्षाकाल व्यतीत करते हैं। अत गृहस्थोंके लिए भी धर्मोपदेशादि सामग्री सुलभ होकर धार्मिक प्रवृत्तियाँ साधन करनेका सविशेष अवसर उपलब्ध होता है। चातुर्मासका प्रारभ आपाढ शुक्ला १४-१५ को होकर मिति कार्तिक शुक्ला १५ को समाप्त होता है। भगवान् ऋषभदेवके पौत्र द्रविड वारि-खिल्ल मुनि तथा वहुसख्यक मुनिगण इस पुण्य दिवसमें तीर्थाधिराज सिद्धा-चलपर सिद्धगतिको प्राप्त हुए हैं। अत इस दिन पालीतानेमें एक बडा भारी मेला होता है जिसमें सहस्रों नर-नारी गिरिराज शत्रुजयकी यात्रा करनेके हेतु एकत्र होते हैं। वहाँ अत्यत उत्साह और समारोह-पूर्वक रथयात्रादि महोत्सव मनाये जाते हैं। भारतके अन्य सभी स्थानोपर भी जैन-सघ शत्रुजय तीर्थपर दर्शन-वदन-पर्व-व्याख्यान श्रवण-उपवास, रथयात्रा महोत्सवादि द्वारा सोत्साह पर्वाराधन

करता है। चातुर्मास कालमें निर्मित धर्मकार्यरूपी प्रासादके उपरिभागमें कलशारोपण रूप कार्त्तिक महोत्सव महापर्व प्रतिवर्ष विजय-वैजयन्ती फहराता हुआ जैनधर्मकी प्रभावनाको अत्यधिक प्रसारित करता है। प्रभावोत्पादक होनेके कारण दूसरे सभी धार्मिक कार्योंसे रथयात्राका प्रभाव विशिष्ट है। व्याख्यान-श्रवण, स्वाध्यायादि का सुयोग सबको नही मिल सकता पर रथयात्रा द्वारा जैनधर्मका बोध होना सहज है।

कार्तिक महोत्सव पर्व जनतामें सम्यक्त्वको निर्मल करने तथा भव्य प्राणियोंको सम्यक्त्व-प्राप्ति होनेका प्रमुख साधन है। जिन-प्रतिमाके आकारवाले मत्स्योंको देखकर मोह-विकल जलचर जन्तुओंके बोध पानेके प्रमाण शास्त्रोंमें विद्यमान है तब साक्षात् अर्हद्बिम्बके दर्शनसे वुद्धिशाली मानव आत्मबोध प्राप्त करें इसमें संशय ही क्या? बगालकी जनता भावुक है और वह वीतराग जिनेश्वरके दर्शन कर आत्मविभोर हो उठती है, वह भक्ति और तल्लीनतामें तो जैनोंसे भी दो क़दम आगे प्रतीत होती है अतः इस महोत्सवके द्वारा यदि एक भी प्राणी सम्यक् वोधकी प्राप्ति करे तो हमारे इस आयोजनकी सफलता ही समझनी चाहिए। कलकत्तेमे पचीस वर्ष पूर्व तथा पिछले साम्प्रदायिक दंगों के दिनोमें भी अन्य कार्योमे विघ्न होनेके बावजूद भी इस महापर्वका अत्यन्त शान्तिके साथ सम्पन्न होना देखा गया है। जैन जाति शान्तिप्रिय और अहिसा-प्रधान होनेके कारण उसे जनताकी सहानुभूति सदासे प्राप्त है। इतना होनेपर भी हम लोग इसके इतिहास से अपरिचित-से हैं, अतः गत वर्ष इस विषयमें कुछ अनुसन्धान किया गया जिसके फलस्वरूप जो ज्ञातव्य मिला, पाठकोंके परिज्ञानार्थ यहाँ दिया जा रहा है।

प्राचीनता और इतिहास—

श्री श्वेताम्वर जैन मन्दिरमें पुराने रेकार्ड अनुसन्धान करने पर संवत् १८८३ से आंकड़ा वही मिली, जिसमें कार्त्तिक महोत्सवजीकी सवारी का खरचा बाद जाकर बची हुई आमदनीका विवरण इस प्रकार मालूम होता है :—

संवत् १८८३ में १५७), सं० १८८४ मे १७७=), सं० १८८५ में २८५॥-)।, १८८६ में ४७६।॥-), सं० १८८७ में २०८।)॥, सं० १८८८ में ५१), सं० १८८९ में ३८१॥-)।,
सं० १८९० में ५१२।॥=)॥,
सं० १८९१ मे ११४८।॥≡)॥,
सं० १८९२ मे १२५२॥≡)॥,
सं० १८९३ में १६६१।॥)।
सं० १८९४ में १७८५।॥-)।॥,
सं० १८९५ में २३५०।-)।॥,
सं० १८९६ से सं० १९०७ तक १२ वर्षों में १७९६०।॥≡),
सं० १९०८ में १७९७=),
सं० १९०९ में १४६१॥),
सं० १९१० में २७६१।॥=)।॥,
सं० १९११ में १५११।),
सं० १९१२ में २०४३।-),
सं० १९१३ में ३१३५।≡)।॥

उपर्युक्त विवरणमें ३१ वर्षका हिसाव, कलकत्तेमें जैनोकी सख्यावृद्धि के अनुपातसे आमदनीका विकासक्रम उपस्थित करता है। साथ ही साथ यह प्रश्न तो उपस्थित ही रहता है कि इस महोत्सवका प्रारभ किस सवत् मे हुआ ? गत १२५ वर्षो से इस महोत्सव की सवारीके अविच्छिन्न रूपसे निकलनेके प्रमाण तो है ही पर इससे यह अनुमान होता है कि इससे दस-वारह वर्ष पूर्व ही महोत्सवका प्रारभ हो गया था क्योंकि स० १८६७ मिती आषाढ शुक्ल ९ को वगीचेमें दादासाहवके चरणोकी प्रतिष्ठा व स० १८७१ की माघ शुक्ला ६ को श्रीशान्तिनाथ जिनालय (वडा मदिर—तुलापट्टी) की प्रतिष्ठा हुई थी, इतपूर्व देहरासर रूपमें आदिनाथ जिनालय विद्यमान था। अत इन्ही सवतोंके वाद और स० १८८३ से पूर्वसे महोत्सवकी सवारी चालू है।

सवारीमें जो धर्मनाथ प्रभुका नयनाभिराम, भव्य-दर्शनीय समवशरण निकलता है, वह सवत १८८३ में हमल्टन कपनीको वनानेके लिए दिया गया था। स० १८९४ में वह वनकर आया और कुल ५२८२॥-)। अर्थ व्यय हुआ। इसमें ३५३९॥=) की चाँदी, १३२७।≡) मजूरी, ५४०) सोना-सुलमा, १००) काष्ठ-लोहा, १०६=)। छीजन, कुल ५६१३।≡) हुआ। जिसमें चादीका वटा ६।=) प्रतिशतका ३३१॥।=) वाद जाकर उपर्युक्त ५२८२॥-)। रहा जो पुराने खाता वहियोंसे प्रमाणित है। दिगम्बर भाइयोकी सवारी कवसे प्रारभ हुई इसका पता हमें अभी तक नही लगा।

कार्तिक महोत्सवका प्राचीन चित्र—

जैन समाजके अग्रगण्य सुप्रसिद्ध जौहरी स्वर्गीय राय वद्रीदास वहादुर के निर्मापित श्री शीतलनाथ जिनालय जिसका स० १९२३ में निर्माण हुआ था—की दीवालो पर कई जैन तीर्थ, जिन कल्याणक तथा कथा-साहित्यादि के सुन्दर और विशाल चित्र लगे हुए हैं, जिनकी सख्या ४० से न्यून नहीं है। इनका निर्माण स० १९२५ के आसपास होना सभावित है क्योकि इसी वर्षमें जयपुरके गणेश मुसव्वर (चित्रकार) ने वडे मन्दिरजीके विशाल चित्रोंको वनाया था, तभी रायसाहवने अपने जिनालयके लिए सुन्दर चित्र-समृद्धि तय्यार कराई होगी। इन चित्रोंमें एक चित्र श्री कार्तिक-महोत्सव जीकी रथयात्राका है जो ६२ इच लम्वा व १७ इच चौडा है। ८० वर्ष पूर्व यह जुलूस किस प्रकार निकलता था उसका इस चित्रमें अच्छा ऐतिहासिक निदर्शन है। पाठकोंकी जानकारीके लिए यहाँ इस चित्रका सक्षिप्त परिचय कराया जाता है।

इस लम्वे चित्रमें सवसे आगे लाल रगकी पोशाक व श्वेत टोपधारी दो व्यक्ति झण्डा लिये जा रहे हैं। इनके पीछे कई मनुष्यो द्वारा खिचा जाने वाला नौवतखाना है, जिसमें वैठे हुए चार व्यक्ति वादित्र वजा रहे हैं। इसके उभय पक्षमें श्वेत टोपधारी अश्वारोही चल रहे है। तत्पश्चात् लाल

शेरवानी तथा बटदार पगड़ीवाले चपरासी पताका धारण किये हुए मार्गके उभयपक्षमें चल रहे हैं। फिर छड़ीदारोंकी पंक्ति व तदनुगामी मार्गावरोधक यष्टिकावगाही पंक्ति चित्रके शेष तक चली गई है। रास्तेके मध्य में नौबतखानेके पश्चात् गगनस्पर्शी इन्द्रध्वज (महेन्द्रध्वज) चलता हुआ "जैनं जयति शासनम्" की दिव्य पताकाएँ फहरा रहा है, फिर इसीका अनुगामी लघु इन्द्रध्वज चल रहा है। पालकी, म्याना, सुखासन, कल्पवृक्ष, तीन छत्र-वंटियों वाली शिविकाके पास श्री महताबचन्दजी व बलदेवदासजी खड़े हैं। तत्पश्चात् बाजेवाले वादित्र बजाते चल रहे हैं। इनके उभयपक्ष मे दो अश्वारोही कुमार व दो कुमार काली बच्चागाड़ीमें बैठे हुए हैं। बाजेके पश्चात् जौहरी साथ, शहर वाली, मारवाड़ी तथा कच्छी पगड़ी धारण किये हुए श्रावक-समुदाय चल रहा है। सबसे अग्रगामी श्री मन्दिर जीके ट्रस्टीगण हैं, जिनके हाथोंमें स्वर्णमय छड़ी धारण की हुई है। इनमेंसे एक महाशयका नाम श्री भैरूँ दास जी व दूसरे सज्जन भगवानदास जी है। श्री मुरारजी तथा पाण्डे बालमुकन प्रभुके सन्मुख करबद्ध खड़े हैं। भगवान्‌के समवशरणजीको उठानेवाले श्रावकोंमें सर्वप्रथम बद्रीदासजी कल्लूमलजी तथा शिखरचन्दजी हैं। दूसरे श्रावकोंके नाम नही लिखे गये हैं। भगवंतके समवशरणके पाँच शिखर व कई स्तम्भ सुशोभित हैं। इस स्वर्णमय समवशरणके ऊपर फहरानेवाली ध्वजाएँ भी स्वर्णाभ हैं। समस्त दर्शकोंके आशाकेन्द्र श्री धर्मनाथ स्वामी समवशरणमें विराजमान हैं, जिनके मुकुट, कुण्डल, हार, बाजूबन्द श्रीफलादि अलंकार सुशोभित हैं। समवशरणके पृष्ठभागमें पंखा, किरणिया व छत्र हैं। तदुपरान्त लखनऊ गद्दी वाले खरतरगच्छाचार्य श्रीपूज्य जी श्री जिनकल्याण सूरिजी महाराज की दुर्बल किन्तु तेजस्वी देहके दर्शन होते हैं। सूरिजीके पीछे दो चामरधारी तथा आठ यतियोंका समुदाय है, दाहिनी ओर पीछे तक श्रावक-समुदाय परिवेष्टित है।

इस कार्त्तिक महोत्सवकी शोभायात्रामें सम्मिलित होनेवाले सभी महानुभावोके मुखमंडल आनन्दोल्लासपूर्ण एवं हृदय भक्तिसिक्त मालूम होते हैं। इन सबमें पांडे बालमुकन मोटे-ताजे हैं जिनके दूसरे नंबरमें श्री कल्लमलजी ही कहे जा सकते हैं। चित्रमें "इन्द्रध्वज" तथा श्रावकगण व आचार्य श्रीके चित्रपर नाम लिखा हुआ है। चित्रके उपरि भागमें निम्नलिखित शीर्षक है :—

"श्री धर्मनाथ स्वामीकी असवारी काती महोच्छव का"

इस चित्रमें श्री बद्रीदासजी, कल्लूमलजी, बलदेवदासजी, शिखरचंदजी, भैरुंदासजी व महताबचंदजीके नाम आये है। बद्रीदासजी (जन्म सं० १८८९ मौनैकादशी, स्वर्गवास सं० १९७४) का चित्र तरुणावस्था का है। कल्लूमलजी साहब श्री लाभचंदजी सेठके पितामह थे। भैरवदासजी जौहरी श्री महाराज बहादुर

सिंहजी टोंकके पूर्वज थे जिनका सं० १९३५ में स्वर्गवास हो चुका था। बद्रीदासजी, कन्हूमलजी, भैरवदासजी, मुन्नालालजी और वल्लभदासजी जौहरी सं० १९१७ में श्री बड़े मन्दिरजीके ट्रस्टी नियुक्त हो चुके थे अतः इस चित्रका निर्माण-काल (सं० १९१७-१९३५ के बीच) सवत् १९२५ के आस-पास अनुमानित है। क्योंकि श्री शीतलनाथ जिनालयकी प्रतिष्ठा वि० सं० १९२२ फा० सु० २ को श्री जिनकल्याण सूरिजीके करकमलोंसे सम्पन्न हुई थी, जो इस चित्रमें भी विद्यमान हैं। पाटे वाल मुकुन, पाटे बद्रीनारायण—जो वर्त्तमान पुजारी हैं—के फूफा थे।

कार्त्तिक महोत्सव जिस प्रकार जैन व जैनेतर समाजमें धर्मभावनाको बल देनेवाला है उसको अधिकाधिक साफल्य और स्थायित्व प्राप्त करनेके लिए जैन समाजके दिगम्बर व श्वेताम्बर उभय सम्प्रदायोंको मिलकर प्रचारके ठोस कार्यको हाथमें लेना चाहिए। श्वे० समाजकी सवारी मार्गशीर्ष कृष्णा २ व दिगम्बर समाजकी सवारी मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को वापिस इसी समारोहके साथ आती है। सवारीके साथ इन सात दिनोंमें और हमेशाके लिए यदि व्याख्यानों द्वारा फिल्म प्रदर्शन, ट्रैक्टोंके वितरणादि साधनों द्वारा बंगालियोंमें प्रचार किया जाय तो आशातीत लाभ मिल सकता है। भारतमें बंगाल प्रान्तमें ही अपेक्षाकृत हिंसा और पशुबलिका अधिक प्रचार है, वहाँकी जनता भी आमिषभोजी है, अतः ऐसे स्थानमें जहाँ कि जनता सुशिक्षित, भावुक और सुसंस्कारित हो धर्मका प्रचार करना सहज और परमावश्यक है।

बंगालके बड़े-बड़े विद्वान् यह चाहते हैं कि यहाँ जैनधर्मका प्रचार हो। वे जैन शास्त्रोंके निष्णात हैं और उनका सहयोग सर्वदा मिलेगा अतः उन लोगोंके भाषण करवाये जायँ, लेख व ट्रैक्ट लिखवाये जायँ, तथा कलकत्ता युनिवर्सिटीमें जैनधर्मके अध्ययन-अध्यापनकी व्यवस्था की जाय तो जैनधर्मके प्रचारमें बहुत बड़ी सहायता व प्रगति मिलेगी, अतः इस ओर समस्त जैन समाजका ध्यान आकर्षित किया जा रहा है। वीर शासन जयन्ती उत्सवके समय कलकत्तेमें जो दो-तीन लाखका दान घोषित किया गया था वह ऐसे कार्योंमें उपयोग किया जाय तो अधिक सार्थक होगा।





पुस्तकोंकी दो प्रतियाँ आने पर ही समालोचना होगी

जैनत्वकी झाँकी

लेखक—उपाध्याय पं० मुनि श्री अमरदत्तजी,

प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा

पृष्ठ सं० १५९ ● मूल्य राजसंस्करण १।), साधा० ।।।)

जैनत्वके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो अंशोको प्रस्तुत पुस्तिकामें जनसाधारणको आकर्षण करानेवाले ढंगसे प्रतिपादित किया गया है। विषय-प्रतिपादनकी शैली ऐसी अच्छी अपनाई गई है कि दुरूहता और शुष्कता तो पुस्तककी भाषामें फटक ही नहीं पाई है। पुस्तकका नाम चुननेमें भी आधुनिकताका वहुत अच्छा ध्यान रखा है। जैनधर्मके प्रचारके लिए ऐसे ढंगसे सजाकर रखे गये विचार अवश्य पाठकोंका हित करेंगे। सन्मति ज्ञानपीठ अपनी वढ़िया छपाई और गेटअपके कारण 'सत्यं' और 'शिवं'के साथ 'सुन्दरं'का समन्वय करा रहा है। ऐसे प्रकाशनके लिए धन्यवाद !

—गुलाबचन्द्र चौधरी एम० ए०

सप्तर्षिलोक

लेखक—श्री शोभाचन्द्र जोशी, बी० ए०

प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, वम्बई

पृष्ठसंख्या १४२ ★ मूल्य दो रुपये

प्रस्तुत पुस्तकमे—१ सप्तर्षिलोक, २ यमकी परम्परा, ३ कुम्भकर्णकी वात, ४ कर्मनासा, ५ सूतपुत्र, ६ शिखण्डीकी आत्मकथा, ७ अश्वत्थामा, ८ अहंकारका जन्म, ९ जनताका शत्रु, १० एकलव्य, ११ पतनके मार्गपर—पौराणिक आख्यानोके वहाने जोशीजीने रूढ़िवादियों, मजहवी दीवानों, शोषकों और युद्धाभिलाषियोंके गढ़ोंपर ऐसी गहरी चोटें की है कि दाद देनेको उपयुक्त शब्द नही मिल रहे हैं। शोषितों, पीड़ितों, पतितोंकी

आहें इतने कलापूर्ण और ममस्पर्शी ढगसे चित्रित की हैं कि मुँहसे वरवस वाह और आह निकल पडती है। यत्र-तत्र ऐसी अछूती कल्पनाएँ और सूक्तियाँ मिलती हैं, मानो किसीने फूल बखेर दिये हैं। हिन्दी-ग्रंथ-रत्नाकर नवीन और कीमती रत्नोंसे हिंदी भारतीका मुकुट मजानेमें प्रख्यात है। उसने अपनी परम्पराके अनुकूल ही जोशी-जैसे रत्नको खोज निकाला है।

स्वयम्भूस्तोत्र

रचयिता—श्रीमत्स्वामि समन्तभद्राचार्य

अनुवादक, परिचायक—प० जुगलकिशोर मुख्तार

प्रकाशक—वीर सेवा-मन्दिर, सरसावा सहारनपुर,

सजिल्द, पृष्ठसख्या २१६ ★ मूल्य दो रुपये

इस स्तोत्रमें चौवीस तीर्थंङ्करोंकी स्तुति करते हुए स्वामी समन्तभद्रने जैनागमका सार एव तत्त्वज्ञान गागरमें सागरकी तरह भर दिया है। और खूबी यह है कि जहाँ श्रद्धालु आत्मा स्तवन करते हुए भक्ति विभोर हो उठता है, वहाँ तत्त्वचिन्तवन करते हुए आत्मलीन हो जाता है। इस ग्रंथमें भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोगकी निर्मलधाराएँ इस कलापूर्ण ढगसे एकाकार हुई हैं, कि समन्तभद्राचार्यके बनाये इस सगममें जो एकबार डुबकी मार लेता है, कृतकृत्य हो जाता है।

स्तोत्रका अनुवाद भी मुख्तार साहबने आत्म-विभोर होकर किया है। एक-एक शब्दको सरल और सुन्दर ढगसे व्यक्त किया है। अनुवादके अतिरिक्त १०६ पृष्ठोंमें ग्रंथकी महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना और ग्रंथ-कर्ताका परिचय जिस खोज और अध्यवसायसे दिया है, वह ग्रंथके स्वाध्यायसे ही विदित हो सकता है।

युक्त्यनुशासन

रचयिता—श्रीमत्स्वामि समन्तभद्राचार्य

अनुवादक, परिचायक—प० जुगलकिशोर मुख्तार

प्रकाशक—वीर-सेवा-मन्दिर, सरसावा, सहारनपुर

सजिल्द, पृष्ठसख्या १४८ ★ मूल्य सवा रुपये

कहनेको इस ग्रंथमें स्वामी समन्तभद्राचार्य ने वीर प्रभुका स्तवन किया है। लेकिन वे किस धर्मके प्रवर्तक थे? कल्याणकारी मार्ग

क्या है, आत्महितैषी कौन हैं, वास्तविक सुख क्या है ? आदि विषयोंपर बहुत गहरेमें डूबकर चिन्तन किया है। मुख्तार साहबने इस अनुपम ग्रंथका अनुवाद बड़ी तन्मयतासे प्रस्तुत किया है और सर्वसाधारणके समझने योग्य बना दिया है।

—गोयलीय

'साथी' [मासिक]

सम्पादक—महेन्द्र 'राजा'

साथी कार्यालय, ३/२० भदैनी, बनारस

वार्षिक मूल्य २) * एक अंक ≡)

यह बालकोपयोगी मासिक पत्र गत ४ माससे प्रकाशित हो रहा है। अभी इसका चौथा अंक पाठकोंके सामने है।

इसमे उछल-कूद, हाहा-ठीठी आदि बालकोंके मनोरंजन सम्बन्धी दो-एक स्तम्भ तो बहुत ही उपयोगी है, किन्तु बालकोंकी नैतिक उन्नति किस प्रकार हो, किस प्रकार वे सदाचारपरायण तथा कर्तव्यनिष्ठ हों, स्वावलम्बी बन सकें इन सब विषयोंपर पूर्ण प्रकाश डालना चाहिए।

हर्षका विषय है कि यह साथी अब केवल स्कूली लड़कोंका ही नही, बल्कि कालेजके नवयुवकों तथा अन्य सभी वर्गका भी सच्चा साथी बननेकी ओर प्रयत्नशील है।

किसी भी समाज, देश या राष्ट्रकी भावी सम्पत्ति वहाँके बालक ही है। वे ही आगे चलकर समाज, देश या राष्ट्रका रूप धारण करते हैं। अतः इस दिशामें संचालक तथा सम्पादक दोनोंका प्रयास स्तुत्य है।

पत्रका गेट-अप, छपाई बहुत सुन्दर है। किन्तु इस अंकमें लेखसूचीका अभाव हमें खटकता है। यों पत्र सब प्रकारसे अच्छा तथा सस्ता है। सभी पुस्तकालयों, वाचनालयों, स्कूलों तथा कालेजोंमें अवश्य मँगाया जाना चाहिए।

—महादेव चतुर्वेदी



सम्पादकीय

इनकी जगह कौन लेगा ?

'आया है सो जायगा राजा, रंक, फकीर' यह भारतके सन्तकी वाणी है और जन्मके साथ मृत्युका जो अखण्डनीय रिश्ता है, उसपर प्रकाश डालती है। हर आदमी मरता है और यों आज जितने भी मनुष्य चलते-फिरते दिखाई देते हैं, वे सब कल मरेंगे, पर कमाल यह है कि इन सबके मरनेपर भी दुनियाकी चहल-पहल ज्यों-की-त्यों रहेगी।

बात यह है कि हम भी तो किन्हींकी जगहपर ही आकर खड़े हुए हैं और यों ही हमारी जगह भी दूसरे आकर खड़े हो जायेंगे—'*बगिया हरी रहेगी, साधो, बगिया हरी रहेगी।*' पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिताको जो खुशी होती है, उसका भीतरी अर्थ यही तो है कि उसकी बगियाको हरी रखनेवाला आ गया है और पुत्र न होनेपर—बन्ध्या माताके घरमें—जो शोक-सा छाया रहता है, उसका भीतरी अर्थ यही तो है कि इस बाग़में तो यही आखिरी बहार है—इसके बाद बस पतझड़ ही पतझड़।

सन्तानहीनके लिए बोल-चालकी भाषामें एक अभिव्यक्ति है—'ऊत-निगतिया।' इसका अर्थ होता है—जो पुत्रहीन सो गतिहीन, और गतिहीनका अर्थ है भविष्यहीन, जिनका वर्तमान तो है, पर भविष्य नहीं। सचमुच भविष्यहीनता जीवनका सबसे बड़ा अभिशाप है—'अन्त भला सो भला।'

क्या यह सच नहीं है ?

और क्या हम देख नहीं रहे हैं कि हमारी जाति, हमारा सम्पूर्ण देश 'ऊत-निगतिया' होता जा रहा है ? और क्या यह ऐसा प्रश्न है कि हम दूसरे प्रश्नोंमें इतने उलझे रहें कि इस प्रश्नपर विचार ही न कर पायें ? और क्या सामने आ रहे सिंहकी ओरसे हम अपनी आँखें मूँदे ही रहें, तो सर्वनाशसे बच जायेंगे ?

इन तीनों प्रश्नोंमें जो ध्वनि है, उसकी प्रतिध्वनि यही तो है कि आजका हमपर यह तकाज़ा है कि हम कलके बारेमें आज ही विचार करें। इस तकाज़ेकी तेज़ीको ठीक-ठीक समझनेके लिए यह ज़रूरी है कि हम थोड़ा आगे-पीछे देखें।

१८५७ से १९२१

१८५७ में भारतने अंगरेज़ोंकी गुलामीके विरुद्ध एक शानदार विप्लवकी रचना की। उस विप्लवके धक्केसे एक बार हमारे दुश्मन हिले और हिलकर सँभल गये। यह कुचलना शरीरका ही न था, मन और आत्माका भी था। सचाई यह है कि सन् सत्तावनके बाद हम परतन्त्र ही नहीं, दास हो गये और दास भी इस सीमा तक कि दासता हमारे लिए सहज हो गई। हाथोंमें हथियार नहीं, मनमें

बेचैनी नहीं, फिर मुक्तिकी सम्भावना भी कहाँ ?

कोई सम्भावना नहीं, पर १८५७ से १९२१ तक इस देशमें जो पीढ़ियाँ काम करती रहीं, उनमें एक-से-एक श्रेष्ठ मनुष्य पैदा हुए और उन्हींके प्रयत्नोंका फल है १५ अगस्त ! समाजमें, साहित्यमें, राजनीतिमें, नीतिमें, अध्यात्ममें; एक-से-बढ़कर एक मनुष्य हमारी जातिमें जन्मे, जिन्होंने हमारे राष्ट्रका मन ही नहीं उभारा, मान भी सँवारा ।

हम बौने हो गये ?

अचानक ऐसा लगता है कि श्रेष्ठ और शक्तिशाली मनुष्योंके जन्मकी यह परम्परा १९२१ में बन्द हो गई और हम धीरे-धीरे गुणोंकी दृष्टिसे इन २५-३० वर्षोंमें बौने हो गये !

अब हालत यह है कि हमारे बीचसे जो उठता है, वह अपनी जगह खाली छोड़ जाता है और हममें—हमारी नई पीढ़ीमें—जो उठता है, वह अपनी कोई जगह नहीं बना पाता : क्या यह स्थिति चिन्ताजनक नहीं है ?

इसका कारण ?

सचमुच यह स्थिति चिन्ताजनक है और हमें सबसे पहले इसके कारणोंपर विचार करना चाहिए। पिछले दो वर्षोंसे यह प्रश्न हमारे मानसको मथ रहा है और सम्पूर्ण राष्ट्रकी प्रगतिके इतिहासका सूक्ष्म सिहावलोकन करके हम जिस परिणामपर पहुँचे हैं, वह संक्षेपमें यह है—

१८५७ के विप्लवकी असफलताके वाद अँगरेज़ोंने देशकी प्रगतिपर क्रूर आक्रमण कर आतंक फैला दिया। आज भी वे वृक्ष जीवित हैं, जिनपर जाने कितने जवान लटका दिये गये । और यों देशके लिए खुलकर साँस लेना भी मुश्किल हो गया । इस दमघोटू वातावरणकी प्रतिक्रिया यह हुई कि राजनीतिसे दूर समाज-सुधार और समाजोद्धारकी भावना समाज-सेवाके विभिन्न रूपोंमें खिल उठी । आर्यसमाज, देवसमाज, ब्रह्म-समाज, सेवासमितियाँ, जातीय सभाएँ, महावीरदल, कन्यापाठशाला, दलितोद्धार सभा, गुरुकुलपद्धति, धर्मशालाएँ, धर्मार्थ औषधालय और इत्यादि-इत्यादि भिन्न-भिन्न स्वरूप उसी भावनाकी शाखाएँ थीं ।

समाज-सेवाके इसी आँगनमें वह शक्ति पनपी, जिसने इस देशकी सबल राजनीतिको जन्म दिया और जिसका सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व काग्रेस करती रही । गुलाम देशमें राजनीति सब भावनाओं पर छा जाती है । यह आवश्यक ही है, पर इसमें एक ख़तरा रहता है कि समाज-सेवाकी मूल प्रेरक भावना पर भी वह न छा जाये और इस तरह प्रगतिका मूल स्रोत ही बन्द हो पड़े ।

राजनैतिक महापुरुषोंमें केवल महात्मा गान्धीने इस ख़तरेको समझा और इसीलिए उन्होंने विलायती कपड़ोंकी होली जलाई, तो चरखेका पुनरुद्धार भी किया। ग़रज़ यह कि विध्वंस और विद्रोहकी पृष्ठभूमिमें वे रचनात्मक कार्यक्रमको साथ लिये रहे। दुर्भाग्यवश उनकी भावनाको उसी रूपमें देशवासी न अपना सके और ज्योंही शासनकी शक्तिसे उस

कामको विशाल रूपमें करनेका समय आया वे उठ गये।

परिणाम स्पष्ट है कि समाज-सेवाका आन्दोलन आज मूर्छित है, मरा-सा ही गया है और उसका फल भी हमारे सामने है कि हमारी पीढ़ी निर्जीव हो रही है।

हम क्या करें?

कारणको जानकर कार्यका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है कि आज देशमें राजनीतिक कार्यके साथ एक सबल, संगठित नैतिक-सांस्कृतिक-सामाजिक आन्दोलनकी आवश्यकता है। आन्दोलन जो हमारी भावनाको जगा दे कि हम अपने हाथों कुछ करें।

राष्ट्रिय स्वयंसेवक संघका आरंभ बहुत शानदार था। उसने नई पीढ़ी की नसको छूआ था, पर वह भी राजनीतिमें भटक गया। करपात्रीजी महाराजके पीछे तपकी शक्ति थी, पर वे भी राजनीतिमें बह आये, गोस्वामी गणेशदत्तजीका बहुत भारी योग प्रगतिको मिला, पर देशके विभाजनसे उनकी शक्तिके टुकड़े हो गये और अपने नेतृत्वकी रक्षाके लिए अब वे एक पैर कांग्रेसकी नावमें रखते हैं, तो दूसरा संघकी। हिन्दू-महासभाने गांधीजीके निधनके बाद अपनेको राजनीतिसे हटाकर समाज-रचनामें लगानेका निश्चय किया था, पर डा० खरेने उसे वहां टिकने न दिया। आर्य-समाजकी ताकत आज भी पाठशालाओंमें उलझी पड़ी है। नगरोंकी सेवासमितियाँ जाने कहाँ गईं, कांग्रेस सेवादल अब एक साइनबोर्ड है और इस तरह नई पीढ़ीको स्पन्दन देनेवाली मूलभावना सोई पड़ी है।

राजनीतिका राक्षस!

तभी तो कहा गया था कि राजनीतिका राक्षस आज देशके ऊपर सवार है और इस बुरी तरह कि देश कुचला जा रहा है। राज्योंकी सरकारोंका कर्तव्य है कि वे हज़ार काम रोककर सेवासमिति और स्काउट आन्दोलनको चहुँमुखी प्रगति इस तरह दें कि स्कूलका हर बालक और नगर का हर कोना उसका जीवित स्पर्श पाये। नगरमें सेवा-संस्थाओंका पुनर्जागरण होना चाहिए। क्लबोंमें कभी अँगरेज़ियतका राज्य था। अँगरेज़ोंके जानेपर वे मसियाघर हो गये हैं। उनका भारतीयकरण करके उनमें नये जीवनकी सृष्टि होनी चाहिए। नगर-नगरमें जीवन-सुधार सभायें बनें और वे कभी केलेके छिलके उठानेका दिन मनायें, तो कभी नालियोंकी सफाईका। समाजमें अब लोकलाजका महत्त्व ही नहीं रहा और न सबल प्रतिवाद ही। कुछ शहरोंमें तो अब गन्दे सिनेमाओंपर पिकेटिंग लगना ही चाहिए। नौजवानोंकी ऐसी टोलियाँ बननेका भी अब समय आ गया है, जो जहाँ भी गन्दे रिकार्ड बजते देखें, अड़ जायें और उन्हें बन्द कराके ही आगे बढ़ें। त्योहारोंका नया संस्करण, मेलोंका नया रूप अब सामने आना चाहिए। अच्छे कविसम्मेलन होने चाहिए। नृत्यगानके अच्छे प्रदर्शन भी। हर भलाईका समर्थन, हर बुराईका मर्दन हम करें, यह भावना अब जागनी चाहिए, और हमारे

जीवनमें दूरसे ही एक नई ताज़गी दिखाई देनी चाहिए।

छोटे-छोटे नेता !

देशके नेता देशका काम कर रहे है और विश्वके नेता विश्वका। आज हर नगर, हर गाँव और हर गलीको ऐसे नेताओंकी जरूरत है, जो अपने छोटे-से क्षेत्रको नया जीवन दे सकें।

ऐसे नेता सब जगह हैं, वे या तो सो रहे हैं, या राजनीतिके राक्षसी चक्कर में पड़ गये है। वे अपनेको पहचानें, अपने स्थानको पहचानें और उठ खड़े हों। उनके उठनेसे उनका ही जीवन आनन्दमय न होगा, उनके आस-पासका वातावरण भी आनन्दमय हो उठेगा।

'ज्ञानोदय' उन उठते नेताओंका पेशगी अभिनन्दन करता है।

—प्रभाकर

भारतीय स्थिति

भारतके वेर और फूट दो प्रसिद्ध मेवे हैं। इन्हीकी वदौलत भारतको अनेक दुर्दिन देखने पड़े है। धार्मिक संकीर्णता, अनुदारता, प्रान्तीयता और जातिमदको परतन्त्रताका अभिशाप समझा जाता था। लोगोंका विचार था कि जिस रोज परतन्त्रता-राक्षसीका जनाजा निकलेगा, ये दूषित विचार स्वयं उसके साथ दफ़न हो जायँगे, परन्तु यह धारणा स्वप्नकी तरह क्षणभरको भी मधुर न हो सकी—

"वही रफ़्तार बेढंगी
जो पहले थी सो अब भी है।"

स्वतन्त्र होनेके वाद देश-विभाजनके फलस्वरूप जो नर-मेध यज्ञ, सीता-हरण और लंका-दहन-काण्ड हुए है, उनपर वर्द्धमान-कालीन यज्ञोके पराजित पुरोहित, रावण और दुर्योधन, राक्षस और हलाकू-चॅगेज, तैमूर-नादिरशाह, डायर-ओडायरके प्रेत ठहाका मारकर हँस रहे है। दरिन्दे जानवर अपनेको भुनगा समझने लगे हैं, गधे हमारी करतूतोपर मुस्करा रहे हैं और चील-कौओ, शृगाल और गीधोंको इस वातका अभिमान है कि वे मनुष्य नही है।

भारतकी इस दयनीय स्थितिको संक्रमण काल समझकर लोग धैर्य रखे हुए थे कि सम्भवतः स्वतन्त्रता के बाद ऐसा होना आवश्यक था, किन्तु यह संक्रमणकाल तो भारतको संक्रामक कीटाणुओकी तरह नष्टप्राय किये दे रहा है। भारतकी यह नाजुक हालत देखकर देशके कर्णधारोके मुँहसे वर्वस निकल पड़ा है—"यदि भारतकी यही स्थिति रही तो वह अपनी स्वतन्त्रताको खो वैठेगा।"

जो कुसंस्कार और कुविचार परतन्त्रताकी विषैली वायुसे मॉद-से दीख पड़ने लगे थे, वे ही स्वच्छन्दताके झोकेसे प्रज्वलित हो उठे है। प्रान्तीय स्वतन्त्रता मिल जानेसे प्रत्येक प्रान्तवाल स्वच्छन्द और उन्मत्त हो उठे है मानो वन्दरोके हाथमें डण्डे देकर उनके समक्ष गुड़की भेली डाल दी गई है, जो गुड़का उपभोग न करके एक-दूसरेको मार भगानेमें व्यस्त हैं।

प्रत्येक प्रान्तवाले अपने-अपने प्रान्त में नौकरी, व्यापार, उद्योग-धन्धे और राजकीय सुविधाएँ सब अपने प्रान्त-वालोंके लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। अभारतीयसे अधिक अब अन्य-प्रान्तीय विदेशी समझा जाने लगा है और तारीफ यह है कि इस प्रान्तीय रोगसे ग्रसित प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रान्तके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंमें भी अपने प्रान्तवालोंके लिए पूरी सुविधा चाहता है। भारतवासी होनेके नाते ये लोग भारतके हर कोनेमें व्यापार, उद्योग-धन्धे, नौकरियों आदिमें समान अधिकार चाहते हैं, किन्तु अपने प्रान्त-में अन्य प्रान्तवासीको फूटी आँखसे भी देखना नहीं चाहते। "जब तुम हमारे घर आओगे तो क्या लाओगे ? और जब हम तुम्हारे यहाँ आएँगे तो क्या दोगे ?" किसी कंजूसका कहा हुआ यह वाक्य इस समय शत-प्रतिशत चरितार्थ हो रहा है। "बंगाल बंगा-लियोंका है, ये मारवाड़ी यहूदी हैं, पंजाबी उद्दण्ड और झगड़ालू हैं" यह धारणा नगरवासियोंमें बैठाई जा रही है। बिहारमें बिहारी, बंगाली, उड़िया का लेकर संघर्ष चलने लगे हैं। महाराष्ट्रीय, गुजराती, पारसी, मद्रासी सभी प्रान्तीयता और जातीयताके कूपसे निकले ही नहीं। सी० पी०, यू० पी० और दिल्ली प्रान्त इस छूतकी बीमारीसे अछूते थे, किन्तु जबसे पाकिस्तानी हिन्दुओंका प्रवेश हुआ है, तबसे उनके संक्रामक कीटाणु इनमें भी प्रवेश करते जा रहे हैं। यदि शीघ्र इस बीमारीका उपचार न हुआ तो भारत-जैसा विशाल देश यूरप, इँगलैण्ट, फ्रान्स, बेलजियम, स्वीडन, डेनमार्क, हालेण्ड, जर्मन आदि की तरह छोटे-छोटे क्षेत्रोंमें विभाजित हो जायगा।

जाति-मदका अब यह हाल है कि अब यह चतुर्वर्णोंमें सीमित न रहकर हजारों शाखा-उपशाखाओंमें फूट निकला है। ये चतुर्वर्ण एक दूसरेसे ही लड़ते थे, अब परस्परमें भी ताल ठोकने लगे हैं। देशके चुनावों-के संघर्ष-समाचार हमारे सामने हैं। अब केवल चार वर्णोंमें ही संघर्ष नहीं रहा, अपितु चौबे-पाण्डे, मिश्र-द्विवेदी, गहलोत-राठौड़, चौहान-कछ-वाहे, जाट-अहीर, गूजर-माली, अग्र-वाल-ओसवाल, माहेश्वरी-खण्डेलवाल, श्रीवास्तव-सक्सेना, सुनार-लुहार, धोबी तेली, चमार-भंगी आदि हजारों उप-जातियोंको लेकर संघर्ष होने लगे हैं। भील-कोल, द्राविड़-आदिवासी और अछूत-समस्या अभी हल हो नहीं पा रही है कि यह जाति-मदका विषधर और फन फैलाकर खड़ा हो गया है। मोहन (गान्धी) की अनु-पस्थितिमें इस कालीदहमें कूदकर कौन कालिनागको विष-रहित करे, यह सूझ नहीं पड़ रहा है। यदि शीघ्र इसका विष हरण नहीं किया गया तो सारे भारतमें यह विष फैलते देर नहीं लगेगी।

साम्प्रदायिक और धार्मिक उन्माद महात्माजीके बलिदानसे खुमारी लेते नजर आ रहे हैं, पर बरसाती हवा पाते ही यह उन्माद यदि फिर उठ खड़ा हुआ तो फिर यह राक्षस, रामके मारे भी नहीं मरेगा।

इसके अतिरिक्त भारतमें पाकि-

स्तानी अंकुर धीरे-धीरे बढ़ ही रहा है। काश्मीरकी समस्या भयावह बनी हुई है। कम्यूनिस्ट घुनके कीड़ोंकी तरह भारतको जर्जरित कर ही रहे हैं। भ्रष्टाचार और घूसखोरीका यह हाल है कि मालूम होता है हम भारतमें न रहकर ठगो-चोरोंके मुल्कमें बस गये है।

अब देश-सेवा आत्मशुद्धिका साधन न रहकर स्वार्थ और व्यक्तिगत महत्त्वाकाक्षाओंकी साधक बन गई है। वे दिन हवा हुए जब देशके लिए त्याग करना और कष्ट सहना नैतिक कर्तव्य समझा जाता था और देशभक्त कहलाना आत्म-प्रतिष्ठाका द्योतक था। अब तो यह अपनी मनोभिलषित इच्छाओंकी पूर्तिका अमोघ उपाय बन गया है। स्वतंत्रताके बाद तप-त्यागकी आवश्यकता नही रही, अतः बड़े-बड़े देश-द्रोही भी अब अपनेको देशभक्त बेझिझक कहते हैं। जो अधिकारी गांधी कैपको देखकर भड़क उठते थे, वे अब गांधीजीके चित्रकी पूजा करते है। जिन अधिकारियोंने देश-भक्तोको फाँसीपर लटका दिया, गोलियोंसे भून दिया, जेलोंमे सड़ा-सड़ाकर मार डाला, वे भी आज देशभक्तिका जामा पहनकर बड़ी शानसे निकलते है।

देश-सेवक जूझते रहे, भूखों मरते रहे, उनके बच्चे बिलखते रहे, औरतें सिसकती रहीं और जो ठाटसे नौकरी करते रहे, क्लबोंमें पीते-नाचते रहे, खजाने भरते रहे, वे ही आज हमको कर्तव्यका बोध करानेमे गर्वका अनुभव कर रहे हैं। मालूम होता है सारी भूखी बिल्लियाँ भगतिन बन गई है। हम उन सज्जनोंको भी जानते है जो युद्धमें अंग्रेजोंकी सहायता करते रहे। जर्मनी-विजयकी खुशी भी बड़े ठाटसे मनानेमें पेश-पेश रहे। वे ही हवाका रुख बदलते ही आजाद-हिन्द फ़ौजकी सहायताको झोली लेकर निकल पड़े और अपने दुधमुँहे बच्चोंको इनक़लाब जिन्दाबाद और पूँजीवाद मुर्दाबादके नारे लगाते देख फूल उठते हैं। क्योकि वे जानते है कि अब इसमें जानको जोखिममे डालनेका प्रभाव न रहकर जानको मुटियानेका असर आ गया है।

अब देशभक्ति राजनीतिक अधिकारियोंकी स्थली बन गई है। चर्खादंगली, कांग्रेसी, सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट आदि इस अखाड़ेमें लंगर बाँधकर उतरे हुए है। भारतका हित किसमें है, इतना सोचनेका इन्हें अवकाश कहाँ? अपनी पार्टीका हित किसमें है और विरोधी पक्ष किस दाँवपर पछाड़ा जाय, यही चिन्ता इन्हें हरवक़्त बनी रहती हैं। गनीमत है कि १००-५० खरे देशरत्न अभी जीवित हैं और उनके हाथमे शासनकी बागडोर है, वे मन-वचन-कायसे भारतकी स्थिति सुधारनेमे अहर्निश प्रयत्न कर रहे हैं और प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता आदिकी जड़ोंमे भी मट्ठा दे रहे है। फिर भी जब तक हम सभी भारत-पुत्र अपने कर्तव्यको न समझें और उस ओर प्रयत्नशील न हों तब तक कैसे हमारे देशकी उन्नति हो सकेगी?

जैनसमाजका कर्तव्य—

अतः अब जैनसमाजका कर्तव्य हो जाता है कि वह स्वार्थसाधन करनेवाली देशभक्तिसे बचे, राजनीतिक दलदलसे दूर रहे और सही अर्थोंमें भारतीय सपूत बने।

(१) किसी भी जैनको म्युनिस्पल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, कौन्सिलों और व्यवस्थापक सभाके लिए स्वतन्त्र उम्मीदवारके नाते कभी भी खड़ा नहीं होना चाहिए। स्वतन्त्र खड़े होनेमें साम्प्रदायिक उत्पातकी हर समय सम्भावना है। अतः किसी भी व्यक्तिको यह अधिकार नहीं है कि वह व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओंके लिए समूची समाजको खतरेमें डाल दे। यदि कोई स्वार्थी ऐसा करनेका दुःसाहस करे भी तो समाजको उसका साथ हर्गिज नहीं देना चाहिए। चुनाव निर्वाचनकी उम्मीदवारीके लिए उसी व्यक्तिको खड़ा होना चाहिए और उसीका हमें समर्थन करना चाहिए, जिसको उसके त्याग, बलिदान या योग्यताके बलपर देशके अधिकारीवर्गने खड़ा किया हो। जिस कार्यमें देशकी भलाई हो, बहुसंख्यक जनता जिस वर्गके कार्यको चाहे, उसे निःसंकोच समझे, हमें उसी वर्गकी और हितैषी योजनाओंमें भाग लेना चाहिए। व्यर्थके राजनीतिक दलदलमें नहीं फँसना चाहिए। यह वह दलदल है कि एक बार भी भूलसे फँस जानेपर फिर कभी उद्धार नहीं।

अतः हमारी समाजका कर्तव्य है कि अब वह अपनी संस्कृति और योग्यतासे प्रसार करे। और यह प्रसार तभी हो सकता है जब हम जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंको अपने जीवनमें उतारें।

(२) हमारे देशमें अब मांस-मदिराका प्रसार उत्तरोत्तर बड़े वेगसे बढ़ता जा रहा है। दिन-पर-दिन इस तरहके रेस्टोरेण्ट और होटल बड़ी संख्यामें खुलते जा रहे हैं। दिल्लीके जिस चाँदनी चौकमें मुसलमानी सल्तनतमें भी कभी मांस नहीं बिका, वहाँ अब हर १० गजकी दूरीपर कबाब और गोश्त-रोटी बिकने लगे हैं। अण्डोंका प्रचार होता जा रहा है। हमारी नई दिल्ली भी इस दूषित खान-पानसे प्रभावित हो रही है। क्लबोंमें सभ्य सोसायटीके नामपर शराब और जूआ जरूरी हो गया है। सिनेमाओंके हुस्नोइश्कके गानोंमें अश्लीलता-निर्लज्जताका जो पाठ हमारे बालक-बालिकाएँ जवानीकी चौखटपर पाँव रखनेसे पहले पढ़ लेते हैं, उससे हमारी नस्लोंमें घुन लगने लगा है। अब समय आ गया है कि श्वेताम्बर-जैन-साधु आश्रमोंसे निकल आयें। गली-गली, कूचे-कूचेमें सभाएँ करके मांस-मदिराका आम जनतासे त्याग करायें। मद्य-मांस-निषेधिनी सभा स्थापित करके—सिनेमा और समाचारपत्रोंके विज्ञापनों द्वारा, पोस्टरों द्वारा, छोटे-छोटे ट्रैक्टों और व्याख्यानों द्वारा इस बढ़ती प्रथाको रोकें। हमारे जिन पूर्वजोंने यज्ञ-याज्ञादि और उच्च वर्णोंमें हिंसा सर्वथा त्याज्य करा दी थी, निम्न श्रेणीके भी बहुत कम उसका प्रयोग करते थे। आज उनके हम

वंशज उनके किये हुए अनथक कार्यपर पानी फिरते देख रहे है और हाथ-पर हाथ बाँधे चुपचाप बैठे है। कही-कही वेश्यानृत्य भी चालू हो गये हैं। हमें चाहिए तो यह था कि हम पूर्वजोके कार्यको आगे बढ़ाते। इनका समूचे भारतमे विरोध करके हम यूरुप और इस्लामी देशोंमें पहुँचते और कहाँ हम अपनी आँखोके समक्ष इस धर्म-घाती भावनाको उत्तरोत्तर बढ़ती हुई देख रहे हैं।

भारतीय पूर्ण शक्तिशाली और बलवान् हों, अहिसक हों, उनके हृदय-में दूसरोके प्रति दया-ममता हो। वह महावीरकी तरह पशु-पक्षियोंके पीड़ित होनेपर दयार्द्र हो उठें, पतित-से-पतितको भी ईसाकी तरह उबार सके।

(३) हमारी वाणीमे जादू हो, हमारी वाणीसे जो भी वाक्य निकले उसका कुछ क़ीमती अर्थ हो। लोग हमारी बातको निरर्थक न समझकर मूल्यवान् समझें। जनताको यह विश्वास हो कि प्रत्येक जैन अपनी बातका धनी होता है। जो वायदा करता है उसे जानपर खेलकर भी पूरा करता है। सूर्य-चन्द्रकी गति बदल सकती है, परन्तु इनकी बात नही बदल सकती। जान-से क़ीमती वचनको समझते है।

(४) जैनोसे कभी धोखेकी संभा-वना नही, जो वस्तु देंगे, खरी और पूरी देगे। इनसे बिन गिने रुपये लेनेपर भी पाईका फ़र्क़ नही पड़ेगा। इनका टिकट चेक करना, चुंगीपर पूछना वर्जित है। जैन कह देनेका ही यह अर्थ होना चाहिए कि जैन राजकीय नियमके विरुद्ध कोई वस्तु नहीं रखते और न राजकीय या प्रजाहितके साधनोंका दुरुपयोग ही करते है। यह मिट्टी और पानी भी पूछकर लेते है।

(५) हमारा शील-स्वभाव ऐसा हो कि निर्जन स्थानमें भी किसी अबलाको हमारे प्रति सन्देह न हो। वह अपने निकट हमारी उपस्थिति रक्षककी भाँति समझे। जैन भी बला-त्कारी या कुशील हो सकता है, यह उसके मनमें कल्पना ही न हो।

(६) परिग्रहवादको लेकर आज सारा संसार त्रस्त है। इस आपा-धापीके कारण ही युद्ध होते है, जीवनो-पयोगी वस्तुओंपर कण्ट्रोल लगाते है। मजदूर-पूँजीपति संघर्ष चलते है। अतः हमे अपने जीवनमें 'जीयो और जीने दो' का सिद्धान्त उतारना होगा। पैसा इकट्ठा करना पाप नही, उसके बलपर शोषण करना—अत्याचार ढाना पाप है। परिग्रहके सम्बन्धमे भी हमें अपने पूर्वजोकी त्यागवृत्ति, सन्तोष और परि-माणवृत्ति फिरसे अपनानी होगी।

जब हम इस तरहके आत्म-शुद्धि के कार्य अपने जीवनमें उतारेंगे, तभी हमारा यह लोक और परलोक सुध-रेगा। और तभी सच्चे अर्थोमें जैन-धर्मका प्रसार होगा और संसार इसकी ओर आकर्षित होगा।

उक्त विचार आज शायद कुछ नवीन और अटपटे-से प्रतीत होते हों, परन्तु हमारे धर्मकी भित्ति ही इन ईंटोंपर खड़ी की गई है। अगर जैनधर्मको जीवित रखना है तो उसकी

इन नींवकी ईंटोंको हरगिज-हरगिज नही हिलने देना होगा।

हम भारतके आदि-निवासी हैं। भारत हमारा है। हमारा हर प्रयत्न, हर श्वास इसके लिए उपयोगी हो। हमसे स्वप्नमें भी इसका अहित न हो। इसके लिए हमें सदैव जागरूक रहना होगा। आज स्वार्थके लिए धन-लोलुप पाकिस्तानी क्षेत्रोंमें अपने देश-भाइयोंका गला काटकर कपड़ा और अन्न भेज रहे हैं और अनेक षड्यन्त्रोंमें लिप्त हो रहे हैं। ऐसे अधम कार्योंसे—मनुष्योंसे—हमें दूर रहना होगा। हम अपने अच्छे कार्योंसे जैन-समाजकी कीर्ति यदि न बढा सकें तो हमें पूर्वजोंके किये हुए सत्कार्योंपर पानी फेरनेका कोई अधिकार नहीं है।

—गोयलीय

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

नारायण प्रसाद जैन

आज (काशी)–

इस पुस्तकमें सभी विषयोंपर सभी देशों और सभी युगोंके महापुरुषोंके अनमोल वचनोंका संग्रह किया गया है। ये वचन मनुष्यके भटकते हुए क्षणोंमें आकाशवाणीकी तरह उसका पथ-प्रदर्शन करते है संग्रहकी विशालता और विविधतासे संकलयिताके विशद अध्ययन और भगीरथ प्रयासका परिचय मिलता है। ज्ञानगंगा जिस घरमे पहुँचेगी वही "मनचंगा और कठौतीमें गंगा" सुलभ हो जायगी।

सुरुचिपूर्ण मुद्रण : कपड़ेकी जिल्द
तिरंगा कवर : पृष्ठ सं० ७७२

मूल्य छः रुपये

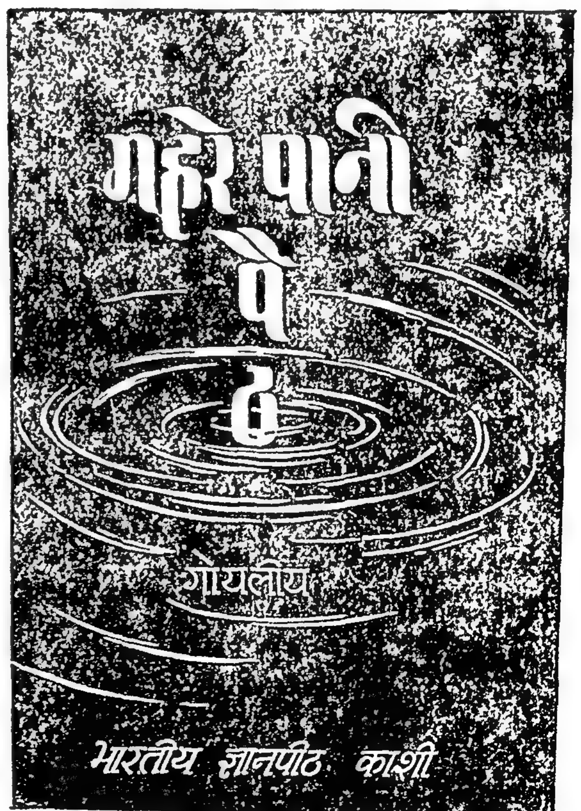
[अप्रैल १९५१ में प्रकाशित]

सम्मेलन पत्रिका–

इस संग्रहकी कहानियाँ पाठकको जीवनके हर पहलू पर सोचने और कार्यक्षेत्रमें फूँक-फूँककर क़दम रखनेके लिए वाध्य करती है।

लेखककी भाषाशैलीमे जहाँ कोमलता, सरलता और साधुता है वहीं एक अद्भुत तड़प और अन्तर्मुखी क्रान्ति भी है। जीवनकी वह छोटी-मोटी घटनाएँ जिन्हे हम प्रायः उपेक्षित समझते है इन कहानियोंके द्वारा हमें सजग और सचेत बनाती हुई, नई योजना, नई गति और नई राहकी ओर वरवस खीचती है।

मूल्य ढाई रुपये



भारतीय ज्ञानपीठ काशीके प्रमुख पुस्तक विक्रेता

अजमेर—व्यवस्थापक, गौतम-पुस्तक-भंडार, जयपुररोड, अजमेर।

उदयपुर—व्यवस्थापक, हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर।

इन्दौर—व्यवस्थापक, नवयुग-साहित्य-सदन, खजूरीबाजार, इन्दौर।

व्यवस्थापक, तुलसी-साहित्य-सदन, २ नसियारोड, इन्दौर।

जोधपुर—व्यवस्थापक, भारतीय-पुस्तक-भवन, ४२ जसवन्त सराय, जोधपुर।

जयपुर—व्यवस्थापक, वाणी मंदिर, चौडारास्ता, जयपुर।

व्यवस्थापक, वीर-पुस्तक मंदिर, मनिहारोंका रास्ता, जयपुर।

लश्कर (ग्वालियर)—व्यवस्थापक, किताबघर, जिन्सीपुल, लश्कर।

श्री महावीरजी (जयपुर)—पं० मंगलसेनजी जैन 'विशारद' श्री महावीरजी।

व्यवस्थापक, वीर-पुस्तक-मंदिर, श्री महावीरजी।

दिल्ली—व्यवस्थापक, आत्माराम ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

व्यवस्थापक, इण्डियन पब्लिशिंग हाउस, नई सडक, दिल्ली।

व्यवस्थापक, शारदा-मंदिर लि०, नई सडक, दिल्ली।

,, राजकमल प्रकाशन, १ फैज बाजार, दिल्ली।

व्यवस्थापक, दिगम्बर-जैन परिषद् पब्लिशिंग-हाउस, बडा दरीबा, दिल्ली।

आगरा—व्यवस्थापक, साहित्यरत्न भंडार, ४ महात्मा गांधी मार्ग, आगरा।

,, सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा।

व्यवस्थापक, श्री जैन-कुमार परिषद्, जैनभवन, लोहामंडी, आगरा।

कानपुर—व्यवस्थापक, साहित्य-निकेतन, श्रद्धानंदपार्क, कानपुर।

इलाहाबाद—व्यवस्थापक, हिन्दी-प्रकाशन-मंदिर, जीरोरोड इलाहाबाद।

व्यवस्थापक, सेंट्रल बुकडिपो, जीरोरोड, इलाहाबाद।

,, नीलाभ प्रकाशन, ५ खुसरो रोड, इलाहाबाद।

,, वी० एल० भटनागर, चौक ,,

बनारस—व्यवस्थापक, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी चौक बनारस।
„ ज्ञान मंडल पुस्तक भंडार „ „
„ कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स „ „
„ पुस्तक-भवन „ „

लखनऊ—व्यवस्थापक, सस्ता साहित्य-भंडार, अमीनुद्दौलापार्क, लखनऊ।

गोरखपुर—व्यवस्थापक, नया किताब घर, बैंकरोड, गोरखपुर।

पटना—व्यवस्थापक, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बाँकीपुर, पटना।
„ राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, मछुवा टोली, पटना।
„ सरस्वती सदन, बाँकीपुर, पटना।

भागलपुर—व्यवस्थापक, पुस्तक-मंदिर, कालिफबाग, भागलपुर।

जबलपुर—व्यवस्थापक, सुषमा-साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर।

कलकत्ता—व्यवस्थापक, विशाल भारत बुक डिपो, १९५।१ हरिसन रोड, कलकत्ता।
व्यवस्थापक, बम्बई बुकडिपो „ „
व्यवस्थापक, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३ हरिसनरोड, कलकत्ता।
व्यवस्थापक, हिन्दी-प्रचारक-पुस्तकालय, १६५।१ हरिसनरोड, कलकत्ता।
व्यवस्थापक, आधुनिक-पुस्तक-भंडार, कलाकार स्ट्रीट, हरिसनरोड, कलकत्ता।
व्यवस्थापक, जनवाणी प्रकाशन, १६१।१, हरिसनरोड कलकत्ता।

बम्बई—व्यवस्थापक, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।
व्यवस्थापक, भारती-पुस्तक-भवन, कालबादेवी रोड, बम्बई
व्यवस्थापक, साहित्य-भारती, हीराबाग, गिरगाँव बम्बई४
व्यवस्थापक, एन०एम० त्रिपाठी लि०, प्रिंसस्ट्रीट, बम्बई २
व्यवस्थापक, राजकमल-प्रकाशन, चौपाटीरोड, बम्बई।

मद्रास—व्यवस्थापक, दक्षिणभारत हिन्दी प्रचार सभा, त्यागराय नगर, मद्रास।

अहमदाबाद—व्यवस्थापक, सरस्वती-पुस्तकभंडार, हाथीखाना, रतनपोल, अहमदाबाद।

सूरत—व्यवस्थापक, दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, चंदाबाड़ी, सूरत।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

रजि० सं० ए० ८२५



मुद्रक और प्रकाशक—बाबूलाल जैन फागुल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
संसार प्रेस बनारस



उचित परामर्श

शास्त्र सब नहीं पढ सकते हैं क्यों कि बहुतों को उतना समय और धैर्य भी नहीं होता, इसलिए छोटे मौलिक, धार्मिक लेखोंकी सबसे ज्यादा ज़रूरत है। आजकल ज्ञानोदय में साधारण कोटि के लेख पढने को मिलते हैं। कृपया इसपर गम्भीरता पूर्वक विचार करें। गागर में सागर, कडुवे-मीठे अनुभव, बहुत उपयोगी हैं। इसके लिए धन्यवाद।

—उद्योतचन्द बोथरा

[सत्य-अहिंसा और मानव-हित के लेख ज्ञानोदय में यथा-शक्य देने को प्रयत्न रहता है। धर्म के नाम पर सम्प्रदायवाद जातीयवाद के पोषक और इतर धर्मों के विरुद्ध लेख ज्ञानोदय में नहीं दिये जा सकते। यदि आप धर्म प्रचार के ऐसे लेख भिजवाएँ जिसे पढकर जैन-जैनेतर सभी लाभान्वित हों, तो हम ऐसे लेखों का स्वागत करेंगे। —सम्पादक]

बीकानेर २-११-५१

'ज्ञानोदय' बहुत सुन्दर निकल रहा है, बधाई। कन्हैयालाल जी को सम्पादक मंडल में जोडकर चार चाँद लगा दिये, उनकी और आपकी लेखन-शैली प्रभावोत्पादक है। —अगरचन्द नाहटा

जैनयुवक मण्डल हुबली १०-११-५१

जैन समाजमें 'ज्ञानोदय' ही एक ऐसा पत्र है, जो कि पूरी जैन व जैनेतर समाजके लिए उपयोगी है। इस पत्रके जरिये जैनसिद्धान्त का प्रचार होता है। लेख-कविता आदि सुन्दर होते हैं। इसके अलावा जैन और देश-विदेश समाचार दिये जाएँ तो सोने म सुगन्धकी तरह जन समाज को उपयोगी होगा।

—शाह शंखमल जैन

[ज्ञानोदय मे इस प्रकार स्थायी सामग्री देने का प्रयत्न किया जाता है, जोकि सदियो बाद भी उपयोगी प्रतीत हो। समाचारादि तो पल-पल में पुराने होते रहते हैं। दैनिक साप्ताहिक पत्रों म इनकी भरमार रहती है। हम अस्थायी साहित्यसे ज्ञानोदय को सदैव मुक्त रखना चाहेंगे। —सम्पादक]

लखनऊ ३१-१२-५१

'ज्ञानोदय' मे आदर्श की ऊँचाइयों और अनुभूति की गहराइयों का सुन्दर समन्वय है। ऐसे उपयोगी एव कलापूर्ण प्रकाशन के लिए सयोजक तथा सम्पादक सभी धन्यवाद के पात्र हैं। —पुष्पेन्दु



अतिशय क्षेत्र चंदेरी के मनोज्ञ चौबीसी मंदिर

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के

अजमेर— गौतम-पुस्तक भंडार, जयपुररोड, अजमेर।

उदयपुर— हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर।

इन्दौर— नवयुग-साहित्य-सदन, खजूरी बाजार।
तुलसी-साहित्य-सदन, ३ नसियारोड, इन्दौर।

जोधपुर— भारतीय-पुस्तक-भवन, ४२ जसवन्त सराय।

जयपुर— वाणी मंदिर, चौडारास्ता, जयपुर।
वीर-पुस्तक मंदिर, मनिहारोंका रास्ता, जयपुर।

लश्कर (ग्वालियर)—किताबघर, जिन्सीपुल, लश्कर।

श्री महावीरजी (जयपुर)—पं० मंगलसेनजी जैन विशारद, वीर-पुस्तक-मंदिर, श्री महावीरजी।

दिल्ली— आत्माराम ऐंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली।
इण्डियन पब्लिशिंग हाउस, नई सडक, दिल्ली।
शारदा-मंदिर लि०, नई सडक, दिल्ली।
राजकमल प्रकाशन, १ फैज बाजार, दिल्ली।
दिगम्बर-जैन परिषद्—पब्लिशिंग-हाउस, बडा दरीबा।

आगरा— साहित्यरत्न भंडार, ४ महात्मा गांधी मार्ग।
सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा।
श्री जैन-कुमार परिषद्, जैनभवन, लोहामंडी।

कानपुर— साहित्य-निकेतन, श्रद्धानंदपार्क, कानपुर।

इलाहाबाद— हिन्दी-प्रकाशन-मंदिर, जीरोरोड।
सेंट्रल बुकडिपो, जीरोरोड, इलाहाबाद।
नीलाभ प्रकाशन, ५ खुसरो रोड, इलाहाबाद।
बी० एल० भटनागर, चौक ,,
साहित्य भवन लि०, जीरोरोड, इलाहाबाद।
हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, जीरोरोड, इलाहाबाद।
स्टूडेण्ट फ्रेन्ड्स, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

प्रमुख पुस्तक विक्रेता

बनारस— हिन्दी पुस्तक एजेन्सी चौक बनारस।
ज्ञान मंडल पुस्तक भंडार ,, ,,
कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स ,, ,,
पुस्तक-भवन ,, ,,

लखनऊ— सस्ता साहित्य-भंडार, अमीनुद्दौलापार्क।

गोरखपुर— नया किताब घर, बैंकरोड, गोरखपुर।

पटना— हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बाँकीपुर, पटना।
राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, मछुवा टोली, पटना।
सरस्वती सदन, बाँकीपुर, पटना।

भागलपुर— पुस्तक-मंदिर, कालिफबाग, भागलपुर।

जबलपुर— सुषमा-साहित्य मंदिर, जवाहरगंज,

कलकत्ता— विशाल भारत बुक डिपो, १९५।१ हरिसन रोड।
बम्बई बुकडिपो १६५।६ हरिसन रोड।
हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३ हरिसनरोड।
हिन्दी-प्रचारक-पुस्तकालय, १६५।१ हरिसनरोड।
आधुनिक-पुस्तक-भंडार, कलाकार स्ट्रीट, हरिसनरोड।
जनवाणी प्रकाशन, १६१।१, हरिसनरोड, कलकत्ता।

बम्बई— हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग, गिरगाँव।
भारती-पुस्तक-भवन, कालबादेवी रोड।
साहित्य-भारती, हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ४।
एन० एम० त्रिपाठी लि०, प्रिंसस्ट्रीट, बम्बई २।
राजकमल-प्रकाशन, चौपाटीरोड, बम्बई।

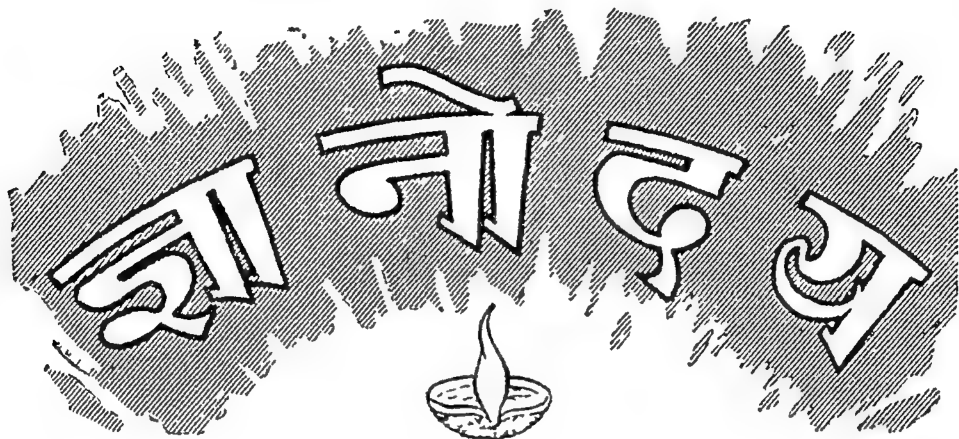
मद्रास— दक्षिणभारत हिन्दी प्रचार सभा, त्यागराय नगर।

अहमदाबाद— सरस्वती-पुस्तकभंडार, हाथीखाना, रतनपोल।

सूरत— दिगम्बर-जैन-पुस्तकालय, चंदाबाड़ी, सूरत।

पोस्ट बाक्स नं० ४८, बनारस १

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स



वर्ष ३] • काशी, फरवरी १९५२ • [अंक ८

इन्द्रिय-जय

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाः हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥

कुरंग, मातंग, पतंग, भृङ्ग और मीन ये एक एक इन्द्रियके वशमे होकर मारे जाते हैं । जो प्रमादी अकेले पाँचों इन्द्रियोंसे पाँचों विषयोका सेवन करता है वह क्यों नही मारा जाय ?

इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत्स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥

इन्द्रियाँ ही स्वर्ग और नरकका कारण है। यदि वे अपने अधिकारमे है तो स्वर्गका कारण है, यदि वशमें नही है तो नरकका कारण है ।

तदिन्द्रियजयं कुर्यान्मनःशुद्धया महामतिः ।
यां विना यमनियमैः कायक्लेशो वृथा नृणाम् ॥

इसलिए जो शुद्ध मनसे इन्द्रियनिग्रह करता है वही बुद्धिमान् है क्योंकि इसके बिना यम-नियम आदिके द्वारा शरीरको कष्ट देना व्यर्थ है ।

समाधि के फूल

श्री दशरथ पाण्डेय

आज जनवरीकी ३० तारीख है। बापूकी समाधिपर उनकी पुण्य स्मृतिमें श्रद्धाके कुछ फूल चढाने आया हूँ। यही वह वर्गाकार चबूतरा, है जिसके सामने झुककर विश्वके बडे-बडे महापुरुष विश्ववन्द्य बापूके प्रति श्रद्धा-भक्ति-पूरित अर्घ्य प्रदान करते हैं। मै अपने हाथके फूलोको समाधिपर बिछा चुका हूँ।

सामने पुरानी देहलीकी ओटमें सूरज अस्त होने जा रहा है। थोडी देरमें ही वह विश्वात्मा बापूका सदेश वहन करता पातालकी ओर चला जायगा। प्रकाशका सदेशवाहक जो है। फिर हम होगे अन्धकारके राज्यमें, बिजलीके बल्बों और दीपोसे काम चलाते। काश, हम प्रकाश और अन्धकारके इस रहस्यको समझ पाते।

पास ही में एक शरणार्थिनी वृद्धाका चरखा-चक्र चल रहा है। यह काल-चक्रका प्रतीक है, जिससे विश्वका जीवन सूत्र निकलकर सृष्टिको अपनेमें समेट लेता है। 'इगला-पिंगला' का ताना बाना इसीसे बनता है और उससे बनी चादर ओढ अपना कार्य-कलाप समाप्त कर मानव यही आता है।

× × ×

स्मृतियाँ उभर रही है। आत्म-विस्मृत देशकी विदेशी सत्ताके कधेपर बैठा भोग, भग्न देवालयमें नि सत्व पडे अध्यात्मको ललकार रहा है। मर्माहत अध्यात्म अपनी सारी प्राण-शक्ति समेटकर उठना चाहता है, किन्तु नि शक्त है। उसकी ब्रह्म-विद्या सो गई है। वह विवश है। कबीर, सूर, तुलसी, नानक और तुकारामकी वाणियोकी चिनगारियाँ, जिन्होने उसके जजर कलेवरमें प्रवाहित होनेवाले जीवन-शोणितकी गर्मीको अब तक बनाये रखा है, ठढी पडती जा रही है। चारो ओर असमर्थता फैली हुई है। भोगकी इस ललकारका उत्तर कौन दे? वगोपसागरकी लहरोसे एक कठध्वनि आती सुनाई पडी—

"के बोले मा तुमि अबले
बहुबलधारिणीम्"

× × ×

अध्यात्मने एक सतृष्ण दृष्टि पूरबकी ओर डाली। वहाँ अरुणोदय हो रहा था।

बहुबलधारिणीके नामने अध्यात्ममें नया जीवन फूँक दिया। वह उस अरुणोदयके प्रकाशमें देशके द्वार-द्वार अलख जगानेको उठ पडा। परतन्त्रताकी जजीरकी झनकारमें उसकी बोली

विलीन होकर रह जाती। माँ उसके साथ थी। करुणार्द्र शब्दोंमें माँ ने कहा—"पतितपावनी गंगे! अध्यात्म आया है, अलख जगाने। क्या कहती है?" तपोभूमिकी अधिष्ठात्री गंगाने आँखें नीची कर लीं। नैमिषारण्यके कण-कणमें व्याप्त ऋषियोंकी विभूतियोंको सम्बोधित कर माँ बोली—"तपस्विनियो, अध्यात्म भिक्षुकके रूपमें तुम्हारे द्वारपर खड़ा है।" एकने भी कोई उत्तर न दिया। "योगिराज कृष्णकी प्यारी वृन्दे! बोल, अध्यात्म तुम्हारी चरण-धूलि लेने आया है।" वृन्दा कालिन्दीकी ओर रिक्त आँखोंसे देखती रह गई। माँने गदगद कंठसे कहा—"साकेत, तुम्हें स्मरण है, एक दिन अध्यात्म विश्वामित्रके रूपमें तुम्हारे सिंहद्वारपर याचना करने आया था? आज वही भिक्षाकी झोली ले तुम्हारे द्वारपर उपस्थित है। क्या कहते हो?" साकेतको काठ मार गया। "राजगृहकी वेदिकाओंपर शयन करनेवाले मगधके गौरव! अध्यात्म, महावीर और बुद्धके तप और करुणाकी मधुकरी चाहता है।" मगधका वैभव निर्जीव था। "पर्ण कुटी, तुमने भारतीय क्षात्र-धर्मको आश्रय दिया था। अध्यात्म आया है। क्या कहती हो?" पर्णकुटी निराशाकी एक लम्बी साँस लेकर रह गई। माँ जब अध्यात्मको लेकर हिमालयकी ओर बढ़ी, हिमालय काँप उठा। उसके विराट् शरीरमें शोणित-संचार बन्द होने लगा। वह श्वेत हो गया। माँने डाँटकर कहा—"ठहरो हिमवान्, पिघलकर पानी होनेका समय नहीं" और कैलासके शिखरपर समाधिस्थ शंकरके पार्श्वदोंसे बोली—"क्या अभी तक अध्यात्मको नहीं पहचाना?" शंकरकी समाधि कौन भंग करे, सभी मौन थे। माँने अध्यात्मके सिरपर हाथ रखा और वह अन्तर्ध्यान हो गई।

माँका वरदान प्राप्त कर अध्यात्म तपोभूमियोंकी ओरसे मुड़ जन-पदके कोने-कोनेमें घूमने लगा। उसे एक ऐसा मानव-हृदय चाहिए था, जिसमें विश्वात्मा झाँक रहा हो और जिसमें प्रवेश कर वह अपनेको तपाकर अपनी खोई हुई ब्रह्मविद्याका आह्वान कर सके। माँकी कृपासे उसे एक हृदय प्राप्त हुआ। अध्यात्म उसमें आसन मारकर बैठ गया।

× × ×

मानवमें बैठा हुआ अध्यात्म आत्मशुद्धि कर रहा है। सत्य और अहिंसाकी कसौटीपर जीवनको खरा उतारनेकी चेष्टामें देशरत है। विशाल भौतिकवादी साम्राज्यसे मोर्चा लेने एक क्षीणकाय लँगोटी-धारी मानव 'निर्बलके बल राम'का अवलम्ब लिये खड़ा है। एक अलौकिक दृश्य है! विश्वके इतिहासमें अद्वितीय! दुनिया आश्चर्य चकित हो देख रही है। 'इसमें कौन-सा जादू है, जिससे मंत्रमुग्ध हो सारा देश इसके इंगितपर प्राण निछावर करनेको उद्यत है।' उसने इशारा किया, देशके बाल-वृद्ध-युवा स्त्री-पुरुष कारागारोंमें जा पहुँचे। भोग और ऐश्वर्यकी गोदमें पलनेवाले जेलोंके तसलोंके तालपर राष्ट्रके परवानोंके गीत गाने लगे। 'गाँधीकी जय!' की पुनीत जय-ध्वनि की लहरोंसे टकराकर

ब्रिटिश साम्राज्यशाहीका फौलादी पजा मोम हो पिघल रहा है।

× × ×

स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई सभी भाई-भाई है, अस्पृश्यता महापाप है, अँगरेजी शासनकी बुराइयोसे घृणा है अँगरेजोसे नही, चर्खा हमारा सुदर्शन चक्र है, हम सत्याग्रही है, अपने कष्ट उठा लेंगे, पर कभी दूसरेको किसी प्रकारका कष्ट पहुँचानेको सोचेंगे भी नही, इस प्रकारके अध्यात्ममय प्रेमिक और अहिंसात्मक भावोसे देश अनुप्राणित हो उठा है।

× × ×

भूमडल-व्यापी ब्रिटिश राज्याधिकारके गौरवसे विभूषित लदनके राजप्रासादके आँगनमें सेवागाँवके सन्तको देखनेके लिए आँग्ल नर-नारियोकी भीड उमड उठी है। शीत कटिबन्धकी उस भयानक शीतमे अन्तकरण शीतल करता सेंटपाल के गिर्जाघरसे चप्पल धोतीपर एक शाल लपेटे हिन्दुस्तानी लिबासमें ईसा आ निकला। भीड टूट पडी उसके दर्शन को। वह 'पूरबका जादूगर' सम्राट्के साथ खडा मुस्किरा रहा था। ब्रिटिश राज्यका वह शत्रु न था। वह उसके पापका स्वय प्रायश्चित्त कर रहा था। वह दूसरोंके पापको अपने सिर ढोनेवाला साक्षात् ईसा था। वह ब्रिटिश जनताको भगवान्के अभिशापसे बचायेगा। भारतकी स्वतन्त्रता माँगमें ब्रिटेनका कल्याण है। आँग्ल भूमि उसके चरण-स्पर्शसे पुलकित हो रही है, शासन और जनताके हृदयमें जमीन-आसमानके फर्कका यह एक ज्वलन्त उदाहरण भी तो है। आग्ल जनताके इस गाधी-प्रेमपर शासनकी अन्तरात्मा क्षुब्ध हो रही है।

× × ×

विदेशी शक्तिका ताण्डव हो रहा है। 'भारत छोडो'की घोषणासे भारतका नभ-मण्डल प्रतिध्वनित हो उठा है। अध्यात्मकी ब्रह्मविद्याने आत्मशुद्धिके अन्तिम शखनादसे गगनागनको पूरित कर दिया है। शासन नियतिके दण्ड-विधानके चक्रमें पडा नाच रहा है। वर्ग-विद्वेष, अधिकारमद और प्रजा-शोषणपर खडा शासन अब मुक्ति पानेके लिए विह्वल है। विधिका विधान! सत्ताके जिस सिहासनपर भोग आरूढ था वह सिंहासन ही लुप्त हो गया। गिरकर चोट खाया हुआ भोग उलटी टाँग भागा जा रहा है।

× × ×

यह अगस्त १९४७ की १५ वी तारीख है। देशके प्रत्येक घरमें स्वतन्त्रता देवीकी पूजा-अर्चा हो रही है। आज देश स्वतन्त्र हुआ है। आध्यात्मिक मानवकी दिग्विजयिनी शक्तिके प्रथम महाप्रयोगकी सफलताका यह मगलमय दिवस है। दुनियाके सारे देश इस सफलतापर बधाइयाँ और साधुवाद दे रहे है। किन्तु यह क्या जिस हृदयक्षेत्रमें बैठकर अध्यात्मने अपनेको तपाया था, उसीमें आज मानव स्वय तपेगा। राष्ट्रकी स्वाधीनता सग्राम-यज्ञकी पूर्णाहुति होगी। अहिंसा का पुजारी मानव हिंसाकी ज्वालामें तपाया जायगा।

हिंसाकी ज्वालाएँ चारो ओर उठ

रही है। बीचमें जरठ मानव डंडेके सहारे अकेला खड़ा है। उसकी आंखों-से चिनगारियाँ नहीं, कल्याणकी धाराएँ फूट रही हैं। वह चट्टानकी तरह अटल है। उसकी दृष्टि जिधर जाती है, अग्निशिखाओं और ज्वालाओं पर पानी फिर जाता है। परन्तु यह तो उसकी आत्माहुतिकी वेला है। अध्यात्म जो नहीं कर सका, उस पूर्णाहुतिसे करुणामयी माँके मंदिरको उसे आलोकित करना है। उसने अपनी आँखें बन्द कर उनको रामके चरणोंमें लगा दिया। हिंसाकी ज्वालाओंने आकर उसे निगल लिया। अब अध्यात्मकी गोदमें बैठा मानव किलकारियाँ कर रहा है और हिंसाकी वे ज्वालाएँ करुणाकी रश्मियाँ बन जीवनकी अमर ज्योति बिखेरती विश्वमें दौड़ रही हैं।

× × ×

सूर्य अस्ताचलको जा चुका है। तो क्या गाँधीका स्वतंत्र स्वदेश अंधकारमें विलीन हो जायगा? जवाहर-मयंककी शुभ्र रश्मियोंमें स्नान करनेवाले देशके सम्बन्धमे ऐसा मोह क्यो? क्या देशकी प्रवुद्ध चेतनाको जागृत करती बापूकी समाधिसे 'रघुपति राघव राजा राम' की धुन निकलकर प्रत्येक भारतवासीको सजग नही कर रही हैं? देशने जिस भोग और ऐश्वर्यपर विजय प्राप्त की है, उसकी मायाके चंगुलमें वह नहीं फँस सकता। यहाँ अविद्या टिक नहीं सकती, अन्धकारको स्थान नही है। वह लँगोटीधारी युग-पुरुष ब्राह्म मुहूर्त होते ही हमारे द्वारपर आ जाता है, जागरणका संदेश देने—**'उद्बुध्यस्व ज्योतिर्लभस्व'**।

समाधिके फूल कहते हैं—"देखो, वह तारिकाओंको आशीर्वाद दे अध्यात्म के साथ बादलोंसे नीचे उतर रहा है। चन्द्रमाकी रश्मियाँ उसका स्वागत कर रही है। नहीं देखते, वह यमुनाकी धाराएँ उसके चरण-स्पर्शके लिए ऊपर उठ रही है। वह देखो, वह उनके साथ नाच रहा है। हाँ, वह घर-घर आशीर्वाद देने जाता है। अब वह यही तो आयेगा। यहाँ आनेके वाद ही कही जाता है। देखो वह आ रहा है।"

हवाका एक झोंका आया और समाधिकी वेदीसे होकर चला गया।

वे पूछते है—"तुमने देखा उसको? वह कितना कोमल है। उसमें कितना प््रेम और वात्सल्य है!"

मैं उनको क्या उत्तर दूँ। विह्वलताने चारों ओरसे आ घेरा है। आँखे उमड़ रही है। मै क्या देखूँ।

कनियम

[१]

बचपनमें जिस विद्यालयमें मैं पढता था, उसके ठीक सामने ही था विशाल तालाव—देवीकुण्ड। आज तो इंच-इंच जानता हूँ कि उसमें कहाँ कितना पानी है, पर उन दिनों तो मेरे लिए उसके पानीका परिमाण था—हाथी-डुवान।

पिताजीने एक दिन कहा था—"देखो बेटा, देवीकुण्डमें हाथी-डुवान पानी है, उसमें कभी न घुसना।" पिताजीसे ही सुना था कि मेरे बडे भाई नहरमें डूब गये थे, सो उनका मुझे समझाना सही ही था, पर मैं देखता कि और लोगोंके साथ मेरे साथी भी उस हाथी-डुवान पानीपर तैरते हैं, खिलवारियाँ करते है और तालावके बीचोंबीच खिले कमल तोडकर लाते और कमलगट्टे तोडकर खाते हैं।

मेरा भी जी मचलता, ललचता और इस तरह मेरी नसें ससमसातीं कि मारूँ छलाँग, पर मेरे गुरुजी जो सामने बैठे रहते। संयोगवश एक दिन वे गये कहीं दावतमें और मौका देख मैं घुसा देवीकुण्डमें। हाँ, किनारे ही किनारे, यों यों ही कोई दो तीन पैंडी, पर उतने ही उतारमें मुझे समुद्रका आनन्द आ गया और जी उमँगा कि लगाऊँ एक छोटी-सी तैरी—हाँ, किनारे ही किनारे और मैं तैरता तो क्या भला, छपछपाने लगा।

अभी मैं रसमें आ ही रहा था कि बडे कछवेने मुझे छू दिया और बस मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम। मैं हडबडाया-सा उठ पडा और उछलकर फिर अपनी जगह आ पैर रखना तो खिलाडीका काम है—मेरे पैर उखड गये और पैर उखडे कि आदमी गया। मैं भी बस गया ही गया और लगा डुबकी खाने।

घबराहटमें आदमी लम्बे साँस लेता है, पर मैं लम्बे तो लम्बे, नहीं

साँसों भी मजबूर; साँस है—हवा खींचना और मैं पानीके भीतर। अब साँस लूँ, तो मरा, न लूँ, तो घुटा और इस मुसीबतके साथ मेरे भीतर यह ज्ञान कि मै मर रहा हूँ। मेरी चेतना-में मेरी मृत्यु और छाती-पीटती मेरी मा और गुम-सुम मेरे पिता, पर तभी मेरे पैरों के नीचे जाने कैसे आ गई फिर पैड़ी और मेरे पैर टिक गये। पैर टिके कि आदमी सँभला और सम्भला तो, बस सँभला।

इस पैर उखड़ने और सँभलनेमें लगा होगा मुश्किलसे एक मिनट! हाँ, एक मिनट, जो पलक मारते निकल

इतिहासों के इतिहास का शहीद !

जाता है यों, पर इस मिनटमें जाने उस दिन कितनी दुनिया मैं घूम गया, वह दमघोटनी घूम जीवनमें जब-जब मुझे याद आती है, मुझे याद आ जाते हैं—जोसफ डेविड कर्निंघम, जिन्हें मैं 'इतिहासोंके इतिहासका शहीद' कहकर अपनी क़लमको सदा ही गर्दोग़ुबारसे बचाये रखनेकी प्रेरणा पाता रहा हूँ।

[२]

उन्नीसवीं सदी जब अपनी बारहवीं वर्षगाँठ मना रही थी, वे इँगलैंडमें कहीं जन्मे। आदतें अक्खड़, दिमाग़ घुमक्कड़ और सुभाव साहसी, यह उनके बचपन-की एक धूपछाँही तस्वीर। जवानीने उनके जीवनकी खिड़कीसे झाँका, तो यह तस्वीर जरा निखरी और वे इरादोंकी बुलन्दीपर दिखाई दिये। इँगलैंडके लिए तब भारतके दरवाजे खुल चुके थे और वहाँका साहस तब अपने फैलावके लिए इधर ही झाँकनेका आदी हो चला था।

कर्निंघम ने भी इधर ताका, तो उनकी घुमक्कड़ी, इरादे और हिम्मत, तीनों उभर उठे और यह लो, सन् १८३४ में वे आ पहुँचे भारत। कर्निंघम: एक बाईस वर्षका नौज-वान; जिसका दिल-दिमाग़ ऊँची उड़ानोंसे भरा-पूरा! ये वे दिन, जब भारतमें इंगलैण्डके करण्टोंकी धूम। वे आये, फौजमें भरती हुए, गुण्डागर्दी मचाई और तीसमार खाँ मशहूर, पर कर्निंघम यहाँ तीसमार खाँ होने को नहीं, कुछ और ही बननेको आया था। वह दूकानदार न था कि जो खपा, ले धरा; वह तो एक झरना था, जिसे अपनी ही राह बहना था—भले ही राह देरसे मिले!

१८३४से १८३७—पूरे तीन साल कर्निंघमको अपनी जगह बनानेमें लगे,

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

पर वह निराश न हुआ, जुटा रहा। वह घुमक्कड़ सागर था, कोई आवारा दैल नहीं कि चिड़िया फँसी तो वाह, न फँसी तो लट्ठ! अब वह कर्नल नेटके सहकारी, जो सिक्ख सीमापर गवर्नर जनरलके एजेण्ट और इस तरह पचीस वर्षकी अवस्थामें कनिंघमने भारतकी शासकीय राजनीतिमें पहला कदम रखा!

[३]

पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह से १८३८ में लार्ड आकलैण्ड मिले, तो कनिंघम भी साथ रहे और प्रथम सिक्ख-युद्धमें भी वे स्वयं उपस्थित थे। इस तरह सिक्ख-अँगरेज सम्बन्धोंके, दूसरे शब्दोंमें सिक्खोंके तबके इतिहासके वे प्रत्यक्ष द्रष्टा साक्षी थे। वे उनमें न थे, जो इतिहासको पढ़कर जानते हैं, वे उनमें थे, इतिहास जिनकी आँखोंके सामनेसे स्वयं गुज़रता है। फिर उस समयकी सारी दस्तावेज़ें पढ़नेका उन्हें अवसर मिला था और इस तरह हर छिपी बात भी उनके सामने खुली बात थी।

अपने पदके कारण वे बड़े आदमियों और बड़ी गुत्थियोंके बीच थे, तो अपने स्वभावके कारण वे सर्वसाधारणके साथ थे और इस तरह वे आमआदमीके साथ ही बातें न करते थे, धरती की भी सुनते थे।

आठ वर्ष वे फीरोजपुरमें रहे। तब बहावलपुरमें एजेण्ट हुए और इसी तरहसे कई दूसरे पदों पर काम करते हुए अन्तमें भूपाल राज्यकी पोलिटिकल एजेन्सीमें पहुँच गये।

अब वे संघर्षमें नहीं शान्तिमें थे, पर कमठोंके लिए शान्ति, नये कामका निमन्त्रण है। कनिंघमके हाथ-पैरोंसे अधिक उनका दिमाग उन्हें पुकार रहा था—'कुछ करो न अब!'

भीतरकी इस पुकारको बाहरसे एक उपहार मिला कि कनिंघमके बड़ोंने कहा—कनिंघम सिक्खोंका इतिहास लिखें। 'रोनेको जी चाहा था कि खिसर पड़ी!' कनिंघमकी पिण्डलियाँ मचमचा रही थीं कि राहने उन्हें पुकारा और राह थी मनपसन्द। अब वे इतिहास द्रष्टासे इतिहास-स्रष्टा होने जा रहे थे। उनका मन उस गर्वतसे भरा था, जिसका स्वाद सिर्फ निर्माताओंकी जीभ ही जानती है। राइफलें अपनी कृतियोंको स्थायी बनानेके लिए कलमके द्वार भिखारिणी थीं इस समय!

कनिंघमको भीड़में रले अजाने साथी न खोजने थे। सामने घूम रहे परिचितोंकी पुकार भर लेना था। इतिहास उनके सामने ही था कि वे उसे लिख लें और वे लिखने लगे। कोई उलझन न थी, वे तेज़ीसे बढ़ चले, बढ़ चले कि पहुँच गये और यह हो गया तैयार—सिक्खों का इतिहास! गोताखोरको जैसे मोती मिले, माँको बेटा जना और किसानने खेती काट ली। कनिंघम खुशीसे भरे और ऊँचे भविष्यकी उम्मीदोंसे लबालब!

[४]

शादीकी शहनाइयोंके बीच कभी-कभी मृत्युका समाचार भी आया करता है, जो आँधीकी तरह खुशियोंके बगीचेको पकड़ मारने झकझोर मारता है।

कनिंघमके साथ भी यही हुआ। उनका इतिहास उनके बड़ोंकी मेज़पर क्या पहुँचा, एक भूकम्प आ गया। उन्होंने उमंगोसे भरे और आँखोंको पूरी तरह खोले, जो इतिहासके पन्ने उलटे, तो अपनी तारीफ़ोंके अम्बार देखनेको ही तो; पर उसमें उन्हें क्या दीखा ? उसमें दिखाई दिये उन्हे अपनी बेइमानियोंके जनाज़े, चालाकियोके चमत्कार और उनके दुश्मनोंकी वीरताके स्मारक !

वे शिखरपर चढ़ते-चढ़ते खाइयों में जा गिरे। गिरकर कमजोर रोता है और ताक़तवर गरजता है। वे कनिंघमके बड़े थे, कनिंघम उनका मातहत था। कनिंघमको वे कुचल सकते थे और यों ताकतवर थे। गवर्नर जनरल मार्क्विस आफ़ डलहाउजीने उन्हें नौकरीसे अलग कर दिया और उन्हें जातिद्रोही कह, लांछित भी किया।

जब वीणाकी झंकार कानोंमें रस बरसानेको हो और अचानक उनपर आ पड़े नगारेकी चोट, तो नसोंमें एक ख़ास खलबली-सी मच जाती है। कनिंघमका भी यही हाल था, उसे प्रशंसाकी जगह नृशंसा और उपहार की जगह दुत्कार मिल रही थी।

मुश्किलसे अपनेको सँभालकर कनिंघमने अपना इतिहास फिर पढ़ा—अपनी पुस्तककी तरह नही, एक क्रूर समालोचककी तरह और उस समय उसमें तनाव इतना कि वह बैठ न पाया और अपनी खिड़की पर पोथी धरे खड़ा ही रहा। उसे होश ही न था, वह अपने आपेमे ही न था, तो थकानकी शिकायत फिर किससे करते।

पुस्तक पढ़ी, तो उसमें फिरसे एक नया जोश आया और बालककी तरह अत्यन्त कोमलतासे अपनी पुस्तक को थपथपाकर उसने कहा—"इसमें तो एक भी बात ऐसी नहीं, जिसके लिए विद्वान् जजोंकी सभामें मै अकाट्य प्रमाण न दे सकूँ !"

किसीने कहा—"तुम्हारी पुस्तकमें कोई ग़लत बात नही है कनिघम, पर इससे हमारी जाति कलंकित होती है !"

"ओह, यह बात है"—उसने सोचा—"मेरी जाति अपनी नीचताओं से कलंकित नहीं होती, उन नीचताओं को प्रकट करनेसे कलंकित होती है और इसलिए उसकी नज़रोंमें इतिहासका काम आजके सत्यको ज्यों-का-त्यों कलकी पीढ़ियोंको सौपना नही, आजकी कालिमाको शृंगारका स्वरूप देना ही है।"

कनिंघमने यह सोचा और एक तूफ़ानी धक्का-सा लगा, वे अपने पलंगपर बैठ गये। हाँ, सचमुच बैठे नही वे—बस बैठ गये ! अब पलंगपर वे नही उनकी लाश थी। उन दिनों १८४९ का सन् अपनी बिदाईकी तैयारियाँ कर रहा था और कनिंघमकी भूरी आँखोंने तो अभी ३७ वसन्त ही देखे थे !

[५]

अभी उस दिन कनिघम से बातें करनेका मौक़ा मिल गया मुझे। वे मेरी कल्पनाके आँगनमे अपने पलंगपर पड़े थे। उनका इतिहास उनकी छाती

पर था, उनके दोनों पंजे, उस इतिहासकी जिल्द पर और वे टकटकी लगाये, उसे अपनी अन-भपकी आँखोंसे देख रहे थे, जैसे कोई स्टैच्यू हो !

मैंने कहा—"कनिंघम भाई, तुम नौकरीसे क्या अलग हुए, हमसे—जीवनसे ही अलग हो गये, यह तो कोई हिम्मतकी बात न हुई ? बहादुरीका इतिहास लिखनेवालेको तो अपनेमें बहादुर होना चाहिये !"

कनिंघमने बिना आँखें भपके और बिना सिर हिलाये, दर्द-भरे स्वरमें कहा—"तो क्या मेरे दोस्त, मैं नौकरी छूटनेसे ही दुनिया छोड आया ? मेरे भोले भाई, उस नौकरीने मुझे नहीं, मैंने ही उस नौकरीको बनाया था और मैं चाहता, तो वैसी दस नौकरियाँ फिर बना सकता था।"

"तो फिर असली बात क्या थी मेरे साथी, कि जिससे यह अनहोनी हुई ?" मैंने बहुत ही मुलायम और मीठे होकर पूछा ।

कनिंघमने कहा—"वाणी आजकी शक्ति है और कलम कलकी माँ, जो आजकी भूलों और भलाइयोंका पिटारा कलकी पीढियोंको भेंट करती है कि वे अपने आपमें भूलोंसे भटकें नहीं और भलाइयोंसे भरपूर हों !"

कनिंघमने एक गहरी साँस ली और बहुत गहराइयों तक भीगे-भीगेसे होकर बोले—"मैंने अपने इतिहासमें यही तो किया था, पर मेरी जातिने उसे पसन्द न किया, तो उसके यही माने तो हुए कि आजके माँ-बाप अपने कलके बच्चोंको जान-बूझकर और एक संगठित योजनाके साथ धोखा देनेको कमर कस उठे !"

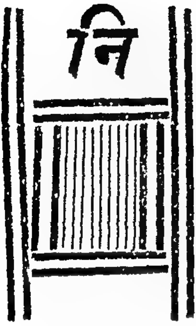
कनिंघमकी स्टैच्यू-सी देहमें एक कपकपी-सी आ गई और बहुत ही निर्जीवसे होकर वे बोले—"ओह, इसका और क्या अर्थ कि हमारे बच्चो, हम तो गिरे ही, तुम भी गिरते रहना, हम तो उठ न पाये, पर तुम भी न उठना ! तो हमारी कलम बस पीतल-पर सोनेका मुलम्मा करनेवाली ब्रश है, सचाइयोंकी मूर्तियाँ गढनेवाली छेनी नहीं !!

और यह सब मैंने सोचा, तो मेरी आत्माके चारों ओर एक कडवा धुआँ भर गया। यह धुआँ इतना घना था कि साँस लेना मेरे लिए असम्भव हो गया और मेरा दम घुट गया !!!"

मैंने देखा—कनिंघम अब भी ज्यों के त्यों पडे थे। उनका इतिहास उनकी छाती पर था, उनके दोनों पंजे उस इतिहासकी जिल्द पर और वे टकटकी लगाये, उसे अपनी अनभपकी आँखोंसे देख रहे थे, जैसे कोई स्टैच्यू हो !

पुष्प-वाटिका

श्री रत्नेश



निविड़ निशाके निस्तब्ध नीलाचलमें क्रीड़ा-विलास करता हुआ जब मैं स्वप्न-सुराको पीकर बेसुध हो जाता हूँ, तो कोई हौले-हौले आकर उसकी अपार काली अलकोंमें सौभाग्य-की स्वर्णिम रेखा खीच देता है; शहनाइयाँ वज उठती हैं और वह अपने चिर-परिचित अज्ञात स्थानको प्रस्थान कर देती है। दिगम्बरके संगीतसे जब मेरी मोहनिद्रा टूटती है तो अपनेको एकाकी अनुभव कर मैं भाग खड़ा होता हूँ। विश्व केवल इतना ही जानता है कि मैं स्वेच्छाचारी, लक्ष्यहीन यात्री हूँ।

समस्त संसार जव सोता रहता है, मैं नंगे पैर ही व्याकुलताके अंधकार-में अपनेको छिपाये उस "अपरिचिता" की खोजमें निकल पड़ता हूँ। उसका यह अपरिचितपन हम दोनोंकी आत्मी-यतामें कभी भी वाधक नहीं वनता। दिशाका संकेत तो नही होता, केवल चरणोंमे गति होती है, मनमें उमंग होती है और नयन-सरोवरोंमें जिज्ञासा तैरती रहती है। शून्य हृदयमे पुष्प-वाटिका कव और कैसे आसन जमा लेती है सो आज भी समझमें नही आता।

पुष्पवाटिकाकी क्यारियोंको देख-कर मन कहता है कि इसी राजपथसे उसका सप्त-किरण स्वर्ण-रथ अभी-अभी गया है, रंगविरंगे नवोद्गत प्रसूनोंको देखकर मन कहता है कि अवश्य ही उसके नूपुरोंके तार टूट गये है और इसी स्थानपर उनके दाने-दाने बिखर गये है; छल-कते हुए ओसकणोंको देखकर अन्दरसे आवाज आती है कि निश्चय ही वह सुखी नही है, उसके करुण-क्रन्दनके इन अश्रु-कण-निपातोंमें मेरी गंभीरता छिप जाती है; मंद समीरणके पंखोंपर बैठकर जब पराग मेरा स्पर्श करता है तो अनुभव करता हूँ, अवश्य ही उसने मेरे अनुरागका प्रत्यादान कर दिया है; झुरमुटके किसलयोंपर चमकते और छलकते ओस-कणोंको देखकर अनुमान होता है कि अवश्य ही उसने इस शीतल छायाके आलोकमें अपने श्रम-विन्दुओंको सुखाया है, मॅडराती तित-लियाँ रो-रोकर कहती है कि वह अकेली हो गई है, वापिकामें बिखरे विवर्ण म्लान फूलोंको देखकर मन कहता है कि अपने मुख-धावनके समय उसके कर्णफूल यहींपर रह गये हैं; निर्झरके कलकल स्वरमें फेनके विलास-को देखकर मानसके अन्तरालसे कोई सिसकियाँ भरकर कहता है कि उसका

के साथ ही पाखंड शुरू हो जाता है। हम अपने साथीका प्रवेश, प्रशंसा, गप्प, मनोरंजन या व्यापार-व्यवहारसे रोकने लगते हैं। हम अपने विचार सैकड़ों तहोंके नीचे ढककर उससे छिपाते हैं। मेरी एक ऐसे मनुष्यसे मुलाकात हुई, जिसने धर्मके आवेशमें अपनी सब लाग-लपेट उतार फेंकी और जिस किसीसे भी मिला, सब प्रकारकी प्रशंसा और तुच्छता त्याग-कर उसने उसके अन्तःकरणमें सुन्दर ढंगसे प्रवेश किया और परिज्ञानसे निरीक्षण किया। आरम्भमें उसका विरोध हुआ और सब कहने लगे कि वह पागल है, किन्तु उस मार्गपर कुछ समय तक लगातार चलनेसे—जैसा कि उसके लिए आवश्यक हो गया था—उसने अपनी जान-पहचानके हर एक मनुष्यसे अपने साथ सच्चे सम्बन्ध स्थापित करनेका गुण प्राप्त कर लिया। उससे कोई भी झूठ बोलने या उसे सस्ती बातचीत अथवा पुस्त-कीय ज्ञान द्वारा टालनेका विचार ही नहीं करता था, किन्तु हर एक आदमी इस ईमानदारीके कारण स्वयं ही स्पष्ट व्यवहारके लिए विवश हो जाता था और उसमें जो कुछ भी प्रकृति-प्रेम, काव्य अथवा सत्यकी छाया होती, वह उसके सामने प्रकट कर ही देता।

समाज हममें से बहुतोंके सम्मुख अपना वास्तविक रूप नहीं प्रकट करता है, केवल उसकी पीठ और उसका एक पक्ष ही दिखाई देता है। झूठे युगमें मनुष्योंके साथ सच्चा संबंध रखना भी एक पागलपन ही है। ठीक है न? हम बहुधा सीधा व्यवहार नहीं कर सकते। प्रायः हमसे मिलनेवाला हरेक मनुष्य कुछ आदर-सत्कार चाहता है, मनोरंजनकी अपेक्षा रखता है। उसकी कुछ प्रसिद्धि होती है, कुछ गुण होते हैं, उसके हृदयमें कुछ धार्मिक लहर या परमार्थकी प्रवृत्ति होती है जिसके विरोधमें हम किसी प्रकार भी प्रश्न नहीं कर सकते हैं और जिसके कारण ही उसकी हमारे साथ हमारी सारी बातचीत दूषित हो जाती है। किन्तु मित्र तो वही व्यक्ति है, जो मेरे कौशलसे नहीं किन्तु मुझसे व्यवहार करता है। मेरा मित्र तो किसी भी प्रकारकी प्रतिज्ञाके बिना ही मेरा मनबहलाव करता है, इसीलिए मित्र तो प्रकृतिमें विरोधा-भास (Paradox) है। मैं, केवल मैं ही हूँ। मैं प्रकृतिमें ऐसी किसी हस्ती का आभास नहीं पाता, जिसके अस्तित्वको अपने ही समान स्वीकार कर सकूँ। एक भिन्न शरीरमें भी अपने ही जीवनकी महत्ता, भिन्नता और अनोखेपनकी प्रतिच्छाया देख सकूँ और परिणाम-स्वरूप मित्र प्रकृतिकी एक महान् कृति मानी जा सके।

मित्रताका दूसरा गुण प्रेम है। हम मनुष्यसे हर एक प्रकारके बन्धनो-से बँधे हैं। कहीं एक ही खून है। कहीं एक ही समान अभिमान, डर, आशा, लोभ, वासना, घृणा या प्रशंसा है। यथार्थमें हर एक परिस्थिति, लक्षण और अन्य छोटी-छोटी बातोंमें भी समानता है, किन्तु मुश्किलसे विश्वास होता है कि किसी अन्यका चरित्र इतना महान् है कि वह हमें प्रेमसे

अपनी ओर खींच सके। क्या कोई इतना भाग्यशील और हम इतने पवित्र हैं कि हम उसे अपने प्रेमका भागी बना सकें। यदि एक मनुष्य भी मेरे प्रेमका पात्र बन जाता है, तो मै जीवन-के लक्ष्यके निकट पहुँच जाता हूँ।

इस विषयके गूढ़ तथ्योंपर प्रत्यक्ष रूपमें लिखा हुआ पुस्तकोंमें बहुत कम मिलता है। तथापि मेरे पास एक गद्यांश है जिसको स्मरण रखना मेरे लिए वांछनीय है। मेरा लेखक कहता है--"मै अपने आपको शिथिल और रूक्ष कर उनके सम्मुख समर्पण कर सकता हूँ, जो पूर्ण रूपसे मुझे अपना समझते हैं, किन्तु उनके सम्मुख जिनका कि अनन्य भक्त मै हूँ, किसी भी प्रकारसे अपने आपको नहीं सौप सकता।" मै चाहता हूँ कि मित्रताके पैर, आँखें और जबान होनी चाहिए, चन्द्रमातक उड़ान भरनेसे पूर्व उसे पृथ्वीपर अपने आपको स्थापित कर लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि हम देवदूत बननेसे पूर्व एक छोटेसे नागरिकके समान हों।"

वह मनुष्यको भला-बुरा कहते हैं; क्योंकि वह प्रेमको एक सौदेकी वस्तु बना लेता है। मित्रता तो उसके लिए एक भेंटकी अदलाबदली है, उपयोगी ऋणका आपसमें हेर-फेर है। यह तो अच्छा पड़ौस है। बीमारीमें देखरेख करता है, मृत-संस्कारमें कफ़न थामता है और नाते-रिश्तेकी कुलीनता और शिष्टाचारको पूर्णतया आँखोंसे ओझल कर देता है। यद्यपि साधारण व्यापारी-के इस भेषमें हम एक देवताके दर्शन नहीं कर सकते, तथापि दूसरी ओर हम किसी कविको यदि वह अपनी कवितामें हदसे ज़्यादा कोमलता भर दे और अपनी प्रेम-कथामें न्याय, समय-पालन, विश्वास और दयाके नागरिक गुणोंका पर्याप्त पुट न दे, तो क्षमा भी नही कर सकते। मैं शिष्ट और सासारिक सम्बन्धके रूपमे मित्रताके नामका दुरुपयोग कर उसकी, बाजारू बिक्रीसे भी घृणा करता हूँ। मै तो किसानके बालकों और टीनके सामान-की फेरी करनेवालोंकी संगति अधिक पसन्द करता हूँ, न कि रेशमी वस्त्र पहने और इत्र लगाये, उन मित्रोंकी जो अपनी संग्राम-वेला तुच्छ रास-रंग, टमटममें सैर या सर्वश्रेष्ठ होटलोके भोजोंमें भाग लेकर बिताते है।

मित्रताका उद्देश्य तो निजी, किंतु अत्यन्त ही कठोर व्यवहारमें निहित है। यह व्यवहार अभीतक अनुभव किये हुए सब व्यापारोंसे भी अधिक कठोर है। यह तो जीवन और मृत्युके सब कार्यकलापोंमें सुख और सहायता प्रदान करनेके लिए है। यह शांतिकाल, सुन्दर-सुन्दर भेट और वन-विहारके लिए तो है ही, किन्तु ऊँचे-नीचे रास्तों-पर कठिन यात्रा, संकट, निर्धनता एवं विपत्तिकालके लिए भी है। यह बुद्धि विलासके साथ धार्मिक ध्यानावस्थामे योग देती है। हमें मानव-जीवनके कार्य और दैनिक आवश्यकताओंमें एक दूसरे-की प्रतिष्ठा करनी है और जीवनको साहस, बुद्धि और एकतासे प्रकाशित करना है। ऐसा न हो कि यह अपनी गति त्यागकर रूढ़ हो जाये, किंतु इसे सावधान और खोज-संलग्न रहना चाहिए और परिश्रमका गठबन्धन योग्यायोग्यके तर्कसे करना चाहिए।

गीत

श्री पुष्पेन्दु

आज मेरा प्यार मुझसे दूर है

लक्ष्य धुँधला ही क्षितिज पर छिप रहा,
और सब आराधनामें बल नहीं।
आज घेरे हैं परिस्थितियाँ मुझे,
साधनाको साध्यका सबल नहीं।
प्राणको जिससे मिले कुछ प्रेरणा,
वह मेरा आधार मुझसे दूर है।

आज जीवन डाल पर बैठी हुई,
क्यों न मनकी मौन कोयल बोलती।
क्यों न जीवनके क्षणोंमें वह पिकी,
आज गीतोंका मधुर रस घोलती।
जो मधुर मधु-मास लाता है सदा,
वह मेरा पतझार मुझसे दूर है।

मैं अपरिचित राहगीरोंसे यहाँ,
आज परिचयका सहारा माँगता।
मैं भँवरमें डुबकियाँ लेता हुआ,
आज लहरोंसे किनारा माँगता।
जो लगाती पार यह जीवनतरी,
वह मेरी पतवार मुझसे दूर है।

मैं पथिक हूँ एक पथ भूला हुआ,
पर, प्रगति मेरी न रुक सकती कभी।
ज़िंदगी जो मौतको ललकारती,
मौतके सन्मुख न झुक सकती कभी।
मैं अमर पीयूष पीकर चल रहा,
मृत्युका व्यापार मुझसे दूर है।

नैन-सम्पुटमें समेटे जागरण,
नीड़ पर निद्रा छिड़कती रात है।
इस निशाके आवरणसे झाँकता,
प्राण-प्राची पर सुनहला प्रात है।
कौन कहता है अमर आलोकमय
वह मेरा संसार मुझसे दूर है



मैं तो नूतनवादी हूँ....

श्री रतन पहाड़ी

जैन जगत्के किसी महीने के अंकमें एक लेख छपा है श्री रघुवीरशरण जी दिवाकर का, "मैं भी पुरातनवादी हूँ।"

"मेरे मित्र समझने हैं कि मैं पुरातनवादका उग्र विरोधी हूँ ... वरन् गर्व ही है कि म भी पुरातनवादी हूँ।"

लेखका आरम्भ ही इस प्रकार हुआ है। और आप चलते चलिए पुरातनवाद पूरे लेखमें पीछा करता हुआ मिलेगा और उसके पीछे-पीछे अपनी विभिन्न शोभाओं और आस्थानों का उल्लेख लेखक द्वारा किया हुआ वैसे ही मिलेगा जैसे शरीफेके सफेद गूदेके नीचेकी गुठलीका रंग कुछ और ही होता है।

मैं अपनी बात बता दूँ। 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया।' जीवन क्या पिछली घटनाओंको एक-एक कर सजाकर देखने भरके लिए है अथवा आगेकी माला को और उत्तरोत्तर वृद्धिगत अथवा सुशोभित बनानेके लिए है, अथवा पहलेकी पिरोई मालाको फिर बखेर-कर फिर एक-एक कर पिरोनेके लिए है। वास्तवमें यह जीवन इतना ओछा नहीं है कि उसमें ऐसी सीमित सीमाके दर्शन हो सकें। उसे तो प्रेरणा पानेके लिए जगत् पड़ा है और उसी जगत्के अन्तर्गत एक विस्तृत आकाश जिसपर कोई भी अपनी गेंद उछाल सकता है। किन्तु वह गेंद लगी कहाँ आकाशको—वह तो फिर गुरुत्वाकर्षणत्वात भूमि पर आ पड़ी और उछलने लगी। भूलिए जरा पुरानी बात, छोड़िए जरा पुराने धन्धे—चलिए आगेकी ओर। अगर आगे हीरे-मोती बीननेको नहीं पटे हैं तो आइये, पत्थरकी गोटी ही ढकेला लें—लेकिन पीछे चलकर नहीं कुछ आगे बढ़कर।

उस दिन मैंने देखा कि एक अन्धा भिखारी रोजके अभ्यस्त रास्तेपर चलता-चलता कुछ डगमग हो गया और पगडण्डी छोड़कर नालीके सहारे चलने लगा। कुछ देर तक तो मैं देखता रहा देखता रहा, और बादमें जब देखा कि वह फिसलने लगा है तो मैं बोल उठा "पुटे चला, पुटे चला।" वह केवल आवाजके सहारे ही जरा दायें हो गया—पीछे नहीं हटा और आगे चला गया, रास्ते पर आ गया।

"मैं भी पुरातनवादी हूँ" पूर्ण रूपमें पूर्वजोंकी दुहाई देता हुआ लेख है। आज जो मैं हूँ वह पूर्वजोंके अस्तित्वका ही एक न्यूनतम रूप है तो मुझसे पूर्वके पूर्वज भी अपने पूर्वजों

को उनके पूर्वजोंसे न्यूनतम मानते होंगे और उनके पूर्वज उनके पूर्वजोंसे अपनेको न्यूनतम समझते होंगे। यह तो ऐसी बात हो गई कि एक चिड़िया उड़ी फुर्र, दूसरी चिड़िया उड़ी फुर्र? इस तरह तो ताँता लगा ही रहेगा और जहाँ तक हमारी जिह्वा या तर्क-बुद्धि या सहज बुद्धि पहुँच सकेगी अपना हिसाब लगा ही लेगी, लेकिन अपनेको एक थोथा पुतला समझ बैठना और एक पिछली इतिवृत्तात्मकताको नियन्ता रूप मान लेना कोई अच्छी बात नही है। गति-प्रगति भी क्षण-क्षण, पल-पल आपसे कुछ बोलती चलती है और हमसे आपसे–सबसे कहती रहती है–हमसे कुछ लो–हमको कुछ दो। हमसे क्या लिया–हमको क्या दिया? यह नहीं।

हाँ, यह दूसरी बात है कि पुरातनको आदर्श मानकर उसे एक प्रतीक बनाकर चला जाय तो वह एक जीवनके पथपर अग्रसर रहनेके लिए द्वीप बन जायगा। किन्तु बताइये तो जरा पुरातनको कही सम्वल बनाकर आप अपना अस्तित्व क़ायम रख सकेंगे? मगर इतना तो ध्यान रखे बिना काम ही नही चलेगा कि किसी प्रकारकी आँच हमारे पुरातनको न लगे। समझमे नही आया कि श्री दिवाकरजी पुरातन-संस्कृतिवादी है अथवा पुरातन प्रथावादी है अथवा पुरातन आचारवादी अथवा पुरातन रूढ़िवादी अथवा क्या?. . शायद कुछ नही। शायद सब.....।

एक स्थानपर वे लिखते है कि विकास और प्रगतिमे मेरी आस्था दृढ़ है, वह भी पुरातनवादकी देन है। यह उक्ति ऐसी है कि तीन पाँच आठ तो होते है, कोई कहे–नहीं भाई, तीन पाँच आठ होते है और पहला व्यक्ति खड़ा रहे–नही तीन-पाँच-सात ही होते हैं, किन्तु कोई समझानेवाला मिल जाय और किसी तरह समझा दे भाई, ३ और ५ आठ ही होते है और वह फिर कहे नही, मैं मानूँगा ही नहीं कि ३ और ५ आठ होते हैं––तब तीन और पाँच आठ कैसे हो जायेंगे? वास्तवमें आदमी कभी-कभी अपनी अड़ पकड़कर कुछ ऐसी बातें भी कर बैठता है जिसका न तो कोर होता है न किनारा। और सामाजिक उत्थान, राष्ट्रीयता और अस्पृश्यता-निवारण आदिका ढिढोरा पीटकर पता नहीं कहाँकी दुनियामें घूमा-फिरा करता है।

जीवनका अस्तित्व––जीवनको जीवनके रूपमें देखना है न कि मानवताका केवल एक पुजारी बनकर जीवको वाद और पन्थोंमें उलझाये रखना। जो जीवनको थोथा समझ बैठे है और केवल कुछ पंथ-प्रधानवादी होकर अपने पीछे केवल इसी नाम पर–मैं सच कहता हूँ कि मेरे पास जो विवेक है, मेरे पास जो ईमान है, यह जो संस्कृतिका हलन-चलन है, दुनियाके सारे जो सिद्धान्त है––और जीवन और कलाकी अभिव्यक्तियाँ है और तरह-तरहकी जो कपोल कल्पनाएँ है वे सब भी पुरातनवादी ही हैं। इसलिए हे भाइयो, जैसा मै बन गया वैसा तुम भी बनो, क्योंकि मै परीक्षाप्रधानवादी हूँ, क्योंकि मै बुद्धिवादी हूँ, क्योंकि मै पुरातनवादी हूँ,

वादी हूँ, वादी हूँ, इतना वादी हूँ, कि सब वादी हूँ, किन्तु जरा सोचिए तो पुरातन श्रद्धेय है या ज्ञेय ? अनुकरणीय है अथवा आचरणीय, भावनात्मक है अथवा क्रियात्मक, आराधनात्मक है अथवा साधनात्मक। जो बीत गया वह आदर्श बन सकता है किन्तु जीवनका साफल्य नहीं। भविष्यसे बढ़कर जीवनका साफल्य और क्या होगा ? और तो और, आपसे बढ़कर और क्या होगा ? पुरातनता अगर आप अपनेमें पाते हैं तो उसी पुरातनतामें नूतनता सम्मिश्रित कर पुरातनमें चार-चाँद जड़ दीजिए। यह नहीं कि पुरातनकी एक लम्बी लटी आप दबिए और उसका छोर आप देखिए दूसरे छोरका ऐतिहासिक खण्डहरामें विलीन कर दीजिए।

पीछे वही देखे जिसके आगे पथ न हो और पुरातनकी बात वही सोचे जिसके लिए नूतनतामें विकास न मिलता हो। हाँ, नूतनतामें अगर कुछ ऐसा भद्दापन जँचे जो नूतनतामें खटक हो तो उसे ठोंककर मार दो और उस नूतनताम पुरातनको समाकर ऐसे विकास कर दो, ऐसी प्रगति कर दो, उसे ऐसा बना दो कि पुरातन नूतन बनकर और नूतन बन जाय।

बौद्धिक ईमानदारीके बाद और सहज हृदयगम करनेके बाद, परम्पराग्रथित वचन-खण्ड और इसी तरह परम्परावाद, परीक्षा प्रधानवाद और बुद्धिवाद और उसमें महावीर, बुद्ध, ईसा और मुहम्मदके नाम जोड़कर अपने विचारका कलेवर किसी तरह बढ़ाया जा सकता है। येन केन प्रकारेण शब्दोंके भाण्डारको धुरीपर एक चर्खेकी तरह बार बार तरह-तरहसे घुमाया जा सकता है किन्तु यहाँ अपने प्रति कोई प्रवचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं होगी क्या ?

आजकी बीसवीं सदी और बीसवीं सदीमें उत्पन्न मानव भले ही कितना पीछे चला गया हो, लेकिन वह पीछे भी जाकर कुछ भी आगे ही बढ़ा है। उतना कुछ पुरातनको पाकर कुछ नयेमें मिलाकर कुछ नई ही देन दी है, कुछ नई ही सजना की है।

युग बदलता जा रहा है, एक-एक पलका इतिहास अपने पीछे छोड़ता जा रहा है और मानव उसका तन्तुवाय बना हुआ है। मशीन तन्तु, जीवन-गतिमय बनता जा रहा है और प्रगति जीवनमें समाती जा रही है—संसार आगे बढ़ता जा रहा है। कौन यह कह सकता है कि आधुनिक उतना बुद्धिवादी नहीं है जितना पुरातन, लेकिन यह तो स्वयंसिद्ध है कि आगे आनेवाला नूतन आजके नूतनसे और भी बुद्धिवादी होगा। मतलब आज जो पीढ़ी विद्यमान है उसके आगे आनेवाली पीढ़ी और भी बुद्धिमान होगी। तर्क यह दिया जा सकता है कि पुरातन निर्माणकारी था और नूतन ध्वंसकारी तो आगे आनेवाला नूतन प्रलयकारी अवश्य होगा ? यही एक ऐसा तर्क है जिसके बारेमें यही कहा जा सकता है कि मनुष्य अपनी गति रोक दे, प्रगति रोक दे, प्रवाह रोक दे और बस पुरातनवादी बनकर बैठा रहे, रामरामी जपता रहे। अन्तके शब्दोंमें विषयको तूल न देकर केवल

यही कहा जा सकेगा कि पुरातन हमारा श्रद्धेय बने तो नूतन हमारा ध्येय बने, पुरातन आदर्श बने तो नूतन कार्य बने और पुरातन और नूतनमें घुला-मिला जीवन और नूतन बने, और मै इस फेरमें नही पड़ा कि मैं नूतनवादी हूँ क्योंकि मै पुरातनवादी नही हूँ। लेकिन चूँकि पुरातनवाद हेय नही है इसी लिए मैं नूतनको भी नही छोड़ सकता और इसी लिए मैं कह सकता हूँ कि मै नूतनवादी हूँ और एक बात और कह दूँ कि यह नूतनता इतनी छोटी नही है कि छोटेसे दायरेमे ही घुल-मिल जाय लेकिन यह तो इतनी विस्तृत है कि यह आजमें आगेसे आनेवाले करोड़ों वर्षोतक जी सकती है और आगे आनेवाले करोड़ों वर्षोमें भी अपना अस्तित्व और नूतन वना सकती है। मैं मर जाऊँ तो मर जाऊँ लेकिन विश्वास है कि और और नूतन वननेवाली यह नूतनता नहीं मरेगी और इसी चिर शाश्वतताको मै नूतनताकी संज्ञा देता हूँ और इसीलिए मै कहता हूँ कि मै नूतनवादी हूँ। क्योंकि प्रगतिका संबल है और इसीलिए मै पुरातनवादी नही हूँ। मै नूतनवादी हूँ।

प्रवाह

सलिले! तुझे इस बातका गर्व है कि तेरा प्रवाह इतना गम्भीर है, तू समझती है कि तूने अपने प्रतिद्वन्द्वियोंपर विजय पाली। तू निश्चेष्ट होकर बह रही है, मानों तुझे अब कोई चिन्ता नहीं है। किन्तु देख, तू जिन शिलाखण्डोंसे टकराती थी, वे ही अब चूर्णित होकर तेरे अंग प्रत्यंगमें व्याप्त है। जिन विशालकाय शत्रुओंको तूने सगर्व अपने आगेसे हटाया था, वे ही रेणु होकर तेरे अन्तःस्थलपर राज करते हैं।

निर्झर! तू रोता है कि तेरा पथ बद्ध है, शिलाखण्ड क्षण-क्षणपर तुझसे टक्कर लेते हैं। तेरा प्रवाह इतना निर्बल है कि एक पत्थर भी उसे रोक देता है! देख, उसी अवरोहसे; उसी अनन्त प्रवाह चेष्टाके कारण, तेरा हृदय कितना निर्मल है।

—*'भग्नदूत' से*

भारतकी शारीरिक गरीबी

वि० नरेन्द्र बी० ए०, साहित्याचार्य

शारीरिक गरीबीसे हमारा तात्पर्य आयुक्षीणतासे है। अनैतिकता और असदाचार जैसे राज-योग कीटाणु जिसे लग चुके हैं उसकी आयु क्षीण होना आश्चर्यकारी नहीं। इसके कारण हैं—

१—जनसंख्या-वृद्धि।

२—साम्प्रदायिकता।

३—धर्मान्ध जातीयता।

४—उपयुक्त भोजनका अभाव (पौष्टिक तत्वोंकी कमी)।

५—नशीली वस्तुओंका उपयोग।

६—चिकित्सक और चिकित्सालयोंकी कमी।

इन सब रोग सवर्धक—आयुष्क घातक कारणोंपर एक साथ सक्षेपमें विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे—

१ जनसंख्या वृद्धि —

भारतवर्षकी प्रतिवर्ष ५० लाख बढ़नेवाली संख्या ऐसी है, जिसके कारण उसे ऐसा पौष्टिक भोजन पाना एक सुन्दर स्वप्न ही है। भारतवर्षमें इस समय (हिन्दुस्तानमें लगभग ३० करोड २१ लाख, पाकिस्तानमें ६ करोड ६८ लाख) कुल ३८ करोड ८९ लाख ६७ हजार ६५५ आदमी रहते हैं। हिन्दुस्तान गाँवोंका देश है। इसलिए इसमें जब शहर नहीं के बराबर हैं, तब गाँव लगभग ७ लाख ३० हजार हैं। १३ प्रतिशत आदमी शहरोंमें रहते हैं, तो ८७ प्रतिशत गाँवोंमें रहते हैं। यह जनसंख्या सारे विश्वकी जनसंख्याके पाँचवें भागके बराबर है, या कहना चाहिए कि संसारका हर पाँचवाँ आदमी भारतवासी है।

२ साम्प्रदायिकता —

परन्तु यह जनसंख्या किसी सगठित सूत्रमें बँधी नहीं है। जो धर्म आत्म-कल्याणका साधन था, उसके नामपर यह जनसंख्या सात भागोंमें बँट गई।

१—हिन्दू २०६० लाख (हरिजनोंको छोडकर)

२—मुसलिम ९४० लाख

३—ईसाई ६० लाख,

४—सिक्ख ५० लाख,

५—जैन २० लाख (जो जातिसे हिंदू, धर्मसे जैन हैं)

६—अछूत ४८० लाख

७—जंगली २०० लाख

सगठन और सुव्यवस्थाके लिए बनाई गई वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथाके रूपमें परिणत होकर साम्प्रदायिकता—जैसे विष-बीजकी क्यारी बन गई!

३–धर्मान्ध जातीयता :—

जातियोंकी संख्या ३-४ हज़ार तक पहुँच गई है, इतनेसे ही कुशल नहीं, निर्वल उपजातियोंपर सवल अन्याय ढाहने लगे। वैदिकोंकी मन-मानीसे ऊवकर जैनियोंने अपनेको जातिसे भी जन कहना प्रारम्भ कर दिया। इससे धर्मके नामपर कलंक लगा सो तो ठीक ही है; आर्योंके पवित्र आदर्शोंका प्रचार और संगठन समाप्त हो गया। पारस्परिक विद्वेष की ज्वलन्त ज्वालामें संगठन भस्मी-भूत हो गया, सहानुभूति और आत्म-संयम विदा हो गये। इसीका दुष्परि-णाम है, शारीरिक क्षीणता या आयुका अकाल विध्वंस, प्रतिवर्ष १०० मनुष्य पीछे ३४ वच्चे माँकी गोदमें खेलते हैं, तो उनमेंसे २५ मृत्युकी गोदमें जा खेलते हैं। शेष ६ वच्चे जिस किसी भी तरह वड़े भी हुए तो जब अन्य देशोंके मनुष्य अपनी औसत आयु ७२ वर्ष तक जीवित रहते हैं, तव भारतीय अपने औसत आयुके २२ वर्ष भी पूरे नहीं कर पाते।

४ पौष्टिक भोजनका अभाव :—

एक शाकाहारी व्यक्तिके लिए यह पौष्टिक भोजन आवश्यक है।

१—गेहूँ चावल आदि—	१४	औंस
२—दाल	३	,,
३—पत्तेवाली भाजी	४	,,
४—जमीकन्द	३	,,
५—अन्य तरकारी	३	,,
६—फल	३	,,
७—गुड़ शक्कर	२	,,
८—दूध	१०	,,
९—शाकमें तैल घी आदि	२	,,

"जैसा खाओ अन्न, वैसा होवें मन" कहावत विलकुल ठीक है। वच्चे पैदा करनेके लिए तो लोग मशीन वन रहे हैं, परन्तु सन्ततिके परिपालनकी ओर एक तो ध्यान है ही नही, है भी तो शाक और दूध जैसे पौष्टिक पदार्थोंका मिलना न मिलनेके वरावर है। वर्ष भरके लिए ३ करोड़ टन-शाक आवश्यक है, परन्तु उत्पन्न होता है केवल ६० टन! दूधके सम्वन्धमें हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है, कि पहिलेकी अपेक्षा जैसे-जैसे गायोंकी कमी होती गई, घी दूव भी वैसा ही मँहगा होता गया। उदाहरणके लिए—ईसाके ५०० वर्ष पूर्व कालायन के कालमें—गौ १० पैसेको, वछड़ा ४ पैसे को, वैल ६ पैसेको और भैंस ८ पैसे को मिलती थी! दूध एक पैसेमे १ मन आता था।

२—इसके दो सौ वर्ष बाद मसीह से ३०० वर्ष पूर्व सम्राट् चन्द्रगुप्तके शासनकालमे—घी १ पैसेका दो सेर, दूध २५ सेर मिलता था।

३—ईस्वी सन्‌के शुरू में ४८ पैसेकी गाय, ६३ पैसेको वैल मिलता था।

४—पाँचवी शताव्दी विक्रमा-दित्य राज्यमें गाय ८० पैसेमें वैल ५१२ पैसेमें।

५—अलाउद्दीनके जमानेमे घीका भाव दिल्लीमे ७४ पैसे मन था। अकबरके जमानेमे १९५ आने मन था।

आजसे १५ वर्ष पहलेके युगका तुलनात्मक अध्ययन कीजिये तो आपको पता लगेगा कि सन् १९३५

अनेक गाँवोंको मिलाकर यदि २००० आदमी पीछे भी एक डाक्टर या वैद्य रखा जाय तो भी कुल दो लाख डाक्टर वैद्य आवश्यक हैं। नर्सें कुछ दिन पूर्व ६५०० थीं जो कि अनुपातमें ८६००० आदमी पीछे एक पड़ती थी। अब नर्सों (परिचारिकाओं) की संख्या १५००० तक पहुँच चुकी है। परन्तु इतनेसे होना क्या है? जब तक १० लाख नर्सें न होंगी, काम चलनेका नहीं। दवाइयाँ भी उत्कृष्ट कोटिकी तभी आतीं जब अन्य देशोंके लिए वे पुरानी या अनुपयुक्त सिद्ध हो जाती हैं। परिणाम यह होता है, कि १५ लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष अकेले टी० बी० (क्षय तपेदिक) जैसे ही भयंकर रोगकी भेंट हो जाते हैं।

आवश्यकता है, उत्तम चिकित्सा और उत्तम खाद्य-व्यवस्था की। नये-नये चिकित्सालय खुलना तो आवश्यक है ही, पर साथ ही बीमारी कम करके लोगोंको नीरोग रह सकनेके लिए उत्तम खाद्य-पदार्थोंकी उन्नति जितनी आवश्यक है, उतनी ही जनसंख्या, साम्प्रदायिकता, धर्मान्ध जातीयता और नशीली वस्तुओंकी वृद्धि रोकना भी आवश्यक है।

इतना हो सका तो शारीरिक गरीबीके कारण समूल नष्ट होनेपर समृद्धि और स्वास्थ्यका युग आते विलम्ब न होगा।

सहनशीलता

एक भक्तने एक पहलवानको देखा कि बड़े आवेशमें है, क्रोधमें है और दाँत पीस रहा है। उसने पूछा कि "इसका क्या हाल है?" लोगोंने कहा, 'अमुक पुरुषने इसे गाली दी है।' भक्त बोला, "यह नालायक हजार मनका पत्थर उठा सकता है, पर एक बात उठानेकी शक्ति नहीं रखता!"

अपनी पहलवानी और मर्दानगीका दावा छोड़ दो। यदि मनुष्य नीच प्रकृतिके वशमें है तो क्या हुआ कि वह मर्द है या स्त्री है? यदि तुमसे हो सके तो किसीका मुँह मीठा करो, दाँतसे हाथ काटना मर्दानगी नहीं है।

चाहे कोई पुरुष हाथीका मस्तिष्क तोड़नेका बल रक्खे, पर यदि उसमें मर्दानगी नहीं है तो वह मर्द नहीं है। मनुष्य खाकसे पैदा हुआ है। यदि वह 'खाकसार' नहीं है तो मनुष्य नहीं है। —*शेख सादी*

अब मेरे समकित सावन आयो

श्री वीरेन्द्रप्रसाद जैन

अध्यात्म-रस-रसिक कवि-वर भूधरदासजी ऐहिक जगत्के अभिनव पर मादक आकर्षणोसे आकर्षित न हुए। उन्होंने कविता-कामिनी की वासनाके वस्त्राभूषण न पहना। देवके–'**जोग हू से कठिन संयोग पर-नारी को**'–के 'चोज' से उन्हें मेल न खाया। उन्होंने तो सबल स्वरमें कहा–'**गणिका संग जे नर लीन भये, धिक है, धिक है, धिक है तिनकौं।**' उन्होंने तो प्रतिपादित किया–'**परती लखि जे धरती निरखैं, धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं नर ते।**' यह था उनका आदर्श एवं वर्ण्यविषय! इस क्षेत्रसे भी वे आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। अब अध्यात्मवादका शुष्क क्षेत्र आ जाता है। काव्यके लिए इसे मरुभूमि कहा गया है। किन्तु, ख़ूबी तो यह कि इस मरुस्थलमें भी कविकी भावुकता, तन्मयताने शान्तरसकी सुमधुर, स्निग्ध एवं पावन पयस्विनी प्रवाहित की है कि जिसके विमल वारिको उकताया हुआ व्यक्ति पीकर अलौकिक ब्रह्मानन्दका अनुभव करता है। यह एक साधना है और कवि इसका साधक है। यहाँ कविके लिए 'साधना ही जीवनका मूल' है।

साधक कवि साधनामें लीन है। वह आत्म-साक्षात्कार कर रहा है। उससे भ्रान्तियाँ अब कोसों दूर रह गई हैं। महाकवि बनारसीदासजीके शब्दोंमें 'सुबोध-घट' प्रकट हो गया है। और तब कविके श्रीमुखसे निकल पड़ा कि '**अब मेरे समकित सावन आयो।**'

हाँ, तो कविने सम्यक्त्व-रूपी सावन पा लिया है। सम्यक्त्व-वर्षाके संवर्षणसे मिथ्या-मति-गीष्म-ऋतुको अपनी राह लेते ही बनी है।

'बीति कुरीति मिथ्यामति गीषम,
पावस सहज सुहायो।'

कुरीति - मिथ्यामयी - निदाघके प्रयाणपर 'समकित सावन' आ गया। फिर क्या था सुरति (आत्म-सुधि) की घनघोर घटाएँ उमड़-घुमड़कर छाने लगी। इन काले-कजरारे बादलों में अनुभवरूपी चपल चपला भी चमक उठी। ऐसे सुन्दर समयको पाकर भला विवेक-पपीहा ही क्यों मौन रहता? वह भी 'पी-पी' चुहकने लगा। तब भला यह मनमोहक वातावरण सुमति (सुबुद्धि) सुहागिन

रमणीको क्यों न भाता ? उसका मन बरबस ही लुभाने लगा।

'अनुभव दामिन दमकन लागी,
सुरति घटा घन छायो।
बोलै विमल विवेक पपीहा,
सुमति सुहागिन भायो ॥'

यह है 'समकित-सावन' का वैभव और प्रभाव। वह जो आत्म-सुधि-रूपी मेघ मंडराने लगे, उनमें गड-गडाहट होना भी तो स्वाभाविक है न ? इसी गर्जन-तर्जनके विषयमें तो कवि कह रहा है कि गुरु-वाणी रूपी गर्जना जो हो रही है उसे श्रवण कर तो असीम आनन्दानुभव होने लगा। परिणाम-स्वरूप सु-मन-मयूर विहँस उठे जैसे वे नर्तन कर रहे हों। अब कविकी तल्लीनता और बढ़ती है। वह साधक तो है ही, अब उसकी भावनाओंमें और प्रवणता आ गई है। वह शाश्वत-सुख-पथ या मुक्ति-मार्गपर अग्रसर हो रहा है। उसे अनुभूति हो रही है कि 'समकित सावन' आ गया, सुरति-मेघोंका पानी बरस गया, अब साधक भाव भी अंकुरित होने लगे। वे उगने लगे। फलत जिधर देखो उधर ही सुखातिरेक दिखाई देने लगा मानो सभी जगह हर्षकी हरियाली ही छा गई हो।

गुरु ध्वनि गरज सुनत सुख उपजै,
मोर सुमन विहँसायो।
साधक भाव अँकूर उगे बहु,
जित तित हरष सवायो ॥'

कवि भावालोकमें पहुँचते-पहुँचते वहाँ पहुँच जाता है, जहाँ सारी भ्रान्तियाँ मिट जाती है। भूल-धूल धुल जाती है और समरस वातावरण आ जाता है। वह ऐसा घर पा लेता है जहाँ किसी बातकी चिन्ता नहीं रहती है। कितना भी पानी क्यों न बरसे वह चूता नहीं—टप-टप टपकता नहीं—

'भूल धूल कहि मूल न सूझत,
समरस जल झर लायो।
'भूधर' को निकसै अब बाहिर,
निज निरचू घर पायो ॥'

यही भावनाकी चरम परिणति है और साधनाका चरम लक्ष्य !





श्री जैनेन्द्रकुमार

श्री विष्णु प्रभाकर

मुझे ठीक याद नहीं, परन्तु वह सन् १९३० के आसपासकी बात है। मै पंजाबके एक पूर्वी नगरमें रहता था। एक दिन बैठक में बैठा हुआ कोई उपन्यास पढ रहा था कि एक प्रौढ़ महिलाने बिना किसी संकोचके वहाँ प्रवेश किया। मुझे उनका रूप आज भी स्मरण है—लम्बा क़द, धवल वस्त्र, गौर वर्ण और मुखपर मृदु मुस्कान——किसी उद्देश्यके लिए अपने अर्पण कर देने-वाली भिक्षुणीकी तरह वे मुझे लगी। उनके व्यक्तित्वमें जो मधुर मातृत्व छिपा हुआ था उसने मेरे किशोर मानसको दुलारा। उनके हृदयमें एक रसीद बुक थी और वे किसी महिला-संस्थाके लिए चन्दा माँगने आई थीं। चन्दा तो उन्हें मिला ही पर जबतक मेरे मामा अन्दरसे पैसे लावें तबतक मुझे उनका परिचय भी मिला। उन्होंने मुझसे पूछा——"क्या पढ़ रहे हो?"

मैंने उस उपन्यासका नाम बता दिया। सुनकर वे बोली——'परख पढ़ा है?'

'जी नही। किसने लिखा है?'

'जैनेन्द्रकुमारने।'

'अच्छी पुस्तक है?'

'उसपर हिन्दुस्तानी एकेडेमीसे पुरस्कार मिला है।'

मैंने सोचा जिसे पुरस्कार मिला है वह अवश्य महान् लेखक है। मैंने तुरन्त उनसे कहा—'आप मुझे उस पुस्तकके मिलनेका पता बता दीजिये। मै जरूर पढ़ूँगा।'

बाते आगे बढीं। उन महिलाने बताया—'जैनेन्द्र मेरा लड़का है।'

यह कहते हुए उनका सारा अस्तित्व उल्लाससे भर उठा। उनके नेत्रोसे झरते हुए तरल पदार्थने मुझे श्रद्धासे भर दिया। मुझे याद है कि तब मेरे मनमें एक विचार उठा था—'क्या मैं भी जैनेन्द्र-जैसा बन सकता हूँ?'

जैनेन्द्रसे मेरा प्रथम परिचय इसी प्रकार हुआ था। जननीसे जिसका परिचय मिले उसके भाग्यसे ईर्ष्या

होनी चाहिए। आत्मीयता तो उनमें होती ही है। उसके बाद उनकी पुस्तकोंने इस परिचयको और भी पुष्ट किया। एक बार दिल्लीमें, कम्पनी-बागकी किसी सभामें दूरसे उन्हें कन्धे पर चादर डाले देखा–इकहरा बदन, मझोला कद, प्रशस्त ललाट और प्रमुख नासिका, बातें करनेपर अन्तरमें लय हो जानेको आतुर आँखें और तदनुसार कुछ कुछ तनी हुए ग्रीवा–देखता रहा पर पास जाकर उनसे बातें करनेका साहस नही पा सका। कहाँ व हिन्दीके महान् लेखक, कहाँ एक क्षुद्र पाठक।

पर भाग्यकी बलिहारी–एक दिन-मैं भी लिखने लगा और साहस इतना बढा कि नीर-क्षीर-विवेकी 'हंस' (मुंशी प्रेमचन्द्रका हंस) तक जा पहुँचा। प्रेमचन्द्रजीकी मृत्युके बाद मेरी कई रचनाएँ उसमें छपी और तभी जाना जैनेन्द्रकुमार उसके सम्पादक हो गये है, लेख उनको भेजने होंगे। यह सितम्बर १९३७ की बात है। एक कहानी दिल्लीके पतेपर भेजी और फिर उत्सुक हृदयसे उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगा। यद्यपि भाई साहबने उस कहानीको अच्छी बताया था पर मेरे लेखकके लिए तो वह तभी अच्छी हो सकती थी जब 'परख' के पुरस्कार-विजेता-लेखक उसे अच्छी कहें। आखिर उनके हाथका लिखा २० सितम्बर १९३७ का कार्ड मुझे मिला—

प्रिय महोदय,

कहानी मिली। उसे काशी छपने भेज रहा हूँ। अपनी कहानीमें भावना-की मुलायमियत थोड़ी कम भी हो जाने दें और उसकी जगह Purpose का काठिन्य आ जाय तो मुझे कहानी और भी रुचे। लिखते रहिए।

विनीत–जैनेन्द्रकुमार

पत्रका और कुछ भी असर क्यो न हुआ हो, उसने उस दुविधाको निश्चय ही दूर कर दिया जो मुझे उनसे मिलनेमें हो रही थी। मैं दिल्ली पहुँचा। शायद वह अक्तूबर १९३७ के पहले या दूसरे सप्ताहका कोई दिन था, मैं अपने बडे भाईके साथ दरिया-गंजमें उनके निवासस्थानपर पहुँचा। कई क्षण हम जीनेके नीचे खडे रहे। सयोगवश तभी श्रीमती जैनेन्द्र कहीसे आ रही थी। उनसे पूछा–'जैनेन्द्रजी यही रहते हैं।'

वे बोली–'ऊपर है, चलिये।'

पर हम आगे कैसे चलें? आखिर उन्होने स्वय आगे बढते हुए कहा–'आप झिझकते क्या है? नि सकोच चले आइये।'

शायद इस चुनौतीने हमें बल दिया। ऊपरके कमरेसे कई व्यक्तियो-के बोलनेका स्वर आ रहा था। और जैसे ही हमने अन्दर प्रवेश किया वैसे ही सबकी दृष्टियाँ हमारी ओर उठी। मैने देखा–वह छोटा-सा कमरा जिसके एक कोनेमें एक मेज-कुर्सी पडी है, चटाईपर बैठे हुए व्यक्तियोंसे भरा हुआ है और बीचमें टहल रहा है एक इकहरे बदन और मझल कदका व्यक्ति, जिसने केवल बनियान और जाँघिया पहना है और कन्धेपर डाला है तौलिया। मैं शक्लसे जैनेन्द्रको पहचानता था, इसलिए यह समझनेमें

कोई कठिनता नहीं हुई कि घूमनेवाले व्यक्तिसे ही मिलना है। मैंने प्रणाम किया और उन्होंने बैठनेका संकेत। साथ ही उनकी दृष्टिने पूछा—'कहाँसे आना हुआ ?'

परिचय मेरे भाईने दिया। नाम सुनते ही जैनेन्द्र बोल उठे—You write remarkably well. (तुम विशेष रूपसे सुन्दर लिखते हो)

इस वाक्यने मुझे कितना बल दिया, यह निश्चय ही में आज शब्दोंमें ठीक-ठीक न बता सकूँगा। मैं उनके कमरेकी अकिंचनताको बिल्कुल ही भूल गया और यह भी भूल गया कि यहीं बैठकर इस व्यक्तिने अपने साहित्यका निर्माण किया है। एक नये लेखकसे इस प्रकारका व्यवहार उन दिनों (आज तो और भी अधिक) निस्संदेह अकल्पनीय-सा लगा। उनसे मेरा यह पहला प्रत्यक्ष परिचय था। पहले परिचयकी बहुत कहावतें प्रचलित हैं। दो ध्रुवोंके अन्तरके समान अन्तर वाली 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात:' और Love at first sight (चक्षुराग) जैसी उक्तियाँ किसी कविकी कपोल कल्पना नहीं है। वे किसी मेरे-जैसेके प्रत्यक्ष अनुभवका परिणाम हैं। उस दिन मेरा अनुभव दूसरी उक्तिके आसपास था। उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं कहा जा सकता परन्तु उन्नत ललाटकी छायामें, श्येन नासिकाके आसपास अन्दरको दबेसे जो दो नयन हैं और जो कहीं दूर झाँकते जान पड़ते हैं, आपको पकड़ लेनेकी उनमें पूरी शक्ति है।

उन्होंने मुझे भी पकड़ा। मेरा भय कम हुआ और मेरी तबियतमें जो अलगाव था उसे न रखनेका निमंत्रण लेकर मैं लौटा। लेकिन इससे पहले मै कुछ करनेका साहस बटोर सकूँ उन्होंने और भी गहरी आत्मीयतासे उस निमंत्रणको दोहराया। एक महीना बाद, नवम्बर १९३७ के अन्तिम सप्ताहकी बात है। शरत्कालीन रात्रिके गहरे सन्नाटे और घने कुहरेसे आच्छादित अपने छोटे-से नगरकी एक सुनसान गलीमें, मैं टिमटिमाती हुई लालटेनके सामने बैठा लिख रहा था। तब अनायास एक शब्द उस सन्नाटेको आलोडित करता हुआ उठा—'विष्णुजी कहाँ रहते हैं ?' मैं कुछ चौंका, फिर भी वह पहली पुकार मैंने अनसुनी कर दी। परन्तु दूसरे ही क्षण वह स्वर फिर उठा, फिर उठा। तब मुझे भी उठना पड़ा। अन्धकारमेंसे झाँककर मैंने पूछा—कौन साहब ?

सन्नाटेमें वही स्वर गूँजा—'जैनेन्द्र।'

लिखनेमें मुझे और पढ़नेमें आपको देर लगेगी पर मेरे शरीरमें ऊपरसे नीचे तक सिहरन दौड़नेमें देर नहीं लगी—'जैनेन्द्र ! इस समय ? यहाँ...।' सोच रहा था और गिरता पड़ता दौड़ा जा रहा था। किवाड़ खोलकर किसी तरह कहा—'नमस्ते। आप इस समय ... ?'

जवाब दिया—'हाँ, इधर आना हुआ, सोचा तुमसे मिलता चलूँ, कहानी परसे तुम्हारी गलीका नाम पढ़ा था।'

'बड़ी कृपा की आपने।'

'अरे कृपा क्या है'—उन्होंने कुछ हँसकर कहा। फिर ऊपर चढ़ते-चढ़ते पूछा—'बड़ा सन्नाटा है ?'

'जी छोटे शहरोंमें रात जल्दी आ जाती है और फिर यहाँ तो बिजली भी नहीं है।'

वे वहीं मेरे पास फर्शपर बैठ गये। चारों तरफ मेरा सामान बिखरा पड़ा था। पूछा—'क्या लिख रहे हो?'

मैं तब 'आश्रिता' कहानी लिख रहा था। उसीकी चर्चा शुरू हो जाती, पर मैंने बातको घुमा दिया। कुछ और चर्चा चल पड़ी। वे बातें करते जाते थे और साथ ही मेरी प्रत्येक वस्तुका निरीक्षण भी। उन्होंने मेरे पैनको, जो खुला रह गया था, बन्द करके रख दिया। फिर सामने दीवार पर लगे हुए स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गान्धीके चित्रोंको देखा और बोले—'सफलता तब है जब लेखनीकी शक्ति वाणीमें आ जाये। मेरी लिखी हुई बातका जितना आदर है उतना ही बोली हुई बातका हो, मैं यही चाहता हूँ।'

शब्द मेरे हैं पर भाव उनका है। स्पष्ट ही उनका लक्ष्य वे दोनों महापुरुष थे। आज जो उनमें प्रवचन देनेकी या प्रश्नोत्तर-पद्धतिको प्रोत्साहन देनेकी प्रवृत्ति है उसके मूलमें यही महत्त्वाकांक्षाकी भावना है।

लौटते समय जब मैं कुछ दूर तक उनके साथ गया तो उन्होंने मुझसे पूछा—'क्या तुम इधर मेरी पुस्तकोंकी बिक्रीका प्रबन्ध करवा सकते हो?'

मरुभूमिमें कोई पानीकी माँग करे ऐसी वह बात थी। इस बातसे मुझे कुछ धक्का भी लगा। क्या लेखकका अपना लिखा बेचना भी पड़ता है? पर यह विषयान्तर है उस क्षण तो उनकी आत्मीयताने मुझे जीत लिया था। इस पराजयमें मुझे सुख मिला। इसके बाद रहा-सहा व्यवधान भी जाता रहा और मनमें एक निजीपनका आविर्भाव हुआ। उन्होंने पहले पत्रमें मुझे 'प्रिय महोदय' कहकर सम्बोधित किया था पर इस घटनाके छः-सात दिन बाद 'आश्रिता' कहानी पाकर उन्होंने लिखा—

भाई विष्णुजी,

'आश्रिता' कहानी अभी मिली। अभी देख भी ली। बहुत अच्छी मालूम हुई। मुझे ईर्ष्या होती है। इतनी सूक्ष्मता हिन्दीमें तो देखनेको नहीं मिलती। क्या मैं बधाई दूँ।

लगभग साढ़े तीन महीनेके अल्प कालमें ही 'प्रिय महोदय' से मैं 'भाई विष्णुजी' बन गया। इस आत्मीयताने मेरे साहित्यको क्या कुछ दिया इसका मूल्यांकन सहज नहीं है। जिस कालमें मेरी हत्या हो सकती थी उसी कालमें मुझे इतना स्नेह मिला! इस गौरवका श्रेय अकेले मेरा नहीं है जैनेन्द्र-जैसे मित्रोंका भी है।

पर जैनेन्द्र जो ऊपरसे इतने सरल दिखाई देते हैं, क्या वे सचमुच सम्पूर्ण रूपसे सरल हैं। फिर एक घटना याद आ रही है। मई १९३८ में मेरा विवाह हुआ था। भाई यशपालके साथ वे भी बारातमें गये। हरिद्वार जाना था। मार्गमें रुड़कीके पास नहरके किनारे रुकनेकी व्यवस्था थी। न जाने कैसे उस पार पत्थर फेंकनेकी प्रतियोगिता शुरू हो गई और मुझे यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि

जैनेन्द्रजी अनायास ही सबसे आगे निकल जाते है। यह अचरज मुझे ही हुआ हो सो बात नही। अक्सर जब लोग सुनते है कि जैनेन्द्र माने हुए खिलाड़ी है या सिद्धहस्त तैराक है, बहुत अच्छी साइकल चला लेते है तो उन्हें भी सहसा विश्वास नहीं होता। उसका कारण है उनका व्यक्तित्व और उनकी वेशभूषा। वे सादगीसे रहते हैं। अकर्मण्य सादगी नहीं, उसका स्थान तो कहीं गन्दगीके आस-पास है और महत्त्वाकांक्षी गन्दा नहीं रह सकता। लेकिन हमने सादगी के कुछ अर्थ मान लिये हैं, इसीलिए उन्हें देखकर अक्सर लोगोंको धोखा हो जाता है। एक बार एक बन्धुने किसीका शाल ओढ़ रखा था। उसे देखकर वे बोले-'आपको यह शाल सजता है खरीद लो न।' दूसरी बार एक मित्र उनके पास इसलिए आये कि व उनके साथ चन्देके लिए चले। उन्होंने पूछा—'कितने चन्देकी बात है।' बात बहुत बड़ी नहीं थी। वे बोले—'आप मुझसे दस-बीसकी क्या बात करते है। हज़ार दस हजारकी करिए। तब मै आपके साथ चल सकता हूँ।' एक बार फिर किसी सम्बन्धमें उन्होंने कहा था—"क्या बताऊँ सेकेण्ड क्लास में ट्रैवेल करनेकी आदत पड़ गई है।" इधर उन्हें वायुयान प्रिय है। तो यह सब अस्वाभाविक नही है। ये घटनाएँ, उनकी दिखाई देनेवाली रहन-सहनकी सादगीके पीछे जो गहरी महात्त्वाकांक्षा छिपी हुई है, उसे उभारती हैं।

साहित्यकी चर्चा करते हुए उन्होंने मुझसे कहा था कि मै सैक्स और अर्थ इन दोनोंको साहित्यकी मूल प्रेरणा मानता हूँ। पौदेके दो भागोंकी तरह सेक्स जड़की भाँति धरतीके नीचे फ़ैलती है और अर्थ पत्र-पुष्पके समान धरतीके ऊपर फैलता है। उनके जीवनमें जो जटिलता है उसका कारण इन शब्दोंमें उपस्थित है। जैनेन्द्र यों अहिंसामें विश्वास करते हैं। अहिंसा और महत्त्वाकांक्षाका मेल कैसा। अनहोनी-सी बात लगती है पर जो साध सकता है उस साधकके लिए अनहोनी कुछ नहीं है। जैनेन्द्र इस दृष्टिसे साधक है। वे युद्धमें सदा निडर और तूफ़ानमें सदा शान्त रहनेका प्रयत्न करते है। उनपर हमला होता है तो वे कभी उग्र रूप धारण नहीं करते। अन्दरसे उबलकर भी वे शान्त रहना चाहते हैं पर वे बदला न लेते हों सो बात नहीं। वे बदला लेते हैं, ऐसा लेते है कि हमलावर तिलमिला उठता है उसी तरह जिस तरह वे तिलमिलाये थे। तिलमिलाते न तो बदला कैसे लेते? दिल्लीकी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था शनिवार समाजमें उनपर एक लेख पढ़ा गया था। अनजाने ही वह कुछ असंतुलित हो गया था। उनके व्यक्तित्वपर काफ़ी करारी चोटें थी। उन्होंने उसका उत्तर दिया यद्यपि देना नहीं चाहिए था। उस उत्तरकी एक बात मुझे याद है। उन्होंने कहा था कि इस लेखमे मैंने अपने चेहरेको तो देखा ही पर साथ ही आलोचकको भी देखा।

आलोचक पर यह हथौड़ेकी चोट थी। आलोचक यदि अपने लेखमें रह जाता है तो उसका अध्ययन विषयगत

(Objective) न होकर आत्मगत (Subjective) हो जाता है। उसे यह अधिकार नही है।

जैनेन्द्रको उत्तर देना आता है। और उसमें जो अर्थ गर्भित रहते हैं वे सुननेवालेके दिलको पकड़ लेते हैं, यह उनकी प्रतिभाका प्रसाद है और इसी प्रसादके कारण उनके साहित्यमें प्राण है। अगस्त १९५० की बात है। रेडियो स्टेशन पर उनकी नियुक्तिकी चर्चा चल पड़ी थी। लोग तरह-तरह की बातें करते थे। मैंने भी उनसे पूछा–'सुना है, आपकी नियुक्ति रेडियो-स्टेशन पर हो रही है।'

वे बोले—'ऐसा तो हो ही नही सकता।'

'क्यो ?'

'क्योंकि हम रेडियोमें जायेंगे नही, रेडियो पर हमें कोई बुलायेगा नही।'

इस प्रखरता की एक और घटना याद आ रही है। सुना है कि एक बार कुछ मदिरा-प्रेमी बन्धुओंने उन्हें घेर लिया। बोले–'या तो मदिरा पीनेका दोष बताओ नही तो तुम्हें भी पीनी पड़ेगी।'

परिस्थिति गम्भीर भी थी, रोचक भी, लेकिन जैनेन्द्र हार स्वीकार कर लें तो उसे रखें कहाँ। इसलिए वे बोले–'भाई, शराब पीना बुरा है।'

'क्यो ?'

'क्योंकि इसका नशा उतरता नही ?

पर यह प्रखरता तो असिधारा व्रतके समान है। असन्तुलनका अर्थ स्पष्ट मृत्यु है और कोई सौभाग्यशाली मृत्युसे बच भी जाये परन्तु गलत-फहमी का शिकार तो वह होगा ही। दिल्लीमें उन्होंने हिन्दी-परिषद्का आयोजन किया था। एक बन्धु, जो हृदय-रोगसे पीड़ित थे, अचानक अस्वस्थ हो गये। मुझसे अधिक वे उनके आदमी थे। मैं तब अकेला ही रोगीके पास था। मैंने जैनेन्द्रजीको सन्देश भेजा। उनका घर दूर नही था पर वे नहीं आये। सौभाग्यसे वे बन्धु इस योग्य हो गये कि उन्हें घर छोड आया जा सकता था। वैसे वे बन्धु स्वय बड़े साहसी थे पर मैं जैनेन्द्रजीके न आने से बड़ा क्षुब्ध था। उन बन्धुको घर पहुँचाकर मैं उनके पास पहुँचा और न आनेका कारण पूछा। उन्होंने कहा–'मैं आता भी तो क्या करता ? करने-वाला तो भगवान् था। फिर तुम थे।'

माना उनका तर्क गलत नही था पर दुनिया तो इस तर्कके सहारे नहीं चलती। आदर्शकी ऊँचाइके पीछे छिपकर छुट्टी नही पाई जा सकती। इसीलिए सब गड़बड़झाला है। इसी-लिए व्यवहार आदर्शमें अन्तर है। अन्तर ही अन्तर है पर क्या इसके लिए उन्हें दोष देना होगा। मनुष्य को दोष देनेका नहीं, दोष स्वीकार करनेका अधिकार है। स्वय जैनेन्द्र यही मानते हैं। उन्हें भी इसी दृष्टि से आँकना उचित है। असाध्य आदर्श की साधना तपस्या है, तपस्यामें पतन की गुंजायश अधिक रहती है, पर इसी कारण जो तपस्यासे डरकर बैठा रह जाय उस अभागेसे तो गिरने-वाला लाख बार बड़ा है।

जैनेन्द्र आलसी कहे जाते हैं।

असलमें बात यह है कि मस्तिष्ककी असाधारणता उनके हाथ-पैर नहीं चलने देती। शरीरमें मस्तिष्क की अधिनायकता है। मुझे याद है, शीत ऋतुमें किसी दिन वे, मेरे बड़े भाई और मैं तीनों सबेरे लगभग ९-१० बजे बैठे तो सन्ध्याको ६ बजे तक बातें ही करते रहे और यही क्यों उस दिन हिन्दू कालेज की एक सभामें तो उन्होंने अपनी कर्मण्यताका सुन्दर परिचय दिया। वे सभापति थे। हाल खचाखच भरा हुआ था। वे भाषण देने खड़े हुए। माँग हुई—'कहानी सुनाइए।' जवाब मिला—'अच्छी बात है।'

और जब तक मैं कुछ सोचूँ उन्होंने बोलना भी शुरू कर दिया। उसे बातचीत कहना ठीक होगा। उनका और उनकी पत्नीका कोई झगड़ा था, देरसे आने और भोजन न करनेका घर-घर होनेवाला झगड़ा; पर जिस ढंगसे उन्होंने उसका वर्णन किया उससे वह विद्यार्थियोंसे भरा हुआ हाल हँसीसे बराबर आन्दोलित होता रहा।

ऐसे व्यक्तिको और कुछ भी कहा जा सकता है पर आलसी नही कहा जा सकता। लेकिन आलसी वे न हों पर अव्यावहारिक अवश्य हैं और एक सीमा तक असहिष्णु भी। असहिष्णु इस अर्थमें कि उन्हें विरोधीसे काम लेना नहीं आता। उस पर योजनाएँ बना लेते हैं बड़ी-बड़ी। उनकी सभा-परिषदें इसी अव्यावहारिकताकी शिला पर खण्ड-खण्ड हो गई कि वे दूसरेके दृष्टि-बिन्दुको स्वीकार नहीं करेंगे और सबसे अपनी शर्तोंपर काम करवाना चाहेंगे। पर यह कहना कि वे अविश्वासी हैं उनके प्रति अन्याय करना है पर साथ ही यह भी सच है कि अव्यावहारिक आदमीमें सब दोष समा जाते हैं। उनको टिकने-का स्थान भी मिल जाता है।

जैनेन्द्र जो नहीं हैं वह बनना चाहते हैं; पर उसके लिए जो शक्ति चाहिए वह उनके पास नहीं है। शक्ति-से अधिक प्रकृतिका अभाव है इसलिए गड़बड़ है। जैनेन्द्रके जीवनमे यही उलझन है, यही संघर्ष है। पर व्यक्ति जैनेन्द्रकी जो असफलता दिखाई देती है आलोचक लोग लेखक-जैनेन्द्रकी वही सफलता बताते हैं। इनके साहित्य में असाध्यको साधनेकी पुकार है प्रयत्न भी है; पर किसी दिन वे सुलझ सके तो उनका साहित्य युग-युगका सन्देश बनने की क्षमता प्राप्त कर सकता है।

जैनेन्द्रजीने किसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नही पाई। जो कुछ उनके पास है वह स्वयं उपार्जित है। इसका कारण उनकी प्रतिभा है और प्रतिभा अन्तर की शक्ति है। शेक्सपियर, डिकेन्स, गोल्डस्मिथ, बालजैक और टैगोर इत्यादि ऐसे ही प्रतिभासम्पन्न लेखक थे पर जैनेन्द्रकी साहित्यिक प्रतिभामें दार्शनिककी-सी एक अजीब उलझन है, कभी-कभी वह इतनी जटिल हो उठती है कि पाठक उसे भेद नहीं पाता—'कही पार नही, कही किनारा नही। आँखके ठहरनेका कोई सहारा नही। लेकिन यह जटिलता केवल जैनेन्द्रकी क़लममें हो यह बात वे स्वीकार नहीं करते। यह तो इसी दुनिया की गड़बड़ है—'सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि गलत। समाज

गलत। जीवन ही हमारा गलत। सारा चक्कर यह ऊँटपटाँग।' पाठक की आँखें इसे कभी नहीं देखती। उसके जीवनमें इतना संघर्ष कहाँ है जो वह साहित्यिक जैनेन्द्रको पा सके। जो जीवनमें है वही साहित्यमें है। तभी जनताको पहचानकर भी जैनेन्द्र जनतासे दूर हैं। इसलिए पाठक उनमें उतनी श्रद्धा नहीं रखता जितना उनके नामका आदर करता है।

उलझनका एक और कारण है। उनके चित्रोंमें रंग गहरे नहीं होते। बहुतसे तो छाया-चित्र बनकर रह जाते हैं। फिर विचारोंका बाहुल्य (मस्तिष्कके अधिनायकत्वके कारण) उनकी कहानियोंको बोझिल बना देता है। उनकी चासनीका रस सूखता जा रहा है। भाषा भी एक बड़ा कारण है। उसके पीछे जो अहम् है उसे चीरकर कोई विरला ही भीतर पैठता है। जो पैठता है वह शान्ति पाता है। दूसरे लोग अशान्ति मोल लेकर उन्हें कोसते हैं।

लेकिन कुछ भी हो जैनेन्द्र जैनेन्द्र हैं। शब्द, वाक्य, भाव, भाषा और शैली सब पर जैनेन्द्रकी छाप है। उनके भीतर शक्तिका स्रोत है पर तथाकथित अकर्मण्यता (तथाकथित इसलिए कि मनमें वे महत्त्वाकांक्षी हैं) के कारण उन्होंने अनुपातसे बहुत कम लिखा है। उनकी दृष्टि पैनी और बुद्धि नया सृजन करनेवाली है। संग्रह और अनुवाद उनके स्वभावके अनुरूप नहीं है। अनुवाद तो उनकी अपनी रचनाके जैसा हो जाता है। अध्ययनकी शक्ति भी उनमें उतनी नहीं है। वे निर्विवाद रूपसे एक मौलिक कलाकार हैं और उन्होंने साहित्यमें एक मौलिक शैलीका निर्माण किया है।

जैनेन्द्रजीके प्रशंसक और निन्दक होना यथेष्ट है। इधर उनके आलोचकोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। उनका आक्षेप है कि आजकी कोई भी समस्या उन्हें आकर्षित नहीं कर सकी। बँगालका अकाल, विश्व महायुद्ध, साम्प्रदायिक हत्याकाण्ड, कोई भी उन्हें विचलित नहीं कर सका। नई पीढ़ीकी शिकायत है वे प्रगतिशील नहीं हैं। पुरानोंकी शिकायत है उन्होंने सेक्सके विकृत रूपका प्रचार किया है। यह सभीकी शिकायत है कि वे समाप्त हो रहे हैं। कभी-कभी वे स्वयं भी कह देते हैं—'हमें लगता है कि हम समाप्त हो रहे हैं।'

परन्तु यह सत्य नहीं है। प्रतिभाशाली कभी समाप्त नहीं होता, मृत्युके बाद भी नहीं। जीवनमें तो वह किसी भी क्षण चमक सकता है। बात केवल अकर्मण्यता पर चोट करने की है। कलाकार यदि युगकी अपेक्षा करता है तो वह युगका निर्माण भी करता है। जैनेन्द्रके विचारोंमें वह आग है जिस पर राख पड़ती जा रही है, पर वह झाड़ी भी तो जा सकती है। जैनेन्द्रका उदय धूमकेतु की तरह हुआ था और आज भी पर देरसे सही—धूमकेतु फिर भी तो उदय हो सकता है।

और धूमकेतु क्यों। नभका झिलमिलाता हुआ एकाकी तारा क्या पथिकको राह नहीं दिखा सकता।

मुझे पथ चलना आता है

•

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

•

घटाओ! छा जाओ पथ-बीच मुझे पथ चलना आता है
हुस्नके क़दमोंपर रख शीश प्यारमें पलना आता है

न मेरा सरितासे सम्बन्ध
न मेरा सागरका अधिवास
अटल मेरे जीवनकी प्यास
किन्तु मेरी गतिमें उल्लास
जला लो दीप-शिखाओ ख़ूब न कर पाओगी पर मजबूर
जलाना तुमको यदि आता मुझे भी जलना आता है

मिले मुझको पतझरके शूल
न आये मधु, उनका क्या दोष
बवण्डरके झोकोंमें झूम—
हुआ करता मुझको सन्तोष
उठा लो तुम जितने तूफान न पाओगे सपने झकझोर
सुखोंकी मुझे न पल भी चाह दुखोंमें गलना आता है

मिले शैशवमें मुझे अभाव
जवानीमें आँसू नादान,
अभावोंका मुझपर आभार
आँसुओंका मुझपर एहसान
निराशाओ स्वागत सौ बार न हो पायेंगी साधें चूर
मुझे तम-कलियोंके मुख चूम चाँद-सा ढलना आता है



आध्यात्मिक उन्नतिके लिए आवश्यक निस्पृहता

श्री अगरचन्द नाहटा

जहाँ चाह तहाँ थाह है,
हुइये वे परवाह।
चाह जिन्होंकी मिट गई,
वे शाहनके शाह।

हमारी अशान्तिके अनेक कारणो में से एक प्रधान कारण हमारी इच्छाएँ हैं। प्रत्येक प्राणी अनुकूल सयोगो व साधनोंके मिलनेकी इच्छा करता है, पर इच्छानुसार मिल जाना उसके वशकी बात नही है। अत वैसा न होने पर हमारे चित्तमें अशान्तिका साम्राज्य छा जाता है। चाहके साथ दाह और दाहके साथ आहका सम्बन्ध लगा ही रहता है। विश्वमें किसी भी प्राणी की सम्पूण इच्छाएँ पूर्ण नही होती, कारण एककी पूर्ति होनेके साथ-साथ दूसरी इच्छा आ उपस्थित होती है। इसीलिए इच्छाओंको आकाशके समान अनन्त माना गया है। प्राथमिक भूमिका में चाहसे राह मिलती है, अत आवश्यक भी है, पर क्रमसे उन्हें कम करते हुए निस्पृह हो जाना आवश्यक है।

इच्छाएँ भी प्राणियोंकी भूमिका अनुसार होती हैं। बाह्यदृष्टि जीवोंको सांसारिक अनुकूल पदार्थों व सयोगोंकी इच्छा रहती है। उससे आगे बढे हुए धार्मिक पुरुषोंकी इच्छाएँ किसीकी बुराईकी व पौद्गलिक न होकर सेवा, भक्ति, ज्ञान, ध्यान, आदि सुकर्म सम्पन्न कर सकें, ऐसी शुभ प्रेरणा-रूप होती हैं। और उनसे आगे बढे हुए आध्यात्मिक पुरुष अपनी इच्छाओंको घटाते हुए सर्वथा इच्छा-रहित होनेमें प्रयत्नशील रहते हैं। वे इच्छाओंको अशान्तिका कारण मानकर परिस्थिति, सयोगो व प्रारब्ध कर्मानुसार जैसा कुछ होता है, उसमें सन्तुष्ट रहते हैं। प्रतिकूल सयोग को दूर करनेकी वे इच्छा नही करते और न अनुकूल सयोगोंकी प्राप्तिकी वाञ्छा ही करते हैं। वे हर परिस्थितिमें सम हो जाते हैं। गीताके मन्तव्यानुसार वे फलाशा-रहित व हरि-इच्छा के अनुसार चलनेवाले होते हैं और जैन परिभाषाके अनुसार वे यथा-उदय या उदयाधीन वर्तते है।

आध्यात्मिक दृष्टिसे इच्छाओंका उत्पन्न होना हमारी अपूर्णताका सूचक है। हमें किसी बातकी कमी है और वह हमें प्राप्त नही है, पर उसे चाहते अवश्य हैं, यही इच्छाका कारण व स्वरूप है। अत पूर्ण बननेके लिए इच्छाओंसे रहित होना आवश्यक होता है। जैन-दर्शनमें आत्माके आध्यात्मिक

विकास-क्रमके १४ गुणस्थानक व श्रेणियाँ मानी गई हैं। उनमेंसे दसवी सूक्ष्म-संपराय नामक उच्च भूमिकामें सूक्ष्म-इच्छा मोक्षकी अभिलाषा मात्र रहती है, उसे भी आगे बढनेके लिए त्याज्य माना गया है। सूक्ष्म अभिलाषा-लोभ-के ऊपर उठे बिना कैवल्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इससे सहज रूपसे पता चलता है कि अच्छी-से-अच्छी इच्छा भी अन्ततः त्याज्य ही है। पर उस स्थितिको प्राप्त होनेके पहले साधारण व बुरी इच्छाओंको छोड़नका प्रयास करना होगा। अशुभमेंसे शुभमें होते हुए शुद्ध बनना ही उत्थानका मार्ग है। अतः हमें इच्छाओंको कम करते चले जाना है, व उनमेंसे जो विकार है—आसक्ति है——विष है, उसे अमृतमें परिणत कर देना है।

साधारण मनुष्योंको कभी खानेकी, कभी अच्छे कपड़े पहननेकी, शारीरिक वेशभूषादि करनेकी, धनकी, पुत्रकी, यशकी, बड़े बनने आदिकी इच्छामेसे हर समय कोई न कोई इच्छा बनी ही रहती है। और उन्हींकी पूर्तिके लिए वे सारे जीवन भर प्रयत्न करते रहते हैं। मरनेके समयतक भी उनकी ये इच्छाएँ—आशाएँ—पिड नही छोड़ती। अन्ततः अपूर्ण इच्छाओंको लिए हुए ही उन्हें देह छोड़ना पड़ता है। शंकराचार्यजीने भी कहा है——

"अङ्गं गलितं, पलितं मुण्डं,
जातं दशनविहीनं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं,
तदपि न मुञ्चति आशापिण्डम्।

प्राणीको कुछ समय और जीवित रहकर इनकी पूर्ति कर लूं——यही इच्छा रहती है, पर वहाँ उसकी विवशता होती है। वास्तवमें भव-परम्परा इन्हीं इच्छाओंके तन्तुओंसे बढ़ती है।

मध्यम श्रेणीके व्यक्ति व्यावहारिक साधारण बातोंकी इच्छाओंको कम कर देते हैं। इन बातोंमे जैसा कुछ परिस्थिति व प्रारब्ध वश होता है, होने देते है और अपनी इच्छाओंको सत्कर्मोंकी ओर लगा देते हैं। उनकी इच्छाएँ होती है कि मुझे सन्मार्गके दर्शक गुरु मिलें; मेरा तन, मन, धन,—परोपकार और सेवामें लगे। महात्माओंके दर्शन व सत्संगादिका लाभ मिले। हमारी बुद्धि निर्मल रहे। प्रभु-भक्ति, स्वाध्याय, ध्यानमें चित्त लगा रहे, अर्थात्—सांसारिक एवं शारीरिक बातोंसे ऊपर उठकर वह आत्माभिमुख होता है। आत्माके एवं जगत्के जीवोंके कल्याणकी कामना करता है। वास्तवमें मनुष्यता यहीसे प्रारम्भ होती है। उसके पहलेकी अवस्था तो पशुकी-सी है। उन बेचारोंमें ज्ञानकी कमीके कारण इच्छाएँ बहुत थोड़ी होती हैं। जब कि मनुष्योमें उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है पर उन इच्छाओंकी कोटि पशुओंके समान-सी होती है।

इससे आगे वढ़े हुए उत्तम पुरुष, जो संख्यामे वहुत कम होनेसे महान् कहलाते है——वे होते है जो इच्छाओं-को बन्धनका कारण मानकर उससे अतीत होनेका प्रयत्न करते हैं। उन्हें किसी भी वातकी चाह नहीं होती है। जव जैसा मिल गया वैसा खा लिया, पहन लिया। नही मिला तो भूखा व नग्न ही रह गये। किसीने आदर किया तो ठीक, निरादर किया तो भी



बढाओ न आपसमें मिल्लत[1] जियादा।
मुबादा[2] कि हो जाय नफरत जियादा॥

तकल्लुफ अलामत[3] है बेगानगीकी[4]।
न डालो तकल्लुफकी आदत जियादा॥

करो दोस्तो पहले आप अपनी इज्जत।
जो चाहो करें लोग इज्जत जियादा॥

निकालो न रखने नसबमें किसीके।
नहीं कोई इससे रजालत[5] जियादा॥

करो इल्मसे इक्तसाबे[6] शराफत।
नजाबतसे[7] है ये शराफत जियादा॥

फरागतसे[8] दुनियामें दम भर न बैठो।
अगर चाहते हो फरागत[9] जियादा॥

जहाँ राम[10] होता है मीठी जबाँसे।
नहीं लगती कुछ इसमें दौलत जियादा॥

मुसीबतका इक-इकसे अहवाल कहना।
मुसीबतसे है ये मुसीबत जियादा॥

---

१ मेल मिलाप, २ ऐसा न हो, ३ कारण, वजह, ४ मन-मुटावकी, ५ छिद्रान्वेषण, ६ तुच्छ कार्य्य, ७ भद्रताका व्यापार, ८ बुजुर्गोंसे, ९ अकर्मण्य होकर, १० सुख चैन ११ अपना, अधीन,

फिर औरोंकी तकते फिरोगे सख़ावत।
बढ़ाओ न हदसे सख़ावत[1] ज़ियादा॥

कहीं दोस्त तुमसे न हो जाएँ बदज़न।
जताओ न अपनी मुहब्बत ज़ियादा॥

जो चाहो फ़क़ीरीमें इज़्ज़तसे रहना।
न रक्खो अमीरोंसे मिल्लत ज़ियादा॥

है उल्फ़त भी वहशत भी दुनियासे लाज़िम।
पै उल्फ़त ज़ियादा न वहशत ज़ियादा॥

फ़रिश्तेसे बहतर है इन्सान बनना।
मगर इसमें पड़ती है महनत ज़ियादा॥

—हाली

कैसे हैं वे कि जीते हैं सदसाल[2] हम तो 'मीर'!
इस चार दिनकी ज़ीस्तमें बेज़ार हो गये॥

—मीर

तुहमतें[3] चन्द अपने ज़िम्मे धर चले।
किसलिए आये थे, और क्या कर चले?

× × ×

ज़िन्दगी बढ़ती है, उतनी घटती है।
ज़िन्दगी आप-ही-आप कटती है॥

× × ×

शादीकी और ग़मकी है दुनियामें एक शक्ल।
गुलको शगुफ़्ता[4] दिल कहो या तुम शकिस्ता[5] दिल॥

—दर्द

---

१ दानवीरता, २ सौ वर्ष, ३ कलंक, ४ खिला हुआ, ५ कुम्हलाया हुआ।



सङ्गतिका प्रभाव • श्री अमृतलाल जैन दर्शनाचार्य

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ भर्तृहरि

सत्सङ्गति बुद्धिकी मन्दताको दूर करती है, वाणीमें सचाईका सिञ्चन करती है—सच बोलना सिखाती है, जगह जगह सम्मान दिलाती है, पापको पासमें नहीं फटकने देती, इसीलिए चित्तको प्रसन्न रखती है एवं सारे संसारमें कीर्ति फैला देती है। अब आप ही कहिये सत्सङ्गति क्या नहीं करती ?

यदि सत्सङ्गनिरतो भविष्यसि भविष्यसि ।
अथासज्जनगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि ॥ हेमचन्द्र

यदि तुम सदा सत्सङ्गमें निरत रहोगे तो अवश्य ही अच्छे बन जाओगे — और यदि दुर्जनोंकी गोष्ठीमें पडोगे तो निश्चयसे गिर जाओगे।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥२॥ भर्तृहरि

गरम लोहेपर पड़े हुए जिस पानीका नाम-निशान भी नहीं बचता वही पानी यदि कमलिनीके पत्तेपर पहुँच जाय तो मोती-सा-मनोहर हो जाता है और यदि वही पानी स्वाति नक्षत्रमें समुद्रकी—सीपके अन्दर पड़ जाय तो मोती बन जाता है । उत्तम, मध्यम और जघन्य गुण प्रायः दूसरोंके संसर्ग से होते हैं ।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥
भर्तृहरि

इस स्वर्ण-पर्वत—सुमेरु और रजत-पर्वत—कैलाससे हमें क्या लाभ जहाँ पहुँचे वृक्ष ज्योंके त्यों वे के वे ही बने रहते हैं । हम तो मलयपर्वतको ही श्रेष्ठ मानते हैं जिसके आश्रयसे सबके सब वृक्ष चन्दन बन जाते हैं । चाहे वे पहले कङ्कोल रहे हों, चाहे कुटज रहे हों, चाहे नीम ही क्यों न रहे हों ।

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥ ५ ॥ माघ

छोटे-से-छोटा मनुष्य भी—जिसे बड़ोंका सहयोग प्राप्त है—बड़े-से-बड़े कामको पूरा कर लेता है । देखिये ! छोटी-सी पहाड़ी नदी किसी बड़ी नदीसे मिलकर समुद्र तक पहुँच जाती है ।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥६॥ अज्ञात

सज्जनोंका दर्शन पुण्य देता है क्योंकि सज्जन तीर्थस्थान स्वरूप होते हैं, बल्कि तीर्थस्थानसे भी बढ़कर होते हैं क्योंकि तीर्थ कुछ समय बाद फल देता है और सज्जनोंका दर्शन तत्काल ।

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
रथ्याम्बु जाह्नवीसङ्गात् त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥७॥

बड़ों का संसर्ग किसकी उन्नति नहीं करता ? देखिये ! गन्दी गलियों-का जल गंगाका संग पाकर देवोंके द्वारा भी वन्दनीय हो जाता है ।



महाकोशलके जैन पुरातत्त्व

मुनि कान्तिसागर

[२]

खण्डित मस्तक —

उपर्युक्त पंक्तियोंमें अखण्डित या कम खण्डित मूर्तियोंपर विचार किया गया है। मुझे अपने अन्वेषणमें केवल त्रिपुरीसे ही दो दर्जनसे अधिक जैन प्रतिमाओंके मस्तक प्राप्त हुए हैं। सम्भव है धड़ोंको लोगोंने शिला बनानेके काममें ले लिया हो।[1] खड़िया जातिका यही व्यवसाय है। इनके पूर्वज उत्कृष्ट शिल्पकलाके निर्मापक थे। उन्हींके वंशज उन्हींकी कलाकृतियोंके ध्वंसक बने हुए हैं। समयकी गति बड़ी विचित्र होती है।

जिन मस्तकोंकी चर्चा की है वे खड्गासन एवं पद्मासन दोनों प्रतिमाओंके हैं। कुछ लोग आवश्यक ज्ञानकी अपूर्णताके कारण या मस्तकके घुंघराले बालोंके कारण तुरन्त राय दे बैठे कि ये मस्तक बौद्ध प्रतिमाओंके हैं। किन्तु मैं सकारण ऐसा नहीं मानता। कारण स्पष्ट है कि उत्तर महाकोशलमें बौद्धकी अपेक्षा जैन मूर्तियाँ ही अधिक प्राप्त हुई हैं। दक्षिण महाकोशलमें अवश्य ही बौद्ध प्रतिमाओंकी बहुलता है। दूसरा कारण यह भी है कि कुछ धड़ भी ऐसे प्राप्त हुए जिनपर सर ठीकसे बैठ गया है। इन दो कारणोंके अतिरिक्त तीसरा यह भी कारण है कि बौद्ध प्रतिमाएँ अक्सर जीवनकी विशिष्ट घटनाओंसे परिपूर्ण रहती हैं। प्रभावलीका अंकन भी निश्चय करके रहता है जब कि कुछेक जैन प्रतिमाएँ प्रभावली विहीन पाई गई हैं। मस्तकका पिछला भाग साक्षी-स्वरूप विद्यमान है। परिकर विहीन मूर्तिके मस्तक अलगसे ही पहचाने जाते हैं, उनका पिछला भाग चपटा रहता है। सपरिकरका अव्यवस्थित।

महाकोशलके जैन पुरातत्त्वका सामान्य परिचय ऊपरकी पंक्तियोंसे

---

१ विन्ध्य प्रदेशमें जिन मूर्तियोंके धड़ ही अधिक संख्यामें मिलते हैं, कारण कि मस्तककी कुंडियाँ बना दी जाती हैं, और कहीं-कहीं शिवलिंगके स्थानमें उल्टे स्थापित कर डाले जाते हैं।

मिल जाता है। मैंने ऊपर सूचित किया है कि अभी तक इस प्रान्तमे समुचित रूपसे अनुशीलन हुआ ही नहीं है। अभी तो सैकड़ों खंडहर ऐसे ऐसे पड़े हैं जिनमें सुन्दरसे सुन्दर कलापूर्ण जैन पुरातत्त्वकी सामग्री बिखरी पड़ी है, दुर्भाग्यसे न केन्द्रीय पुरातत्त्व विभागको इसकी चिन्ता है न प्रान्तीय सरकार को। समाज तो इस ओर उदासीन है ही। मेरा निश्चित मत है कि गवेपणा करवाई जाय तो जैनाश्रित शिल्पकलाके वैविध्यका ज्ञान अवश्य होगा। १०-१२ जगहसे मुझे सूचना भी मिली है कि मै वहाँ जाकर जैन मूर्त्तियाँ उठा ले आऊँ? पर पाद-विहार करनेवालेके लिए यह संभव कैसे हो सकता है? अपने परम पूज्य गुरुदेव **उपाध्याय मुनि श्री सुखसागरजी** महाराज एवं ज्येष्ठ गुरुभ्राता **मुनि श्री मंगलसागर जी** महाराजके साथ विहार करते हुए मार्गमें जो जो पुरातत्त्वकी सामग्री अनायास व अयाचित रूपसे मिल गई उसका सग्रह अवश्य हो गया है। इस संग्रहमें जैनाश्रित कलाके उच्चतम प्रतीक ही अधिक है। मै प्रस्तुत निबन्धमें, उनमेंसे, जो कलाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है, वैविध्यको लिये हुए हैं और जो अभूतपूर्व कृतियाँ हैं उन्हींका परिचय दे रहा हूँ, जो इस प्रकार है——

खड्गासन-जिन-मूर्त्ति :—

प्रतिमा ५२½" ऊँची है। सपरिकर इसकी चौड़ाई १५½" है। इस प्रतिमामें प्रधान मूर्त्ति एकदम अप्रधान है क्योंकि शिल्प-स्थापत्यकी दृष्टिमे उसमें शरीर-रचनाकी सामान्यताके अतिरिक्त और कोई कलात्मक तत्त्व ध्यान आकृष्ट नहीं करता और न हमारी विवेचन-बुद्धिको ही उद्‌बुद्ध करता है अतः हम मुख्य मूर्त्तिकी अपेक्षा परिकरकी ओर ही विशेष ध्यान देंगे। यह परिकर निस्सन्देह सुन्दर है और मूर्त्तिकलाकी दृष्टिसे क्रांतिकारी परिवर्तनोंका द्योतक है। साधारणतः परिकरमे अष्ट प्रतिहारियों या तीर्थङ्करोके जीवनकी विशिष्ट घटनाएँ या जिनमूर्त्तियाँ ही खोदी जाती है। परन्तु यहाँ इनके सिवा भी अन्य सुन्दर और व्यापक कलात्मक उपकरणों और शैलियोंको अपना लिया गया है।

मूर्तिके चरणोंके दोनो ओर उभय पार्श्वदोंके अतिरिक्त मूर्ति-निर्माता दम्पति अवस्थित हैं। चारोंके मुख बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गये है। यद्यपि इनकी शरीराकृति सुघड़ता एवं तदुपरि वस्त्राभूषणोंका खुदाव काफ़ी बारीकीसे किया गया है। आभूषण सापेक्षतः छोटे होनेके कारण कलाकारकी कुशल छैनीका परिचय दे रहे है जैसा ऊपर कहा जा चुका है। दोनों ग्रासोंके ऊपर चौकी है और चौकीपर चद्दरका छोर खुदा हुआ है जिसपर जिन खड़े हुए हैं। व्यालके बाएँ दाएँ यक्ष-यक्षिणी बहुत स्पष्ट एवं सुन्दर भावमुद्रामें उत्कीर्णित है। चतुर्मुखी यक्षके दाहिने हाथमें दण्डयुक्त कमल एवं आशीर्वादमुद्रा तथा बायें हाथमें बीजपूरक और परशुके समान एक शस्त्र है। गलेमें

हार और कटिप्रदेशमें करधनी ही मुख्य आभूषण हैं। जटाजूटकी ओर ध्यान देनेपर शैव प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है और यह स्वाभाविक भी है। कलचुरी और चन्देल वंशके राजा परम शैव थे और बुन्देलखण्ड तथा महाकोशलमें शैव संस्कृति काफी उन्नत रूपमें थी। अन्य पुरातन कलावशेषोंके निरीक्षणसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

मूर्तिके बायीं ओर सबसे नीचे यक्षिणी यक्षके समान ही आभूषणोंको धारण किये हुए बैठी है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहां यक्षके बाएँ हाथमें बीजपूरक है, वहाँ इसके बाएँ हाथमें कलश अवस्थित है। केश राशि भी शैव प्रभावसे युक्त है। वस्त्रोंकी रचना सुन्दर है। प्रस्तुत प्रतिमा पचतीर्थीकी है क्योंकि ऊपर नीचे चारों ओर चार खड्गासनस्थ उत्कीर्णित हैं—पार्श्वदोंकी उभय ओर एवं दो मूर्तिके उपरिभागके छत्रके निकट।

यक्षिणीके ऊपर एक खड़ी जिन-मूर्तिके ऊपर एक रेखा खींची गई है जिसमें निम्नलिखित विभिन्न अलंकरणोंका खुदाव कला एवं विविधताकी दृष्टिसे आकर्षक एवं अपेक्षाकृत कुछ नूतनत्वको लिये हुए है। गुप्तकालीन स्तंभोंमें जिस प्रकारकी बोझसे दबी हुई आकृतियाँ पाई जाती हैं ठीक उन्हीं आकृतियोंका अनुकरण इस प्रतिमामें किया जान पड़ता है। दोनों हाथ ऊपरकी ओर उठे हुए हैं, जो स्पष्टतः इस प्रकारके हैं मानो कि ऊपरका वजन सम्हालनेमें व्यस्त है। भुजाओंके ऊपरसे नागावलीकी रेखा स्पष्ट है इसीलिए सीना भी बाहर तन गया है जो इस बातका सूचक है कि व्यक्ति पर काफी बोझ पड़ रहा है।

इसके ऊपर अगले पाँवोंके आसरे ग्रस्त हाथीकी प्रतिमा खुदी हुई है। तदुपरि एक सुकुमार बालक बना हुआ है। ध्यान देनेकी बात यह है कि ओठोंकी रचना कुछ ऐसे कौशलसे कलाकारोंने की है कि बालक, पुरुष और स्त्रीकी विभिन्नता उनसे सहज ही स्पष्ट हो जाती है। इस बालककी ओष्ठ-रचनामें भी वही बात है। बालकके पीछे कुछ बेल-बूटे उत्कीर्णित हैं। बालकके ऊपर व्यालकी मूर्ति बनी है जो बहुत बारीकीसे गढ़ी जान पड़ती है क्योंकि उसके दाँत तक गिने जा सकते हैं। प्रधान प्रतिमाके दूसरी ओर भी यही खुदाव है।

प्रभावली सामान्य है। दोनों ओर मगलमुख खड़े हुए हैं। उनके हाथोंमें माला है जो पहनानेकी तैयारीके प्रतीक स्वरूप है। मस्तकके ऊपर ३ छत्र एवं तदुपरि मृदंग बजाता हुआ एक यक्ष है। दोनों ओर हाथी खड़े हैं। सबसे ऊपर दो पत्तियाँ निकली हुई हैं जो अशोक वृक्षकी होनी चाहिये। इस प्रकार अष्ट-प्रतिहारी-युक्त प्रस्तुत-प्रतिमा १२ वीं शतीकी होनी चाहिये। पत्थर भूरेपनको लिये हुए है।

यह मूर्ति मुझे बिलहरीकी एक सर्वथा खंडित व अरक्षित वापिकासे प्राप्त हुई थी। वापिकाके भीतरके चारों गवाक्षोंमें, चार जिनमूर्तियाँ थीं

इनमेंसे एक तो शायद स्व० रा० ब० डॉ० **हीरालालजी** कटनीवाले ले आये थे, उनके निवासस्थानके बगीचेमें पड़ी हुई है।

तोरणद्वार :—

स्पष्टतः यह किसी जैन मन्दिरका तोरणद्वार है। इसकी लम्बाई ऊँचाई ३०″×२४″ है। तोरण ११″ गहरा है। यह तोरण एक पूर्ण मन्दिरकी आकृति ही है। जो अवशेष प्राप्त है वह पूर्ण आकृतिका तीन चौथाई अंश है, जिसमें केन्द्रभाग सावित आ गया है। इसके केन्द्रभागमें पद्मासनस्थ जिनमूर्त्ति उत्कीर्णित है। जिनके उभय ओर दो पार्श्वद चँवर एवं पुष्प लिये खड़े हैं, तदुपरि पुष्पमालाएँ लिये दो नागकन्याएँ गगनविहार कर रही है। कलाकारने इन नागकन्याओंके ऊपर दो गजोंका निर्माण किया है। दोनों गजोंकी शुण्डाएँ आगेकी ओर उठकर-उठकर आपसमें अपने आसरे छत्र सँभाले हुए हैं। उस छत्रकी स्थिति जिनमूर्तिके शिरोभागके बिल्कुल ऊपर है। प्रधान मूर्तिपर एक चौकी विराजमान है। चौकीके ऊपर, जैसा अन्यत्र सभी जगह देख पड़ेगा, एक चादरका मुख्य अंश जमा हुआ है। उस प्रकारकी पद्धतिका विकास महाकोशल एवं सन्निकटवर्त्ती प्रतिमाओंकी अपनी विशेषता है। चौकीके निम्न भागमें उभय ओर मंगलमुख बने हैं। सभी जैन मूर्तियोंमें ये मंगलमुख बने रहते हैं। प्रधान मूर्तिके दाएँ बाएँ अधिष्ठाता-अधिष्ठात्री अंकित हैं। अंकन इतना अस्पष्ट और कला-विहीन है कि निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि ये किस तीर्थंकरसे संबंधित हैं। कलाकारने इन दोनोंके वाहन और आयुध स्पष्ट नही किये हैं, जिनसे कि उनका निश्चय करनेमें सहायता मिलती है।

प्रतिमाके मस्तकपर भी एक **Arch** महराबमें जिनमूर्ति उत्कीर्णित है। इसके पीछे सम्पूर्ण शिखरका स्मरण दिलानेवाली आकृतियाँ उत्कीर्णित हैं। आमलक, झण्डा और कलश तक स्पष्ट हैं। कहनेका तात्पर्य कि तोरणकी मध्यभागवाली मूर्ति ऊपरकी एक आकृतिको मिलाकर एक मन्दिरके रूपमें दिखलाई पड़ती है। इस शिखरके ऊपर भी कुछ आकृति अवश्य जान पड़ती हैं, परन्तु खंडित होनेसे निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किसका प्रतीक होगा? अनुमानतः वह ध्वजका चिह्न होना चाहिये। तोरणमें और भी त्रिगड़ा एवं एक अष्ट प्रतिहारी, मूर्त्तियाँ हैं। कलाकी दृष्टिसे उनका विशेष महत्त्व नही, अतः स्वतंत्र उल्लेख अनावश्यक है।

इस तोरणका महत्त्व केवल धार्मिक दृष्टिमात्र से नही। इसमें जो विभिन्न अलकरण, डिजाइन, तथा सुरुचिपूर्ण बेल-बूटे कढ़े हुए है वे अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण है। इसमें रेखागणितकी किन्हीं रेखाओंकी छटा भी खिच आई है। तोरणके मध्यभागमें एक बालक मकरारूढ है। मकर और आरोहीकी मुखाकृति बड़ी सुघड़ है। अन्य अलंकरणोंमें मगध शैलीके अनुरूप दो दीपक गढ़े गये हैं।

शतीकी ही है तो फिर क्या कारण है कि १२ वीं शतीकी प्रतिमामें सवत् ६५१ खोदा जावे ? इसका उत्तर भी उतना स्पष्ट है। यह सवत् विक्रम सवत् नहीं वल्कि वह कलचुरी सवत् है जिसका प्रयोग कलचुरी कालीन महाकोशलमें होना अति साधारण और स्वाभाविक है। कलचुरी सवत् ईसवी सन् २४८ में प्रारम्भ हुआ जो ठीक उपरोक्त लिपिका ही समर्थन करती है।

एक बात और, प्रस्तुत प्रतिमाको ऋषभदेवकी प्रतिमा माननेके दो कारण हैं। आसनके अधोभागमें वृषभ अर्थात् बैलका चिह्न स्पष्ट बना हुआ है। दाएँ बाएँ गोमुख यक्ष तथा चक्रेश्वरी देवीकी प्रतिमाएँ भी खुदी हैं। ये प्रतिमाएँ ऋषभदेवके परिचित अधिष्ठाता एव अधिष्ठात्री हैं। यह प्रतिमा त्रिपुरीसे ही प्राप्त की गई है।

अर्ध सिंहासन —

इस सिंहासनका विस्तार १६" × १२" है। बाएँ हाथपर ९" × ८" विस्तारवाला एक बड़ा ही सुन्दर आसनपर स्थित रुमालका छोर बना हुआ है। इस रुमालके डिजाइनकी सुन्दरता देखते ही बनती है। उसका वर्णन कर सकना एकदम असम्भव है। वर्तमान युगमें कपड़ोंपर विशेषत साड़ीके किनारोंपर जैसे उलझे हुए मनोहरतम Symmetrical डिजाइन बने रहते हैं वे भी इस डिजाइनके सामने मात हैं। रुमालकी कमसे कम चौड़ाई जो निम्न भागमें है वह ५३/४" है। निस्सदेह इस रुमालके ऊपर आसन रहा होगा और उस आसनके ऊपर किसी देवताकी मूर्ति स्थापित रही होगी।

रुमालके दायीं ओर सिंहकी मूर्ति है जिसके अगले पाँव और पजे टूट चुके हैं। सिंह जान पड़ता है आसनके नीचे आसीन था। सिंहकी अयाल कलाकी दृष्टिसे खूब ही सुन्दर है किन्तु जो स्वाभाविक अभिव्यक्तता उसमें होनी चाहिये वह भी नहीं है वल्कि कृत्रिमता बड़ी सुघड़ है। यही हाल सिंहकी मूछोंका भी है। ये सुन्दर तो हैं ही पर उनकी तरह स्पष्टत कृत्रिम हैं। आँखों और मूछोंके बीचकी पिछले बाएँ पजेके सामने एक सुन्दर फूलदार १३/४" ऊँचा टूटा सा टिजाइनदार गुट्टा है जो निश्चय ही किसी स्तभका अधोभाग है।

वे सिंहासन त्रिपुरीमें प्राप्त अन्य अवशेषोंके डिजाइनके क्षेत्रमें बिल्कुल अनूठा और अद्वितीय है।

इस स्थलपर डिजाइनके सबधमें एक उल्लेख करना प्रासगिक होगा। कलामें, इतिहासमें डिजाइनोंका स्वर्णयुग मुगलकालमें कहा जाता है। परन्तु वे डिजाइन फूल-पत्ती इत्यादि प्राकृतिक आधारों तक ही सीमित रहे हैं। स्वय कल्पनाके आधारपर डिजाइन रचे नहीं पाये जाते। प्राकृत डिजाइन ऐसी ही कृत्रिम और कल्पनासे गढी हुई रचना है। इसका युग निश्चयपूर्वक मुगलों यहाँ तक कि राजपूती वैभवके पूर्व का है। इस प्रकारके डिजाइन महाकोशलके अन्य अवशेषोंमें भी पाये जाते हैं विशेषत बुद्धदेवकी मूर्तिमें। अत यह कल्पना

बड़ी सहज है कि ऐसे डिजाइन महाकोशलकी निजी और मौलिक कलात्मक देन है, और भी बिलहरीके विस्तृत मधुक्षत्रपर ९६″×९६″ भी इस प्रकारके डिजाइन अंकित है जिनका रचनाकाल तेरहवीं शतीके बादका नही हो सकता। अत्यन्त दुःख-पूर्वक सूचित करना पड़ रहा है कि इतनी सुन्दर कलापूर्ण व सर्वथा अखंडित कृति आज गड़रियोंके शस्त्रास्त्र पनारनेके काममें आती है। म. प्र. शासनका ध्यान मैंने आकृष्ट किया पर उसे अवकाश कहाँ? अर्धसिंहासन भी मुझे तेवरके ही एक लड़ैयेसे प्राप्त हुआ है।

अम्बिका :—

प्रतिमा १४″×८½″ है। अर्धनिर्मिता और अम्बिकाकी आसन-मुद्रा प्रायः समान ही है, किन्तु इसकी रचनामे कलाकारने अधिक सन्तुलन एवं परिपूर्णता प्रस्तुत की है। नागावली बड़ी स्पष्ट है। उरोजोंकी रचना भी नैसर्गिक है। बाईं गोदमें एक बच्चा है। यह हाथ खण्डित हो गया है। अर्धनिर्मिताकी अपेक्षा अम्बिकाके वस्त्रोंकी शलें अधिक स्पष्ट हैं। चरणोंके पास ५ भक्तोंकी समर्पण-मुद्राएँ दिखाती है। स्त्री-पुरुष दोनों ही इनमें है। एक भक्तका सिर टूट गया है। परिकरके दोनों ओर व्याल (ग्रासमकर) खड़े हुए हैं। प्रतिमाके पीछे २,३ लकीरें पड़ी हुई है। इनमें कुछ और भी खुदाई है। असम्भव नही कि कलाकार साँचीके तोरणोंसे प्रभावित हुआ हो क्योंकि इन मूर्तियोंमें—जो मध्यप्रदेशमें पाई गई है—भी इसी प्रकारकी रेखाएँ मिलती हैं। कही-कही साँचीके तोरणकी आकृति बहुत ही स्पष्ट रूपसे मिली है। इस प्रकारकी शैलीका समुचित विकास सिरपुरकी धातुमूर्तियोंमें पाया जाता है। मस्तकके पीछे पड़ी प्रभावली बहुत ही अस्पष्ट जान पड़ती है तो भी सूक्ष्मतया देखने पर कमलकी पखुड़ियोंका आकार लिये है। ये पंखुड़ियाँ गुप्तकलामें काफ़ी ऊँचा स्थान पा चुकी थी एवं इस परम्पराका प्रभाव १३ वी शती तककी मूर्तियोंकी प्रभावलीमें मिलता है। प्रभावलीके उभय ओर पुष्पमाला लिये दो गन्धर्व गगनमें विचरण कर रहे हैं। गन्धर्वकी मुखमुद्रा सुन्दर है। दूसरे गन्धर्वकी आकृति टूट गई है।

प्रश्न होता है कि प्रस्तुत प्रतिमा किस देवीकी होना चाहिये? यद्यपि ऐसा स्पष्ट न तो लिखित प्रमाण है और न इस प्रकारकी अन्य प्रतिमा ही कहीं उपलब्ध हैं। बायी गोदमें एक बच्चेके कारण एवं ६ भक्तोंके निम्न भागमें जो प्रतिमाएँ अंकित है—दायें भागमें एक मूर्ति खंडित हो गई है—उनके कारण यदि इसे अम्बिकाकी मूर्ति मान लिया जावे तो अनुचित न होगा। बात यह है कि अन्य मुद्राओंमें अम्बिकाकी जितनी भी मूर्तियाँ महाकोशल एवं तत्सन्निकटवर्ती प्रदेशमें पाई गई है, उन सभीके निम्न भागमें ५ से अधिक भक्तोंकी आकृतियाँ मिली है। अम्बिकाकी गोदमें यों तो दो बच्चे होने चाहिये, परन्तु कही-कही एक बच्चेवाली मूर्ति भी उपलब्ध हुई है।

जिन-मूर्ति—

४५"×११" की भूरे रगकी प्रस्तर-शिलापर खड़ी जिनमूर्ति उत्कीर्णित है। सामान्यत शरीर-रचना अच्छी ही बनी है। आजानु बाहुमें हाथोंका मुडाव स्वाभाविक है। अँगुलियोंका खुदाव तो बड़ा ही स्पष्ट और भव्य है। मुखमण्डल भी अतीव सुन्दर रहा होगा परन्तु नासिका और चक्षु-युगल बुरी तरह क्षत-विक्षत हो गये हैं। भौंहे अच्छी बनी है। मस्तक पर घुँघराले बाल बने हैं। इस ओर पाई जानेवाली जैन बौद्ध मूर्तियोंमें एव एकमुखी शिवलिंगमें मस्तकपर उपरिलक्षित केश-रचनाका रिवाज था इसलिए यदि केवल सर ही किसी मूर्तिका मिल जाय तो अचानक निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वह किसका है।

मूर्तिके दोनों हाथोंके पास दो पार्श्वद उत्कीर्णित हैं परन्तु उन दोनों-के कटिप्रदेशके ऊपरके भाग नहीं हैं। इन पार्श्वदोंके ठीक अग्रभागमें दाएँ बाएँ क्रमश यक्ष-यक्षिणी है इनका भी मुखका भाग एव हाथका कुछ हिस्सा खडित है। आसनका भाग अन्य मूर्तियोंसे मिलता-जुलता है। केवल निम्न मध्य भागमें दायीं ओर मुख किये उपासक अधिष्ठित है एव आसनके बीचमें सिहका चिह्न है। ऊपर प्रभावलीके ऊपर ३ छत्र हैं जिनके उभय भागमें दो हाथी शुण्डा निम्न किये हुए हैं। छत्रपर देव मृदग बजा रहा है।

प्राचीन कालकी जिनमूर्तियोंमें चिह्न प्राय नहीं मिलते। गुप्तोत्तर-कालीन प्रतिमाओंमें यक्ष-यक्षिणियोंकी मूर्तियाँ खुदी हुई मिलती हैं। इनसे कौन मूर्ति किस तीर्थङ्करकी है ज्ञात हो जाता है परन्तु इसमें एक बातकी दिक्कत पड़ जाती है कि प्राचीन मूर्तियोंमें यक्ष-यक्षिणियोंके स्वरूप जैन शिल्पशास्त्रीय ग्रथोसे मेल नहीं खाते अर्थात् वास्तुशास्त्रमें वर्णित इनके स्वरूपसे मूर्तियाँ बिल्कुल भिन्न मिलती हैं। उदाहरणार्थ—इसी मूर्तिको लें। इसमें सिहका चिह्न है। यदि चिह्न न होता और यक्ष-यक्षिणीसे पहचानने-की चेष्टा करते तो असफल रहते। यह मूर्ति दिगबर सम्प्रदायसे सबधित

खोजके सिलसिलेमें भ्रमण कर रहा हूँ, तब उसने मेरा ध्यान इन कब्रोंकी ओर आकृष्ट किया। चूना साफ़ करवाकर देखनेसे ज्ञात हुआ कि इस पर कनाडी लिपिमें लेख उत्कीर्णित है। कनाडीका मुझे अभ्यास न होनेके कारण इस लेख की सूचना अपने मित्र एव गवर्नमेंट आफ इण्डियाके चीफ एपिग्राफिस्ट डॉ० बहादुरचन्दजी छाबड़ाको दी। आपने अपने आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री एन लक्ष्मी-नारायणरावको भेजकर इसकी प्रतिलिपि करवाई। दो सैनिकोंको यहापर दफनाया गया था, उन्हींके स्मारक स्वरूप ये कब्रें हैं। ये दोनों दक्षिणभारतीय थे। मध्यप्रदेशमें पाये जानेवाले लेखोंमें कनाडीका यह प्रथम लेख है। ऐसे एक दर्जन से अधिक लेख सडकों, पुलों और सीढियोंमें लगे हुए हैं, पर हमारी सरकारको एव भत्ता पकानेवाले अफसरको अवकाश कहा कि वे उन पर निगाह डालें।

है तदनुसार यक्ष मातंग और यक्षिणी सिद्धाईका होना चाहिये। यक्ष हाथी पर आरूढ़ मस्तकपर धर्मचक्रको धारण करनेवाला बनाया जाता है। यक्षिणी दाएँ हाथमें वरदान एवं वायें हाथमें पुस्तकको धारण करनेवाली, सिंहपर बैठनेवाली वर्णित है। प्रस्तुत मूर्तिमें खुदी हुई मूर्तियोंमें उपरिवर्णित रूप बिल्कुल मेल नहीं खाता। यक्ष अपने दोनों पैर मिलाये दोनों हाथ दोनों घुटनों पर थामे बैठा है। तोंद काफ़ी फूली हुई है। यक्षिणीके विषयमें स्पष्टता असम्भव इसलिए है कि उसके अंगोपांग खंडित हैं। हमारा तात्पर्य यही है कि शिल्पशास्त्रोंमें वर्णित स्वरूप कलावशेषोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें दृष्टिगोचर होता है।

प्रस्तुत तीर्थङ्करकी प्रतिमाका आसपासका भाग ऐसा लगता है मानो वह अन्य प्रतिमाओंसे सम्बन्धित होगी; कारण कि जुड़ाव-सूचक पहियोंका उतार-चढ़ाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। हमारी इस कल्पनाके पीछे एक और तर्क है, वह यह कि इसी साइजकी इसी ढंग एवं प्रस्तरकी एक प्रतिमा अजलिबद्धमें रायबहादुर हीरालाल-जीके संग्रह, कटनीमें देखी थी। वे उस प्रतिमाको बिलहरीके उसी स्थानसे लाये थे जहाँसे मैंने इसे प्राप्त किया।

उपसंहार :—

उपर्युक्त पंक्तियोंसे सिद्ध है कि महाकोशलमें जैन पुरातत्त्वकी कितनी व्यापकता रही है। मैंने चुने हुए अवशेषों पर ही इस निवन्धमें विचार किया है।[1] साहजिक परिश्रमसे जब इतनी सामग्री मिल सकी है तब यदि अरक्षित-उपेक्षित स्थानोंकी स्वतंत्र रूपसे खोज की जाये तो निस्संदेह और भी बहुसंख्यक मूल्यवान् कलाकृतियाँ पृथ्वी-के गर्भसे निकल सकती हैं। सच बात तो यह है कि न जैन समाजने आज तक सामूहिक रूपसे इन अवशेषोंकी ओर ध्यान दिया न वह आज भी दे रहा है। यदि इस तरह उपेक्षित मनोवृत्तिसे अधिक काल तक काम लिया गया तो रही-सही कलात्मक सामग्रीसे भी वंचित रह जाना पड़ेगा। ऐसे सांस्कृतिक कार्योंके लिए सरकारका मुँह ताकना व्यर्थ है। समाज स्वयं अपना कला-केन्द्र स्थापित कर सकती है। अरक्षित कलावशेषोंको एक स्थान पर सुरक्षित रखना कानूनी अपराध नहीं है बल्कि जान-बूझकर इनको नष्ट होने देना अक्षम्य सांस्कृतिक अपराध है।

सरकारी उदासीनता व उपेक्षासे म. प्र. में कलात्मक अवशेषोंकी जो दुर्दशा हो रही है उससे अपार वेदना होती है। तेवर और पनागरकी हालत देख तो आँखोंमें आँसू आ जाते है। पुरातन अत्यन्त सुन्दर व विशाल मूर्तियाँ बड़े-बड़े वृक्षोंकी जड़ोंसे बुरी तरह लिपट गई हैं और कुछेक तो वृक्षमें ऐसी दब गई हैं कि कही-कही छिद्रमेंसे भले ही उनके दर्शन हो जायें।

---

१ यों तो मुझे अपने महाकोशलके विहारमें दर्जनों स्थान ऐसे मिले हैं जहाँ पर जैनाश्रित कलाकी उच्चतम कृतियाँ उपेक्षित रूपसे पड़ी हुई हैं। उन स्थानोंमें *तेवर, बिलहरी, रीठी, डोंगरगढ़, पनागर, नागरा, पन्नपुर, लखनादौन, घुनसौर, सिहोरा, श्रीपुर, रायपुर, आरंग,* आदि कुछ प्रमुख हैं। भविष्यमें इन स्थानों पर भी प्रकाश डालने का प्रयास शीघ्र ही किया जायगा।

हमारे नेता

गोयलीय

हमारे नेता एक नहीं अनेक हैं, जितने नावमें बैठनेवाले नहीं, उससे अधिक खेवट मौजूद हैं। अगर यह खेवट एकमत होकर हमारी इस जीर्ण-शीर्ण नौकाको पार लगानेका प्रयत्न करते तो हमें अपने भाग्यपर गर्व होता, हम आवाज़ बुलन्द कहते कि जहाँ इतर नौकाओंको एक दो मल्लाह नहीं मिल पा रहे हैं, वहाँ हमारी सुरक्षाको इतने नाविक मौजूद हैं, परन्तु खेद है कि स्थिति इसके विपरीत है। इतर नौकाओंके मनुष्यों ने बाकायदा जिन्होंने मार्गकी दुर्गम कठिनाइयोंका अनुभव प्राप्त किया है, जिन्हें मार्गमें पड़नेवाली चट्टानों, लहरों और भँवरोंका ज्ञान है और जो आँधी, पानी, तूफ़ानोंके आनेका इरादा सप्ताह पूर्व भाँप लेते हैं, उन्हीं सुदक्ष और अनुभवी मनुष्योंके हाथमें पतवार देकर अपना खेवट चुना है और जिन्हें दक्षता प्राप्त नहीं हुई है, वे चुपचाप नावमें बैठे तूफ़ानोंसे टक्कर लेनेके अनुभव भी प्राप्त कर रहे हैं और पार भी हो रहे हैं।

परन्तु अपने यहाँ बात ही जुदा है। किनारेपर लगे वृक्षोंमें जो भी तना, शाख, डाली, टहनी तोड़ सका, उसने उसीको चप्पू बनाकर नाव खेने का अमोघ उपाय समझ लिया। जिन्हें टहनी न मिली, वह धोतियाको ही पानीमें डालकर उससे पतवारका काम लेनेका दुःसाहस कर रहे हैं। इतना ही होता तो भी गनीमत थी, शायद तूफ़ानोंमें पटकर लहरोंके सहारे वह कभी-न-कभी पार हो जाती, परन्तु यहाँ तो आलम ही जुदा है। हर नाविक बना हुआ अपनी अक्लकी पतल फाड़ रहा है। एक-दूसरेके मार्गका विपरीत अनुसरण कर रहा है। नाव भँवरमें पड़कर मौतके चक्कर काट रही है और उसके सितमज़रीफ़ नाविक एक-दूसरेको धकेलने और अपनी मनमानी करनेपर तुले हुए हैं और नावमें बैठे हुए निरीह अबोध माली सर पीटकर चिल्ला रहे हैं—

खेलना जब उनको
तूफ़ानोंसे आता न था।
फिर यह किश्तीके
हमारे नाखुदा[1] क्यों हो गये।

कैसी दयनीय स्थिति है उस समाजकी, जिसके भूतपूर्व बल-पराक्रम की याद करके मृत्यु उसके पास आनेसे झिझकती है, परन्तु उसके मार्गदर्शक उसे स्वयं मौतके मुँहमें ले जा रहे हैं। गन्तव्य स्थान तक सम्यक् मार्गदर्शन कोई नहीं कर रहा है। रविशसिद्दीकी के शब्दोंमें—

खिज्र[2] ही खिज्र नजर
आते हैं हरसू[3] हमको।
कारवाँ[4] बेख़बरे राहेगुज़र[5]
आज भी है॥

एक मार्ग-प्रदर्शक हो तो उसकी बात

१ मल्लाह, २ पथप्रदर्शक, ३ चारों ओर, ४ यात्रीदल, ५ भटकी राह में।

समझमें आये और गिरते-पड़ते लक्ष्यकी ओर भी बढ़ा जाये, परन्तु जहाँ न लक्ष्यका पता है, न मार्गका पता है, वहाँ सिवा दम घुट-घुटकर मरनेके और चारा भी क्या है ?

हम सच्चे मार्गप्रदर्शककी खोजमें इधर-उधर भटकते है, परन्तु सफलता नही मिलती :–

चलता हूँ थोड़ी दूर
हरइक तेजरौके[1] साथ ।
पहचानता नहीं हूँ
अभी [2]राहबरको मैं ।।

और हमारे ये मार्ग-प्रदर्शक अपनी जुदा-जुदा डफली बजा रहे हैं, उस डफलीकी तानपर मस्त होकर कौन कुएँमे गिरेगा और कौन खाईमे–इसकी इन्हें न चिन्ता है और न सोचनेका समय है ।

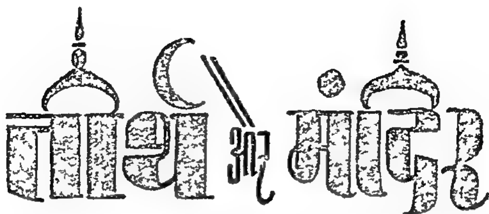
जैन समाजके तीनों सम्प्रदायोमे अखिल भारतीय संस्था तीन भी होतीं तो भी ठीक थी; परन्तु २ दर्जनसे तो अब भी कम नही और कई संस्थाओंके बीजारोपण हो रहे है, और तारीफ़ यह है कि इनके अधिकारियोंको अपने निजी कार्यों से लमहे भरकी फ़ुरसत नहीं । कार्यालय मामूली क्लर्क चलाते हैं, और इनकी ओरसे बहुत साधारण टकेपन्थी एक-एक दो-दो उपदेशक गॉव-गॉवमे घूमते है । वे कहाँ जाते है और क्या-क्या अनाप-शनाप कह जाते है और उसका क्या फल होता है, यह जानने तकका अवकाश किसीके पास नही है । इन अखिल भारतीय सभाओंके अधिवेशन होते है । वह अधिवेशन क्यों हो रहा है और क्या उपयोगी योजनाएँ समाजके लिए रखनी है, इसपर कार्यकारिणी कभी विचार तक नही करती । विचार करनेको समय ही नही, बमुश्किल बड़े दिन या ईस्टरकी छुट्टियोंमें केवल अधिवेशनमें सम्मिलित होनेको समय निकल पाता है । परिणाम यह होता है कि विषय-निर्वाचनीमें बैठे हुए महानुभाव वहीकी वही परस्पर विरोधी उलूल-जलूल प्रस्ताव गढ़ते रहते है, घण्टों बहस होती रहती है और अन्तमें कुछ-का-कुछ पास हो जाता है । न कोई यह सोचता है कि इस प्रस्तावका क्या प्रतिफल होगा, न कोई उसे अमली रूप देनेकी योजना-पर ही विचार करता है ।

जिनके पास संस्थाएँ है, वे कुछ कर नही पा रहे है, जिनके पास नही है वे किसी न किसी बहाने अपनी नई संस्था खोलने जा रहे है । पानकी दुकान खोलनेमे असुविधा हो, परन्तु संस्था खोलनेमें कोई परेशानी नही । समाज-से चन्दा मिल ही जाता है, बस अपने दो-चार आदमियोंको आजीविका भी मिल गई और स्वयं नेता भी बन गये ।

नेता बनना बुरा नही, यदि त्याग और तपस्याके साथ-साथ कुछ कर गुजरनेकी चाह हो, परन्तु केवल आजीविकाके लिए, अपनी महत्त्वा-कांक्षाएँ पूर्ण करनेके लिए और अपने को अर्थ-चिन्तासे निराकुल करनेके लिए नेता बननेका प्रयत्न दुखिया समाजकी पीठमें छुरा भोंकना है ।

---

१ शीघ्र चलनेवाला, २ मार्गदर्शक ।



श्री चम्पालाल सिंवई "पुरन्दर"

मध्यभारतमें जैन धर्मका प्रचार प्राचीन कालसे रहा है। इस प्रदेशमें मनोहर जिनविम्ब और कलापूर्ण चैत्यालय यत्र-तत्र प्रचुरतासे पाये जाते हैं। सिद्धक्षेत्र श्रमणगिरि (सोनागिर) तथा अतिशय क्षेत्र देवगढ, अहार, पम्पासर (पपौरा), तपोवन (थूवोन) आदि इस प्रान्तकी शोभा-वृद्धि कर रहे हैं। इन सबके मध्यमें चन्देरी पुरातत्व एवं इतिहासकी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण स्थल है।

यह नगर विन्ध्याचलके अञ्चलमें २४° ४३' उत्तर अक्षांश तथा ७८°-११' पूर्वदेशांशपर वसा हुआ है। इससे केवल ५ मील पूर्वकी ओर वेत्रवती (वेतवा) नदी बहती है।

आदिपुराणमें लिखा है कि भगवान् आदिनाथका समवशरण चन्देरी भी आया था। किंवदन्तीके अनुसार पौराणिक युगमें यदुराज श्रीकृष्णके प्रतिद्वन्द्वी चेदिराज शिशुपालकी राजधानी जिस स्थानपर थी, उसे अब "बूढ़ी चन्देरी" कहते हैं। जो वर्तमान चन्देरीसे उत्तर-पश्चिम १० मील पर है।

वर्तमान नगर प्रतिहार वंशीय क्षत्रिय राजा कीर्तिपालने विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें वसाया था। उसने कीर्तिदुर्ग, कीर्तिसागर और कीर्तिनारायण मन्दिर भी वहाँ निर्माण कराये।

इतिहासकार अलबरूनीने १०३० ईस्वीमें और यात्री इब्नबतूताने १०३६ ई० में चन्देरीका उल्लेख किया है। प्रथम मुसलमानी आक्रमण १०५४ ई० में बादशाह बलबनने किया, दूसरा अलाउद्दीन खिल्जीने।

महाकवि तुलसीदासजीने जिस दोहा चौपाईकी पद्धतिमें अवधी भाषा

में रामचरितमानसकी रचना की, उस शैलीके प्रवर्तक और अवधीके कवि मलिक मुहम्मद जायसीने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "पद्मावत" में चन्देरीका उल्लेख किया है (दहिने विदर, चन्देरी बाँये)

देहली और मालवेके सुलतान वहुत वर्षों तक यहाँ सूबेदार रखते रहे। चित्तौड़के प्रसिद्ध राणा संग्राम सिंह (साँगा) ने १५२० ई० में राजा मेदिनीरायको चन्देरीका शासक वनानेके लिए इसे माँडूके आधिपत्यसे मुक्त किया। सन् १५२७ ई० में बाबरने आक्रमण किया और राजा मेदिनीरायको हराया। इस अवसरपर सैकड़ों राजपूत वीरांगनाओंने जौहर किया। इसका स्मारक कीर्तिदुर्गपर जौहरतालके तटपर महाराज जीवाजी राव सिन्धियाके राज्यकालमें (वि० सं० १९९२ में) बनवाया गया है।

मुग़ल सम्राट् जहाँगीरको युवराजावस्थामें ओरछा-नरेश मधुकरशाहके पुत्र इन्द्रजीतसिंहने सैनिक सहायता की थी, जिसके कृतज्ञतास्वरूप मधुकरशाहके सिंहासनपर इन्द्रजीतसिंहको बिठाकर उनके बड़े भाई रामशाहको जहाँगीरने सन् १६०५ ई० में चन्देरी राज्य दिया। उस समय इस राज्यकी वार्पिक आय वाईस लाख रुपया थी और इसमें अठारह परगने थे। इस प्रकार वुन्देलोंके शासनका सूत्रपात हुआ। जव वादशाह औरंगज़ेवकी मृत्युके पश्चात् अन्य प्रान्तोंके शासक स्वतंत्र नरेश वन गये तव चन्देरीके वुन्देला दुर्जनसिंह भी १७०७ ई० में महाराज वन गये। उनके वंशज दुर्वल और विलासी मोरप्रहलादके ऊपर सन् १८१५ ई० में ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धियाके सेनापति कर्नल जीन वेपटिस्ट (जान वत्तीस) ने आक्रमण किया और यह राज्य मराठा साम्राज्यका एक भाग वन गया। परन्तु मोरप्रहलादके वीर पुत्र मर्दनसिंह उत्पात करते रहे जिससे विवश होकर सन् १८३८ में सेंधिया जनकोजीराव ने वुन्देलोसे सन्धि की जिसके अनुसार ५२७८८०) रुपयोंकी आयका प्रदेश तीन भागोंमें विभाजित किया गया। जिनमेंसे दो सिन्धियाको और एक वुन्देलोंको मिला। राजधानी चन्देरी सिन्धियाको मिलनेके कारण राजा मर्दनसिंहने अपनी वैठक वानपुरमें रक्खी और सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राममें वे झाँसीकी रानी लक्ष्मीवाईके दाहिने हाथ रहे। वे सागरके अभियानमें सर ह्यू रोज द्वारा पराजित होकर बन्दी हुए और अँग्रेजों द्वारा एक सहस्र रु० मासिक पेंशन मिलती रही जो घटते-घटते राजा सावन्त सिंहके समयमें ३००) रु० मासिक रह गई।

ग्वालियर राज्यके नवनिर्मित मध्य भारत प्रदेशमें सम्मिलित हो जानेसे अब चन्देरी मध्यभारतमें है। इस नगरमें सम्राट् अकबरके राज्यकालमें "आइने अकवरी'के अनुसार, कई लाख मनुष्य थे। अव केवल सात सहस्र जन संख्या है।

कीर्तिदुर्गपर नौखंडा महल, हवामहल, गिलौआ ताल और सिन्धियाकी कोठी (सं० १९६७) दर्शनीय हैं।

नगरके उत्तरकी ओर २ मीलपर

राजा देवीसिंह बुन्देलाने सिंहपुर ग्राम बसाया और एक तालाब बनवाया, जिसके किनारे लगी हुई पहाड़ीपर एक सुन्दर महल सवत् १७१३ में बनवाया। उनके पुत्र राजा दुर्गसिंहने चन्देरीसे ५ मील पूर्वकी ओरसे अपनी रानी पद्मकुमारीके नामपर पद्मनगर बसाया। जहाँ स० १७३५ में एक सुन्दर महलका निर्माण कराया और राजा दुर्जनसिंहने १७५५ में चन्देरीसे दक्षिणमें ७ मीलपर रामनगर बसाया, जहा एक तालाबके किनारे भव्य राज्यप्रासादका भी निर्माण कराया। उपर्युक्त राजभवन मुगल और राजपूत कलाके सम्मिश्रणके उत्कृष्ट उदाहरण है। इन महलोंका जीर्णोद्धार सन १९२५ ई० में महाराज माधवराव सिन्धियाने कराया।

बुन्देला राजाओंकी अन्य कृतियाँ हैं परमेसरताल और उसके तटपर लक्ष्मणजीका मन्दिर, बत्तीसी बावडी (स० १५४०), हरकुड आदि जलाशय और नरसिंह मन्दिर, जागेश्वरी मन्दिर आदि अनेक देवालय।

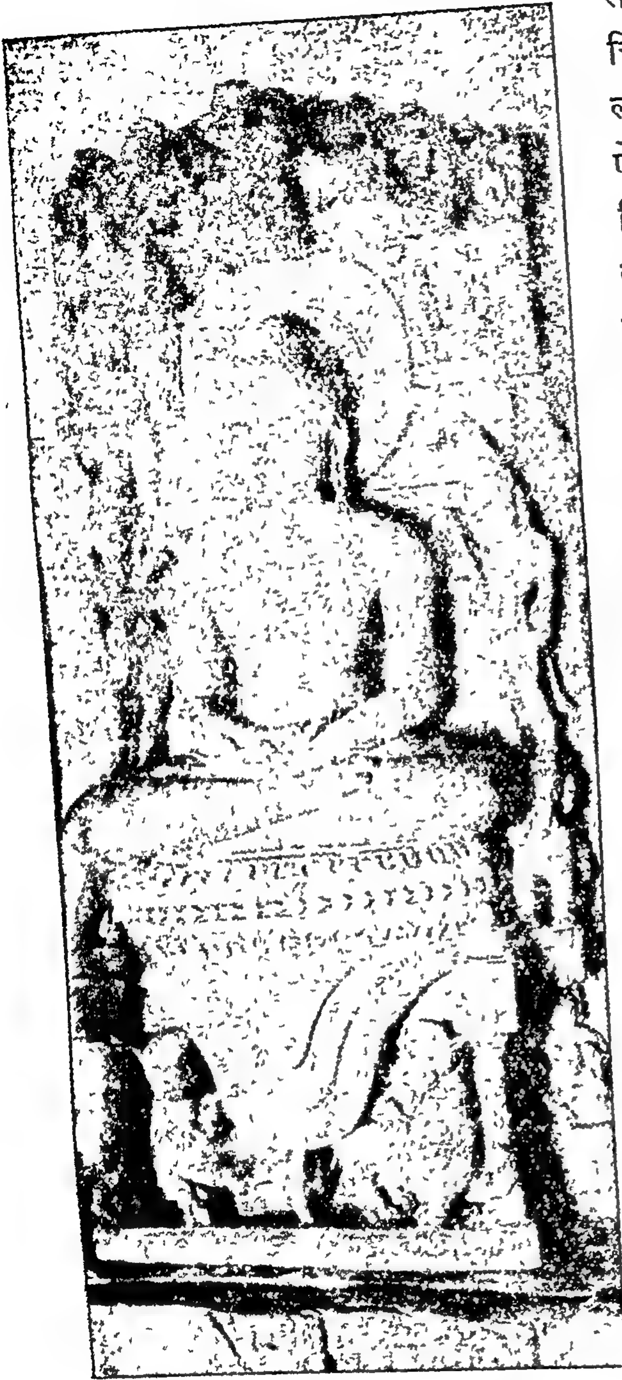
मुसलमानोंने अनेक मसजिदें और मकबरे बनवाये–जिनमें शाहजादीका रोजा, बडा मदरसा, जामा मसजिद, ईदगाह (सन् १४९४), अँभरया पीर आदि प्रसिद्ध हैं।

नगर एक पहाडीपर बसा हुआ है, जो समुद्रतलसे लगभग १५०० फीट ऊँची है। एक ओर एक पहाडी है जो नगरसे २०० फीट ऊँची है, इसे प्राचीनकालमें 'चन्द्रगिरि' कहते थे, इसी पर कीर्तिदुर्गका निर्माण हुआ है। नगरकी शेष तीनों दिशाओंमें कोट है, जिसमें अनेक विशाल तोरण हैं जिनमें प्रमुख "देहली द्वार" है जो सन् १४११ में बना।

नगरके वर्तमान भूमिपति कुँअर यशवन्तसिंहजीके पूर्वज चौधरी फौजदार हिरदेशाह मर्दनसिंहके कामदार सघाधिपति श्री सवाईसिंहजीने सवत् १८९३ में श्रमणगिरिपर गजरथोत्सव करके चन्देरीमें भारतविख्यात चौबीसी-मन्दिरका निर्माण कराया, जिसमें चौबीस शिखरयुक्त कोठरियोंमें २४ तीर्थङ्करोंकी शास्त्रोक्त वर्णकी मनोज्ञ मूर्तियाँ विराजमान हैं। प्रत्येकका नाप समान है।

नगरसे १ मील दक्षिणमें खदारजी है। 'खदा' नाम पडनेका कारण पहाडकी कन्दराओंमें मूर्तियोंका निर्माण कराया जाना है। एक मूर्ति तो २५ फीट ऊँची है जिसका अधिकांश भाग बरसाती पानीसे कट गया है। इसीलिए उसपर कोई शिलालेख न मिल सका। प्राप्त हुए अनेक शिलालेखोंमें प्राचीनतम वि० स० १२८३ का है जिसके निर्माताका नाम सभवत अनन्तशाह है। भट्टारक पद्मकीर्तिका स्मारक यहाँ बना है जिसमें चरण-पादुकाओंपर स० १७३६ वि० लिखा है। सकलकीर्ति, यशकीर्ति आदि भट्टारकोंकी छत्तरियाँ यहाँ बनी ह। दिगम्बर जैन एसोसियेशनके तत्त्वावधानमें यहाँ गुफाओंमें सीढियाँ लगवाई गई और छतरियो, धर्मशालाओं और चबूतरोंकी मरम्मत की गई। कुछ मूर्तियाँ बीच पहाडमें पृथ्वीसे ५० फीट ऊँचाई पर काटकर बनाई हुई हैं जो दुस्साध्य कार्य है। उनके रक्षार्थ एक विशाल चबूतरा २ वर्ष पहिले बनवाया गया है।

ललितपुर स्टेशनपर इन मूर्तियोंके चित्र पुरातत्त्व विभागकी ओरसे लगवाये गये है। मूर्तियोंपर कोई ऐसा लेख अभी तक नहीं मिला जिससे निर्माणकर्ता तथा निर्माण-कालका पता चल सके। केवल एक लेख अब -तक प्राप्त हुआ है जिसकी प्रतिलिपि 'जैन-मित्र'में प्रकाशित कराई गई है। परन्तु उसे पढ़कर किसी विद्वान्ने उसका अभिप्राय अब तक हमें नही भेजा जो इतिहास-रक्षाकी दृष्टिसे आवश्यक है।



अतिशय क्षेत्र बूढ़ी चन्देरीमें शिला-लेखोंके नीचे प्राप्त मूर्ति

जैनधर्मकी प्राचीनताके द्योतक अनेक भग्नावशेष बूढ़ी चन्देरीमें है। मूर्तियाँ अतिशय मनोज्ञ तथा अष्ट प्रातिहार्य और यक्ष यक्षिणी संयुक्त देशी पाषाणकी अनुपम कलापूर्ण निर्माण की गई है। मूर्तियोके शिल्पकी प्रशंसा पुरातत्त्वविदोंने मुक्त कठसे की है।



अतिशय क्षेत्र बूढ़ी चन्देरी-में प्राप्त मूर्ति

लेखक अपने इस प्रयत्नमें अच्छा सफल रहा है। थोडेमें नर-नारीके सम्बन्धकी प्राचीन नवीन समस्याओंका अच्छा पर्यालोचन हो गया है। पुस्तककी विषय-सूची देखकर कोई यह कह सकता है कि काम-विज्ञान(sexology) पर लिखी गई बाजारू टाइपकी किताब है, पर विषयावलोकनसे यह धारणा बदल जाती है। तार्किक शैलीमें पुरुष-स्त्रीके विवाह-सबंध, कामवृत्ति, तलाक, सततिनिरोध, आदर्श परिवार, कामशिक्षा, सहशिक्षा आदि विषयोंका लेखकने मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है और इनपर अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट किये हैं। धर्मकी छायामें पुरुष और नारीके सबधको लेकर अनेक पवित्र अपवित्र बातें कही गई हैं। दोनों इस भूल भुलैयामें पडकर एक दूसरेको समझनेमें असमर्थसे रहे हैं। पुराने सस्कारोंके वशसे आज वैज्ञानिक युगका नर-नारी भी बहुत कुछ गुमराह हैं। केवल नारीमें कामवृत्ति की प्रधानता देकर उसे धार्मिक सामाजिक बधनोंमें जकड दिया गया है और वह पुरुषवर्गका खिलौना बन गई है। इसमे सामाजिक सतुलनका अभाव हो गया है और आये दिन अनेक दुर्घटनाओंके समाचार मिलते हैं। जमानेसे चले आये इस अनर्थ की ओर लेखकने विशेष रूपसे ध्यान दिलाया है और स्त्रीपुरुषके सामान्य स्तरपर विकासके लिए प्रशस्त पथका प्रदर्शन किया है। नर-नारीके जीवन पर आदर्शवादी दृष्टिकोणसे लिखी गई 'ब्रह्मचर्य ही जीवन है' आदि पुस्तकोंकी अपेक्षा यथार्थवादी दृष्टिसे लिखी गई ऐसी पुस्तकें अवश्य जीवन सम्हालनेमें मदद देंगी। दिवाकर जीकी यह अल्पकाय कृति मानव जीवनकी सर्वप्रथम और सबसे बडी गुत्थी—पुरुष-स्त्रीका सबध—को समझने के लिए बडी अच्छी पथप्रदर्शिका (Guide) है। पुस्तककी छपाई गेट-अप आदि सभी सुन्दर हैं।

गुलाबचन्द्र चौधरी एम ए

महावीरका जीवन-दर्शन

लेखक—ऋषभदास राका। सम्पादक—जमनालाल जैन

प्रकाशक—भारतजैन महामण्डल, वर्धा

पृष्ठ सख्या ४२ ❁ मूल्य ।=)

प्रस्तुत पुस्तकका विषय आचाराग-सूत्रसे लिया गया है और पूरी पुस्तक निबन्ध रूपमें क्रमश जैन-जगत्‌में प्रकाशित हो चुकी है। आचाराग-सूत्रके प्राचीन क्लिष्ट शब्दो और भावो को आधुनिक शैलीमें बहुत ही सरल ढगसे समझाया गया है। इसकी भाषा हिन्दुस्तानी है जिससे सर्वसाधारणकी समझमें बहुत ही आसानीसे आ सकती है। आत्मोन्नति तथा विकास एव

साधनाकी दृष्टिसे यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। पुस्तकमें महावीरके जीवन-चरित्र तथा तत्सम्वन्धी घटनाओंके दार्शनिक दृष्टिकोणका अभाव होनेसे पुस्तकका नाम अनुरूप नहीं जँचता, उससे पुस्तकका विषय संदिग्ध-सा हो जाता है क्योंकि महावीरकी विचारधाराको ही आजकी भाषामे समझ और अनुभवके अनुसार रखनेका यह लेखकका प्रयास है।

इस प्रकार यह पुस्तक आचार तथा दर्शन सम्वन्धी सभी विषयोंको समझनेमे सर्वसाधारणके लिए वड़ी ही उपयोगी ह। छपाई सफाई सुन्दर है।

—महादेव चतुर्वेदी

नया-जीवन [मासिक]

सम्पादक—श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

प्रकाशक—विकास लिमिटेड, सहारनपुर

वार्पिक मूल्य ५) * एक प्रति ।।)

नया जीवन गत ११ वर्षोंसे ज्ञान और मनोरंजनकी ठोस सामग्री देकर द्वैमासिक रूपमे जनताकी सेवा करता रहा है। इधर इसके पाठकोंकी अभिरुचिके अनुसार इसे मासिकका रूप दिया गया है कि पाठकोंको इसकी अधिक विलम्व तक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

इस पत्रकी यह अपनी ही विशेषता हैं कि जो एक बार इसका ग्राहक वन चुका वह सर्वदाके लिए इसका अपना वन चुका। इसके ११ वर्षोंमें ११ ग्राहक भी ऐसे नही मिलेगे जो एक वार ग्राहक वनकर फिर इसके ग्राहक न रहे हों।

इसके सभी लेख कहानीकी तरह दिलचस्प और सरस होते है। भाषा, भावना और लिखनेका ढंग ऐसा रखा जाता है कि हर अंकमे गाँवका मामूली पढ़ा-लिखा मनुष्य तथा प्रोफेसर दोनों समान भावसे रस ले सकें। साम्प्रदायिकता, दकियानूसीपन तथा अश्लीलता तो इससे कोसों दूर रहती है। इसका हर अंक ऐसा होता है कि १०० वर्ष वाद भी उसी ताजगीसे पढ़ा जा सके। ज्ञान और मनोरंजनका ऐसा समन्वय अन्यत्र कम मिल सकता है।

शिक्षा-संस्थाओं तथा पुस्तकालयोंके लिए इसमें एक विशेष सुविधा दी गई है कि वे चाहें तो मूल्य देकर *'नया जीवन' मंगा लें और वर्ष भरके अंकोंका अध्ययन करनेके वाद यदि उसे अपनी संस्थाके लिए उपयोगी न समझें तो वर्ष भरके अंक सुरक्षित रूपमे लौटाकर अपने रुपये वापस मंगा लें, उन्हें तुरन्त रुपया लौटा दिया जायगा।*

—महादेव चतुर्वेदी

अनपढ़िकेय

बालकोंका क्रूर व्यापार !

हमारे देशमे बरसोंसे बालकोंका एक ऐसा व्यापार रात-दिन चल रहा है, जिसकी क्रूरताका मिलान न हम ऐटम बमकी विध्वंसकतासे कर सकते हैं और न कसाईकी अनेक जीवोंको प्रतिदिन मौतके घाट उतारती छुरीसे ।

मुझे लगता है कि मानवके स्वार्थोंकी वधशालामें युग-युगोंसे मानवका जो नृशंस घात हो रहा है, उसकी कहानी यदि कोई कथाकार लिखे, तो यह व्यापार ही उस कहानी-के शीर्षकमें स्थान पायेगा ।

यह व्यापार अत्यन्त व्यवस्थित ढगसे चल रहा है और इसकी गुप्तता को सुरक्षित रखनेके लिए उसमे भी ऊँची दीवारें खींची गई है, जितनी मेसानिक लॉजकी विश्वव्यापी गुप्तता को सदाके लिए एक रहस्य बनाये रखनेमें ।

मुझे इसका आभास तो मिला था कोई ४-५ साल पहले, पर पूरी जानकारी मिली पिछले—१९५० के महान् कुम्भमें । वह जानकारी हमारे देशकी ही सम्पदा है, इसलिए उसे इन पक्तियोंमें अपने देशको ही सौंपता हूँ ।

मध्याह्न समय मैं घूमने जा रहा था—कोई ४-५ साल पहलेकी बात है—कि मैंने देखा लकडीके एक गडी-लनेमें एक पैर टूटी जो लडकी अपाहिज रोज भीख माँगती है, उसे एक सण्डा मुसण्डा मनुष्य पीट रहा है ।

होगा यह इसका बाप-भाई, मुझे क्या, मैंने यह सोचा ही था कि कानोंमें पडी ललकार—"हरामजादी, कहाँ छिपायेगी तू पैसे ! पेटमें छिपायेगी तो इसे भी चीरकर निकाल लूँगा । अभी तो तेरी कीमत भी वसूल नही हुई, अभीसे चोरी करने लगी !"

मैं ठिठक गया और जब वह मुसण्डा उसके पैसे खसोटकर चला गया, तो मैं उस लडकीके पास पहुँचा । एकन्नी मैंने उसे दी और इकन्नीकी रेवडियाँ भी, तो वह बोली—माँ-बाप का तो बाबूजी, मुझे पता नही, पर मैं अब तीसरी बार बिकी हूँ । १०० रुपयेमें इसने मुझे खरीदा है । सुबह यहाँ बैठा जाता है, रातमें ले जाता है । बीच-बीचमें आकर तलाशी लेता रहता है और ठीक खाना भी नही देता ।"

"तुम्हारे पैरोंको क्या बीमारी है बेटी ?" मैंने पूछा, तो वह रो पडी—उसकी हिचकियाँ बँध गयी । बडी मुश्किलसे उसने बताया । मेरी एक टाँग तो मुझे याद नही कब कैसे टूटी थी बाबूजी, पर उस दूसरे आदमीने

एक दफ़ा रातको मुझे तंग किया, तो सुबह उठकर मै भाग गई। दूसरे दिन वह मुझे जंगलसे पकड़ लाया और उसने एक पत्थरसे मेरी दूसरी टाँग भी तोड़ दी। बादमे खुद ही मरहम पट्टी करके उसने मुझे अच्छा किया और तीसरेके हाथ बेच दिया।

उस दुष्टने शायद बातें करते दूरसे देख लिया था, मुझे दूसरे दिन फिर पता न चला कि वह उसे कहाँ ले गया!

१९५० के कुम्भमें एक दिन फिर इसी तरहकी घटना सामने आई। एक मनुष्य ८-१० अपाहिज बच्चोको लेकर आया और भिन्न-भिन्न चौराहों पर उन्हें बैठा गया। इस तरफ़ मेरा ध्यान गया और न गया, पर कई दिन बाद मै एक चौराहेपर चाय पी रहा था कि वही मनुष्य एक अपाहिज बालकके पास आया और उसकी तलाशी लेने लगा। अचानक उसने देखा कि वह बालक पीतलकी नई अंगूठी पहने है, जो उसने दो पैसेमें आज ही खरीदी थी, इसपर उस बालककी बहुत पिटाई हुई और वह अंगूठी भी छीन ली गई।

यह देखकर ४-५ साल पहली वह अपाहिज लड़की मेरी स्मृतिमें घूम गई और मुझे लगा यह बालक भी उसी तरहके अत्याचारोंका शिकार है। अब मै इस मामलेकी छानबीनमे जुट गया और एक सप्ताहमे मैंने कोई १६-१७ अपाहिज भिखारी बालकोसे बातचीत की। एक मित्रने भी मुझे इस बारेमे काफी जानकारी दी और अब यह स्पष्ट था कि हमारे देशमे एक गिरोह है, जो यही व्यापार करता है।

इस व्यापारका एक संक्षिप्त नक़्शा यह है कि ये दुष्ट लोग समय-समयपर बच्चे चुरा लाते हैं। इन बच्चोंमें प्रायः दो वर्षसे पाँच वर्ष तक के बालक होते हैं। जो बालक चपल सुन्दर हुए उन्हें तो ये अपना बालक कहकर ऐसे लोगोंको दे देते है, जो सन्तानहीन है और उनसे अच्छा पुरस्कार पा जाते है। सुन्दर लड़कियोंको ये वेश्याओके हाथ बेच देते हैं और बाक़ी मामूली बालकोंके हाथ-पैर तोड़कर और आँखें फोड़कर अपाहिज बना देते है, जो लोगोंमे करुणा जगा भीख माँगते और इन दुष्टोंका घर भरते रहते हैं।

इन बालकोंकी सहायतासे ही मै उन दुष्टोंका एक अड्डा भी देख सका। वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों थे और वे समृद्ध जीवनका सुख भोगते दिखाई देते थे। कई बच्चे पट्टी बांधे भी मैंने देखे और सुना कि ये अपने हाथों अपाहिज बनाये बच्चोंको खुद ही ठीक करते है—भयके कारण किसी डाक्टर को नही दिखाते और अच्छे होनेपर इन्हे भीख माँगना सिखा देते हैं।

कुम्भका मुख्य दिन बीतते ही पुलिसके सहयोगसे इस अड्डेपर छापा मारनेकी व्यवस्था की गई थी, पर दुर्भाग्यवश एक भयंकर दुर्घटना उसी दिन हो गई और यह न हो सका। कभी-कभी देशमें बच्चोंके उठाये जानेकी जो अफवाहें फैलती है और सचमुच बच्चे उड़ते है, उसका रहस्य यही है। इस रहस्यमें मेरे मित्रकी यह

जानकारी और जोडता हूँ कि इन्हीं बच्चोंमेंसे कुछकी मूत्रेंद्रिय काटकर उन्हें हिजडा (नपुसक) बना लिया जाता है और आज जो देशमें हिजडे तालियाँ बजाते और मटकाते फिरते हैं, उनमें अधिकांश प्रकृतिके नहीं, मनुष्यके बनाये हुए हैं।

समाचार है कि भारतकी राजधानीमें छापा मारकर पुलिसने १८ बच्चे बरामद किये हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तों (राज्यों) से उडाकर लाया गया था और अब भीख मांगने की शिक्षा दी जा रही थी। इस तरहके और छापे भी मारे जा चुके हैं और उनमें बहुतसे बालक हाथ लगे हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या हमारे कलेजेके टुकडे इन बालकोंकी ये यंत्रणाएँ यों ही चलती रहेंगी? क्या यह प्रश्न इतना गम्भीर और जरूरी नहीं है कि हर सूबेकी पुलिसमें इसके लिए एक स्पेशल जाँच हो? इसके लिए किसी योग्य और भावनाशील सी० आई० डी० अफसरकी नियुक्ति उपयोगी न होगी? क्या देशकी आर्यसमाजों, सेवा-समितियों और सेवा भावनावाले नागरिकोंकी यह जिम्मेदारी नहीं है कि वे जहां इस तरहके अपाहिज बालकोंको भीख माँगते देखें, जाँच पडताल करें और पुलिसके सहयोगसे छापे मारकर इन दुष्टोंको पकडवानेमें हिस्सा लें?

शासक और नागरिक दोनोंकी यह जिम्मेदारी है और आशा करनी चाहिये कि दोनों ही इस दिशामें अपने कर्तव्योंका पालन कर इस क्रूरताको देशकी धरतीसे दूर करनेमें सहयोग देंगे।

क्षयकी रोकथामके लिए

एक स्वास्थ्य अफसरका कहना है कि २५ लाख मनुष्योंको भारतमें हर साल तपेदिक (क्षय) रोग होता है और इनमेंसे ५ लाख आदमी हर साल मर जाते हैं। मरनेवालोंका हिसाब जोडकर बताया गया है कि भारतमें फी मिनट एक आदमी क्षयसे मर जाता है। क्या ये तथ्य चिन्ताजनक भी नहीं हैं?

बात यह है कि हमारे देशमें क्षय-चिकित्साका मुनासिब प्रबन्ध ही अभी नहीं हो पाया। यह बात इन आँकडोंसे स्पष्ट है—

	आज है	होने चाहिये
क्लीनिक	११६	४०००
पलंग	१२००	१०००००
ट्रेण्ड व्यक्ति व डाक्टर	३०६	१५०००
नर्स व हेल्थ विजिटर	४००	१२०००

क्षयके बीमारोंकी सेवाओंके लिए देशको ८१ नये सेनेटोरियमों और ५७ तपेदिक-अस्पतालोंकी जरूरत है। इनको बनानेके लिए ४० करोड रुपयोंकी और उन्हें जरूरी सामानसे लैस करनेमें और ४० करोड रुपयोंकी जरूरत है।

क्या हम आजकी दशामें सरकारसे इतने रुपयोंकी माँग कर सकते हैं? सिर्फ नारा लगाना हो, तो इसका उत्तर है 'हाँ' और राह-सडक देखकर आगे चलना हो, तो उत्तर है 'नहीं।' सरकारकी आमदनी सीमित है और खर्च अपरिमित, यह अपरिमितता अपनेमें अब कडे हाथों काँट-छाँट

चाहती है, इसमें सन्देह नहीं, पर यह काँट-छाँट भी हमारे समाज़की पूर्णता-का निर्माण अभी नही कर सकती।

यह काम शासकोंकी प्रतीक्षा न कर समाज-सेवकोंको अपने हाथमें लेना चाहिए और शासकोंको उसमें सहयोग देना चाहिए। शिक्षामन्त्री श्री सम्पूर्णा-नन्दजीने कुछ दिन पहले इसी दिशामें एक कदम उठाया कि अध्यापकों और विद्यार्थियोंकी क्षयचिकित्साके लिए एक सेनेटोरियम बने और सचमुच उसके लिए कई लाख रुपये इकट्ठे हो गये। देशके हज़ारों मन्दिर ऐसे हैं, जिनमें लाखों करोड़ों रुपया जमा है, क्या वह सैनेटोरियमों और अस्पतालों-मे लगानेपर भगवान्की प्रसन्नताका साधन वनेगा ? मठोंमे करोड़ों रुपया दबा पड़ा है, वह क्यों न काम आये ? क्या यह धर्म नही है ?

मेरा विश्वास है कि यह धर्म है और साथ ही यह भी कि लाखों आदमी धर्मके कार्योमे अपना हिस्सा बटानेको तैयार हे। जरूरत उन हाथोंकी है, जो यह हिस्सा लेनेको आगे वढ़े। समाजके सोये सेवको, उठो; समाजके गड्ढे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं!

'आल इण्डिया' एक मनहूसियत

'आल इण्डिया' पाकिस्तानकी मा है और दुख है कि यह भारतमें अभी तक जीवित है। अँगरेजोंने १८५७ के वाद भारतका वँटवारा कर दिया। इस वटवारेमें दो टुकड़े तो साफ़ ही थे। पहला रियासती भारत और दूसरा ब्रिटिश भारत। इसी अनेकताकी कहानीका शीर्षक था—आल इण्डिया, जिसका हिन्दी अनुवाद किया गया—अखिल भारतीय! आगे चल-कर भारतको सैकड़ों टुकड़ोंमें बाँटनेकी यह भूमिका थी, जिसे देशके दूरदर्शी और शक्तिशाली नेताओंने पाकिस्तान-की छोटी माँगोंको स्वीकार कर व्यर्थ कर दिया, पर आज भी हमारे देशमें अनेक अखिल भारतीय संस्थाएँ हैं और इस तरह इस मनहूसियतको हम मुकुट-मणि वनाये घूम रहे हैं।

क्या हम इधर ध्यान देंगे और अखिल भारतीयको भारतीय वनायेंगे ?

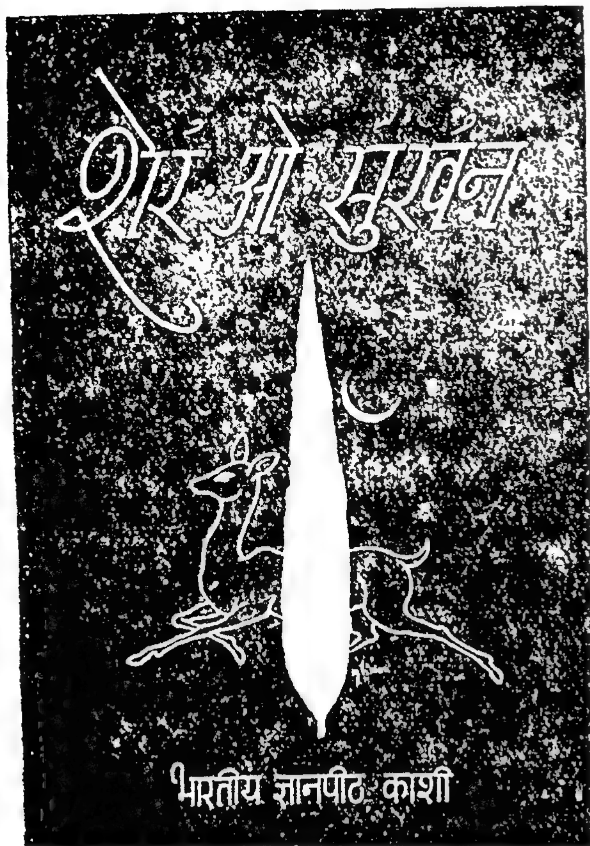
ये अर्जियाँ और ये पागल!

दिल्लीकी एक अदालतमें एक महीनेमे ४५ अर्जियाँ कुलीन युवती कन्याओंने दी है कि हम अपनी इच्छा-नुसार विवाह कर, सामाजिक वन्धन-से मुक्त हो आनन्दका जीवन व्यतीत करना चाहती हैं।

राँचीके अन्तप्रान्तीय मानसिक अस्पतालके अध्यक्ष श्री मेजर डेविसने अपनी खोजमें कहा है कि मध्यम वर्गके शिक्षित लोगोंमें पागलपनके केस वढ़ रहे हैं और इसका कारण यह है कि पुराने कट्टर विचारों और प्रगति-शील सामाजिक विचारोंमें संघर्ष वढ रहा है।

क्या ये अर्जियाँ और ये पागल; दोनों ही भारतके भूगर्भमें निरन्तर अजेय होनेको वढ़ रही नयी समाज-व्यवस्था की माँगके भोंपू नही हैं ?

[अगस्त १९५१ में प्रकाशित]



महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

"शेर-ओ-सुखनको पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उर्दूके महान् कवियोंका हिन्दीवालोंसे परिचय करानेका जो महत्त्व-पूर्ण कार्य आप कर रहे हैं वह सदा स्मरणीय रहेगा।"

श्री 'बच्चन'

"शेर ओ सुखन' के लिए हृदयसे आभार प्रकट करता हूँ। इतनी सुन्दर पुस्तके निकालनेके लिए आप बधाईके पात्र है।

नागपुर रेडियो—

"श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने इस ग्रन्थका संकलन और सम्यक् सम्पादन किया है। ऐसे ग्रन्थका संकलन और सम्पादन कोई मामूली बात नहीं है, इसमें कड़ी मेहनत, बड़ी हिम्मत और तासीरे उल्फ़तकी जरूरत है। अध्ययन और अनुशीलनमे अडिग धैर्य्य चाहिए। किसी भी भाषाकी रसभरी साहित्यिक सामग्रीके संचयनमे वर्षोकी छानबीन और अथक परिश्रम करनेके बाद ही सफलता मिलती है। इस सफलताके लिए अयोध्याप्रसादजी बधाईके पात्र हैं। छपाई अतीव सुन्दर, साफ़-सुथरी और दिलकश।"

लाजर्नलकी छपाई : कपड़ेकी जिल्द
रंगीन कवर
पृष्ठ सं० ७८४ ● मूल्य आठ रुपया

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, पोष्ट बाक्स नं० ४८, बनारस १

[फरवरी १९५१ में प्रकाशित]

ज्ञानगंगा

नारायणप्रसाद जैन

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

आज (काशी)—

इस पुस्तकमें सभी विषयोंपर सभी देशों और सभी युगोंके महापुरुषोंके अनमोल वचनोंका संग्रह किया गया है। ये वचन मनुष्यके भटकते हुए क्षणोंमें आकाशवाणीकी तरह उसका पथ-प्रदर्शन करते हैं, संग्रहकी विशालता और विविधतासे संकलयिताके विशद अध्ययन और सराहनीय प्रयासका परिचय मिलता है। ज्ञानगंगा जिस घरमें पहुँचेगी वहीं "मनचंगा और कठौतीमें गंगा" सुलभ हो जायगी।

सुरुचिपूर्ण मुद्रण कपड़ेकी जिल्द

तिरंगा कवर पृष्ठ सं० ७७२

मूल्य छः रुपये

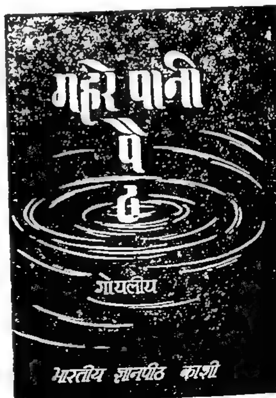
[अप्रैल १९५१ में प्रकाशित]

सम्मेलन पत्रिका—

इस संग्रहकी कहानियाँ पाठकको जीवनके हर पहलू पर सोचने और कार्यक्षेत्रमें फूँक-फूँककर कदम रखनेके लिए बाध्य करती हैं।

लेखककी भाषाशैलीमें जहाँ कोमलता, सरलता और साधुता है वहीं एक अद्भुत तड़प और अन्तर्मुखी क्रान्ति भी है। जीवनकी वह छोटी-मोटी घटनाएँ जिन्हें हम प्रायः उपेक्षित समझते हैं इन कहानियोंके द्वारा हमें सजग और सचेत बनाती हुई, नई योजना, नई गति और नई राहकी ओर बरबस खींचती हैं।

मूल्य ढाई रुपये



भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

मुद्रक और प्रकाशक—बाबूलाल जैन फागुल्ल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
मनार प्रेस बनारस



मार्च १९५२ [९] वी० नि० २४७८

सम्पादक—

मुनि कान्तिसागर : लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

इस अंक में—

वार्षिक ६) ० एक प्रति ||=)

ज्ञानोदय— भारतीय ज्ञानपीठ काशी
पोस्ट बा० नं० ४८, बनारस १

क्या भारत नेतृत्व करेगा ?

डा० व्रजमोहन गुप्त
एम० ए०, डी० फिल०

जैसा भयकर और व्यापक विनाश ससारने पिछले दो विश्व-युद्धोंमें देखा, ऐसा, इससे पूर्व कभी नही देखा था, यद्यपि दूसरे महायुद्धको समाप्त हुए भी कई वर्ष हो चुके है, किन्तु अभी तक भी उसके घाव भरे नही हैं। मानव-समाजके तन-मनसे उसकी झुलसकी जलन अभी तक भी मिटी नहीं है। यही नही, उसकी राख भी अभी तक ठडी नहीं हुई है और सारा ससार आतकित है कि पिछले महायुद्धकी गर्म राखमें अबतक जहाँ-तहाँ सुलगनेवाली चिनगारियाँ न जाने कब सर्व-ग्रासी, सर्व-विनाशकारी भयानक ज्वालाके रूपमें धधक उठें। बडे-बडे विचारकोको सन्देह है कि अणुबमो द्वारा लडे गये तीसरे महा-युद्धके पश्चात् हजारो वर्षोंमें विकसित मानव-सभ्यताका कोई भी चिह्न शेष बचेगा या नही। बहुत-से वैज्ञानिकोको तो आशका है कि अणुबम-युद्धके फल-स्वरूप यह हमारा सम्पूर्ण भूमडल ही तो कही आतिशबाजीके पटाखेकी तरह एक धडाकेके साथ अतरिक्षमें विलीन न हो जाय ? फिर भी इस इतने बडे खतरेको टालनेके लिए एक ही प्रकार-का प्रयत्न अधिकाश देशोमे हो रहा है और वह है अधिकसे अधिक विनाश-कारी नये-नये अस्त्र-शस्त्रोका अधिकसे अधिक सख्यामें निर्माण। इस प्रकार जितनी अधिक बारूद जमा कर ली जाएगी, चिनगारी पडनेपर उतनी ही

अधिक ज़ोरका धड़ाका भी होगा। संसारके सामने आज सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि यह जो पागलपन और आतंककी मनोवृत्ति संसारके ऊपर छा गई है, इसका उपचार क्या हो !

इस इतने भयानक रोगके उपचार-की दिशा टटोलनेसे पूर्व उसके कारणों पर भी संक्षेपमें विचार कर लेना आवश्यक है। ज्ञान-विज्ञानके प्रागैति-हासिक कालसे अब तकके विकासकी शृंखलामें एक बात समान रूपसे दिखाई पड़ती है। मानवने संघर्ष और साधना द्वारा जब-जब जीवनके लिए कुछ सुख-सुविधाएँ खोज निकाली, तब-तब शक्ति-सम्पन्न लोगोंने सामाजिक व्यवस्थाको ऐसे साँचेमें ढालनेका प्रयत्न किया कि उन सुख-सुविधाओंका लाभ थोड़ेसे व्यक्तियोंको अधिकसे अधिक प्राप्त हो सके। जब सर्वसाधा-रणके लिए इन थोड़े-से व्यक्तियोंकी सुख-सुविधा और विलासका बोझ असह्य हो गया, तो उन्होंने उस समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध विद्रोह किया और इसी सतत संघर्षके फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञानका विकास होता रहा।

सोलहवीं शताब्दीमें जिस विज्ञान-यंत्र युगका यूरोपके देशोंमें प्रादुर्भाव हुआ, उसने उन देशोंकी उत्पादन-शक्ति सहसा बहुत अधिक बढ़ा दी। थोड़े ही समयमें उत्पादन इतना अधिक बढ़ गया कि उत्पादकोंके लिए सामान-को अपने ही देशमें खपाना असंभव हो गया और अपनी तीन आवश्य-कताओंकी पूर्तिके लिए वे प्रयत्न करने लगे।

वे तीन आवश्यकताएँ थीं—

(१) सामानकी खपतके लिए अन्य देशोंमें नये बाजार, (२) सामानके उत्पा-दनके लिए अन्य देशोंसे कच्चे मालकी प्राप्ति, (३) अपनी अतिरिक्त पूँजीको अधिक लाभके लिए लगानेको ऐसे नये क्षेत्र जहाँ मजदूर सस्ते हों। अपनी इन आवश्यकताओंको पूरा करनेके लिए यूरोपके पूँजीवादने तोपों-की सहायतासे साम्राज्यवादका प्रसार प्रारंभ किया और थोड़े ही समयमे, सोये हुए एशियाको मुर्दा समझकर साम्राज्यवादके कफ़नसे ढक दिया। यह ध्यान देनेकी बात है कि इस प्रसारके पीछे उस समयकी सरकारोंकी अपेक्षा व्यापारिक कम्पनियोंका हाथ अधिक था, तोपोंकी सहायतासे चीनमें अफ़ीम बेचने तथा मैनचेस्टरके लाभके लिए भारतीय जुलाहोंके हाथ काटने-की बात यदि छोड़ भी दें, तो इतना तो निश्चित रूपसे निर्विवाद है कि पेरिस, लंदन और वाशिंगटनमें सुख-सुविधा और विलासके जिस चकाचौंध कर देनेवाले सामानके अम्बार लगे हैं, उसकी कीमत एशियाके करोड़ों निवासियोंको अपने पसीने और खूनसे अदा करनी पड़ी है !

इस प्रसार-क्रमके फल-स्वरूप बीसवी शताब्दीके प्रारंभमें यूरोपके शक्तिसम्पन्न लोगोंके सामने कुछ नई समस्याएँ आ गईं। पहली बात तो यह थी कि एशियाकी लूटमें योरपके सभी देश समान रूपसे भागीदार नहीं थे। इसलिए उनमें पारस्परिक डाह और कटुता बढ़ती चली गई; दूसरे, एशियाकी लूटमे जिन देशोंका प्रमुख रूपसे हाथ था, उनमे भी, उस लूटका

अधिकांश लाभ विशेष सुविधा-प्राप्त एक छोटेसे वर्गको ही मिला और इस प्रकार इस वर्गके जीवनके स्तर और उसी देशके सर्वसाधारणके जीवनके स्तरमें बहुत बडा अंतर आ गया, जिसके फल-स्वरूप उन देशोंमें वर्ग-संघर्षकी आग दहक उठी। तीसरे साम्राज्यवादके कफनके नीचे सोये एशियाने करवट बदलनी और कफन-का कोना जहां-तहांसे उठाकर बाहर झांकना शुरू किया।

इंगलैंडने इस स्थितिका सामना घरमें तथा अधीन देशमें छोटे-मोटे सुधार करके करना चाहा, किन्तु वह अपने साम्राज्य तथा अपनी पूंजीवादी व्यवस्थाका मोह नहीं छोड सका, इस प्रकार इस प्रजातन्त्री देशके पास किसी नैतिक आदर्शोंका बल नहीं था। यूरोपके अन्य देशोंने समस्यापर सामूहिक दृष्टिसे विचार न करके सैनिक शक्ति द्वारा अपने-अपने देशकी समस्याको हल करना चाहा। इसके फल-स्वरूप १९१८ में महायुद्धकी ऐसी ज्वाला धधकी जिसमें अमरीका-छोडकर लगभग सारा संसार झुलस गया। अमरीकाको युद्धकी इस आगमें हाथ तापनेका अच्छा अवसर मिला जिसके फल-स्वरूप उसकी आन्तरिक आर्थिक विषमता-जनित संघर्षकी समस्या कुछ समयके लिए हल हो गई।

संसारके सामने जो बडी-बडी समस्याएं थीं उन्हें उस महायुद्धने कुछ समयके लिए दबा दिया, किन्तु वे अंतिम रूपमें भी हल नहीं हुई। इनके लिए वे बराबर पुकारती रही और इसके फल-स्वरूप विभिन्न विचार-धाराएं सामने आईं। इनमेंसे प्रमुख दो थीं। रूसका साम्यवाद और जर्मनी और इटलीका राष्ट्रीय सैनिकवाद। साम्यवादका कथन था कि विशेष सुविधा-प्राप्त वर्गको समाप्त करके उत्पादन और वितरणके साधनों पर सर्वसाधारणका अधिकार हो जाय जिससे उनका उपयोग सर्वसाधारण न्यायसंगत रीतिसे कर सकें। राष्ट्रीय सैनिकवाद चाहता था कि राष्ट्रीय महानताके नाम पर अपने देशके सर्वसाधारणको ऐसा पागल बना दिया जाय कि वे नंगे भूखे रहकर भी ऐसी सैनिक शक्तिके संगठनमें सहायक हो सकें, जिसके द्वारा देशके अन्दर और देशके बाहर प्रत्येक विरोधको कुचला जा सके।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दोनों ही विचार-धाराओंका आधार भौतिकवाद है। दोनों ही एक वर्गके विरुद्ध दूसरे वर्गमें और एक देशके विरुद्ध दूसरे देशमें उत्कट घृणा जागृत करके अपने लिए शक्ति संचित करते हैं। जीवनके नैतिक और आध्यात्मिक मानोंके लिए दोनों हीमें कोई स्थान नहीं है, तथा-कथित प्रजातन्त्र देशोंके ऊपर उत्तर-दायित्व था कि वे भौतिकवादी विचार-धाराओंके मुकाबलेपर इन समाज-संगठनकी ऐसी व्यवस्था उपस्थित करते, जिसमें सर्वसाधारणको जीवनके नैतिक और आध्यात्मिक मानोंके आधारपर प्रसारित न्यायसंगत समानता प्राप्त होती, किन्तु ये प्रजातन्त्र देश अपने साम्राज्य तथा पूंजीवादी व्यवस्थाका मोह नहीं छोड सके और इसीलिए अपना उत्तरदायित्व पूरा करनेमें नितांत

असफल रहे। इन्हीं परिस्थितियोंके फल-स्वरूप दूसरे महायुद्धकी आग भड़क उठी जिसकी परिणति अणुबमके द्वारा दो फलते-फूलते नगरोंकी हस्ती मिटा देने जैसे अभूतपूर्व भयानक कार्य-में हुई।

वीसवीं सदीके पिछले पचास वर्षोंमें भौतिकवादने सम्पूर्ण संसारको इस प्रकार ढके रखा कि शक्तिशाली समझे जानेवाले किसी भी देशके सामने नैतिक आदर्श-जैसी कोई चीज़ नही रही। अपनी परम्परागत संस्कृति-के अनुरूप नैतिक अन्धकारकी इस लम्बी रात्रिमें भारतवर्षने अपने स्वतंत्रता-संग्रामके केन्द्र-बिन्दुके रूपमें गांधीजीके नेतृत्वमें नैतिकताकी मशाल जलाये रक्खी और संसारने देखा कि सैनिक शक्तिके अभावमें भी उस नैतिक शक्तिकी इस सीमा तक विजय हुई कि लम्बे संघर्षके फल-स्वरूप भारतको स्वतन्त्रता मिल गई, पर ब्रिटेनके साथ उसकी कोई कटुता शेष नहीं रही।

दूसरे महायुद्धको समाप्त हुए भी कई वर्ष हो चुके हैं, किन्तु मूल समस्या हल नही हुई है। दूसरे महा-युद्धने भी मूल प्रश्नको कुछ समयके लिए दबा भर दिया है, हल नही किया है। आज भी मनुष्य और मनुष्य तथा देश और देशके बीच शोषण-जनित आर्थिक असमानताकी अमानु-षिक गहरी खाई संसारको समस्याके हलके लिए ललकार रही है। आज भी शक्तिशाली देश उस ललकारका उत्तर देनेके लिए विनाशकारी अस्त्र-शस्त्रोंका अम्बार लगानेमें जुटे हुए हैं। अभी कुछ दिन हुए अमरीकाका बजट सामने आया है। एक वर्षमें अमरीका सैनिक शक्तिपर जो धन खर्च करता है, उतने धनसे सारे एशियाकी अधिकांश महत्त्वपूर्ण सम-स्याएँ हल हो सकती हैं। सारा संसार सैनिक संगठनपर एक वर्षमें जितना धन व्यय करता है, उससे सारे संसारकी नव-निर्माणकी सब योजनाओं का कमसे कम दस वर्ष तक कार्य चल सकता है।

यदि शक्तिशाली देशोंपर अपने धन-बल और सैनिक बलका नशा इसी प्रकार छाया रहा, तो जिन विनाशकारी अणुबमोंसे पिछले महा-युद्धका अन्त हुआ था उससे कहीं अधिक भयानक हाइड्रोजन बमोंसे तीसरे महायुद्धका श्रीगणेश होगा। ऐसे भयानक तीसरे महायुद्धका खतरा संसारके सभी विचारकोंके लिए एक महान् चुनौती है।

इस चुनौतीका एक जवाब अम-रीकाके विचारक और साधक श्री फ्रैंक बुकमैनने अपनी नैतिक शस्त्री-करण (मोरल-रि-आर्मामेंट) की योजनाके रूपमें दिया है। यों तो वे सन् १९२१ से ही विश्वशांतिके लिए किसी योजनाकी खोजमें थे, किन्तु उन्होंने अपना नैतिक शस्त्रीकरणका कार्य १९३८ में प्रारम्भ किया था। चार जून १९५० को उनके जन्म-दिवसके अवसरपर जर्मनीमें उनके सम्मानमें एक सभा हुई थी। इसमें भाषण देते हुए उन्होंने कहा था,—"आजसे १२वर्ष पूर्व में Frendenstadt के समीप Black Forest में टहल रहा

था। ससार विनाशके किनारेपर था। उस समय भी आज ही की भाँति सब शांतिकी आकांक्षा और युद्धकी तैयारी कर रहे थे।"

"उस शान्त जंगलमें टहलते समय एक विचार मेरे मनमें बराबर आता रहा—'नैतिक और आध्यात्मिक पुनःशस्त्रीकरण' नैतिक और आध्यात्मिक पुनःशस्त्रीकरण। ससारमें आनेवाला महान् आन्दोलन नैतिक और आध्यात्मिक पुनःशस्त्रीकरणका होगा।" उन्होंने इसे ईश्वरका आदेश मानकर इसके लिए कार्य प्रारंभ किया और पिछले १३ वर्षोंमें ससारके अनेक देशोंमें उनकी विचारधाराका काफी प्रचार और प्रसार हुआ है। विशेष रूपसे युद्धध्वस्त देशोंके बहुत-से लोगों को शांति और आस्था प्राप्त हुई है। उनका विश्वास है कि सैनिक शक्ति द्वारा व्यवस्था बदलनेसे नहीं, किन्तु व्यक्तियोंकी प्रवृत्तिमें आमूल परिवर्तन होनेसे समस्याका हल होगा। ससारके रोगका कारण है कि आज मनुष्य ईमानदारी पवित्रता, निस्वार्थता और प्रेमको भूल गया है। अधिकसे अधिक संख्यामें मनुष्योंके चरित्रमें निरपेक्ष ईमानदारी, पवित्रता, निस्वार्थता और प्रेमका प्रादुर्भाव ही समस्याका हल कर सकता है। फ्रैंक बुकमैनका विश्वास है कि "जब मनुष्य सुनता है, तब ईश्वर बतलाता है, जब मनुष्य आज्ञापालन करता है तब ईश्वर ही कार्य करता है, जब बहुत से मनुष्योंमें परिवर्तन होता है, तब राष्ट्र भी परिवर्तित हो जाते हैं।"

उनकी कार्य-पद्धति है कि व्यक्ति मिलकर ईश्वरका आदेश सुननेकी उत्सुकताके साथ शान्त बैठकर चिंतन करें। इन क्षणोंमें ईश्वरका जो आदेश अपनी अन्तरात्मामें प्राप्त हो, उसके अनुसार कार्य करें। अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको निरपेक्ष ईमानदारी, पवित्रता, निस्वार्थता और प्रेमकी कसौटी पर कसें। यदि किसीके प्रति अपनेसे कोई अपराध हुआ हो या कोई ऐसा कार्य हुआ हो जिससे ऊपर दी गई चार बातोंमेंसे किसीका खंडन हुआ हो, तो उस अपराधको स्वीकार किया जाय और उसके लिए क्षमा माँगी जाय।

इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर स्वीट्ज़रलैंडमें Cause नामक स्थान इन नैतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का एक ऐसा जीता-जागता केन्द्र बन गया है कि जहाँ जाकर हजारों विरोधी विचारधाराके महत्त्वपूर्ण व्यक्ति परिवर्तित हो गये, उनमें बहुत-से विभिन्न देशोंके महत्त्वपूर्ण कम्यूनिस्ट नेता और कार्यकर्ता भी हैं।

फ्रैंक बुकमैनका विश्वास है कि इन असूलोंमें विश्वास करनेवाला व्यक्ति यदि अपने जीवनको नये साँचे-में ढाल लेता है, तो उसके सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंके जीवनमें भी किसी न किसी अंशमें परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा। इसी प्रकार धीरे-धीरे यह परिवर्तन सारे संसारके कोने तक पहुँचकर एक ऐसे नये ससारका निर्माण करेगा, जिसमें संघर्ष और युद्धकी आशंका न होगी।

इस सम्बन्धमें कुछ प्रश्न विशेष रूपसे सामने आते हैं, इन नैतिक और

आध्यात्मिक असूलोंकी बात पश्चिमी देशोके लिए भले ही नवीन हो, पूर्वी देशोंमें तो यह परीक्षण बराबर होता आया है। बुद्ध, महावीर और ईसाने तथा उनके हज़ारों सच्चे अनुयायियों-ने इसी प्रकारकी साधनामें अपना पूरा जीवन खपा दिया, मध्ययुगमें भारत-वर्षके अनेक संतोंका मार्ग भी, जिनकी वाणी आज भी हिन्दी-साहित्यकी अमूल्य निधि है, इससे बहुत भिन्न नही था। वर्तमान युगमे भी विवेकानन्द, रामतीर्थ और गाँधीने इसी प्रकारकी साधना अपनाई, मैं मानता हूँ कि नैतिक और आध्यात्मिक असूलोंकी रक्षा और उनका प्रसार तथा भौतिकवादसे आक्रांत आजकी दुनियामें, विभिन्न देशोंके हजारोलाखों व्यक्तियोंकी नैतिक और आध्यात्मिक असूलोमें आस्था उन्ही साधकोंकी साधनाका फल है और इस प्रकार वह व्यर्थ नही हुई, किन्तु इस समस्याका एक पहलू और भी है। सैकड़ों महापुरुषोंकी इस प्रकारकी हजारों वर्षोकी साधनाके वावजूद संसारमें विनाशकारी युद्ध होते रहे और आज भी शोषण और उससे उत्पन्न होनेवाली अनैतिक विषमता चारो ओर ही दिखाई देती है। मनुष्यको अधिक नैतिक बनानेका प्रयास तो सदा ही वांछनीय रहा है किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या फ्रैंक बुकमैन संसारकी वर्तमान समस्याओंको हल कर सकेंगे, The World Rebuilt पढ़नेसे पता चलता है कि नैतिक शस्त्रीकरण के इस मूवमेंटका लक्ष्य साम्यवादको पराजित करके उसका स्थान लेना है। मेरा विश्वास रहा है कि आवश्यकता ऐसी नैतिक विचार-धाराकी है, जो साम्यवादके पूरकके रूपमें कार्य करनेके लिए उसमे घुल मिलकर कुछ बातों में उसका आधार और उसकी दिशा बदल सके। The World Rebuilt में नैतिक शस्त्रीकरण द्वारा मिल मालिकों, मिलके मैनेजरों और मजदूरोंमें बहुत मधुर और पारस्परिक विश्वासपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जानेकी अनेक सच्ची घटनाएँ दी हैं, प्रश्न उठता है कि क्या यह काफ़ी है कि मिल-मालिक मैनेजर और मज़दूरोंमें अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जाएँ? क्या वास्तवमें स्थायी शान्ति और समाजके भावी विकासके लिए यह आवश्यक नही है कि उत्पादन और वितरणके साधनोंपर सीधा या परोक्ष उन्हीका अधिकार हो जाय जो जीवन भर उत्पादनके लिए परिश्रम करते है ? नैतिक शस्त्रीकरणके इस मूवमेंटको इस खतरेसे बचाये रखनेके लिए क्या उपाय किया गया है कि सुविधाप्राप्त वर्ग इस नैतिक आशीर्वादके नशेका उपयोग शोषित समाजको सुलाये रखनेके लिए न कर सके ?

संसारने देखा कि चीनमें बीस वर्षके संघर्षके वाद साम्यवाद विजयी हुआ, जानकार व्यक्ति बताते हैं कि इस साम्यवादका विकास चीनकी मिट्टी से अनेक तत्त्वोंको लेकर हुआ और कुछ बातोंमें वह रूसके साम्यवादसे भिन्न है। सम्पूर्ण संसारकी ओरसे भारतवर्षके सामने आज एक महान् चुनौती है। आजकी समस्याएँ मानव जीवनका एक नैतिक और आध्यात्मिक आधार तथा समाजकी साम्यवादी व्यवस्था

एक साथ चाहती है। विदेशोंके विचारक इन दोनोंको विरोधी बातें बताते आये हैं। क्या भारत अपनी संस्कृतिकी हज़ारों वर्षोंकी विकासोन्मुख साधनाके बलसे, बिना रक्त पातके, देशमें नई प्रकारकी ऐसी शोषण-रहित व्यवस्था स्थापित करनेमें सफल होगा जिसका आधार पश्चिमका भौतिकवाद न होकर भारतीय संस्कृतिके नैतिक तथा आध्यात्मिक मान हों? इस चुनौतीके सम्बन्धमें भारतवर्षका जो उत्तर होगा, मेरी आस्था है कि उस पर काफी अंशोंमें सारे संसारका भविष्य निर्भर करेगा।

आशा

बन्दी हूँ, एकमात्र आशा मृत्युकी आशा है।

किन्तु फिर भी, न जाने क्यों, हृदय गा रहा है। मन कहता है, मूर्ख, अपने कर्मोंका प्रायश्चित्त कर, जी भरकर रो तो ले! पर हृदयमें एक उद्दाम उल्लास हिलोरें ले रहा है! आँखोंमें आँसू छलछला रहे हैं, किन्तु एक अननुभूत आह्लादसे उनकी ज्योति बढ़ रही है!

उल्लास! आह्लाद! आशा! विडम्बना है! किन्तु फिर भी यह आशा—!

कामना रोती है—तूने सब कुछ खो दिया, तेरा कोई आधार नहीं रहा। अब किस लिए जीता है? इस निरर्थक आशाको छोड़!

भावना कहती है—अभी सब कुछ नहीं खोया, अभी एक आधार शेष है—यही आशा!

श्री अज्ञेय

आधुनिक

हिन्दी गद्य नाटक

हिन्दीमें नाटकोंका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। संस्कृतका नाटक साहित्य बहुत समृद्ध होनेपर भी हिन्दीने उससे लाभ नहीं उठाया। इसके कई कारण थे। एक तो नाटक-साहित्यके पनपनेके लिए जिस शान्ति और उत्साहकी आवश्य-श्यकता होती है लड़ाई झगड़ोंके कारण उसका यहाँ अभाव था। दूसरे हिन्दी में गद्यका विकास बहुत देरसे हुआ। तीसरा कारण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं ह। मुसलमानोंमें मूर्तिपूजा और अनुकरणका निषेध है। इसलिए उनसे सम्पर्क होनेपर इस कलाको कोई प्रोत्साहन नही मिला। इन सव कारणों-से भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्रसे पहले हिन्दीमें नाटकोंका प्रायः अभाव ही है। जो नाटक मिलते है उनमें अधिकतर अनुवाद हैं। अनुवादोंके अतिरिक्त मौलिक नाटकोंमें विश्वनाथ सिंहका

श्री विष्णु प्रभाकर

'आनन्द रघुनन्दन' तथा बा० गोपालचन्द्र उपनाम श्री गिरधरदासका 'नहुष पतन' ये ही दो नाटक सुने जाते हैं। इस कालके नाटकोंकी भाषा व्रजभाषा रहती थी। उनमें गद्य बहुत कम और उनका विषय धार्मिक और पौराणिक होता था।

भारतेन्दु हिन्दीके पिता कहे जाते हैं। वे बहुमुखी प्रतिभावाले व्यक्ति थे। उन्होने जहाँ युगपर अपना प्रभाव डाला वहाँ युगकी नई प्रवृत्तियोसे पूरा-पूरा लाभ उठाया। उनके काल तक भारत अंग्रेजोके सपर्क मे आ चुका था और वह अंग्रेजी नाटकसे अपरिचित नही रहा था। बगला पर तो उनकी छाप पूरे तौर पर पड चुकी थी। भारतेन्दु अगरेजी, बगला, सस्कृत तीनो भाषाएँ जानते थे इसलिए उनके नाटकोमे जहाँ प्राचीनता है वहाँ नवयुगका प्रभाव भी है। शृगार, हास्य और कौतुकके साथ समाज सुधार और देशभक्तिका आदर्श भी है। उन्होने 'भारत दुर्दशा' और 'अन्धेर नगरी' आदि ग्यारह मौलिक नाटक लिखे तथा 'मुद्राराक्षस' और 'भारत जननी' आदि पाँच नाटकोका सस्कृत, प्राकृत, बगला और अंग्रेजीसे अनुवाद किया। भारतेन्दुने स्वय ही नाटक नहीं लिखे बल्कि अपने कालके दूसरे लेखकोको भी इस ओर प्रोत्साहित किया। उस कालके नाटककारो और नाटकोमें प्रतापनारायण मिश्र, के 'हठी हमीर' और 'गोसकट', बद्रीनारायण चौधरीके 'भारत सौभाग्य', श्रीनिवासदासके 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' तथा 'सयोगिता-स्वयवर', राधाकृष्णदासके 'महाराणा प्रताप', तोतारामके 'केटोकृतात', गदाधर भट्टके 'बाल विवाह' और 'चन्द्रसेन' तथा केशवराम भट्टके 'सज्जाद सम्बुल', और 'शमशादसौसन' का नाम लिया जा सकता है। इस कालके नाट्य-साहित्यमें कई मौलिक परिवर्तन हुए। पहले नाटकोंमें प्रस्तावना आदि रहती थी वह अब समाप्त हो चली। नाटककार पौराणिक विषयोंको छोडकर सामाजिक विषयोपर नाटक लिखने लगे। ऐतिहासिक नाटकोंकी नींव भी इसी कालमें पड़ी। गद्यका प्रयोग बढ गया और हास्य तथा व्यगकी मात्रा भी अधिक रही।

भारतेन्दुके बाद महावीरप्रसाद द्विवेदीके कालमें अनुवादोंकी भरमार रही। बा० रामचन्द्र वर्मा, बा० गोपालराम गहमरी तथा प० रूपनारायण पाण्डेयने बगलासे, पुरोहित गोपीनाथ तथा प० मथुराप्रसाद चौधरीने अंग्रेजीसे, तथा ला० सीताराम, प० ज्वालाप्रसाद मिश्र तथा प० सत्यनारायण कविरत्नने सस्कृतसे अनेक सुन्दर नाटकोंका हिन्दीमें अनुवाद किया। इस कालके मौलिक नाटककारोंमें गोस्वामी किशोरीलाल, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय, बा० शिवनन्दन सहाय, राय देवीप्रसाद पूर्ण, प० बदरीनाथ भट्ट, बाबू मैथिलीशरणगुप्त तथा मिश्रबन्धुओंका नाम लिया जा सकता हैं। इन सभी महानुभावोंने साहित्यिक दृष्टिसे नाटक लिखे, इन्हींके साथ सब श्री नारायणप्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक,

हरिकृष्ण जौहर, और आगाहश्र आदि नाटककारोंने पेशेवर नाटक कम्पनियोंके लिए नाटक लिखे, इन नाटकोंमे साहित्यके स्थानपर लोकरुचिका ध्यान रखा जाता था। उस कालका रंगमंच भी बड़ा अस्वाभाविक था। इसलिए इन नाटकोका साहित्यमें कोई स्थान नही है। इस युगकी मुख्य देन केवल यही है कि नाटकोमे खड़ी बोली गद्यका प्रयोग बढ़ गया। इसके अतिरिक्त रंगमँचपर हिन्दीको भी स्थान मिल गया। यह भी कोई छोटी बात नही है।

नाटक साहित्यका प्रारम्भ जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे माना जाता है उसी प्रकार उसका वास्तविक विकास बा० जयशंकर प्रसादके उदयके साथ होता है। उन्होने सब प्रकारसे इस क्षेत्रमे नवजीवनका संचार किया। उनके इस क्षेत्रमें आनेपर जो नई प्रवृत्तियाँ विकसित हुई वे महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन नाटकोंमे मंगलाचरण, नान्दी, सूत्रधार और भरत वाक्य आदि जो शास्त्रीय नियम रहते थे वे अब समाप्त हो गये। तथा हत्या और युद्ध आदिके जो दृश्य नहीं दिखाये जाते थे उनका बे रोक-टोक प्रयोग होने लगा। व्रजभाषा प्रायः समाप्त हो गई और गद्यकी प्रचुरता बढ़ गई। धार्मिकके स्थानपर सामाजिक तथा पौराणिकके स्थानपर ऐतिहासिक कथावस्तुको प्रधानता मिलने लगी। प्रसादजीके प्रायः सभी नाटक ऐतिहासिक है। दैवी घटनाओके लोप हो जानेपर मनुष्यका महत्त्व भी बढ़ गया। सभी जातिके पात्रोंका चित्रण होने लगा परन्तु जो दो महत्त्वपूर्ण प्रभाव उन्होंने इस साहित्यपर डाले वे ये हैं। प्राचीन नाटकोंमें आदर्शवादके कारण उनके पात्रोंमें प्रायः अन्तर्द्वन्द्व नही होता था। रामको पिताकी आज्ञा मिली और वे वन चले गये। मनमे तनिक भी मैल नही आने दिया। संघर्ष तो दूरकी बात है, पर प्रसादके युगमें आदर्शके प्रति पुरानी भक्ति नहीं रही। समाजमे संघर्प वढ़ गया और उसीके साथ नाटकोंपर भी उसकी छाप पड़ने लगी। साहित्य तो समाजका प्रतिविम्ब होता है न? इस प्रवृत्तिके कारण चरित्रके विकासको भी स्थान मिला। नाटकोंमें अन्तर्द्वन्द्व बढ़ गया।

दूसरा बड़ा परिवर्तन भाषाका था। पुराने नाटकोंमें भावोंकी गम्भीरता नही थी बल्कि शब्दोंका तूफान अधिक था। प्रसादने अन्तर्वेदनाको स्थान देकर उस तूफ़ानको शान्त किया। लेकिन जहाँ इतने सुखद परिवर्तन हुए वहाँ एक दुःखद परिवर्तन भी हुआ। उनके नाटक कलामय होते हुए भी रंगमंचके योग्य नही है। वे रंगमंचका निर्माण न कर सके, इसलिए उनके नाटक दृश्य काव्यकी अपेक्षा श्रव्य काव्यके अधिक पास है।

इस प्रकार प्रसादजीके आते-आते विकासकी एक मंजिल पूरी हो जाती है। उनके समकालीन तथा कुछ पश्चात्के नाटककारोमें पं० बद्रीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, गोविन्दवल्लभ पन्त, चतुरसेन शास्त्री, जी० पी० श्रीवास्तव, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, प्रेमचन्द, सेठ गोविन्ददास, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सुदर्शन, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ

अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालकार, भगवती-प्रसाद वाजपेयी, हरिकृष्ण प्रेमी आदि प्रमुख हैं। इन्हींके साथ-साथ हम नवयुगमें प्रवेश करते हैं। नवयुगपर इब्सन और बर्नार्ड शाके नाटकोंका प्रभाव है। प्रसादके नाटकोंसे वे बहुत आगे बढ गये हैं। "जहाँ हम प्रसादके नाटकोंमें शाश्वत (यानी सदा रहने-वाली) समस्याओंके अतीतके क्षेत्रमें दर्शन करते है वहाँ नवीन नाटकोंमें शाश्वतके वर्तमान स्वरूपको आधुनिक समाजके स्वाभाविक वातावरणमें देखते हैं"—एक आलोचकके इस मतको हम इस प्रकार रख सकते हैं कि—आजके नाटकोंमें प्रतिदिन जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्याएँ हैं। पात्र भी राजा रानी या विशिष्ट व्यक्ति न होकर हम तुम तथा समाजके वे दूसरे लोग हैं जिन्हें हम कल तक छोटा समझते रहे थे। आजका नाटककार अतीत यानी पीछेकी ओर नहीं देखता, भविष्य यानी आगेकी ओर देखता है। वर्तमान युगमें फुरसत कम है और दौड धूप अधिक है सो इस बातका प्रभाव भी नाटकपर पूरा पडा है। रामायण-जैसे महाकाव्योका युग समाप्त हो चुका है अब तो मुक्तक यानी फुटकर कविताओंकी माँग है। पैदल, बैलगाडी, घोडा गाडी, भापका इजन, मोटर, रेल और अन्तमें हवाई जहाज-मनुष्य कहाँसे कहाँ पहुँच गया। आज वह बहुत थोडे समय और बहुत थोडे शब्दोंमें, बहुत कुछ जान लेना चाहता हैं। इसलिए उपन्यासके स्थानमें आज कहानी प्रिय हैं, बडे नाटक छोटे होते जा रहे हैं। विज्ञानकी उन्नतिके कारण सिनेमाने सारी रातके ड्रामेको अब दो घटेके चलचित्रमें पलट दिया है, इसलिए आजका नाटक अधिक सक्षिप्त और अधिक वास्तविक होता जा रहा हैं। इसलिए रगमचके सकेत पूरे ब्यौरेके साथ दिये जाते हैं। उनमें पात्रोका चित्रण तक आ जाता है। जैसे—"शेखर कुछ गुनगुनाते हुए टहलता है या कभी कभी तख्तपर बैठकर कुछ लिखता जाता है। जान पडता है, वह सलग्न है। तल्लीन मुद्रा। जो कुछ वह कहता है, उसे लिखता जाता है। अँगुलियाँ आतुर तुरत पसार, खीचते नीले पटका छोर (दुबारा कहता है, फिर लिखता है) स्वर्णस्वर्ण स्वर्ण कण (पूरा करनेके प्रयास करनेमें तल्लीन है। इतनेमें बाहरसे माधवका प्रवेश। सासारिक अनुभव और जान-कारी उसके चेहरेसे प्रगट है। द्वारके पास खडा होकर वह थोडी देर तक कविकी लीला देखता रहता है।) "या" पूव परिचित कुलियोकी बस्ती। जैसे किसीने अभिमन्त्रितकर निर्जीव कर दी हो। मकानोके आगे या विचित्र जगह मजूर बैठे विषके समान ताडी पी रहे है, बच्चे कभी डरसे, कभी माताकी झुझलाहटसे और कभी एक अज्ञात आशकासे रो देते है और वह स्वर ऐसा ही तीव्र है जैसा दोपहरकी नीरवतामें चीलोका कीकना। आदि आदि।" यह चित्रण किसी कहानी और उपन्यासका अग हो सकता है।

व्यस्त जीवन और सक्षिप्ततासे प्रेमके कारण इस युगमें एकाकीका अच्छा विकास हुआ है। एकाकीका नाटकसे प्राय वही सम्बन्ध है जो

कहानीका उपन्याससे है। वैसे आधुनिक एकांकीका जन्म कोई बीस सालसे अधिक पुराना नही है पर किसी न किसी रूपमें वह संस्कृत कालसे चला आता है। भारतेन्दु युगमें भी कुछ एकांकी लिखे गये पर वास्तविक एकांकी प्रसादका 'एक घूँट' माना जाता है। पश्चिमका प्रभाव इनपर बंगलासे होकर पड़ा है। सन् १९३८ तक यह क्रम अस्त-व्यस्त रूपमें चलता रहा। सन् १९३८ मे 'हंस' का एकांकी नाटक अंक निकला जिसने इस कलाको एक निश्चित दिशा प्रदान की। एकांकी नाटकको एक और दिशासे प्रोत्साहन मिला। रेडियोके प्रचार और प्रसारके कारण छोटे नाटकोंकी माँग बढ़ी।

रेडियो नाटक और रंगमंचके नाटक अथवा एकांकीमें निश्चित रूपसे अन्तर है। रेडियो नाटक केवल ध्वनि पर अवलम्वित है। रंगमंचपर अभिनेता शरीरके हाव-भाव द्वारा दर्शक पर प्रभाव डाल सकता है पर रेडियोके अभिनेताके पास तो केवल शब्द ही है। एक ग्रामीण व्यक्तिने रेडियो नाटकको अन्धोंका सिनेमा कहा था। ये शब्द सुननेमें भले ही बुरे या अटपटे लगे पर अर्थ उसके बहुत सही हैं। रेडियो नाटक एकांकी भी हो सकता है और छोटा नाटक भी। बड़े नाटकमें पूरे जीवनका चित्र होता है, एकांकीमें एक पक्षका। "बड़ा नाटक पेड़ पौधों और लताओंसे भरा उद्यान है, एकांकी गमलेमें लगा एक ही फूल का पौधा। वह जीवनकी एक झाँकी है" "विभिन्नताके वदले एकीकरण, विशृंखलताके बदलें एकाग्रता, पूर्णता के बदले अपूर्णता, फैलावके वदले सिमटाव, विस्तारके बदले संक्षिप्तता इसके गुण है। आजके एकांकीकारोंमें रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, उदयशकर भट्ट, गणेशप्रसाद द्विवेदी, सेठ गोविन्ददास, विष्णुप्रभाकर, कमलाकान्त वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, चन्द्रकिशोर जैन आदिके नाम लिये जा सकते है।

एकांकी अथवा नाटकके क्षेत्रमें इधर नये-नये प्रयोग बराबर हो रहे हैं। कुछ नाटक ऐसे लिखे जाते हैं जिनमें केवल संवाद होता है। ये केवल रेडियोपर ही खेले जा सकते हैं। कुछ नाटक केवल पढ़नेके लिए लिखे जाते है। इधर कुछ गीति नाट्य भी लिखे गये है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्री उदयशंकर भट्टने कई सुन्दर गीति नाट्य लिखे हैं और रेडियोने उन्हे प्रसारित किया है। कुछ गद्य सम्भाषणके साथ इप्टाने ऐसे नाटक रंगमंचपर खेले भी है। यद्यपि पिछले दिनों नाटकमें संगीतका स्थान कम होता जा रहा था पर इधर ऐसे गीति और नृत्य नाटकोंकी माँग बढ़ रही है। संस्कृतिकी पुकार जैसे-जैसे बढ़ती जायेगी वैसे-वैसे नृत्य और गीति नाटकोंका प्रसार भी बढ़ता जायगा। इस सम्वन्धमें श्री उदयशंकर भट्टके तीन बड़े गीति नाट्य, 'राधा', 'विश्वमित्र' और 'मत्स्यगन्धा'के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

रेडियो नाटककी चर्चा अभी की गई है उसका तथा सिनेमाका प्रचार

व प्रसार भी निरन्तर बढ़ता जायगा और उसका प्रभाव दृश्य नाटकपर पड़े बिना न रहेगा। दृश्य नाटक ही नाटकका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रकार है। यद्यपि आज हिन्दीमें रंगमंचका प्रायः अभाव है पर पृथ्वीराज थियेटर तथा अनेक कालेज और क्लबोंके रंगमंचों की प्रगति इस बातका संकेत करती है कि भविष्यमें हिन्दी रंगमंच नयी भावनाओंको लेकर आगे बढ़ेगा। उसमें दर्शक सुनता ही नहीं देखता भी है। वह कहते हैं देखता तो सिनेमा में भी है। यह ठीक है पर सिनेमामें व्यक्तिगत सम्पर्कके आनन्दको न भुला सकेगा। साथ ही यह भी नहीं भुला सकेगा कि नाट्य कला सबसे बड़ी सामाजिक कला है। इस लिए इसका भविष्य किसी भी अवस्था में ही उज्वल है और यह भी निश्चित है कि समाजमें भी परिवर्तन होंगे, उनकी छाप सबसे पहले इस कलापर पड़ेगी। रेडियो नाटकके अतिरिक्त प्रतीकात्मक नाटक प्रहसन, फेंटेसी और मोनोड्रामाकी चर्चा भी है परन्तु अभी इस दिशामें कोई विशेष उल्लेखनीय काम हिन्दीमें नहीं हुआ है। मोनोड्रामा तो केवल मात्र सेठ गोविंद दासने लिखा है। भाव नाट्यकी परम्परा पुरानी होनेपर भी आज केवल श्री गोविन्दवल्लभ पन्त तथा उदयशंकर भट्टने ही एक दो नाटक लिखे हैं।

अन्तमें आजकी नाट्यकलाकी प्रवृत्तियोंपर फिरसे एक दृष्टि डाल लेना अनुपयुक्त न होगा।

(१) आजके नाटकमें जटिल नियमोंकी भरमार नहीं है। विज्ञानकी प्रगति और खुली हवामें खेले जानेवाले नाटकोंके प्रचारके कारण आजके नाटकमें रंगमंचके विस्तृत संकेत दिये जाते हैं।

(२) आजके नाटकमें प्रस्तावना, मंगलाचरण और नान्दी आदिकी आवश्यकता नहीं है।

(३) आजके नाटकमें पात्रों व रसोंका कोई बन्धन नहीं है। देवता और अलौकिक घटनाओंका इसमें कोई स्थान नहीं है।

(४) आजका नाटक जीवनके अधिक समीप है। यथार्थता, मनोवैज्ञानिक सत्य और अन्तर्द्वन्द्वका उसमें पूरा समावेश है।

(५) आजका नाटक मात्र राजा महाराजाओंके मनोरञ्जनका साधन नहीं है वह जनताका मनोरञ्जन करता है और मनोरञ्जन ही नहीं वह उसके जीवनके विकसित होनेमें भी पूरी सहायता करता है। व्यक्तिसे अधिक वह समाजका है।

(६) आजका नाटक संसारकी सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथलके कारण समस्या-मूलक अधिक होता जा रहा है।

• • • • •

ब्रह्मराक्षस उर्फ़ भौतिक विज्ञान

श्री दशरथ पाण्डेय

मेरे एक मित्र जापान गये हुए हैं। वे लिखते हैं:– "शाम हो रही है। समुद्रके किनारे-किनारे घूमता हुआ बहुत दूर निकल आया हूँ। इस निर्जन तटसे मैं बिलकुल अनजान हूँ। सामने एक झुरमुट–सा है। वहाँसे आगे नही बढ़ूँगा। झुरमुट आ गया। अब लौट रहा हूँ। यह किसकी आवाज है धीमी किन्तु स्पष्ट! मुड़ जाता हूँ और मेरे पैर मुझे उधर ही लिये जा रहे हैं जिधरसे आवाज़ आई थी। इस झारखण्डमें क्या कोई मानव रहता है? यह कितना एकान्त और शान्त है।

'इधर ही आ जाओ!'

पुकारके जो शब्द मेरे कानों तक पहुँचे थे अंगरेजीके थे। किन्तु यह वाक्य तो मेरी भाषा हिन्दीका था। दो क़दम बाईं ओर चलकर मैं खड़ा हो गया। एक वृद्धाने, जिनके सिरके बाल सन हो गये थे, मेरा हाथ पकड़ कर मुझे एक छोटी चौकी पर बैठाया और आप दूसरीपर बैठीं। मुझसे पहला सवाल उन्होंने किया––

"क्या तुम सीधे हिन्दुस्तानसे आ रहे हो!"

मैंने आश्चर्यसे पूछा––'यह आपको कैसे मालूम हुआ कि मैं हिन्दुस्तानसे आ रहा हूँ।' वृद्धाने विनोदके साथ कहा––'क्यों! तुम्हारा ताज तो यही घोषणा कर रहा है।' मैं गांधी टोपी पहने हुए था।

वृद्धा अकेली यहाँ दो सालसे रह रही हैं। ये इसके पहले टोकियोंमें ओरियंटल कालेजकी विज्ञानकी अध्यापिका थीं। ये दो बार भारत हो आई हैं और भारतको तीर्थभूमि मानती हैं। इनके जीवनपर किसी धर्मका प्रभाव नहीं पड़ा। आजकल आत्म-

चिन्तनमे लगी रहती हैं। इनके परिवारमें इनका एकमात्र पुत्र बच रहा था। वह हिरोसिमामे चीनी बनना की दूकान करता था। वह अणुबमका शिकार हो गया। वृद्धाका सर्वनाश!

'आप इस डरावने एकान्त स्थानमें अकेली रहती हैं?'

'तुम भी ऐसा कहते हो बेटा। तुम्हारे देश-वासी तो गाँवोंमें इसी प्रकार रहते हैं। मुझे उन्हीं गाँवोंसे प्रेरणा मिलती है सन्तों और साधुओंके जीवन से। देखो, यही मेरी झोपड़ी है। दो चौकियाँ, दो मोढ़े, एक बड़ी चौकी, एक चूल्हा, एक आलमारी और कुछ मिट्टीके बरतन—ये ही मेरी सम्पत्ति हैं। सन्ध्या होनेपर भी यहाँ कोई रोशनी न देखकर तुम हैरान हो सकते हो। मैं रातमें रोशनी नहीं जलाती।'

'इससे तो आपको बहुत कष्ट होता होगा।'

'कोई कष्ट नहीं भाई। मेरी आँखोंकी रोशनी बढ़ गई है और मालूम होता है प्रकृति बाहरी रोशनी की कमीको पूरा करके ही दम लेगी।'

'आप तो प्रकृतिकी ओर लौटो' (Return to Nature) का अभ्यास कर रही हैं। क्या पिछले दो सालोंमें आप कभी शहर नहीं गईं?'

'शहर, जहाँ ब्रह्मराक्षस रहता है! मैं कभी नहीं जाऊँगी। तुम्हारी काँग्रेसने भारत छोड़ो (Quit India) निश्चय करके अंगरेजोंको भारतसे निकाल बाहर किया। आज सारे विश्वको 'ब्रह्मराक्षस दूर भागो' का नारा बुलन्द कर उसे सारी दुनियासे भगाना है।'

'आपके इस कथनका भाव मैंने कुछ नहीं समझा। यह ब्रह्मराक्षस कौन है?'

'यह वही है जिसने विश्व महायुद्धमें महाकालका ताण्डव रचा, नागासाकी और हिरोसिमापर अणुबम बरसाये और आज कोरियामें खूनकी नदियाँ बहा रहा है। यह राक्षस कीटाणु बनकर ससार के नर-नारीके मस्तिष्ककी गुद्दी चाट रहा है। जिस प्रकार गेहूँमें घून निकल आता है और उसे खाकर पुष्ट होता है उसीप्रकार मनुष्यके मस्तिष्क-बुद्धिकोषसे यह ब्रह्मराक्षस (mamon in the gash of knowledge) निकल आया है। अब भी नहीं समझे। इसीको तुम भौतिक विज्ञान कहते हो। जिसके झूलेको हमने अपना पलना समझा था वह फाँसीका फंदा बनकर हमें झुला रहा है।'

'फाँसीका फंदा!'

'हाँ जी, और क्या। तुम हमारे इस टापूको ले लो। हम सूर्यके वशमें उत्पन्न होनेवाले कितने सुख और आनन्दसे रहते थे। हमारे इतिहास लेखक लिखते हैं, हम असभ्य थे। आज हम सभ्य हैं। सभ्यताका सारा चमत्कार इस छोटेसे द्वीपके कोने-कोने में भरा है। यह चमत्कार किसने दिया है? इसी विज्ञान ने। किन्तु जानते हो, इतना कुछ देकर इसने बदलेमें क्या-क्या लिया है। हमारी इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और आत्मा, सबको अपने अधिकारमें कर

लिया है। जमीनको फावड़ेसे कोड़ने और ट्रैक्टरसे फाड़नेमें कितना अन्तर है? फावड़ेसे कोड़नेमें मिट्टीके एक-एक कणमें मनुष्यका मनोयोग होता है, कोड़नेवालेके पुट्ठे पुष्ट और मज़बूत होते हैं और उसके अपने हाथों काम करनेके कारण उस उपज में पुष्टिकी मात्रा अधिक होती है। ट्रैक्टरने हज़ारों किसानोंको बेकार बना दिया है। अब वे क्या करें? या तो वे बेकार बैठकर भूखों मरें या बिजलीसे संचालित किसी यंत्रका संचालन करें और अपना तन-मन उसकी प्रेरणामें लगा दें।'

'यों क्यों न कहा जाय कि एक ट्रैक्टर सैकड़ों आदमियोंको फावड़े छोड़ दूसरे-दूसरे उपयोगी काम करने का मौका देता है।'

'अच्छा, अब प्रश्न उठेगा वे कौनसे उपयोगी काम हैं जिन्हें कृषि छोड़कर किसान कर सकता है? यहाँ हमारे गृह-उद्योगोंमें मुख्य खिलौने, घड़ी, शृंगारकी वस्तुएँ और लकड़ीकी चीजें तैयार करना है जो अधिकाश दूसरे देशोंको भेजे जाते हैं। यहाँ भी वही प्रश्न सामने खड़ा रहता है। वैज्ञानिक साधनोके आधारपर ही ये सब किये जाते हैं। बिजलीके अभावमें सारा काम ठप हो जाता है। आज टोकियोका शक्ति-आगार (Power House) बन्द हो जाय, नगर के ही नहीं गाँवोंके भी लोग पानीके बिना छटपट करने लगेंगे और प्रकाशके अभावमें हाथपर हाथ रखकर बैठने और अँधेरी रातोंमें बस मेरी तरह तारे गिननेके सिवा और क्या कर सकेंगे। मुट्ठीभर वैज्ञानिक जिधर चाहे हमारे जीवन-स्रोतको मोड दें। उनके एक-एक यंत्रका आविष्कार अधिकाशमें घातक सिद्ध होता है। आज जितनी विपत्तियाँ आती हैं विश्वव्यापिनी हो जाती हैं। इसपर हम विश्व-बन्धुत्वका ढोल पीटते हैं। विज्ञान क्रूरताके साथ मुस्किराता होता है। उसके हाथकी कठपुतली बना मनुष्य जहाँ एक ओर नये वैज्ञानिक साधनोंको पाकर तालियाँ देता है वही दूसरी ओर एक बड़ी संहार-लीलाका आयोजन चलता है। अपने सरल जीवनको हमने इसी राक्षसके कारण पेचीदा और दुःखपूर्ण बना लिया है।'

आप चाहती हैं, वैज्ञानिक आविष्कारोंको रचनात्मक कार्योंमें लगाया जाय?'

'उनसे रचनात्मक कार्य कैसे किये जा सकते हैं? मान लो, अणुकी शक्तिका प्रयोग रोग-निवारणके लिए किया गया। किन्तु यह प्रयोग प्राकृतिक न होकर कृत्रिम ही तो होगा। मोटर आदि वाहनोंके संचालनमें अणुशक्ति काम दे सकती है। अमेरिका मोटरों (automobile) का देश है। हजारों आदमी उनसे मरते हैं। विज्ञानका छोटा-से-छोटा अगला क़दम भी मनुष्यके यांत्रिक जीवनकी उलझनमे एक नयी लपेट या गाँठ जोड़नेके सिवा और कुछ नही कर सकता। विज्ञानका जन्म रचनात्मक कामके लिए नहीं, संहारके लिए है। रचनात्मक कार्य तो प्रकृतिने अपने हाथोंमें ले ही रखा है। भूकम्प

आता है, और इस देशका एक बडा नगर ध्वस्त हो जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि प्रकृति नही चाहती कि विज्ञान गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ बनाये और उनमें मानवी आत्माएँ बन्द हो घुट-घुटकर अपनी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक मृत्युका आलिंगन करें।'

'इस विस्तृत भूमिके आँगनमें नदी, पर्वत, पेड-पौधोंके साथ मिल-जुलकर वे क्यों न रहें।'

इसके बाद वे पूर्वकी ओर देखती हुई उठीं और बोलीं—'खानेका समय हो गया। बैठो, मै अभी आती हू।' इतना कह वे झोपडीमें चली गईं। थोडी देरमें आईं और मुझे झोपडीकी दूसरी ओर जहाँ एक चबूतरा बना था, ले गईं। चाँदनी छिटक रही थी। एक चौकीपर दो गिलास दूध और एक चीनीकी थालमें टमाटर और बेरी रखे थे। मुझे खानेको कहा। मैंने पूछा—आप नही खायँगी? उन्होंने कहा—मैं दिनमें ही दूध पी लिया करती हूँ।

मैं यह सोचकर कि फल खाकर दूध पी लूँगा फलकी थालीकी ओर हाथ बढाना ही चाहता था कि वे बोलीं—'दूध पीकर फल खाना। दूधकी कमी नहीं है। भरपेट पी लो। थके-मादे हो और कोरी बातोंसे तुम्हें और भी मानसिक थकान हुई होगी। अरे! तुम तो गट-गट दूध निगलने लगे! चूस-चूसकर पीयो न बच्चोंकी तरह।'

मैंने एक गिलास तो पलक मारते साफ कर दिया था दूसरेको सचमुच चुसकीके साथ पी रहा था।

फिर बोलीं—'मैंने दस बकरियाँ पाल रखी हैं। उनसे दूधका काम तो चलता ही है, वे मेरी संगिनीका काम भी करती हैं। सामने देखो, वह जो खेती लहरा रही है दो एकडका एक टुकडा है। मेरे हाथोंमें आकर फावडोंने यह करामात की है। इतनेकी उपजसे मेरा निर्वाह चल जाता है। मुझे और चाहिए ही क्या? कुछ टमाटर और दूध। हाँ, अतिथि-सत्कार यदि कभी करना पडा, तो अन्नकी आवश्यकता अधिक होती है।'

'आप अन्न नही खाती?'

'बहुत कम।'

'माससे परहेज रखती होगी?'

'मासाहारमें रुचि नही है। मासमें मै केवल मछलियोंको लेती हूँ और ये आसानीसे उस तलैयामें मिल जाती है। मछली खाओ तो ला दूँ?'

'क्षमा कीजिये, मैं शाकाहारी हूँ।

हाँ तो, तुम तो शाकाहारी होगे ही, गाँधीके देशके जो हो।'

'गाँधीके देशमें मासाहारियोंकी कमी नही है, किन्तु मैं मास नही खाता।'

वह प्राकृतिक भोजन विधिपूर्वक समाप्त हुआ। 'किसके बाद क्या खाना चाहिए', 'कितना पानी पीना चाहिए' और 'कितनी देर टहलकर बिस्तरेपर लेटना चाहिए'—सबकी शिक्षा आज इस आश्रममें मुझे मिली।

उन्होंने कुछ ऐसे तारोंके नाम और स्थान बताये जो नियमित रूपसे निकलते और डूबते है। इन्ही तारो, चन्द्र और सूर्यसे उनको समयका ठीक-ठीक पता चल जाता है।

मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ जब

उन्होंने कहा कि किस प्रकार वे खेतकी मेड़पर लगी कपासकी रूईसे चर्खेपर सूत कातती और रस्सियोंसे बने एक करघेपर उनसे कपड़े बनाती हैं ।

मैंने अब समझा कि मैं एक ऐसी देवीके यहाँ मेहमान बन गया हूँ जिसने अपने जीवनको ठोस प्राकृतिक रूप दे विज्ञानको चुनौती दे दी है ।

मैंने देखा, उनकी बात-चीतमें गाँधी शब्द बार-बार आ जाता था । उनके उच्चारणसे लगता था वे गाँधी की आत्माकी तन्मयता प्राप्त कर रही हैं । वह तन्मयता मानो विश्वको पुकारकर कह रही थी—'इस ब्रह्म-राक्षसको दूर भगाओ । विज्ञानके चमत्कारोंके परवाने न बनो । आओ, मेरे जैसा सरल और सादा जीवन बिताओ ।'

मै दूसरे दिन जब उनसे विदा लेने लगा तो उन्होंने गद्‌गद कंठसे कहा—'तुम्हारे भारतकी ओर हमारी आँखें लगी हैं । गाँधीका संदेश-वाहक भारत विश्वको पीयूष पान करा सकेगा । क्या विश्वकी मंगल कामना करते खड़े हिमालयकी अभयदायिनी छायामें पलनेवाले दार्शनिकोके देशसे दुनियाके कल्याणके लिए बौद्ध भिक्षुओं की तरह निर्भीक मुक्ति-साधक (Salvation Army) दूर-दूरके देशोंमें फैलकर हमारी विवशता दूर नहीं कर सकते ? देखना, देश लौटकर मेरी बातें भूल न जाना ।'

मैं तपस्विनी दादी 'क्विन'के यहाँसे हृदय और मस्तिष्कमें एक स्फूर्ति लेकर लौटा, किन्तु बाहरकी ओर अग्रसर होनेमें मेरे पैर मानो फूल-से गये थे ।"

मित्रका पत्र टेबुलपर सामने पड़ा है । मेरे मस्तिष्कमें एक अजीब उतार-चढ़ाव हो रहा है । जापानी वृद्धा विज्ञानकी आचार्या थीं—उनका एकमात्र पुत्र विज्ञानके एक महान् आधुनिक आविष्कारका हिरोसिमामें शिकार हो गया—पुत्र-वियोग-विह्वला माँको गाँधीके जीवनसे प्रेरणा मिली—उसने प्राकृतिक जीवनको अपनाकर भौतिक विज्ञानको चुनौती दे दी, जीनेके लिए नही, विश्वको इस ब्रह्म-राक्षस विज्ञानके ग्राससे बचानेके लिए, वह भारतकी ओर देख रही हैं मुक्ति-साधकों (Salvation Army) के लिए । वृद्धाकी वाणीके अन्तिम वाक्य कितनी श्रद्धा, विश्वास और भोलापन से कहे गये हैं । क्या हम उनको सार्थक कर सकेंगे ? गाँधीके संदेश-वाहक भारतके झोपड़े, महल और अट्टालिकाओंके स्वप्नमें व्यस्त हैं । यहाँ तो सरलता, सादगी और प्राकृतिक जीवन-के प्रचारक गद्‌दोंपर लेटे केवल पुस्तकें छापकर गाँधीके सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहते हैं । हममें विनोबा से भिक्षु कितने है, अथवा कमसे कम इस सतके कन्धेसे कन्धा मिलाकर चलनेवाले ही कितने हैं । यहाँ सब अपने हाथके पूर्वजोके दिये रत्नको फेंक पश्चिम सागरके किनारें सीप बटोरने दौड़े जा रहे है । न मालूम, कितनी विदेशी, वृद्धाएँ हमारी मुक्ति-सेना (Salvation Army) की प्रतीक्षामें बैठी है । ब्रह्मराक्षससे उनकी रक्षा हम कैसे कर सकेंगे और विश्वको कैसे पीयूष पिलाया जायगा ?



क्यों रो रहे हो ?

श्री प्रभाकर

कलाकारने न दिनको दिन समझा, न रातको रात। न उसे भोजनकी चिन्ता रही, न नींदका ज्ञान। वह यह भी भूल गया कि संसारमें कहीं कोई उसका सगा-सम्बन्धी भी है ? अपनी छेनी और हथौड़ी लिये वह जुटा रहा एक पत्थरपर।

हाँ, संसारके लिए वह पत्थर ही था। एक पत्थर, जैसे औरहजारों-लाखों, पर कलाकारकी तो दुनिया उसी पत्थरमें समाई हुई थी।

यों ही चार-पाँच साल बीत गये। वह पत्थर अब एक प्रतिमामें बदल गया था, जिसके ओठों पर स्वर्गकी मुस्कान, जिसकी प्रकृतिमें पृथ्वीकी प्रतिमाका प्रतिबिम्ब।

वह अपनी इस कृतिको देखकर स्वयं मुग्ध हो गया—जिस पहाड़ी गाँवमें वह रहता था, वहाँ उसकी कलाको परखनेवाला और था ही कौन ?

तभी छिड़ गया युद्ध। एक विदेशी सत्ताने उसके देशके सम्मानको चुनौती दी थी। कलाकारकी देशभक्ति जागृत थी, उसने छेनी रख दी और बन्दूक उठा ली। अपनी प्रतिमाको अपने घरमें बन्द कर वह सिपाहीका वेश साजे, रणभूमिमें जा उतरा।

युद्धकी संघर्षमयी घड़ियोंमें जब ज़रा-सा भी विश्राम उसे मिलता, वह अपनी प्रतिमाके ध्यानमें डूब जाता। उसके कन्धोंके उभारमें ज़रा-सी खराश दूर करनी है। वक्षपर ज़रा-सा उभार देना है। बाहुकी मछलियोंमें एक हल्का-सा गोलाव छूना है, मस्तकपर भी ज़रा चिकनाई लानी है। वह सोचता और सोचता ही रह जाता।

युद्ध समाप्त हुआ कि वह घरकी ओर लपका। सारी राह वह अपनी प्रतिमाके ही ध्यानमें डूबा रहा। गाँव दीखा कि उसका दिल उछलने लगा।

गाँवके गोरे वह पहुँचा कि उसे अपने कुछ पड़ोसी मिले।

एकने कहा—कलाकार, तुम्हारा घर तो इस बरसातमें गिर गया।

दूसरेने कहा—उसका सब सामान भी नष्ट हो गया।

"और मेरी प्रतिमा ?" विह्वल होकर उसने पूछा।

"वह तुम्हारा पत्थर ?" कई कण्ठ एक साथ खुले।

"हाँ, वह तो सुरक्षित है ?"

"हाँ, वह तो सुरक्षित है।"

कलाकारका काला पड़ गया चेहरा फिरसे चमक उठा।

"तुम्हारा वह पत्थर बड़े कामका

है भैया !" तभी एक पड़ोसीने कहा ।

कलाकार खिल गया—"अच्छा, अब तुम लोग भी उसका मूल्य समझ गये ?"

"हाँ भैया, मैंने उसे उठाकर कुएँ पर डाल दिया था । अब गाँव भरकी स्त्रियाँ उसपर कपड़े धोया करती हैं !"

दूसरा पड़ोसी उत्साहसे बोला—सारे गाँवको उससे आराम है । पहले अपने गँड़ासे और खुरपे तेज करनेको हमें नहरके पुलपर जाना पड़ता था । अब हम तुम्हारे पत्थरपर रगड़ा देकर ही उन्हें पैना लेते है । बहुत ही अच्छा पत्थर है तुम्हारा !

तीसरा बोला—"भैया, अब हम तुम्हें नहीं देंगे उसे; अब तो वह हमारा हो गया है ।"

कलाकारकी आँखोंसे तभी दो बड़ी-बड़ी बूँदें टपक पड़ीं । पड़ोसी पूछ रहे थे—"क्यों भैया, तुम रो क्यों रहे हो ?"

कलाकार

सबसे महान् कलाकार वह है जो अपने जीवनको ही कलाका विषय बनाये । —सत्यभक्त

जीवन समस्त कलाओंसे श्रेष्ठ है जो अच्छी तरह जीना जानता है वही सच्चा कलाकार है । —गांधी

कलाकार वह है जो लोगोंके समूहके साथ इस तरह खेले जिस तरह कोई उस्ताद प्यानोंके पर्दोंसे खेलता है । —एमर्सन

सच्चा कलाकार अपनी पत्नीको भूखों मरने देगा, बच्चोंको नंगे पैर घूमने देगा और अपनी माँको सत्तर सालकी उम्रमें अपनी जीविकाके लिए मारे-मारे फिरनेको छोड़ देगा; लेकिन वह कलाकी आराधनाके अलावा कोई काम नहीं करेगा । —बर्नार्ड शा

अत्यन्त पवित्र है कलाकारका पेशा, उसका ईश्वरकी कृतियोंसे सीधा सम्बन्ध रहता है और वह मानव जातिको सृष्टिकी शिक्षाका तात्पर्य बताता है । वह मानो ईश्वरके समक्ष, उन विचारोंको सीखता है जो उस पर रोशन किये जाते हैं । —अज्ञात

कलाकार जब कलाको कल्याणकारी बनाएँगे और जन साधारण-के लिए उसे सुलभ कर देंगे तभी उस कलाको जीवनमें स्थान रहेगा… वही काव्य और वही साहित्य चिरञ्जीवी रहेगा जिसे लोग सुगमतासे पा सकेंगे, जिसे वे आसानीसे पचा सकेंगे । —गांधी

मैं एक ऐसे साहित्यिकको जानता हूँ जो आज हिन्दी साहित्यमें प्रसिद्ध कहानी-लेखक, कवि और विचारक हैं। एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रके सफल सम्पादक हैं। उनकी रचनाओंके लिए पत्रकार मुँह धोए रहते हैं। पर, सन् ३० में जब वे बन्दी थे, उन्हें साहित्य-ससारमें कोई जानता न था, उनकी अप्रकाशित कहानियोंके संग्रहको एक प्रसिद्ध प्रकाशकने यह कहकर लौटा दिया था कि अभी उन्हें १०-५ वर्ष कलम पकड़ना सीखना चाहिए। सौभाग्य की बात वह कहानी-संग्रह मुझे भी देखनेको मिला। और मुझे वे बेहद पसन्द आईं। मेरी अभिलाषा थी कि यह संग्रह किसी न किसी तरह प्रकाशित होना ही चाहिए। पर, मेरे पास ऐसे साधन नहीं थे। न तो मेरा स्वयं किसी पत्र-सम्पादकसे विशेष परिचय था और न पुस्तक-प्रकाशकोंसे। और कुछ था भी तो भय था कि जो लेखक षड्यन्त्रमें गिरफ्तार हैं, उसकी कृति कौन छापेगा? मैं बड़ी द्विविधामें था। रचनाएँ उत्तम हैं, छपनी चाहिए, और मैं छपवा दूंगा—इसी आश्वासन पर वे मैंने प्राप्त की थीं। यह न छपीं तो ये अनमोल रचनाएँ तो नष्ट होंगी ही, साथ ही मेरी भी हँसी होगी। इसी चिन्तामें व्यग्र कापीके पृष्ठ इधर-उधर पलट रहा था कि एक ख्यातिप्राप्त कहानी-लेखक जेलसे छूटनेपर मुझसे मिलने आये। वार्तालापके दौरानमें उन्होंने भी वे कहानियाँ देखीं और उन्हें बेहद भाईं। मुझसे उन्होंने रचयिता परिचय पूछा। बतानेपर उन्होंने मुझसे वह कापी ले ली और अपने परिचित सम्पादकोंके पास एक अपनी ओरसे नोट लगाकर प्रकाशनार्थ भेज दी। एक-दो कहानीका प्रकाशित होना था कि हिन्दीससारमें धूम मच गई। जिन पत्रोंने उनकी कहानियाँ वापिस की थीं, जिस प्रकाशकने कलम पकड़ना सीखनेकी सलाह दी थी, वे कहानियोंके लिए उनके पास चक्कर काटने लगे।

और जिन ख्यातनामा कहानी-लेखकके परिचय देनेपर वे इतने बढ़े, वे ख्यातनामा कहानी-लेखक स्वयं प्रारम्भमें प्रसिद्धि प्राप्त करनेसे पूर्व प्रकाशकोंके यहाँ जूतियाँ चटखाते फिरते थे। उनके पास प्रकाश था, पर अन्धे सम्पादकों और प्रकाशकोंको दिखाई न देता था। उनकी वह कहानी जिससे वे एकदम इतने ऊँचे उठे, "चाँद" के फाँसी अकमें न छापकर बैरग लौटा दी गई थी। जिस पुस्तकपर पुरस्कार मिला, एक प्रकाशकने वह महीनों रद्दीमें डाले रक्खी थी। जब वे लिखते ज्यादह थे और छपता बिल्कुल नहीं था, तब लोग उनकी भाषा, भाव और मुहावरेमें अशुद्धियोंके सिवा और कुछ न पाते थे। और जब वही चीजें छप गईं तो अशुद्धियाँ देखनेवाले उनमें महानताका दर्शन करने लगे।

प्रायः सभी नवीन लेखकोंके मार्गमें इस प्रकारकी अड़चनें उपस्थित होती ही हैं। और मैं तो कहता हूँ एक सफल लेखकके लिए ये हैं भी अनिवार्य। यदि इतनी आसानीसे यह कला नसीब हो जाये तो गाजर-मूलीसे

अधिक इसका महत्त्व भी न रहे।

नवीन लेखक प्रायः तीन वर्गके होते हैं! एक तो वे जो किसी भाषाके पूर्ण पण्डित होते है, जिस विषयपर भी ये लिखना चाहते हैं, उसका काफ़ी ज्ञान रखते है। केवल साधन न मिलनेसे वे आगे नही बढ़ पाते हैं। और तनिक भी सहारा मिलता है तो चमक उठते हैं। ऐसे नवीन लेखक साहस करके जब किसी पत्र-सम्पादकके पास लेख भेजते हैं तब यदि वह पत्र-सम्पादक सच्चा पारिखी है तो वह लेखकके नामको देखकर नहीं, लेखको पढ़कर मोहित होता है और उचित संशोधन करके पत्रमें स्थान देता है और लेखकको उत्साहवर्द्धक योग्य सलाह देता है। और यदि वह सम्पादक पारिखी नही है, केवल लेखकोके नामसेही लेखके अच्छे-बुरे समझनेकी क्षमता रखता है तो ऐसे नवीन लेखकोंकी रचनाओको रद्दीके हवाले कर देता है[1]। पर जो विद्वान् लेखक है वे घबराते नही और अपने पुरुषार्थसे साधन जुटानेका प्रयत्न कर ही लेते है।

दूसरे वर्गके ऐसे लेखक जो किसी विषयके पण्डित तो नही है, पर उसमें दिलचस्पी रखते हैं, उसका ज्ञान बढ़ानेका प्रयत्न भी करते है जब वे किसी पत्र सम्पादकके पास लेख भेजते हैं, तब उसमें कुछ कमी रह जाना सम्भव है वे लेख जब नहीं छापते तब सम्पादक कोपभाजन बनते है। पर हिन्दी सम्पादक कोपभाजनके बजाय दयाके पात्र हैं। उन्हें पीर, बवर्ची, भिश्ती, खर जैसे सब ही कार्य करने पड़ते है। उन्हें इतना अवकाश नहीं कि ऐसे लेखकोंकी रचनाओंका संशोधन कर दें। ज़रूरी सलाह देकर लेखकको उत्साहित कर दें। अतः इस मध्यवर्गके लेखकोंको चाहिए कि वे अपने यहाँके उस विषयके विद्वान्‌को अपनी रचनाएँ दिखाएँ, उनसे संशोधन कराएँ और उनके परामर्शसे लेख लिखे। यह प्रवृत्ति हिन्दी-साहित्यमे बहुत कम देखनेमें आती है! जिसका जो जी चाहता है लिखकर छपने भेज देता है। पर उर्दू में ये बात नहीं है। वहाँ छपना तो दूर मुशायरोंमे बग़ैर उस्तादको दिखाये कविता पढ़ी नहीं जाती! कितना ही अच्छा लिखने लगा हो, जब तक उस्ताद जीवित हैं, उनसे संशोधन कराना लाजिमी ही नहीं, गौरव समझा जाता है। जब वह स्वयं इस योग्य हो कि स्वयं इस्लाह (संशोधन) कर सके, तब कहीं उसे इस्लाम लेनेसे छुट्टी मिलती है। इसी तरह वे मध्यम-वर्गके लेखक जो किसी विषयके पंडित तो नही हैं, पर प्रयत्न करनेपर उत्तरोत्तर उन्नति कर सकते हैं, वे जो भी लिखें उसपर अपने यहाँके अथवा परिचित साहित्यिकसे मशविरा लेते रहे

---

१. मेरा अनुभव है ऐसे-ऐसे यमदूत भी सम्पादक बने हुए हैं जो रजिस्टर्ड लेख भेजने तथा साथमे आठ आनेके टिकट रखनेपर भी और बार-बार लिखनेपर भी न लेख ही छापते है न वापिस ही करते है, न पत्रका जवाब ही देते हैं।

उपासक या श्रावक

श्री प० हीरालाल जैन सिद्धान्तशास्त्री

गृहस्थ व्रतीको उपासक, श्रावक, देशसंयमी, आगारी आदि नामोंसे पुकारा जाता है। यद्यपि साधारणतः ये सब पर्यायवाची नाम माने गये हैं, तथापि यौगिक दृष्टिसे उनके अर्थोंमें परस्पर कुछ विशेषता है। यहाँ क्रमशः उक्त नामोंके अर्थोंका विचार किया जाता है।

'उपासक' पदका अर्थ उपासना करनेवाला होता है। जो अपने अभीष्ट देवकी, गुरुकी, धर्मकी उपासना अर्थात् सेवा, वैयावृत्य और आराधना करता है, उसे उपासक कहते हैं। गृहस्थ मनुष्य वीतराग देवकी नित्य पूजा-उपासना करता है, निर्ग्रन्थ गुरुओंकी सेवा-वैयावृत्यमें नित्य तत्पर रहता है और सत्यार्थ धर्मकी आराधना करते हुए उसे यथाशक्ति धारण करता है, अतः उसे उपासक कहा जाता है।

'श्रावक' इस नामकी निरुक्ति इस प्रकारकी गई है—

'श्रन्ति पचन्ति तत्त्वार्थश्रद्धानं निष्ठां नयन्तीति श्रा, तथा वपन्ति गुणवत्सप्तक्षेत्रेषु धनबीजानि निक्षिपन्तीति वा, तथा किरन्ति क्लिष्टकर्मरजो निक्षिपन्तीति काः। ततः कर्मधारये श्रावका इति भवति'। (अभिधान राजेन्द्र 'सावय' शब्द)

इसका अभिप्राय यह है कि 'श्रावक' इस पदमें तीन शब्द हैं। इनमेंसे 'श्रा' शब्द तो तत्त्वार्थ-श्रद्धानकी सूचना करता है, 'व' शब्द सप्त धर्म-क्षेत्रोंमें धनरूप बीज बोनेकी प्रेरणा करता है और 'क' शब्द क्लिष्ट कर्म या महापापोंको दूर करनेका संकेत करता है। इस प्रकार कर्मधारय समास करनेपर श्रावक यह नाम निष्पन्न हो जाता है।

कुछ विद्वानोंने श्रावक पदका इस प्रकारसे भी अर्थ किया है—

अभ्युपेतसम्यक्त्वः प्रतिपन्नाणुव्रतोऽपि प्रतिदिनं यतिभ्यः सकाशात्साधूनामागारिणां च सामाचारीं शृणोतीति श्रावकः।—श्रावकधर्म प्र० गा० २।

अर्थात् जो सम्यक्त्वी और अणुव्रती होने पर भी प्रतिदिन साधुओंसे गृहस्थ और मुनियोंके आचार-धर्मको सुने, वह श्रावक कहलाता है। कुछ विद्वानोंने इसी अर्थको और भी पल्लवित करके कहा है—

श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं दीने वपेदाशु वृणोति दर्शनम्। कृतपुण्यानि करोति संयमं तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः॥

अर्थ—जो श्रद्धालु होकर जैन शासनको सुने, दीन जनोंमें अर्थका वपन करे अर्थात् दान दे, सम्यग्दर्शनको वरण करे, सुकृत और पुण्यके काम करे, संयमका आचरण करे उसे विचक्षण जन श्रावक कहते हैं।

अणुव्रतरूप देश संयमको धारण करनेके कारण देशसंयमी या देशविरत कहते हैं। इसीका दूसरा नाम संयता-संयत भी है क्योंकि यह स्थूल या त्रसहिंसाकी अपेक्षा संयत है और सूक्ष्म या स्थावर हिंसाकी अपेक्षा असंयत है। घरमें रहता है, अतएव इसे गृहस्थ, सागार, गेही, गृही और गृहमेधी आदि नामोंसे भी पुकारते हैं। यहाँ पर 'गृह' शब्द उपलक्षण है, अतः जो पुत्र, स्त्री, मित्र, शरीर, भोग आदिसे मोह छोड़नेमें असमर्थ होनेके कारण घरमें रहता है उसे गृहस्थ आदि कहते हैं।



बाबू अजितप्रसाद वकील

[वकील साहबने अपनी जीवनी स्वयं लिखकर एक बहुत बडी आवश्यकताकी पूर्ति की है। यह जीवनी 'अज्ञात जीवन' शीर्षकसे २०×२६ आकारके २४० पृष्ठोंमें मुद्रित है। उसीपरसे हम यह संक्षिप्त सार दे रहे हैं।]

जाति-मद, कुल-मदकी भावना हेय है, किन्तु अपने पूर्वजोंकी गौरव-गाथा उत्साहवर्द्धक तथा शक्तिप्रद होती है। हम लोग क्षत्रिय-कुलोत्पन्न, राजा अग्रकी सन्तान, वीसा अग्रवाल, जिन्दल गोत्रीय है। रुईका व्यापार करनेसे रुईवाले सेठ कहलाते थे। व्यापार करते-करते वैश्य कहलाने लगे। इधर चार पीढ़ियोंसे अंग्रेजी सरकारकी चाकरी करनेसे वैश्य पदसे भी गिर गये और सेठके स्थानमें वावू कहलाने लगे। मैं तो वकालतका व्यवसाय और संस्कृत भाषाका अभ्यास करनेसे अपनेको पण्डित कहलानेका अधिकारी समझता हूँ। मेरे चारो पुत्रोंने भी वकालतकी उपाधि प्राप्त कर ली है। मेरी छोटी वेटी शान्ति और पोती शारदा दोनोंने संस्कृत भाषामे एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली है। मेरी कनिष्ठ पुत्र-वधू एम० ए० (Previous) पास है। मेरी वड़ी वेटीकी वेटी प्रेमलताने लन्दनके विश्वविद्यालयसे वी० ए० (Hons) डिगरी प्राप्त की है। कर्मणा वर्णव्यवस्था सिद्धान्तानुसार हम लोग किसी प्रकारसे भी वनिये नहीं है।

हमारे पुरखा खास शहर दिल्ली-के रहनेवाले थे। मेरे परपितामह सेठ चैनसुखदासजी नसीराबाद जा बसे थे। मेरे पितामह बनारसीदासजीका जन्म वहीं हुआ था। वहीं वे उच्च पदाधिकारी हुए और वहीं ३५ वर्षकी भरी जवानीमें १८५८ ई० में उनका शरीरान्त हुआ।

मेरे बाबा फारसी विद्यामें निपुण और पारगत थे। मेरे पिताजी भी फारसी भाषामें धाराप्रवाह निसकोच बात कर लेते थे, और मैंने भी फारसीकी ऊँचे दरजेकी पुस्तकें पढ़ी हैं।

१८५७ के गदरसे कुछ पहिलेसे दादाजी, पिताजी और बुआजी दिल्ली में रह रहे थे। बाबाजी अकेले ही नसीराबादमें थे। गदर शान्त हो जानेपर उन्होंने दो आदमी लेनेके लिए दिल्ली भेजे। लेकिन उनमेंसे एक आदमी रास्तेमें मार डाला गया और दूसरा आदमी उन सबको लेकर बैल-गाड़ीसे नसीराबादको रवाना हुआ। रास्तेमें एक मुसलमान सिपाही मिल गया। वह फरकनगरका रहनेवाला था, और यह जानकर कि दादीजी फरुकनगरकी बेटी है, वह गाडीके साथ-साथ पैदल चलने लगा। आगे चलकर कुछ डाकुओंने गाडी घेर ली। सिपाहीने ललकारा—"जब तक मैं जिन्दा हूँ गाडीपर हाथ न डालना।" उसने डाकुओंसे बातचीत की और उनसे कहा कि यह मेरे गाँवकी बेटी है। मैं थक गया हूँ। तुम लोग ऐसा बन्दोबस्त कर दो कि यह अपनी सुसराल नसीराबाद सही-सलामत पहुँच जाय।" और दादीजी सकुशल नसीराबाद पहुँचा दी गईं।

बाबाजीके देहान्तके बाद मेरी दादी, पिताजी और माताजीको लेकर दिल्ली आ गई थी। पिताजीका प्रारम्भिक शिक्षण उस ज़मानेके रिवाजके अनुसार फारसीमें हुआ। दिल्लीमें आकर उन्होंने घरपर अंग्रेजी पढ़ी। फिर स्कूलमें भर्ती हो गये। १८६५ ई० में एण्ट्रेंस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए और जुलाई १८६५ में गुरसराय तहसील (ज़िला झाँसी) में अंग्रेजी भाषाके अध्यापक हुए। फिर अगस्त १८६७ में शिमलेमें ४० रु० मासिकपर सहायक अध्यापक नियत हुए, एक वर्ष बाद ५ रु० वेतन-वृद्धि हुई।

शिमलेमें स्कूलके अतिरिक्त पिताजी सेनाके अंग्रेजोंको उर्दू का अध्ययन भी कराया करते थे और २० रु० मासिक प्रति घण्टेके हिसाबसे वेतन लेते थे। १८७७ ई० में उन्होंने वकालतकी परीक्षा दी किन्तु पास नहीं हुए।

१८७७ ई० में ३०-३५ वर्ष पीछे दिल्लीके बाज़ारोंमें रथोत्सव करनेका सौभाग्य जैनियोंको प्राप्त हुआ। अधिकतर विघ्नबाधा हमारे अग्रवाल वैष्णव भाइयोंने उपस्थित की थी। उनका सरदार रम्मीमल चौधरी था। दिल्लीके डिप्टी कमिश्नर कर्नल डेविसने जैनियोंकी विशेष सहायता की और अन्तत गवनर सर लेपिल ग्रिफनसे स्वीकृति प्राप्त हुई। इस कार्यमें पिताजीने अग्रभाग लिया था। रथोत्सवके शान्तिपूर्वक प्रबन्ध की ज़िम्मेदारी ११ जैनियों और ११

वैष्णवोंपर रक्खी गई थी। पिताजी उन ११ व्यक्तियोंमें थे। प्रबन्धके लिए करनाल, पानीपत, अम्बाला और रोहतकसे भी पुलिस बुलाई गई थी। पहलेसे रथोत्सवकी सड़कोंपर अन्य सड़कोंके मिलानके मार्ग बन्द कर दिये गये थे। कोतवालीके सामने रेलवेसे उतरे हुए सैकड़ों जैनी पुलिसकी रोकसे विह्वल हो रहे थे। पिताजी यह देखकर कर्नल डेविसके पास गये। उन्होंने पिताजीकी ज़िम्मेदारीपर नाका खोल देनेकी परवानगी दे दी। उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

मेरा जन्म नसीराबादमे वैसाख कृष्ण ४, संवत् १६३१ सन् १८७४ को सूर्योदय समय हुआ। मेरे जन्मसे पहले ४ भाई-बहन गुजर चुके थे। इस कारण मेरे नानाजीके आग्रहसे मेरा जन्म उन्हीके घर हुआ। छठीके कुछ दिन पीछे ही मेरे दोनों कान छेदकर बाली पहना दी गई थी; दोनों हाथोंमें कड़े भी।

उन दिनों किरासन तेलका किसीने नाम भी नहीं सुना था। सरसोंके तेलसे दीपकका प्रकाश होता था। सोते समय दीपक बुझा दिया जाता था। एक रात सोते समय मेरे हाथका कड़ा कानकी बालीमें अटक गया। ज्यों-ज्यों मैं हाथ खींचता था, कान बालीसे कटता जाता था और मैं ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाता जाता था। दीपक जलाया गया तो पता चला कि कान कट गया है और ख़ून वह रहा है। बायें कानकी लौ अब भी इतनी कटी हुई है कि उसमें सुरमा डालनेकी सलाई आरपार जा सकती है। इस घटनाके कारण नानाजीने मेरा नाम बूची (कनकटा) रख दिया।

क़रीब दो वर्षकी उमरमें पिताजीके साथ मैं दिल्ली चला आया। उन दिनों चेचकका ज़ोर था। मुझे भी चेचक निकली। शुभ कर्मोदयसे बच गया। चेहरेपर चेचकके दाग़ अबतक मौजूद हैं। चेहरे और बदनका रंग भी मैला हो गया, गोरापन जाता रहा। अतः मेरा नाम कल्लू पड़ गया। मिडिल परीक्षाके प्रमाणपत्रमें भी मेरा नाम कल्लूमल लिखा हुआ है। १८८७ में नवीं कक्षामें दाखिल कराते समय मेरा नाम अजितप्रसाद लिखवाया गया।

मेरी माताजीका १८८० में क्षयरोगसे शरीरान्त हो गया। रातभर पिताजी मुझे छातीसे लगाये नीचे बैठकमें लेटे रहे और दादी आदि रोती-पीटती रही।

साल भरके बाद ही दादाजीके विशेष आग्रहपर पिताजीका पुनर्विवाह हो गया। विमाता मूर्ख, अनपढ़, संकीर्णहृदया थी। पिताजीका प्रेम उसने मुझसे बटवा लिया। एक बार क़ुतुबमीनार देखने गये। पिताजी, भाभी (विमाता) को पीठपर चढ़ाके ऊपर ले गये। मैं रोता हुआ साथ गया कि मैं भी पद्धी चढूंगा, भाभीको उतार दो। पिताजीने थोड़ी दूर मुझे भी चढ़ा लिया और फिर भाभीको चढ़ा लिया। मुझे इससे दुःख हुआ।

फिर पिताजीकी बदली रुड़की हो गई। रातको रोज़ मैं पिताजीसे चिमटकर सोता। लेकिन आँख लगते ही मेरी जगह भाभी ले लेती। दिनकी

दुपहरीमें भी इसी वातपर तकरार होती। कुछ अरसे वाद दादीजी दिल्लीसे आ गई, तव मुझे मांका प्यार नसीव हुआ, किन्तु दादीके साथ भी भाभीका वर्ताव ठीक नहीं रहता था। किसी-न-किसी वातपर आठवें-दसवें दिन दादी-पोते रो लेते थे। दादीजीको मरते दम तक चैन न मिला।

वचपनमें दादाजीके साथ रहनेसे मेरे जीवनपर धार्मिक क्रियाओंका गहरा प्रभाव पड़ा, और उस प्रभावसे मुझे अत्यन्त लाभ हुआ। मैं उनके साथ हर रोज दर्शन करने जाता था।

सन् १८९३ में वी० ए० की परीक्षामें भी मैं फर्स्ट आया। मुझे कैनिंग कॉलेज गोल्ड मेडिल मिला। मेरा नाम १८९३ की स्नातक-सूचीमें स्वर्णाक्षरोंमें कॉलेज हालमें लिखा गया था। उन दिनों आई० सी० एस० की परीक्षा भारतमें नहीं होती थी। पिताजीके पास इतना धन नहीं था कि वे मुझे लन्दन भेज सकते। उनकी अनुमतिसे वम्वई गया और सेठ माणिकचन्दजीसे मिला, किन्तु छात्रवृत्ति प्राप्त न हो सकी। लाचार भारतमें ही रहकर १८९४ में एल-एल० वी० और १८९५ में एम० ए० की परीक्षा पास की। मुझे थियेटर देखनेका व्यसन था, किन्तु परीक्षाकी तैयारीमें न देखनेका दृढ संकल्प कर लिया था, और उसे अन्त तक निभाया।

अप्रैल १८९५ में ५०० रु० के स्टाम्पपर मैंने हाईकोर्ट अलाहावादसे वकालत करनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। लेकिन मुझे वहाँ एक भी मुकदमा नहीं मिला। कुछ दिनों वाद लखनऊ चला आया, और १० रु० किरायेके मकानमें रहने लगा। एक मुंशी भी रख लिया। यहाँ मुझे काम मिलने लगा। और ३-४ वर्षके वाद कचहरीमें नाम फैलने लगा।

१९०१ में मैंने रायवरेलीकी मुंसिफी-का पद ग्रहण किया। १९०९ ई० में ६२ वर्षकी उम्रमें मेरे घुटनेपर सिर रखे हुए पिताजीका प्राणान्त हो गया। रायवरेलीमें तीन माह मुन्सिफी करनेके वाद मैं लखनऊ वापिस आ गया, और प्रयत्न करनेपर मैं सरकारी वकील हो गया। १९१९ में १५ वरस तक सरकारी वकालत करते-करते मैं उकता गया। सरकारी वकीलका वेतन उस समय २५ रु० प्रतिदिन था। सरकारी वकालतके १६ वरसके समयमें मेरा सतत उद्देश्य यही रहा कि मैं अन्याय या अत्याचारका निमित्त कारण न हो जाऊँ। मैंने कभी गवाहोंको नहीं सिखाया, न ऐसी गवाहीपर जोर दिया जो मेरी समझमें झूठ थी। सरकारी वकीलका कर्तव्य है कि प्रजाके साथ न्यायपूर्वक व्यवहारमें सहायक हो। वह पुलिसका वकील नहीं है, जैसा लोग साधारणतया समझते हैं। मेरा यह भी प्रयत्न रहा कि दैनिक फीस २५ रु० के वजाय ५० रु० कर दी जाय, किन्तु असफल रहा। आखिर असन्तुष्ट होकर १९१९ ई० में मैंने त्यागपत्र दे दिया।

सन् १९१० में मैं आल इण्डिया जैन एसोसियेशनके वार्षिक अधिवेशनका अध्यक्ष निर्वाचित होकर जयपुर गया। प० अर्जुनलाल सेठी

बी० ए० ने 'जैन-शिक्षण-समिति' स्थापित कर रखी थी। एक आदर्श संस्था थी। श्री दयाचन्द गोयलीय छात्रालयके प्रवन्धक और समितिमें अध्यापक भी थे। श्री गेन्दनलाल सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट वोर्ड रुड़की तथा भगवानदीनजी असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर, दिल्ली-निवासी जगन्नाथ जौहरी, भाई मोतीलाल गर्गसे भी वहाँ मिलना हुआ और सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि एक ब्रह्मचर्य्याश्रमकी स्थापना की जाय। परिणामस्वरूप पहली मई १९११, अक्षयतृतीयाके दिन हस्तिनागपुरमें श्री ऐलक पन्नालालजीके आशीर्वादपूर्वक "श्री ऋषभ-ब्रह्मचर्य्याश्रम" की स्थापना हुई। अक्षयतृतीयाकी पुण्यतिथिमें राजा श्रेयांसने हस्तिनागपुरमें एक वर्षके उपवासके पश्चात् भगवान् ऋषभदेवको इक्षुरसका आहार दिया था।

भगवानदीनजीने नौकरीसे त्यागपत्र देकर २६ वर्षकी आयुमें ही आजन्म ब्रह्मचर्य्यव्रत ले लिया। तीन वरसके इकलौते वेटेको आश्रमका ब्रह्मचारी वना दिया। उनकी पत्नी वम्वई श्राविकाश्रममें चली गईं। अधिष्ठाता पदका भार भगवानदीनजीने स्वीकार किया। मंत्रिपद मुझे दिया गया। हस्तिनागपुर मेरठसे २६ मील दूर है। १९ मील घोड़ागाड़ीका रास्ता था, शेष ७ मील वैलगाड़ीसे या पैदल जाना पड़ता था। तीन दिनकी छुट्टीमें मैं भी चला जाया करता था।

सरकार उन दिनों ऐसी संस्थाओंको सन्देहकी दृष्टिसे देखती थी। जहाँतक मुझे मालूम हुआ एक पुलिसका जासूस आश्रममें अध्यापकके रूपसे लगा हुआ था।

जैन-समाजके पंडिताई पेशेवर और धनिकवर्गको भी आश्रमके कार्य्यमें पूर्ण श्रद्धा नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि ४ वरस पीछे मुझको और भगवानदीनजीको त्याग-पत्र देना पड़ा और एक-एक करके गेन्दनलालजी, ब्र० सीतलप्रसादजी, भाई मोतीलालजी, जौहरी जगन्नाथजी, बाबू सूरजभानजी आदि सभी आश्रमसे हट गये। नामको वह आश्रम अव भी मथुरानगरके चौरासी स्थानपर चल रहा है, किन्तु जो वात सोची थी, वह असम्भव हो गई।

दृष्टान्तरूप इतना लिखना अनुचित न होगा कि जव मैंने त्यागपत्र दिया, उस समय ६० ब्रह्मचारी आश्रममें थे। शिक्षणका प्रभाव उनपर इतना था कि एक दिन सवके साथ मैं भोजन करने वैठा। सब ब्रह्मचारी साधारणतया भोजन कर चुके, मुझसे खाया ही नही गया। तव भगवानदीनजीने नमक दाल-शाकमें डाल दिया। फिर तो मैंने भी भोजन कर लिया। भगवानदीनजीने वतलाया कि वालकोंके मनमें यह दृढ़ श्रद्धा है कि भोजन स्वादके लिए नही, वल्कि स्वास्थ्यके लिए किया जाता है, जो भोजन अधिष्ठाताजी देंगे, अवश्य स्वास्थ्यप्रद होगा।

समस्त विद्यार्थी अपने जूठे वर्तन स्वयं माँजते, स्वयं कुएँसे पानी भरते, अपने वस्त्र स्वयं धोते थे, और आज्ञाकारी इतने थे कि भगवानदीनजीका इशारा पाते ही एक लड़का कुएँमें कूद

गया, रस्सेसे उसे तुरन्त बाहर निकाला गया। एक बालक उस बियाबान जंगलमें ५-६ मीलकी दूरीसे आदेश मिलनेपर अकेला ही आश्रम पहुँच गया। बालक निर्भीक, विनयी और आज्ञाकारी थे।

१९१० ई० में लखनऊमें मकान बनवाया। अजिताश्रम उसका नाम रखा गया। १९११ में गृहप्रवेशके अवसरपर भारत-जैन-महामण्डलकी प्रबन्धकारिणीका अधिवेशन हुआ। १९१६ में महामण्डल और जीवदया सभाके विशाल सम्मिलित अधिवेशन हुए। अजिताश्रमका सभामण्डप सजावटमें लखनऊभरमें सर्वोत्तम था। सभाध्यक्ष प्रख्यात पत्रसम्पादक मि० बी० जी० होर्नीमैन थे। वक्ताओंमें महात्मा गांधी भी थे। अधिवेशनमें उपस्थिति इतनी अधिक थी कि छतों और वृक्षोंपर भी लोग चढे हुए थे। सामनेकी सडक रुक गई थी, खडे रहनेको भी कहीं जगह न थी।

श्री सम्मेदशिखर, गोम्मटेश्वर, गिरनारजी आदि तीर्थोंकी भक्ति-पूर्वक वन्दनाएँ कीं। १९१० में गोम्म-टेश्वर स्वामीका महामस्तकाभिषेक था। उस ही अवसरपर महासभाके अधिवेशनका भी आयोजन किया गया था। प० अर्जुनलाल सेठी, महात्मा भगवानदीन भी पधारे थे। एक रोज महात्माजीने एक चट्टानपर अर्घ रख दिया, दूसरे दिन देखा कि वहाँपर सामग्रीका ढेर चढा हुआ है। वह स्थान पूज्य मान लिया गया। जनता अन्धश्रद्धासे चलती है, विचार-विवेकसे काम नहीं लेती।

एक दिन यह चर्चा चली कि यात्राके स्मारक रूप कुछ नियम सबको लेना चाहिए। भगवानदीनजीने कहा कि सब लोग गालीका त्याग कर चलें, गालीका प्रयोग बुरा है। लेकिन इस कुटेवका ऐसा अभ्यास पड गया है कि किसीकी भी हिम्मत नहीं हुई कि गालीका यावज्जीवन त्याग कर दें। अन्तत सबने यह नियम लिया कि जहाँतक बनेगा, गालीका प्रयोग न करेंगे। यदि करें तो प्रायश्चित्तस्वरूप दण्ड लेंगे। उस नियमका परिणाम अच्छा हुआ। जब कभी ऐसा अशुभ अवसर आता है तो मैं उस दिनकी वार्ताको याद कर लेता हूँ और कषा-यावेगको रोक लेता हूँ। परिणाम-शुद्धिरूप त्याग, खाने-पीनेकी वस्तु-त्यागसे कई गुना अच्छा और पुण्याश्रव का कारण है, किन्तु ऐसी प्रथा चल पडी है कि त्यागीवर्ग तथा साधुवर्ग गृहस्थोंसे खाने-पीनेकी वस्तुओंका ही त्याग कराते हैं। यदि कषायका त्याग कराएँ तो जैनसमाज और जैनधर्मका महत्त्व संसारमें फैल जाय, महती धर्मप्रभावना हो।

गिरनारजीसे हम लोग बम्बई आये, रास्तेमें गुरुवर्य्य वादिगजकेसरी प० गोपालदासजी बरैया, प० माणिक-चन्द कौन्देय, खूबचन्द, देवकीनन्दन, बंशीधर (शोलापुरवाले), मक्खनलाल-जीका भी साथ हो गया था। हमारे स्वागतके लिए स्टेशनपर बम्बईके प्राय सभी दि० जैनसमाजके प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। प्लेटफार्मपर लाल बनात बिछाई गई थी। मुख्य बाजारोंमेंसे जुलूस निकाला गया।

२८ दिसम्बर १९१२ को बम्बई प्रान्तिक सभाकी पहली बैठक शुरू हुई। पं० धन्नालालजीने मंगलाचरण किया। सेठ हीराचन्द नेमिचन्दके प्रस्ताव करनेपर मैं सभापति चुना गया। मैंने अपने भाषणमें जातिभेद-सम्बन्धी कुछ बातें कहीं तो कुछ सभासद् ऐसे बिगड़े कि उन्हें शान्त करना दुष्कर हो गया। मूर्खताके सामने बुद्धिको हारना पड़ा और अल्पजनमतने बहुमतको दबा लिया। केवल दस-बीस महात्माओंने ऐसा हुल्लड़ मचाया कि उस दिनकी सभाका कार्य समाप्त कर देना पड़ा। बादमें मालूम हुआ कि बाहरके सेठ लोगोंकी तरफ़से दो गुप्तचर भेजे गये थे और उन्हींके कृपाकटाक्षसे यह सब कार्य्य हुआ। उन्होंने बाजी मार लेनेका तार उसी रोज दे दिया था। अन्ततः इस अधिवेशनमें सफलता अवश्य प्राप्त हुई। जो लोग अशान्ति उठानेवाले थे, और जिन्हें कुछ बाहरसे आये हुए महात्माओंने बहकाकर उत्तेजित किया था, उन्होंने पीछेसे पश्चात्ताप किया और उनमेंसे कई भाइयोंने मेरी बिदाईके समय स्टेशनपर आकर प्रेमपूर्वक बिदाई दी।

पं० अर्जुनलाल सेठीको नजरबन्दीसे मुक्त करानेमें मैंने १९१३ से १९२० तक निरन्तर प्रयत्न किया। ब्र० सीतलप्रसाद, बैरिस्टर जगमन्दरलाल तथा महात्मा गाधीने पर्याप्त सहयोग दिया, कोशिश की।

मेरा विवाह बाल्यावस्थामें ही कर दिया गया। माताजीके मरनेके कुछ दिन वाद छह बरसकी उमरमें ही मेरी सगाई हो गई। पत्नी मुझसे डेढ़ बरस छोटी थी। हम दोनों नई मन्दिरकी जनानी ड्योढ़ीके मैदानमें अनारके वृक्षके नीचे अनारकी कलियाँ चुन-चुनकर खेला करते थे। विवाह छह बरस पीछे हुआ।

विद्योपार्जनका शौक मुझे बचपनसे था। अपनी कक्षामे सर्वोच्च रहता था। विवाहके समय १२ बरसका था। विषय-वासना जागृत नहीं हुई थी। एंट्रेंस परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुका था। मई १८८९ में पत्नी दिल्लीसे लखनऊ आई। सहवासके लिए मुझे और उसे लैम्प जलाकर कमरेमे बन्द कर दिया गया। वह लैम्पके पास बैठी रही, मैं पलंगपर लेटा रहा। हाथमें लघु-सिद्धान्तकौमुदी थी, व्याकरणके सूत्रोंकी पुनरावृत्ति कर रहा था। न मै पत्नीके पास गया, न वह मेरे पास आई। उसने कई दफा बाहर जानेको दर्वाजा खटखटाया, और आखिर दर्वाज़ा खोल दिया गया। इस तरहके बराबर प्रयत्न किये गये, परन्तु हम आपसमे वार्तालाप तक नही करते थे।

सहधर्मिणीका स्वास्थ्य प्रबल था। ३१ बरसके वैवाहिक जीवनमें छह बच्चोंकी जननी होनेपर भी उसको कभी हकीम, वैद्यकी आवश्यकता नही पड़ी। धार्मिक क्रियाकाण्डमे उसका गहरा श्रद्धान था। निर्जल उपवास महीनेमें एक-दो हो जाते थे। कभी-कभी निरन्तर दो दिनका निर्जल उपवास हो जाता था। और भी अनेक नियमोंका पालन करती थी। पतली दवाका तो आजन्म त्याग था, केवल सूखी दवाकी छूट रखी थी, जिसके

प्रयोगका कभी अवसर नही आया ।
१९१८ की अष्टाह्निकामें दो रोजका उपवास करनेके बाद हैजा हो गया और लाख प्रयत्न करनेपर भी न बच सकी।

गृहिणीके देहान्तके पहले ही मैंने सरकारी वकालतसे तो त्यागपत्र दे दिया था। उसके देहान्तपर सब कानूनी पुस्तकें तथा असबाब नीलाम करके दोनो कोठियाँ बेचकर, काशी-वासके अभिप्रायसे बनारस चला गया।

काशी-स्याद्वाद-विद्यालयकी प्रबन्ध-कारिणी-समितिका सदस्य मैं उसकी स्थापनाके समयसे बरसो तक रहा। जो बालक वहाँ भर्ती होते थे, उनको भोजन, वस्त्र, बिना दाम मिलते थे, और पढाई निःशुल्क थी ही। फिर भी कुछ विद्यार्थी ऐसी सकीर्ण प्रवृत्ति के थे कि समाजके प्रतिष्ठित सज्जनों-से गुप्त पत्र लिखकर आर्थिक सहा-यता प्राप्त कर लेते थे। इस व्यव-हारसे महाविद्यालयकी महिमामें बट्टा लगता था। एक सज्जनने कितने ही कपडेके थान भेंट किये। कमेटीने विद्यार्थियोंके वस्त्र एक प्रकारके बनवा देनेका प्रस्ताव किया। इसपर विद्या-र्थियोंने विद्रोह मचा दिया कि हम सिपाहियोंकी-सी वर्दी नही पहनेंगे। हम अपने मनका कपडा और अपनी पसन्दकी काटका वस्त्र बनवायेंगे।

विद्यार्थियोंमें यह भी कुटेव थी कि रसोईके समय अपनी-अपनी घीकी हाँडी लेकर जाते थे। कमेटीने निश्चय किया कि घी विद्यार्थियोंके पास न रहे। सब घी दालमें रँधते समय डाल दिया जाय और रूखी रोटी परसी जाये। इसपर भी विद्रोह बढ गया। उद्दण्डताके कारण कुछ विद्यार्थियोंको विद्यालयसे पृथक् करना पडा। मामला फिर कमेटीके सामने पेश हुआ। मैंने इसपर प्रबन्ध-समितिसे त्यागपत्र दे दिया। जैन जातिके विद्यार्थियोंने महा-विद्यालयको गिराकर अनाथालय-सा बना दिया है, और इसी कारण कोई प्रतिष्ठित सज्जन अपने बालक इस जैन सस्थामें पठनार्थ नही भेजते।

१७ नवम्बर १९२२ को लखनऊसे दिल्ली पहुँचा। पचायती मन्दिरकी पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठाके अवसरपर महासभाको निमन्त्रित करनेका प्रस्ताव मैंने जोरसे भाषण देकर स्वीकार करा लिया, किन्तु मुख्य नेता, अधिकार प्राप्त पुरुषोंका सहयोग नहीं मिला।

महासभाके अधिवेशनमें तुरत सदस्यपत्र भरवाकर सदस्य बना लिये गये। बैरिस्टर चम्पतरायजीके जैन-गजट (हिन्दी) के सम्पादक होनेके प्रस्तावका समर्थन करनेको लाला देवी-सहाय फीरोजपुर खडे हुए। उनको एक महाशयने बिठा दिया और अनियमित अनधिकार बहुमतसे एक पण्डितपेशा महाशयको सम्पादक बनानेका प्रस्ताव पास करा लिया। ऐसी खुली धाँधली देखकर कितने ही सदस्य उठ खडे हुए और दूसरे मण्डपमें एकत्र होकर भारत-वर्षीय दि० जैन परिषद्की स्थापना की। प्रथम अध्यक्ष रायबहादुर सेठ माणिकचन्दजी सेठी झालरापाटनवाले निर्वाचित हुए। ब्र० सीतलप्रसादजीने सदस्य-सचीपर प्रथम हस्ताक्षर किये।

तीर्थक्षेत्र-कमेटीकी स्थापना जैन-समाजके वास्तविक दानवीर सेठ

माणिकचन्दजीने की थी। वे स्वयं उसके महामन्त्री थे। रोजाना कार्यालयमें आकर ४-५ घण्टे कार्य करते थे।

७ मार्च १९१२ को श्वताम्बर जैन-संघकी ओरसे दिगम्बर जैन-समाजके विरुद्ध हज़ारीवाग़की कचहरीमें नालिश पेश की गई। उनका दावा था कि सम्मेदशिखरजी निर्वाण-क्षेत्रस्थित—टौक, मन्दिर, धर्मशाला सब श्वेताम्बर संघ द्वारा निर्मित हुई हैं। दि० जैनियोंको श्वेताम्बर संघकी अनुमतिके विना प्रक्षाल-पूजा करनेका अधिकार नही है, न वह धर्मशालामें ठहर सकते है। इस मुक़दमेमें उभय-पक्षके कई लाख रुपये व्यर्थ व्यय हुए!

१९१७ में मैं और भगवानदीनजी कांग्रेस अधिवेशनके अवसरपर कलकत्ते गये और वहाँ महात्मा गांधीसे मिलकर निवेदन किया कि आप इस मुक़दमेबाजी और मनोमालिन्यका अन्त करा दें। महात्मा गांधीने हमारी प्रार्थना ध्यानसे सुनी और मामलेका निर्णय करना स्वीकार किया, और कहा कि चाहे जितना समय लगे, मैं इस झगड़ेका निबटारा कर दूँगा; किन्तु उभयपक्ष इक़रारनामा रजिस्ट्री कराके मुझे दे दे कि मेरा निर्णय उभयपक्षको नि.संकोच स्वीकार और माननीय होगा।

हम दोनो कितनी ही बार रायबहादुर बद्रीदासजीकी सेवामें उनके निवासस्थानपर गये और उनसे प्रार्थना की कि वह श्वेताम्बर समाजकी ओरसे ऐसे इकरारनामेकी रजिस्ट्री करा दे। हम दि० समाजसे रजिस्ट्री करा देनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते है। लेकिन उन्होंने वातको टाल दिया और मेल-मिलापके सव प्रयत्न व्यर्थ हुए। परिणामतः जैन-समाजके प्रचुर द्रव्यका अपव्यय और पारस्परिक मनोमालिन्यकी वृद्धि हुई। वकील और पैरोकार मुख्तार अमीर हो गये। मैंने ७ वर्ष तक १९२३ से १९३० तक तीर्थक्षेत्र कमेटीका काम किया। ४६,००० रु० मेरे नामसे तीर्थक्षेत्र कमेटीकी बहीमें दान खाते जमा हैं।

१९२६ में काकोरी षड्यन्त्रका मुकदमा चला! मैंने रामप्रसाद बिस्मिलकी निःशुल्क वकालत की। मैंने उसे सलाह दी कि वह काकोरी डकैती करना और क्रान्तिकारी दलका सदस्य होना स्वीकार कर ले। मैं उसे प्राणदण्डसे बचा लूँगा; क्योंकि उसने किसी भी डकैतीमें किसी भी व्यक्तिकी जानकर हत्या नहीं की किन्तु उसने मेरी सलाह नही मानी, परिणामतः मैंने उसकी वकालत छोड़ दी और उसे फाँसी हो गई।

२३ जुलाई १९२६ को ब्र० सीतलप्रसादजी लखनऊ पधारे। लखनऊकी जैन जनता स्वागतार्थ स्टेशन गई। वे अजिताश्रममें ही ठहरे। उनको देवदर्शनका नियम था। अष्टमी-चतुर्दशीको उनका प्रोपधोपवास होता था, और उस रोज सवारी भी इस्तेमाल नही करते थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन २४ जुलाईको चतुर्दशी थी। ब्रह्मचारीजी पैदल ही अहियागंज दर्शनार्थ गये और आये। गर्मीमें उनका इस प्रकार आना-जाना मुझे बहुत खटका और भावावेशमें वाराबंकीसे एक प्रतिमा लाकर २५ जुलाईको अजिताश्रममें विराजमान कर दी।

२७ जुलाईको अजिताश्रम चैत्यालयकी नींव खुदनी प्रारम्भ हो गई। नींवकी पहली ईंट ब्रह्मचारीजीने जमाई, वह पवित्र समय मेरे और शेष अजिताश्रम-वासियोंके जीवनमें चिरस्मरणीय रहेगा। १६ नवम्बरसे १८ नवम्बर तक मन्त्रके आठ हजार जप होकर वेदी प्रतिष्ठा हुई। चौधरी पचायनने ब्रह्मचारीजी-से आग्रह किया कि अजिताश्रममें चैत्यालयके लिए मूर्ति पसन्द कर लें और बाराबंकीकी मूर्ति स्थापित कर दें। ब्रह्मचारीजीने ऐसा ही किया।

ब्रह्मचारीजीने चतुर्मास अजिता-श्रममें करनेके समय जैनवाङ्मय अंग्रेजी भाषामें प्रकाशनका निश्चय किया। मैं और वे गोम्मटसारका काम रात्रिको तीन बजेसे छह बजेतक प्रतिदिन करते रहे। अगस्त १९२७ में श्री जे० एल० जैनीका ४६ वर्ष की अवस्थामें आक-स्मिक शरीर छूट गया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति जैनधर्म-प्रचारार्थ अर्पण कर दी। ट्रस्टकी सम्पत्ति अनुमानतः ६० हजार होगी।

आत्मानुशासन, समयसार, नियम-सार, गोम्मटसार, जीवकाण्ड भाग १, अंग्रेजीमें श्रीयुत जे० एल० जैनी द्वारा अनुवादित भाष्य, उपोद्घात और प्राक्कथन सहित नवलकिशोर मुद्रणा-लयमें अत्यन्त परिश्रमसे शुद्ध करके छपवाये और प्रकाशित कराये। उनके शरीरान्तके बाद मैंने पुरु-षार्थसिद्धयुपाय, ब्रह्मचारीजी और मैंने मिलकर कर्मकाण्ड भाग २, और श्री शरच्चन्द्र घोषाल मैजिस्ट्रेट कूचविहार ने परीक्षामुखका अंग्रेजीमें वृहद् भाष्य और उपोद्घातसहित अनुवाद किया। श्री घासीराम जैन प्रोफेसर विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियरने तत्त्वार्थसूत्रके पंचम अध्यायके आधारपर Jain cosmo-logy शीर्षक मौलिक ग्रन्थ लिखा। इस प्रकार The Sacred Books of Jainas Series में १२ पुस्तकें छप चुकी हैं, जिनमेंसे तीन कुमार देवेन्द्र-प्रसादने आरासे प्रकाशित कीं। भाव-पाहुड़ और आत्ममीमांसा इस समय मेरे पास मुद्रणार्थ तैयार रखे हैं।

१९२९ में मैं बीकानेर हाईकोर्ट का जज नियुक्त हुआ। छह सौ रुपये वेतन मिलता था। लेकिन स्वतन्त्र विचारका मनुष्य उन दिनों रियासतोंमें नहीं निभ सकता था, अतः हम तीनों जज २-३ वर्षके अन्दर वापिस आ गये।

१९३० में लाहौरके प्रसिद्ध बैरि-स्टरका जो कि मेरे सहपाठी थे सहसा देहान्त हो गया। उनके लिये हुए बहुतसे मुकदमे थे। वहाँ जाकर उन सबको निबटाया।

यदि मैं निरन्तर सरकारी नौकरी करता रहता तो जज या कमिश्नर अवश्य हो जाता, परन्तु इसके आगे जीवन कितना शुष्क और नीरस हो जाता? दिन दफ्तरमें और रात क्लबों और पार्टियोंमें बीत जाती। मानसिक अभिवृद्धि और आत्मोन्नतिका कोई अवकाश न मिल पाता। अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है।

मैंने सरकारी वकालतसे १९१६ में त्यागपत्र दिया। इन ३५ वर्षोंमें कितना परिभ्रमण किया, कितने व्यक्तियोंसे मिला, कितने हजार पृष्ठ

लिख डाले, कितनी पुस्तकें पढ़ डालीं—सोचकर मुझे स्वयं आश्चर्य्य होता है। भारतका कोना-कोना मैंने छान डाला। कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, लाहौर, बम्बई—प्राय: सभी हाईकोर्टोंमें वकालत कर ली। देशके सभी नेताओंसे सम्पर्क रहा, मेरे जीवनका और जैनसमाजका इतिहास तो लगभग तत्सम रहा है। संस्कृत और प्राकृतके जितने जैन-ग्रन्थोंका अँगरेज़ी में अनुवाद हुआ, उनके सम्पादन, मुद्रण या प्रकाशनमें मेरा हाथ रहा है। बिरले ही किसी व्यक्तिने समाचार पत्रका निरन्तर इतने वर्ष सम्पादन किया हो जितना मैंने गज़टका किया है। इतना बहुमुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत करनेके बाद अब मुझे किस वस्तुका अभाव है ?

जीवन

'दुनिया क्या कहेगी', 'मुझपर कोई हँसेगा या क्या', ऐसे दुर्बल विचारोंको न आने देकर अपनेको योग्य लगे वैसा काम हमेशा करना चाहिये। यही सारे जीवनका रहस्य है। —विवेकानन्द

जीवन पुष्प-शय्या नहीं है पर उसे रण-भूमि भी होनेकी ज़रूरत नहीं है। —अज्ञात

जिस तरह दीप "स्नेह-सूत्र-वैश्वानर" इन तीनोसे मिलकर होता है, उसी प्रकार यह जीवन ज्ञान, भक्ति और कर्मसे मिलकर होता है।

—विनोबा

बहुतसे लोग ऐसे हैं जो मर गये, मगर उनके गुण नहीं मरे; और बहुतसे लोग ऐसे हैं जो जीवित हैं, किन्तु सर्वसाधारणकी दृष्टिमें मृतक हैं।

—अज्ञात

उन्हींका जीवन सफल है जो खुद तंग हालमें होते हुए भी दूसरोंकी ज़रूरतोंको अपनेसे पहले पूरा करने की कोशिश करते हैं। —क़ुरान

मानव जीवन और भारतीय ज्योतिष

मनुष्य स्वभावसे ही अन्वेषक प्राणी है। वह सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुके साथ अपने जीवनका तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। उसकी इसी प्रवृत्तिने ज्योतिषके साथ जीवनका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए बाध्य किया है। फलत वह अपने जीवनके भीतर ज्योतिष तत्त्वोंका प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है। इसी कारण वह शास्त्रीय एव व्यावहारिक ज्ञान द्वारा प्राप्त अनुभवको, ज्योतिषकी कसौटीपर कसकर देखना चाहता है कि ज्योतिषका जीवनमें क्या स्थान है?

समस्त भारतीय ज्ञानकी पृष्ठभूमि दर्शनशास्त्र है, यही कारण है कि भारत अन्य प्रकारके ज्ञानको दार्शनिक मापदण्ड द्वारा मापता है। इसी अटल सिद्धान्तके अनुसार वह ज्योतिषको भी इसी दृष्टिकोणसे देखता है। भारतीय दर्शनके अनुसार आत्मा अमर है, इसका कभी नाश नही होता है, केवल यह कर्मोंके अनादि प्रवाहके कारण पर्यायोको बदला करता है। अध्यात्मशास्त्रका कथन है कि दृश्य सृष्टि केवल नाम रूप या कर्म ही नही है, किन्तु इस नाम रूपात्मक आवरणके लिए आधारभूत एव अरूपी, स्वतन्त्र और अविनाशी आत्मतत्त्व है तथा प्राणिमात्रके शरीरमें रहनेवाला यह तत्त्व नित्य एव चैतन्य है, केवल कर्म-बन्धके कारण वह परतन्त्र और विनाशीक दिखलाई पडता है। वैदिक दर्शनोंमें कर्मके सचित, प्रारब्ध और क्रियमाण ये तीन भेद माने गये हैं। किसीके द्वारा वर्तमान क्षण तक किया गया जो कर्म है—चाहे वह इस जन्म में किया गया हो या पूर्व जन्मोंमें, वह सब सचित कहलाता है। अनेक जन्म-जन्मान्तरोंके सचित कर्मोंको एक

श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य

साथ भोगना संभव नही है; क्योंकि इनसे मिलनेवाले परिणाम स्वरूप फल परस्पर विरोधी होते हैं, अतः इन्हें एकके बाद एक कर भोगना पड़ता है। संचितमेंसे जितने कर्मोके फलको पहले भोगना शुरू होता है, उतने हीको प्रारब्ध कहते हैं। तात्पर्य यह है कि संचित अर्थात् समस्त जन्म-जन्मान्तरके कर्मोके संग्रहमेंसे एक छोटे भेदको प्रारब्ध कहते हैं। यहाँ इतना स्मरण रखना होगा कि समस्त संचित का नाम प्रारब्ध नहीं, बल्कि जितने भागका भोगना आरम्भ हो गया है, प्रारब्ध है। जो कर्म अभी हो रहा है या जो अभी किया जा रहा है, वह क्रियमाण है। इस प्रकार इन तीन तरहके कर्मोके कारण आत्मा अनेक जन्मों—पर्यायोंको धारण कर संस्कार अर्जन करता चला आ रहा है।

आत्माके साथ अनादिकालीन कर्म-प्रवाहके कारण लिगशरीर—कार्माण शरीर और भौतिक स्थूल शरीरका सम्बन्ध हे। जब एक स्थान-से आत्मा इस भौतिक शरीरका त्याग करता है तो लिग शरीर उसे अन्य स्थूल शरीरकी प्राप्तिमें सहायक होता हैं। इस स्थूल भौतिक शरीरमें विशे-षता यह है कि इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म-जन्मान्तरोके संस्कारोंकी निश्चित स्मृतिको खो देता है। इस-लिए ज्योतिर्विदोंने प्राकृतिक ज्योतिषके आधारपर कहा है कि यह आत्मा मनुष्यके वर्तमान स्थूल शरीरमें रहते हुए भी एकसे अधिक जगत्के साथ सम्बन्ध रखता है। मानवका भौतिक शरीर प्रधानतः ज्योतिः, मानसिक और पौद्गलिक इन तीन उपशरीरोंमें विभक्त है। यह ज्योतिः उपशरीर (Astrals's body) द्वारा नाक्षत्र जगत्से, मानसिक उपशरीर द्वारा मानसिक जगत्से और पौद्गलिक उपशरीर द्वारा भौतिक जगत्से सम्बद्ध है। अतः मानव प्रत्येक जगत्से प्रभा-वित होता है तथा अपने भाव, विचार और क्रिया द्वारा प्रत्येक जगत्को प्रभावित करता है। उसके वर्तमान शरीरमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनेक शक्तियोंका धारक आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथा शरीर प्रमाण रहनेपर भी अपनी चैतन्य क्रियाओं द्वारा विभिन्न जगतोंमें अपना कार्य करता हैं। मनोवैज्ञानिकोने आत्माकी इस क्रियाकी विशेषताके कारण ही मनुष्यके व्यक्तित्वको वाह्य और आन्तरिक दो भागोमे विभक्त किया हैं।

बाह्यव्यक्तित्व—वह है जिसने इस भौतिक शरीरके रूपमे अवतार लिया हैं। यह आत्माकी चैतन्य क्रिया की विशेषताके कारण अपने पूर्व जन्मके निश्चित प्रकारके विचार, भाव और क्रियाओंकी ओर झुकाव प्राप्त करता है तथा इस जीवनके अनुभवोंके द्वारा इस व्यक्तित्वके विकासमें वृद्धि होती है और यह धीरे-धीरे विकसित होकर आन्तरिक व्यक्तित्वमे मिलनेका प्रयास करता है।

आन्तरिक व्यक्तित्व—वह है जो अनेकों वाह्य व्यक्तित्वोंकी स्मृतियों, अनुभवों और प्रवृत्तियोंका संश्लेषण अपनेमें रखता है।

वाह्य और आन्तरिक इन दोनों व्यक्तित्व सम्बन्धी चेतनाके ज्योतिषमें

विचार, अनुभव और क्रिया ये तीन रूप माने गये हैं। बाह्य व्यक्तित्वके तीन रूप आन्तरिक व्यक्तित्वके इन तीनों रूपोंसे सम्बद्ध हैं, पर आन्तरिक व्यक्तित्वके ये तीनों रूप अपनी निजी विशेषता और शक्ति रखते हैं, जिससे मनुष्यके भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक इन तीनों जगतोंका सचालन होता है। मनुष्यका अन्तःकरण इन दोनों व्यक्तित्वके उक्त तीनों रूपोंको मिलानेका कार्य करता है। दूसरे दृष्टिकोणसे यह कहा जा सकता है कि ये तीनों रूप एक मौलिक अवस्थामें आकर्षण और विकर्षणकी प्रवृत्ति द्वारा अन्तःकरणकी सहायतासे सन्तुलित रूपको प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि आकर्षणकी प्रवृत्ति बाह्य व्यक्तित्वको और इन दोनोंके बीचमें रहनेवाला अन्तःकरण इन्हें सन्तुलन प्रदान करता है। मनुष्यकी उन्नति और अवनति इस सतुलनके पर ही निर्भर है।

मानव जीवनके बाह्य व्यक्तित्वके तीन रूप और आन्तरिक व्यक्तित्वके तीन रूप तथा एक अन्तःकरण इन सातके प्रतीक सौर जगत्में रहनेवाले सात ग्रह माने गये हैं। उपर्युक्त सात रूप सब प्राणियोंके एक-से नहीं होते हैं, क्योंकि जन्म-जन्मान्तरोंके सचित, प्रारब्ध कर्म विभिन्न प्रकारके हैं, अत प्रतीक रूप ग्रह अपने-अपने प्रतिरूप्यके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी बातें करते हैं। प्रतिरूप्योंकी सच्ची अवस्था बीजगणितकी अव्यक्त मान कल्पना द्वारा निष्पन्न अकोंके समान प्रकट हो जाती हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तुकी आन्तरिक रचना सौरमण्डलसे मिलती जुलती बतलाते हैं। उन्होंने परमाणुके सम्बन्धमें अन्वेषण करते हुए बताया है कि प्रत्येक पदार्थकी सूक्ष्म रचनाका आधार परमाणु है। अथवा यों कहें कि परमाणुकी ईंटोंको जोडकर पदार्थका विशाल भवन निष्पन्न होता है और यह परमाणु सौरजगत्के समान आकार प्रकारवाला है। इसके मध्यमें एक घन विद्युतका विन्दु है, जिसे केन्द्र कहते हैं। इसका व्यास एक इंचके दस लाखवें भागका भी दस लाखवाँ भाग बताया गया है। परमाणुके जीवनका सार इसी केन्द्रमें बसता है। इस केन्द्रके चारों ओर अनेक सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं और वे केन्द्रवाले घनविद्युतकणके साथ मिलनेका उपक्रम करते रहते हैं। इस प्रकारके अनन्त परमाणुओंके समाहारका एकत्र स्वरूप हमारा शरीर है। भारतीय दर्शनमें भी 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का सिद्धान्त प्राचीन कालसे ही प्रचलित है। तात्पर्य यह है वास्तविक सौरजगत्में सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंके भ्रमण करनेमें जो नियम कार्य करते हैं, वे ही नियम प्राणिमात्रके शरीरमें स्थित सौरजगत्के ग्रहोंके भ्रमण करनेमें भी काम करते हैं। अत आकाश स्थित ग्रह शरीर स्थित ग्रहोंके प्रतीक हैं।

प्रथम कल्पनानुसार बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्वके छ रूप तथा एक अन्तःकरण इन सातों प्रतिरूप्योंके ग्रह निम्न प्रकार हैं—

१—बाह्य व्यक्तित्वके प्रथम रूप—विचारका प्रतीक बृहस्पति है। यह प्राणिमात्रके शरीरका प्रतिनिधित्व

करता है और शरीर संचालनके लिये रक्त प्रदान करता है। जीवित प्राणीके रक्तमें रहनेवाले कीटाणुओंकी चेतनासे इसका सम्बन्ध रहता है। इस प्रतीक द्वारा बाह्य व्यक्तित्वके प्रथम रूपसे होनेवाले कार्योका विश्लेषण किया जाता है। इसलिए ज्योतिष शास्त्रमे प्रत्येक ग्रहसे किसी भी मनुष्यके आत्मिक, अनात्मिक और शारीरिक इन तीन प्रकारके दृष्टिकोणसे फलका विचार किया जाता है। कारण स्पष्ट है कि मनुष्यके व्यक्तित्वके किसी भी रूपका प्रभाव शरीर, आत्मा और बाह्य जड़, चेतन पदार्थपर, जो शरीरसे भिन्न है, पड़ता है। उदाहरणके लिए बाह्य व्यक्तित्वके प्रथम रूप–विचारको लिया जा सकता है, मनुष्यके विचारका प्रभाव शरीर और चेतन शक्तियाँ–स्मृति, अनुभव, प्रत्यभिज्ञा आदि तथा मनुष्यसे सम्बद्ध अन्य वस्तुओंपर भी पड़ता है। इन तीनोंसे अलग रहकर मनुष्य कुछ नहीं कर सकेगा, उसका जीवन जड़वत् स्तम्भित हो जायगा। अतएव प्रथम रूपके प्रतीक बृहस्पतिका विवेचन निम्न प्रकार अवगत करना चाहिये—अनात्मा—इस दृष्टिकोणसे वृहस्पति व्यापार, कार्य, वे स्थान और व्यक्ति जिनका सम्वन्ध धर्म और कानूनसे है—मन्दिर, पुजारी, मंत्री, न्यायालय, न्यायाधीश, विश्वविद्यालय, धारासभाएँ, जनताके उत्सव, दान, सहानुभूति आदिका प्रतिनिधित्व करता है।

आत्मा—इस दृष्टिकोणसे यह ग्रह विचार मनोभाव और इन दोनोंका मिश्रण, उदारता, अच्छा स्वभाव, सौन्दर्य प्रेम, शान्ति, भक्ति एवं व्यवस्थाबुद्धि, इत्यादि आत्मिक भावोंका प्रतिनिधित्व करता है।

शरीर—इस दृष्टिकोणसे पैर, जंघा, जिगर, पाचनक्रिया, रक्त एवं नसोंका प्रतिनिधित्व करता है।

२—बाह्य व्यक्तित्वके द्वितीय रूपका प्रतीक मंगल है। यह इन्द्रियज्ञान और आनन्देच्छाका प्रतिनिधित्व करता है। जितने भी उत्तेजक और संवेदना-जन्य आवेग हैं उनका यह प्रधान केन्द्र है। बाह्य आनन्ददायक वस्तुओके द्वारा यह क्रियाशील होता है और पूर्वकी आनन्ददायक अनुभवोकी स्मृतियोंको जागृत करता है। वाञ्छित वस्तुकी प्राप्ति तथा उन वस्तुओंकी प्राप्तिके उपायोंके कारणोंकी क्रियाका प्रधान उद्गम है। यह प्रधान रूपसे इच्छाओका प्रतीक है।

अनात्मिक दृष्टिकोणसे—यह सैनिक, डाक्टर, रसायनिक, नाई, बढ़ई, लुहार, मशीनका कार्य करनेवाला, मकान बनानेवाला, खेल एवं खेलके सामान आदिका प्रतिनिधित्व करता है।

आत्मिक दृष्टिकोणसे–यह साहस, बहादुरी, दृढ़ता, आत्मविश्वास, क्रोध, लड़ाकू-प्रवृत्ति एवं प्रभुत्व प्रभृति भावों और विचारोका प्रतिनिधि है।

शारीरिक दृष्टिकोणसे–यह बाहरी सिर–खोपड़ी, नाक एवं गालका प्रतीक है। इसके द्वारा संक्रामक रोग, घाव, खरोंच, आपरेशन, रक्तदोष, दर्द आदि अभिव्यक्त होते हैं।

३—बाह्य व्यक्तित्वके तृतीय रूपका प्रतीक चन्द्रमा है, यह मानव-

पर शारीरिक प्रभाव डालता है। और विभिन्न अंगो तथा उनके कार्योमें सुधार करता है। वस्तु-जगत्से सम्बन्ध रखनेवाले पिछले मस्तिष्कपर इसका प्रभाव पड़ता है। बाह्य जगत्की वस्तुओं द्वारा जो क्रियाएँ होती है, उनका इससे विशेष सम्बन्ध है। संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि चन्द्रमा स्थूल शरीरगत चेतनाके ऊपर प्रभाव डालता है तथा मस्तिष्कमें उत्पन्न होनेवाले परिवर्तनशील भावोंका प्रतिनिधि है।

अनात्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षा-में—यह श्वेत रंग, जहाज, बन्दरगाह, मछली, जल, तरल पदार्थ, नमक, दासी, भोजन, रजत एवं बैंगनी रंगके पदार्थों-पर प्रभाव डालता है।

आत्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षासे—यह संवेदन, आन्तरिक इच्छा, उतावलापन, भावना, विशेषत घरेलू जीवनकी भावना, कल्पना, सतर्कता एवं लाभेच्छापर प्रभाव डालता है।

शारीरिक दृष्टिकोणकी अपेक्षासे—इसका पेट, पाचनशक्ति, आँतें, स्तन, गर्भाशय, योनिस्थान, आँख एवं नारीके अन्य गुप्तांगोंपर प्रभाव पड़ता है।

४—आन्तरिक व्यक्तित्वके प्रथम रूपका प्रतीक शुक्र है, यह सूक्ष्म मानव चेतनाओंकी विधेय क्रियाओंका प्रतिनिधित्व करता है। पूर्ववली शुक्र निःस्वार्थ प्रेमके साथ प्राणिमात्रके प्रति भ्रातृत्व-भावनाका विकास करता है।

अनात्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षा-से—इसका सुन्दर वस्तुएँ, आभूषण, आनन्ददायक चीजें—नाच, गान, वाद्य, सजावटकी चीजें, कलात्मक वस्तुएँ एवं भोगोपभोगकी सामग्री आदिपर प्रभाव पड़ता है।

आत्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षासे—स्नेह, सौन्दर्य-ज्ञान, आराम, आनन्द, विशेष प्रेम, स्वच्छता परख-बुद्धि, कार्य क्षमता आदिपर इसका प्रभाव पड़ता है।

शारीरिक दृष्टिकोणसे—गला, गुरदा, आकृति, वर्ण, केश—जहाँ तक सौन्दर्यसे सम्बन्ध है, साधारणत शरीर संचालित करनेवाले अंग एवं लिंग आदिपर इसका प्रभाव पड़ता है।

५—आन्तरिक व्यक्तित्वके द्वितीय रूपका प्रतिनिधि बुध है। यह प्रधान रूपसे आध्यात्मिक शक्तिका प्रतीक है। इसके द्वारा आन्तरिक प्रेरणा, सहेतुक-निर्णयात्मक-बुद्धि, वस्तु-परीक्षण-शक्ति, समझ और बुद्धिमानी आदिका विश्लेषण किया जाता है। इस प्रतीकमें विशेषता यह रहती है कि यह गम्भीरतापूर्वक किये गये विचारोंका विश्लेषण बड़ी खूबीसे करता है।

अनात्मिक दृष्टिकोणसे—स्कूल, कालेजका शिक्षण, विज्ञान, वैज्ञानिक और साहित्यिक स्थान, प्रकाशन स्थान संपादक, लेखक, प्रकाशक, पोस्टमास्टर, व्यापारी एवं बुद्धिजीवियोंपर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। पीले रंग और पारा धातुपर भी यह अपना प्रभाव डालता है।

आत्मिक दृष्टिकोणसे—यह समझ, स्मरणशक्ति, खण्डन-मण्डन शक्ति, सूक्ष्म कलाओंकी उत्पादक शक्ति एवं तर्कणा आदिका प्रतिनिधि है।

शारीरिक दृष्टिकोणसे—यह मस्तिष्क, स्नायुक्रिया, जिह्वा, वाणी हाथ तथा कलापूर्ण कार्योत्पादक अंगोंपर प्रभाव डालता है।

६—आन्तरिक व्यक्तित्वके तृतीय रूपका प्रतिनिधि सूर्य है। यह पूर्व दैवत्वकी चेतनाका प्रतीक है, इसकी सात किरणें हैं जो कार्यरूपसे भिन्न होती हुई भी इच्छाके रूपमें पूर्ण होकर प्रकट होती हैं। मनुष्यके विकासमें सहायक तीनों प्रकारकी चेतनाओंके सन्तुलित रूपका यह प्रतीक है। यह पूर्ण इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, सदाचार, विश्राम, शान्ति, जीवनकी उन्नति एवं विकासका द्योतक है।

अनात्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षासे—जो व्यक्ति दूसरोंपर अपना प्रभाव रखते हों ऐसे राजा, मंत्री, सेनापति, सरदार, प्रधान, आविष्कारक, पुरातत्त्ववेत्ता आदिपर अपना प्रभाव डालता है।

आत्मिक दृष्टिकोणकी अपेक्षासे—यह प्रभुता, ऐश्वर्य, प्रेम, उदारता, महत्त्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण, विचार और भावनाओं का संतुलन एवं सहृदयताका प्रतीक है।

शारीरिक दृष्टिसे—हृदय, रक्तसंचालन, नेत्र, रक्त-वाहक छोटी नसे, दाँत, कान आदि अंगोंका प्रतिनिधि है।

७—अन्तःकरणका प्रतीक शनि है। यह वाह्य चेतना और आन्तरिक चेतनाको मिलानेमें पुलका काम करता है। प्रत्येक नवजीवनमें आन्तरिक व्यक्तित्वसे जो कुछ प्राप्त होता है और जो मनुष्यके व्यक्तिगत जीवनके अनुभवोंसे मिलता है, उससे मनुष्यको यह वृद्धिगत करता है। यह प्रधान रूपसे 'अहं' भावनाका प्रतीक होता हुआ भी व्यक्तिगत जीवनके विचार, इच्छा और कार्योंके संतुलनका भी प्रतीक है। विभिन्न प्रतीकोंसे मिलनेपर यह नाना तरहसे जीवनके रहस्योंको अभिव्यक्त करता है। उच्च स्थान अर्थात् तुला राशिका शनि विचार और भावोंकी समानताका द्योतक है।

अनात्मिक दृष्टिकोणसे—कृषक, हलवाहक, पत्रवाहक, चरवाहा, कुम्हार, माली, मठाधीश, कृपण, पुलिस अफसर, उपवास करनेवाले साधु-संन्यासी आदि व्यक्ति तथा पहाड़ी स्थान, चट्टानी प्रदेश, बंजर भूमि, गुफा, प्राचीन ध्वंस स्थान, श्मशानघाट, कब्रस्थान एवं चौरस मैदान आदिका प्रतिनिधि है।

अनात्मिक दृष्टिसे—तात्त्विकज्ञान, विचार-स्वातन्त्र्य, नायकत्व, मननशीलता, कार्यपरायणता, आत्मसंयम, धैर्य, दृढ़ता, गम्भीरता, चरित्रशुद्धि, सतर्कता, विचारशीलता एवं कार्यक्षमताका प्रतीक है।

शारीरिक दृष्टिसे—हड्डियाँ, नीचेके दाँत, बड़ी आँतें, एवं मांसपेशियोंपर प्रभाव डालता है।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि सौरजगत्के सात ग्रह मानवजीवनके विभिन्न अवयवोंके प्रतीक हैं। इन सातोंकी क्रिया-फल द्वारा ही जीवनका संचालन होता है। प्रधान सूर्य और चन्द्रमा बौद्धिक और शारीरिक उन्नति, अवनतिके प्रतीक माने गये हैं। पूर्वोक्त जीवनके विभिन्न अवयवोंके प्रतीक

ग्रहोंका क्रम दोनों व्यक्तित्वोंके तृतीय द्वितीय, प्रथम और अन्तःकरणके प्रतीकोंके अनुसार है अर्थात् आन्तरिक व्यक्तित्वके तृतीय रूपका प्रतीक सूर्य बाह्य व्यक्तित्वके तृतीय रूपका प्रतीक, चन्द्रमा, बाह्यव्यक्तित्वके द्वितीय रूपका प्रतीक मंगल, आन्तरिक व्यक्तित्वके द्वितीय रूपका प्रतीक बुध, बाह्य व्यक्तित्वके प्रथम रूपका प्रतीक बृहस्पति, आन्तरिक व्यक्तित्व के प्रथम रूपका प्रतीक शुक्र एवं अन्तःकरणका प्रतीक शनि, इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन सातों ग्रहोंका क्रम सिद्ध होता है। अतः स्पष्ट है कि मानव जीवनके साथ ग्रहोंका अभिन्न सम्बन्ध है।

आचार्य वराहमिहिरके सिद्धान्तों का मनन करनेसे ज्ञात होगा कि शरीर चक्र ही ग्रह कक्षावृत्त है। इस कक्षा-वृत्तके द्वादश भाग मस्तक, मुख, वक्षस्थल, हृदय, उदर, कटि, बस्ति, लिंग, जंघा, घुटना, पिंडली और पैर क्रमशः मेष, वृष मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन संज्ञक है। इन बारह राशियोंमें भ्रमण करनेवाले ग्रहोंमें आत्मा रवि, मन चन्द्रमा, धैर्य मंगल, वाणी बुध, विवेक गुरु, वीर्य शुक्र और संवेदन शनि है। तात्पर्य यह है कि वराहमिहिराचार्यने सप्तग्रह और द्वादश राशियोंकी स्थिति देह-धारी प्राणीके भीतर ही बतलाई है। इस शरीर-स्थित सौरचक्रका भ्रमण आकाशस्थित सौरमण्डलके नियमोंके आधारपर ही होता है। ज्योतिष-शास्त्र व्यक्त सौरजगत्के ग्रहोंकी गति, स्थिति आदिको प्रकट करता है। इसीलिए इस शास्त्र द्वारा निरूपित फलोंका मानव जीवनसे सम्बन्ध है।

प्राचीन भारतीय आचार्योंने प्रयोग शालाओंके अभावमें भी अपने दिव्य योगबल द्वारा आभ्यन्तर सौरजगत्का पूर्ण दर्शन कर आकाश-मण्डलीय सौर-जगतके नियम निर्धारित किये थे, उन्होंने अपने शरीर स्थित सूर्यकी गतिसे ही आकाशीय सूर्यकी गति निश्चित की थी। इसी कारण ज्यो-तिषके फलाफलका विवेचन आज भी विज्ञानसम्मत माना जाता है।

[भारतीय ज्ञानपीठसे मार्चमें प्रकाशित होनेवाले 'भारतीय ज्योतिष'का एक अंश]



प्रलय

श्री रतन 'पहाड़ी'

शत सहस्त्रों वर्ष
पलमें बीत जाते-रीत जाते
और लाखों
नराधिप साम्राज्य सारे
जो कभी गौरव शिखर पर
जीतके उन्नत गगन पर
युग-युगोंकी बाहुओंमें
हीरकोंसे हारकों
मणिमोतियोंकी मालमें
इन्द्रके वरदानमें
उन्नत समझते थे स्वयं को

वे नराधिप और गर्वित
राज्य और साम्राज्य सारे
ढह गये सब बह गये
इस कालकी विकराल सी
विष व्यालिनी-सी धारमें
मझधार में

× ×

आज तककी स्वर्ण-गाथा
आज तककी मधुर भाषा
और शत शत बार
चक्रवर्ती—भरतसे

इस भूमि पर—इस द्वीप
जम्बूद्वीप पर
चक्रवर्ती कई नरोंने
अनेकोंके नाम मेटे
और अपने नाम लेखे

× ×

और फिर साम्राज्यकी
निज विजय की दुन्दुभीसे
शत सहस्त्रों नर शिरोंसे
जीतके वन्दन ध्वजोंसे
जय—जय
शब्द बोले

× ×

किन्तु गाथा शेष अब
सब भाव पानी बन गये
आज नामोन्मेषमें
जय-गान धूमिल बन गये
और गाथा सुन चुके हम
शत सहस्त्रों बार
जिनकी भुजाओंमें
युद्धमें, रणमें, समरमें
सिंहसे जो जूझ जाते
किन्तु अब वे, कथा गाथा

शेप ह
अवशेप ह
आज राणाके सरीखे
भाल उन्नत ह कहाँ ?
आज विक्रम वीरसे
पौरुप प्रतापी हे कहाँ ?
आज भामाशाह-जैसे
वीर दानी हैं कहाँ !
और बोलो,
बुद्ध जैसे—वीर जैसे
धर्मध्वज—पथके प्रवर्तक
जिन्होंने साम्राज्य क्या
मानव हृदय साम्राज्य पर
शत वार क्या शत शत सहस्रों वार
जीवन विजय पाई
प्रेमकी प्रेमल अहिंसा,
साध्य-साधन-साधनाकी
जीवन-जगतकी कामनाकी
आराधनाकी
जियो जीने दो सभीको
दुन्दुभी शत शत वजाई
और जीवन मुक्त वननेकी
सवल सीढी वनाई

किन्तु मानव चल न पाया
किन्तु मानव चढ न पाया
अहिसा पदचिह्न पर
मुक्तिके गिरि शृ ग पर

क्योंकि तृष्णा कामना
अभिशाप वनकर छा गई थी
मनुजमें और कामनामें
हारकी और जीतकी
व्यवधान वनकर आ गई थी

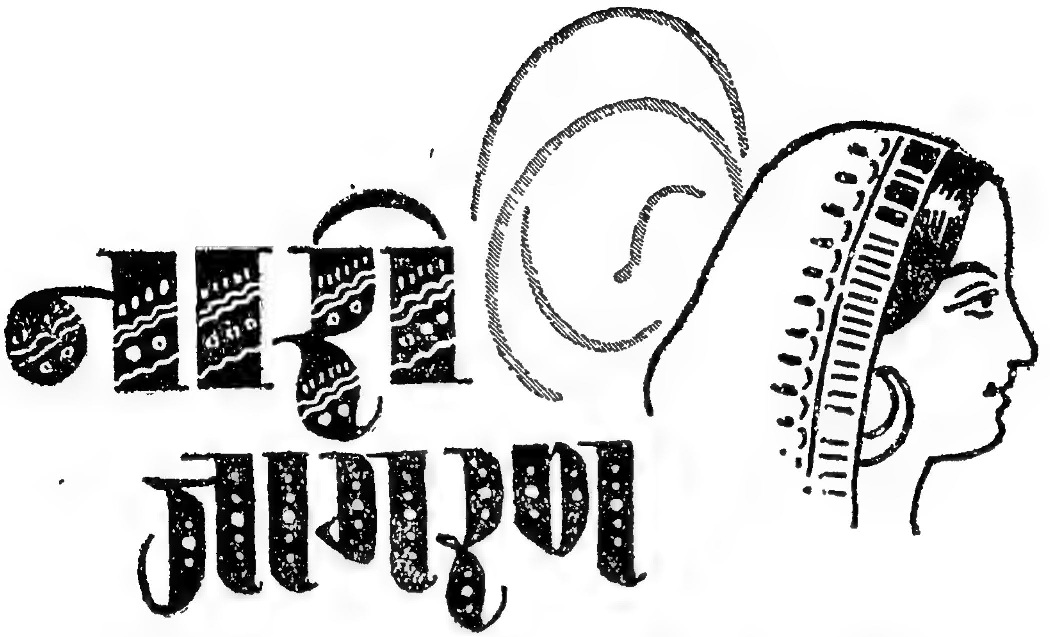
कामनाकी हार कैसी
आजकी मानव प्रकृति की
हार तो
भावना की हार हे
वासनाकी जीत हे
साधनाकी मात हे
लालसाकी जीत हे

और हिमगिरिके
सनाथ उस उन्नत शिखर पर
प्रलयकी उठती तरंगे
जल प्रलय वन
सव विलय वन
एकमय वन
क्षणिकताकी क्षीण गाथा
कह रही ह आज तुमसे

फिर प्रलयके स्वेद कणसे
एक नूतन सृष्टि कर दो
और फिर नूतन नवल सी
प्रेरणा-सी नई भर दो

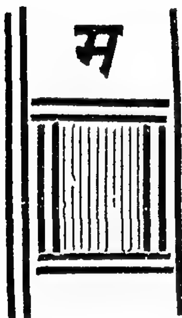
नये युगकी नई आशा
नई भापा भावना दो

जहाँ जीवन पनप पाये
परख पाये,
और अपनी ज्योतिकी
उद्योत की,
आभा स्वय
उस सृष्टिमें नव सृष्टिमें
हम मनुज पाये
जगत पाये
सृष्टि पाये



महिलारत्न मगनबाई जे० पी०

— गोयलीय —



मगन बहन जैनसमाजके ख्यातिप्राप्त शिक्षा-प्रसारक महान्-हितैषी दानवीर सेठ माणिकचन्द्रजीकी लाड़ली और आदर्श पुत्री थी। यह जैनसमाजका सौभाग्य था, जो मगन बहन जवानीकी चौखटपर पाँव रखते ही विधवा हो गईं। यदि वे विधवा न हुई होतीं और गृहस्थीकी गाड़ीको जीवन भर ढोती रहती तो फिर यह महिला-समाजमे जीवन-ज्योति कैसे फैलती? अतः हम उस मनहूस घड़ीका श्रद्धापूर्वक अभिवादन करते है, जिसमें मगन बहनके माथेका सिन्दूर पोंछा गया और हाथकी चूड़ियाँ तोड़ी गईं।

दुःखोंका पहाड़ उन्हीपर गिरता है, जो उसे उठाकर भी सीना तानकर खड़े रहनेकी क्षमता रखते हैं। सूर्य्य अपनी प्रखर रश्मियोंको पहाड़ोंकी उन्हीं चट्टानोंपर बखेरकर गौरव अनुभव करता है, जो उसके तेजको अविचल भावसे सह सके। कायरोंपर तो उसका साया भी पड़ जाता है तो मारे आत्मग्लानिके बादलोमे मुँह छिपा लेता है। दुःखोंसे जूझने को हाथभरका कलेजा चाहिए। दुःख वह बरसाती बादल नही, जो अन्धेकी तरह चाहे जहाँ गिर पड़े। वह अपना निवास फौलादी जिस्ममे बनाता है।

दुःख ही सुखका मूल है। रावण यदि सीता-हरण न करता, तो शीलका माहात्म्य संसारको क्योंकर विदित होता? द्रौपदीका चीर-हरण न हुआ होता तो अबलाओंके आँसुओंकी शक्तिका पता कैसे लगता? अंजना वनोंमे न धकेल दी जाती तो अपहृता नारीको सात समुद्र पारसे भी उद्धार

करके लानेका आदर्श उपस्थित करने-वाला हनुमान् कैसे पैदा होता? झाँसीकी रानी लक्ष्मीका सुहाग न लुटा होता तो स्वतन्त्रता-यज्ञमें प्रथम आहुति देकर भारतके जन-जनकी श्रद्धा-भक्तिका पात्र कौन होता? बापू गोरो द्वारा नहीं पीटे जाते तो पददलित भारतका उद्धार कैसे होता?

मगन बहन भी ऐसी ही रत्न थी, जो दुखके खरादपर चढकर अनमोल बन गई थी। उनका जन्म श्रीमती चतुरबाईकी कूखमे पौष कृष्ण १० वि० स० १९३६ (ई० स० १८७९) में हुआ। जब उन्होने आँखें खोली तो धन-वैभव उनके चारो ओर बिखरा हुआ था। कीर्ति और यश उनके आँगनमें छम-छम खेलते थे। सुख-समृद्धि उन्हें पालना भुलाते थे।

उन दिनो स्त्री-शिक्षाका चलन नहीं था। धोबीके कपडे लिख लेने लायक योग्यता पर्याप्त समझी जाती थी। दुधमुँही बच्चियोकी शादी करना परम पुण्य समझा जाता था। जो माता-पिता अपने बालक-बालिकाओको जितनी अल्प आयुमें विवाह-बन्धनमें बाँध देते थे, वे उतने ही अधिक यश-कीर्तिके भागी होते थे। बहुतसे तो गर्भावस्थामें ही शादी कर देते थे[५]।

सेठ माणिकचन्द्रजी इस प्रथाके प्रबल विरोधी थे। वे पर-उपदेश-कुशल न होकर अपनेमें ही सुधार चाहते थे। इसी भावनासे प्रेरित होकर उन्होने अपनी बडी पुत्री फूलकुमारीका विवाह १५ वर्षकी आयु होनेपर भी नहीं किया। मगन भी १३ की हो गई थी। रूढिवादियोको चैन कहाँ? नकटापन्थी तो किसीके चेहरेपर भी नाक नहीं देखना चाहते। चेमेगोइयाँ होने लगी, खुसर-फुसर चलने लगी। अपनी आँख फोडकर दूसरोका अपशकुन करनेवाले, जब सेठजीको तिलभर भी विचलित न कर सके तो कुटुम्बियो और इष्ट-मित्रो द्वारा नाक कट जानेका हौआ दिखलाया गया। जब हौएका भी कुछ असर न हुआ तो अन्तमें वह शक्ति छोडी गई, जिसके समक्ष सेठजी-जैसे इरादेके मजबूतको भी झुक जाना पडा। और वह शक्ति यही थी कि सयानी लडकियोंके उपयुक्त क्वारे वर कहाँ मिलेंगे? आपकी तरह कौन भला आदमी अपने लडकोको बिन-ब्याह किये बूढे होने देगा? बडी आयुके तो विधुर लडके मिलेंगे, क्वारे तो मिलनेसे रहे।

इस आशकाने सेठजीको विचलित कर दिया, वे फूलकुमारीका १५ वर्ष और मगनका १३ वर्षकी आयुमें विवाह करनेको बाध्य हो गये। अत लडकियोकी शिक्षा साधारण प्राईमरी गुजरातीसे अधिक नहीं हो सकी।

विवाह-शादियोमे उन दिनो व्यय व्यय बहुत अधिक होता था। एक-दो माह पूर्व ही कुटुम्बी और रिश्तेदार बुलाने पडते थे। हजारो आदमियोंको

५—हर्ष है कि १९३० में शारदाबिल पास हो जानेसे यह प्रथा बन्द हो गई है। १९३१ की मर्दुमशुमारीके आँकड़े बतलाते है कि १२५१३४० जैनोंकी सख्यामें १३४२४५ विधवा और ५२९०३ विधुर थे।

भोज देना पड़ता था। बारातमें हजार-पाँच सौसे कम आदमी ले जाना असम्भव था। हाथी-घोड़े, रथ-मझोलीका ताँता लग जाता था। आतिशबाजी, फुलवाड़ी, वेश्या-नृत्य, नौटंकी विवाहके आवश्यक विधि-विधानोंमें सम्मिलित थे। बरातियोंकी तो ५-६ रोज दावतें होती ही थीं, उनके वाहन--घोड़ों-बैलोंको भी भर-पेट घी पिलाया जाता था। दूल्हा-दुल्हनके ऊपर अशर्फी और रुपयोंकी बखेर की जाती थी। और हजारों रुपया कमीन-कारुओंमें बाँटा जाता था[1]। बरातियोंका इतना समूह पहुँचता

१—इस तरहकी कई बारातें मैंने भी अपने बचपनमें देखी हैं। एक बारात में फुलवाड़ियोंमें १०-१० के नोट लगे देखे हैं और यह फुलवाड़ी केवल लुटानेके लिए बनाई जाती थी। एक बारातमें डेढ़ हजार आदमी गये थे। वेश्यानृत्य, नौटंकी, गाजे-बाजेमें दसबीस हज़ार रुपया स्वाहा हो जाना मामूली बात थी। मैंने अपनी आँखोंसे तमाम दिल्ली शहरकी दावत देखी है। इसी तरहकी वैवाहिक फ़िजूलख़र्चियोंका एक रोज़ प्रसंग चल रहा था। हरएक एक-से-एक बढ़कर देखी-सुनी सुना रहा था कि सहारनपुरके चौधरी कुलवन्तराय जैनने जो दिलचस्प वाक़या बयान किया, उसके लिखनेका लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। फ़र्माया—

"हमारे यहाँ एक छबीली नामकी जैन-सम्भ्रान्त महिला काफ़ी प्रसिद्ध हुई है। जब वह विधवा हुई तो, उसके समधीने एक पत्रमें लिखा—"समधीजीके स्वर्गवास-समाचारसे हमें अत्यन्त दुःख हुआ। हमारी समझमें नहीं आता कि अब हम क्या करें? हमने तो उन्हींकी लिहाज़से आपकी लड़कीका रिश्ता लिया था। रिश्ता छोड़ते हैं तो स्वर्गमें उनकी आत्माको कष्ट पहुँचेगा, नहीं छोड़ते हैं तो हमारी बारातका अब ठीक-ठीक स्वागत कौन करेगा? आप स्त्री हैं, कैसे सब प्रबन्ध कर सकेंगी? अस्तु, आप जितने बारातियोंका निराकुलता-पूर्वक स्वागत-सत्कार कर सकें, निःसंकोच लिख दें, हम उतने ही बाराती ले आएँगे। क्योंकि हम आपकी बदनामीको अपनी बदनामी समझते हैं।" छबीलीको इतनी बर्दाश्त कहाँ कि कोई उसकी रईसी और इन्तज़ाममें शकोशुबह ज़ाहिर करे। उसने एक थैलीमें पोस्तके दाने भरकर भिजवा दिये और लिखवा दिया कि—"इससे कम तो बाराती लाएँ नहीं, अधिक आप जितना चाहें ले आयें।" बेटेवालेने सुना तो होठ चबा लिये। गाँव-गाँवमें डौंडी पिटवा दी। ऐरे-ग़ैरे नत्थूख़ैरोंको इतना भर लाया कि टिड्डीदलका धोखा होता था। लेकिन ठहरने और भोजनकी इतनी सुन्दर सुव्यवस्था थी कि चाहनेपर भी बेटेवाला कोई बाल न निकाल सका। आख़िर हारकर उसने नाक काटनेका यह उपाय निकाला कि चढ़तके वक़्त छबीलीके दर्वाज़े पर अशर्फ़ियोंकी बखेर प्रारम्भ कर दी। उन दिनों

था कि मालूम होता था कि कोई आततायी आक्रमण करने आया है।

इन व्यर्थके व्ययोंसे जो समाजका अहित हो रहा था, उससे सेठजी दुखी थे। अत उन्होंने सामूहिक विवाहका सूत्रपात अपने ही यहाँसे प्रारम्भ किया। यानी फूलकुमारीका पाणि-ग्रहण श्री मगनलालसे और मगनबाई-का श्री प्रेमचन्दसे एक ही वक्तमें कर दिया। दोनों बारात एक दिन बुला ली और एक ही दिनमें दोनोंका विवाह सम्पन्न हो गया। और बेटे-वालोंके अत्यधिक दबाव डालनेपर भी दस हजारसे अधिक रुपया दोनों-की शादीमें व्यय नहीं किया।[१]

दुर्भाग्यसे मगनको ससुरालका वातावरण अनुकूल नहीं मिला। पति दुराचारी, शराबी और सास ससुर धार्मिक संस्कारोंसे कोरे। घरेलू धन्धों और झगड़ोंमें ही मगनका सारा समय व्यतीत होता रहता था। उचित शिक्षाका प्रबन्ध तो दरकिनार, अवकाशके क्षणोंमें शास्त्र-स्वाध्याय भी उचित नहीं समझा जाता था। वनकी मैना पिंजरेमें बन्द हो गई थी।

शादीके तीन वर्ष बाद यानी १६ वर्षकी अवस्थामें मगनके एक पुत्री हुई, वह सारे दुख भूलकर अपनी पुत्रीमें ही मगन रहने लगीं, किन्तु १॥ वर्षकी होकर वह भी चलती बनी। मगनको इस मनबहलावके सम्बलके नष्ट हो जानेसे मर्मान्तक

बखेरका रिवाज था, किन्तु बेटीवालेके अनुनय-विनय करनेपर बखेर बन्द कर दी जाती थी। मगर छबीली अनुनय-विनय क्यों करती? उसने मकानकी छतपर अशर्फियोंकी बोरियाँ रखवा लीं और अशर्फियोंको छाजमें भर-भरकर बरातियोंपर बखेरने लगी। जिसका अर्थ यह था कि मेरे दर्वाजेपर बखेर इस तरह करना है तो करो, वर्ना बन्द करो। बेटेवाला क्या खाकर इस तरहकी बखेर करता, चुप रह गया।"

१—विवाह शादियोंमें दिन दूने बढ़ते हुए व्यय और उसके परिणामोंकी ओर बैरिस्टर जमनाप्रसादजी जजका ध्यान भी आकर्षित हुआ था। उन्होंने १९४५ में भारतवर्षीय जैनपरिषद्के वार्षिक अधिवेशनके अवसर पर जबलपुरमें ४-५ कन्याओंका सामूहिक विवाह सम्पन्न कराया था। परिषद्के सभापति दानवीर साहू शान्तिप्रसादजीने वरोंको तिलक लगाकर रुपये नारियल देकर आशीर्वाद दिया था। साहू श्रेयान्सप्रसादजीने फूलमालाएँ पहनाकर उनकी सुधारक वृत्तिका अभिनन्दन किया था। और जनसमूहने जयघोषके साथ अपनी मंगल-कामनाएँ व्यक्त की थीं, इस कल्याणकारी प्रथाका रूढ़िवादियोंने घोर विरोध किया था और सैकड़ोंकी संख्यामें आततायी जज साहब पर टूट पड़े थे। फिर भी जज साहबने शान्त और अहिंसक बनकर जिस दृढ़ताका परिचय दिया, वैसी दृढ़ता विरले ही सुधारकोंमें देखनेको मिलती है। काश, यह प्रथा जज साहबने चालू रखी होती तो हजारों दरिद्र बेटीवालोंका उद्धार होता रहता।

पीड़ा पहुँची, किन्तु सेठजीके धार्मिक उद्बोधनसे काफ़ी सान्त्वना मिली।

दो वर्ष बाद एक और पुत्रीका लाभ हुआ, किन्तु १९ वर्षकी अवस्थामें मगनका सुहाग लुट गया। इस वज्र-पातसे मगनका चित्त विक्षिप्त-सा हो गया। बूढ़ी माँ पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बूढ़े सेठजीकी कमर टूट गई, किन्तु उन्होंने अपने हृदयके उवालको आँखों तक नहीं आने दिया। वे इस वहते हुए ज्वालामुखीको चुपचाप पी गये। वे डकराती हुई मगनको अपने साथ वम्वई लिवा लाये और उचित अवसर देखकर सान्त्वना देते हुए बोले—

"मगन, सोच तो सही यदि संसार-में सुख होता तो तीर्थङ्कर चक्रवर्ती इसका त्याग क्यों करते? यह तो सदैवसे होता आया है। अपनी समाज-में एक वर्षसे लेकर तेरी आयु तककी कई लाख विधवाएँ नारकीय यन्त्रणाएँ सहन कर रही हैं। तुझे जीवन-निर्वाह-की चिन्ता और कुटुम्वियों द्वारा दारुण क्लेश पहुँचाये जानेका तो भय नहीं है। हमारी समाजमे तेरी हजारों वहनें ऐसी निराश्रिता है कि जिन्हें वर्तन माँजने, चक्की पीसने, गोवर थापने, पानी लाने, चर्खा कातने-जैसा कष्टकारक परिश्रम करनेपर भी भर-पेट भोजन नही मिलता। उनके बालक कीड़े-मकोड़ेकी तरह मर जाते हैं। विधवा स्त्रियोंपर उनके देवर, ज्येष्ठ, सास, ससुर, ननद, जिठानी जो अत्या-चार ढाते हैं, काम-वासनाके लोग कैसे जाल फैलाते है, और निर्दोष अवला भी समाजकी आलोचनाकी किस प्रकार लक्ष्य वनी रहती है? उस ओरसे तू कवतक आँख वन्द किये वैठी रहेगी?

"पाखण्डियों-अत्याचारियों द्वारा तिरस्कृता न जाने कितनी वहनें आत्म-हत्या करनेपर मजवूर होती हैं, न जाने कितनी घरसे निष्कासित करके तीर्थोपर भीख माँगनेको मजवूर कर दी जाती हैं, न जाने कितनी विधर्मियों-के और वेश्याओंके चंगुलमे फँसती हैं, और न जाने कितनी भूखी गायकी तरह खूँटेसे वँधी आँसू वहा रही है।

"अपने दुःख-सुखके लिए तो कीट-पतंग, पशु-पक्षी भी प्रयत्न करते है। यदि मानव भी व्यक्तिगत दुःख-सुखमें आसक्त रहा तो फिर पशु और मानव-में अन्तर ही क्या रह जायगा?

"मगन, तू अपने दुःखको सारे विश्वका दुःख वना ले, तू अपने वहते हुए आँसुओको पीकर अपनी सन्तप्त वहनोंके रिसते हुए नासूरोंपर मरहम लगाना सीख। अपने इस वैधव्यको अपने लिए वरदान समझ। और आज जो तेरी वहनें अज्ञान-अन्धकारोमें भटक रही हैं, उन्हें सम्यक् मार्ग दिखा दे। सदाचरणका कवच पहनकर ज्ञान-का दीप हाथमें लेकर समूचे भारतमे घूम-घूमकर जीवन-ज्योति जला दे वेटी!"

और सचमुच मगनने अपने माथे-के सिन्दूरकी तरह आँखोंके आँसू भी पोंछ डाले। वह शोकातुर अवला, सवला वनकर शोकातुर अवलाओके आँसू पोंछनेको प्रस्तुत हो गई।

सेठजी महिलाओंकी दुर्दशाका कारण शिक्षाका अभाव समझते थे। अतः उन्होंने मगनके चारों ओर धार्मिक

वातावरण बखेर दिया और आदर्श शिक्षाका समुचित प्रबन्ध कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि यदि मगनके पास सदाचरण-कवच और ज्ञान-मशाल न होगी तो यह दूसरोका तो उत्थान क्या करेगी, स्वय ठोकर खाकर गिर पडेगी।

मगन जब अपना समस्त समय जिनदर्शन, पूजा, स्वाध्याय और पठन-पाठनमें व्यतीत करने लगी, और थोडे ही दिनामे अमरकोश, लघुकौमुदी, न्यायदीपिका, द्रव्यसग्रह, तत्त्वार्थसूत्रका अध्ययन कर लिया। उस समयके प्रसिद्ध विद्वान् प० लालन जब कभी सेठजीके पास आते, मगनको अध्यात्म-रसका घण्टो अनुभव कराते।

१६५६ में मगनका ललिताबाईसे परिचय हो गया[1]। १६५७ में मगनकी माताका भी देहान्त हो गया। सेठजी ससारमें अकेले रह गये, लेकिन इस दुखको भी वे चुपचाप पी गये। युवा विधवा पुत्रीके सामने उन्हें 'हाय' कहते भी हया आई। अब उन्होंने मगनके माताके कर्तव्यका भार भी अपने ऊपर ले लिया और अपने ध्यानको चारो ओरसे समेटकर मगनको ही अपने जीवनकी साधना बनाकर जीने लगे।

मगनकी माताका जिस वर्ष निधन हुआ, उसी वर्ष आक्लूज-शोलापुरमें विम्वप्रतिष्ठाके अवसरपर बम्बई प्रान्तिक सभाके अधिवेशनमें मगनने पहली बार भाषण दिया।

समाजसेवाकी भावनासे प्रेरित होकर जब श्री सीतलप्रसादजी नौकरी आदिके बन्धनसे मुक्त होकर लखनऊ छोडकर बम्बईमें सेठजीके पास रहने लगे, तब मगनको समाज-सेवाकी बहुत प्रेरणा मिली। उन्होने सीतलप्रसादजी से—पचास्तिकाय, प्रवचनसार, समय सार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थोका मनन किया, जिससे सस्कृत और धर्मकी योग्यता बढी। स्त्री-शिक्षा-प्रचारके लिए श्री सीतलप्रसादजी मगनको निरन्तर प्रेरणा करते रहते थे कि जब तक स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रसार नहीं होगा, उनका उद्धार होना असम्भव है। स्त्री-शिक्षाके लिए गाँव गाँव और कसबे-कसबेमें कन्याशालाएँ खुलवानी होंगी, और कन्याशालाएँ तभी खुल सकती है, जब उनमें शिक्षा देनेके लिए आसानीसे अध्यापिकाएँ मिल सकें। अत अध्यापिकाएँ तैयार करनेके लिए हमें हर प्रान्तमें महिलाश्रम स्थापित करने होंगे, और इसका सूत्रपात अपने यहाँसे प्रारम्भ करना चाहिए।

एक रोज़ प्रात काल मगनके सामने श्री सीतलप्रसादजीने सेठजीको एक घण्टे तक इस सम्बन्धमें समझाया तो सेठ-जी पर इसका प्रभाव पडा। उन्होंने कहा—"आश्रम खोलनेसे पहले यह देखना चाहिए कि कोई विधवा यहाँ आती भी है या नहीं ? मै अपने मकान में ३-४ कोठरियाँ खाली किये देता हूँ। पत्रोमें नोटिस देकर पढनेवालियो-को बुलाओ, उनके खानपान आदिकी सब व्यवस्था हो जायगी।"

१—यह शत्रुंजय तीर्थके मुनीम धर्मचन्द्रजीकी भानजी थी, और बाल-विधवा थी। यह भी उन दिनों संस्कृत और धर्मशास्त्रका अभ्यास कर रही थीं।

मगन बहनको इससे अपार हर्ष हुआ। उन्होंने १६ फ़रवरी १९०६ के जैनगजटमें श्राविकाश्रम खुलनेकी सूचना और महिलाओंको ज्ञानोपार्जनके लिए आश्रममें भर्ती होनेका निमन्त्रण छपवा दिया। यही छोटा-सा रूप शनैः-शनैः इतना विकसित हुआ कि बहनने अपने जीवन-कालमें ही इसके लिए ६११६३३॥=)॥ का ध्रौव्य फण्ड एकत्र कर लिया था, जो कि आज भी बैंकों और शेयर्समें सुरक्षित है, और इस ध्रौव्य फण्डके व्याज तथा सामाजिक सहायतासे आश्रमका कार्य्य सुचारु रूपसे चल रहा है।

आश्रमसे सुशिक्षित महिलाएँ, भारतके २७ भिन्न-भिन्न आश्रमों-कन्यापाठशालाओंको मगन बहनके जीवनकालमें ही संचालन करने लगी थीं। उनकी प्रेरणासे बम्बई—दक्षिण प्रान्तमें १२, राजपूताना-मालवामें ६, मध्यप्रदेश-बरारमें ४, देहली-पंजाब प्रान्तमें ५, संयुक्त प्रान्तमें ७, बंगाल-बिहारमें २, आश्रम और पाठशालाएँ स्थापित हो चुकी थी। स्त्री-सभाओं, आश्रमों, पाठशालाओंका तो एक प्रकारसे सारे भारतमें जाल-सा पुर गया था, जिनकी तालिका देना भी कठिन-सा है!

श्री सीतलप्रसादजी समाजसेवाका व्रत लेकर बम्बई तो पहलेही रहने लगे थे, किन्तु उनका मन तो सर्वस्व त्यागनेंको आकुल हो रहा था। कहीं इस शुभोपयोगमें कोई इष्ट-मित्र बाधक न हो जाय, इस भयसे उन्होंने अपना यह संकल्प किसीपर भी प्रकट नही होने दिया, और चुपचाप १३ दिसम्बर १९०९ को सोलापुरमें ऐलक पन्नालालजीके समक्ष सप्तम प्रतिमाधारी त्यागी बन गये। सूर्य अपने तेजको बादलोंमें कितना ही छिपाये, प्रकट हो ही जाता है। मगन बहन उनके वैराग्यमें भीगे हृदय से परिचित थीं। उनसे उपदेश श्रवण करते समय, अध्ययन करते समय, उनकी समाज-सेवाकी अहर्निश लगन तथा सामायिक प्रतिक्रमणसे वह भले प्रकार समझ गई थी कि इस मुमुक्षुको घरमें बाँधकर कोई न रख सकेगा। उसी आशंकाने श्री सीतलप्रसादजीके त्यागीवेशके वस्त्र तैयार कर देनेकी उन्हें प्रेरणा की। यह मगन बहनका परम सौभाग्य था कि दीक्षा लेते ही ब्रह्मचारीजीने उनके तैयार किये हुए वस्त्र ग्रहण किये।

फ़रवरी १९१० में सम्मेदशिखर पर पंचकल्याणक महोत्सवके अवसर-पर महासभाका भी अधिवेशन हुआ। मेलेमें तीस सहस्र जनता एकत्र हुई। महिलाओंमे श्री पार्वतीदेवी, ललिताबाई, चन्दाबाई, लाजवन्ती, मगनबाई आदि भी गईं। मगनकी मुख्य प्रेरणासे महिलाओंकी ६ सभाएँ हुईं। और तभी अखिल भारतवर्षीय दि० जैन-महिलापरिषद्‌की स्थापना हुई, जिसकी अध्यक्षा पार्वतीदेवी और मन्त्री मगन बहन चुनी गई।

मगनने तीर्थयात्राओ, मेलेप्रतिष्ठाओं और सभाओके उत्सवोंमें जाकर भारतके प्रायः सभी प्रान्तोंका भ्रमण किया और महिलाओंमे जागृति उत्पन्न की।

उनके जीवनकालमें भारतके भिन्न-भिन्न भागोमे महिला परिषद्‌के २०

अधिवेशन अत्यन्त सफलतापूर्वक हुए। उनके इस पुनीत कार्य्यमें ललिताबाई और ककुबाईका पूरा सहयोग मिला। इनमें परस्पर इतना गाढ़ा सम्बन्ध था कि अनजान जनता इन तीनोंको सहोदरा बहन समझती थी।

१९१३ में स्याद्वाद विद्यालयके उत्सवपर जैन महामण्डलका भी अधिवेशन हुआ। उसने मगनकी अनुपस्थितिमें उसकी सेवाओंकी अत्यन्त सराहना करते हुए जैन-महिला-रत्नकी उपाधि दी।

६२ वर्षकी आयुमें १९१४ में सेठजीका स्वर्गवास हो गया, और ७ फरवरी १९३० की रात्रिको अचानक हृदयगति बन्द हो जानेसे जैनसमाजकी यह ज्योति भी विलीन हो गई। उनके शवपर जैनधर्मभूषण ब्र० सीतलप्रसादजीने बारहभावना भाई और जैनधर्मदिवाकर विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतरायजी अर्थीके साथ श्मशान तक गये।

सुख दुख तुमको आज विदाई

सुख दुख तुमको आज विदाई।

जिस दिन जो होना होता है,
उस दिन वह हो कर रहता है,
नियति चक्र मे इस जीवन की बच कोई भी घड़ी न पाई।
सुख दुख तुमको आज विदाई।

उर की धड़कन श्वासों से उठ,
अधरों पर आ रुक जाती है,
कवि ने उसको पा लेने को बहुत दिनों ताकत अजमाई।
सुख दुख तुमको आज विदाई।

पलकों पर अटके उलझे क्षण,
लिख न सके अबतक जीवन भर,
मेरे चरणों की दुर्बलता, मेरी बाहों की अगड़ाई।
सुख दुख तुमको आज विदाई।

श्री शान्ति एम० ए०

…ुनहली धूप

प्रातःकाल,
अरुण बेलामें खोल पूर्ववाली खिड़की
मैं झाँकी बाहर–स्निग्ध प्रभात !
तरल तरु पत्ते, मुग्ध बयार
और वह नवल लजीली धूप !
झूमती सी झुकती सी फैल गई
बड़े-बड़े केलेके पत्ते चमक उठे सोनेके ऐसे
खो बैठे उन्माद समयके चक्रोंमें जो।
नव विकसित कचिया पत्तों पर
बिखर गई जैसे हो पारा—
लुढ़की पड़ती धूप हवाकी लघु तालोंपर।
ओस-बूँद सहमी सी बैठी एक किनारे
पड़ी सूर्यकी छाया उस पर,
खिल-खिल करती चमक उठी हीरेके कन सी
स्वर्णिम, मीठी धूप
धो रही शिशु कदलीकी चिकनी बाहें।
धूप बनी प्रतिबिंब
और कुछ नीचे फिसली—
मातृ-मना धरती दूर-दूर तक
हरी घासके गुँथे हुए गुच्छे ले बैठी बाँह पसारे।
झांक रहे हैं उठा गर्दनें, फूल
लाल औ नीले-पीले।
एक सजीला झाड़ खड़ा है लगकर केलेके पेड़ोंसे
उठे हुए तीखे कांटोंके बीच-बीचमें
सेत फूल बैठे हैं तितली जैसे।
लो वह तैर गई रवि-आभा फूलोंके रज-कण पर।
स्वर्ण तारके तानों-बानोंका आँचल
बिखराए, चंचल, चपल, छबीली—
धीरेसे, खिड़कीके शीशोंके अंदरसे
रपट चुकी है धूप घरोंके एक-एक
आँगनमे।

कुमारी इन्दु जैन



सेवावृत्ति • श्री अमृतलाल जैन दर्शनाचार्य

सत्य दूरे विहरति सम साधुभावेन पुसा
धर्मश्चित्तात् सह करुणया याति देशान्तराणि ।
पाप शापादिव च तनुते नीचवृत्तेन सार्द्धं
सेवावृत्ते परमिह पर पातक नास्ति किञ्चित ॥

—सोमदेव सूरि

नौकरीसे बढकर इस ससारमें कोई पाप नहीं, क्योंकि नौकरी करनेवाला-का ईमान सज्जनताको साथ लेकर कहीं दूर चला जाता हे, धर्म दयाके साथ किन्हीं अन्य देशोंमें जा वसता है और किसी ऋषिके शापसे ही मानो पाप और दुराचार बढने लगते हे ।

नौकरी करनेसे मनुष्यके सत्य, सज्जनता, धर्म और दया चले जाते हैं। इनके स्थानम पाप और दुराचार वढने लगते हैं ।

एतावज्जन्मसाफल्य यदनायत्तवृत्तिता ।
ये पराधीनजन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृता ?—व्यास

स्वतन्त्र जीविकाका होना जन्मकी सफलता है । पराधीन जीविकावाले भी यदि अपनेको जीवित कहे तो मृत कौन कहे जायेंगे ?

सौजन्यमैत्रीकरुणामणीनां व्ययं न चेद्भृत्यजनः करोति ।
फलं महीशादपि नैव तस्य यतोऽर्थमेवार्थनिमित्तमाहुः ।।–सोमदेव सूरि

नौकर यदि अपनी सज्जनता, मित्रता और दयारूपी मणियोंका खर्च न करे तो वह उसके बदलेमें कुछ भी फल नहीं पा सकता है क्योंकि पैसा पैसेको कमानेमें निमित्त होता है।

नौकर अपना धन–सज्जनता आदि न खर्चे तो मालिक भी उसके लिए अपना धन क्यों खर्चेगा?

वरं वनं वरं भैक्ष्य वरं भारोपजीवनम् ।
पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ।।–अज्ञात

वनमें रहना अच्छा, भीख माँगकर खाना अच्छा, बोझा ढोकर जीना अच्छा, पर विवेकहीन धनिककी नौकरी करके धन कमाना अच्छा नहीं।

द्वयं जहाति सेवकः सुख च मानमेव च ।
यदर्थमर्थमीहते तदेव तस्य हीयते ।।–व्यास

सेवक जिस सुखके लिए अपने आराम और सम्मानकी परवाह नहीं करता वही उसे नहीं मिल पाता।

सेवा श्ववृत्तिरुक्ता यैर्न तैः सम्यगुदाहृतम् ।
स्वच्छन्दचारी कुत्र श्वा विक्रीतासुः क्व सेवकः?–अज्ञात

जिन्होंने नौकरीको 'श्ववृत्ति'—कुत्तोंकी जीविका कहा है उन्होंने ठीक नहीं कहा, क्योंकि आजादीमें घूमनेवाला कुत्ता कहाँ और अपने प्राण बेचनेवाला बिलकुल पराधीन नौकर कहाँ?

कुत्ता आजादीसे घूमता है पर नौकर उसके लिए तरसता है।

हसति हसति स्वामिन्युच्चै रुदत्यपि रोदिति
कृतपरिकरः स्वेदोद्गारं प्रधावति धावति ।
गुणसमुदितं दोषापेत प्रणिन्दति निन्दति
धनलवपरिक्रीतो भृत्यः प्रनृत्यति नृत्यति ।।–धर्मकीर्ति

नौकर, मालिकके हँसने पर हँसता है, रोनेपर रोता है, दौड़नेपर कमर कसकर दौड़ता है, किसी निर्दोष गुणीकी निन्दा करनेपर निन्दा करने लगता है और नाचने पर नाचने भी लगता है। यह सब ठीक ही है क्योंकि मालिकने उसे कुछ चाँदीके टुकड़ोंमें खरीद जो लिया है।

शीतातपादिकष्टानि सहते यानि सेवकः ।
धनाय तानि चाल्पानि यदि धर्माय मुच्यते ।।–अज्ञात

सेवक, धनके निमित्तसे जिन सर्दी-गर्मी आदिके कष्टोंको उठाता है, धर्मके खयालसे यदि उन्हें थोड़े रूपमें भी उठाये तो मुक्त हो जाये।

वृथा तनसे रति जोरी

छाँडि दे या बुधि भोरी, वृथा तनसे रति जोरी ।

यह पर है न रहै थिर पोषत, सकल कुमलकी झोरी ।
यासों ममता कर अनादितैं, बँधो कर्मकी डोरी,
सहै दुख जलधि हिलोरी ॥ छाँडि दे० ॥

यह जड है तू चेतन या ही, अपनावत बरजोरी ।
सम्यग्दर्शन ज्ञानचरणनिधि, ये हैं सम्पत् तोरी,
सदा विलसौ शिवगोरी ॥ छाँडि दे० ॥

सुखिया भये सदीव जीव जिन, यासों ममता तोरी ।
'दौल' सीख यह लीजे पीजे, ज्ञान पीयूष कटोरी,
मिटै परचाह कठोरी ॥ छाँडि दे० ॥

—दौलतराम

वरी शिव नारि सुहाई

जगमें चेतन प्राणी, सून निज शक्ति बढाई ।

ज्ञाता द्रष्टा तू अविनाशी, जान प्रकृति समताई ।
परम निरंजन अद्भुत आनँद, देख देख हुलसाई,
शिवतिय सन्मुख धाई ॥ जगमें० ॥

करम भरमसे दूर हुआ है, जाना पट् समुदाई ।
राग द्वेष दो कर्म मिटाये, वीतरागता छाई ।
सयमकी अग्नि जलाई ॥ जगमें० ॥

भेद ज्ञान समाधि अनूपम तिष्ठ तिष्ठ सुखदाई ।
सुखसागर अनुभव रस पाकर, पट्रस प्रीति बुझाई,
वरी शिव नारि सुहाई ॥ जगमें० ॥

—सीतलप्रसाद

तिन जीवनकी बलिहारी

जे सहज होरीके खिलारी, तिन जीवनकी बलिहारी।

शान्तभाव कुंकुम रसचन्दन, भर समता पिचकारी।
उड़त गुंलाल निर्जरा संवर, अम्बर पहरैं भारी,
जे सहज होरीके खिलारी० ॥

दर्शनादि संग लैके, परम सखा सुखकारी।
भीज रहे निज ध्यान रंगमें, सुमति सखी प्रियनारी,
जे सहज होरीके खिलारी० ॥

करके स्नान ज्ञान जलमें पुनि, विमल भये शिवचारी।
'भागचन्द्र' तिन प्रति नित वन्दन, भाव समेत हमारी,
जे सहज होरीके खिलारी० ॥

—भागचन्द्र

हूँ काके संग खेलौंगी होरी ?

और सबै मिलि होरी रचावै, हूँ काके संग खेलौंगी होरी ?

कुमति हरामिनि ज्ञानी पिया पै, लोभ मोहकी डारी टगौरी,
भोरे झूठ मिटाई खवाई, खोंसि लये गुन करि बरजोरी।
और सबै मिलि होरी रचावैं० ॥

आपहि तीनि लोकके साहिब, कौन करै इनकै समजोरी।
अपनी सुधि कबहूँ नहि लेते, दास भये डोलै पर पौरी,
और सबै मिलि होरी रचावैं० ॥

गुरु 'बुधजन' तैं सुमति कहत है, सुनिये अरज दयाल सुमेरी।
हा हा करत हूँ पाँय परत हूँ, चेतन पिय कीजे मो ओरी।
और सबै मिलि होरी रचावैं० ॥

—बुधजन



पुस्तकोंकी दो प्रतियाँ आने पर ही समालोचना होगी

जैन-व्रत-विधान संग्रह

लेखक—चिकित्सक-चूडामणि पंडित बारेलाल जैन राजवैद्य

प्रकाशक—वैद्य बाबूलाल राजेन्द्रकुमार जैन, मु० पठा, पो० टीकमगढ [विन्ध्यप्रदेश]

पृष्ठ-संख्या १६०  मूल्य दो रुपये

प्रस्तुत पुस्तकका विषय नामसे ही स्पष्ट है। इसमें १६४ जैन व्रतोंके संक्षिप्त परिचय और उनके पालनकी सविस्तार विधिके साथ उन व्रतोंके पालन करनेमें प्रसिद्ध हुए पुरुषोंके नाम भी दे दिये गये हैं। श्रावकका लक्षण, अष्टमूलगुण, श्रावकके मुख्य आठ चिह्न, श्रावककी चार भावनाएँ, षट्कर्म, बाईस अभक्ष्य, यम, नियम, व्रतीके लिए आवश्यक कर्त्तव्य, सूतक-प्रमाण, संक्षिप्त प्रायश्चित्त-विधि, कायोत्सर्ग विधि, सामायिक विधि और पंचकल्याणक तिथिचक्र आदि अनेक जानने योग्य बातोंका संग्रह भी प्रस्तुत पुस्तकमें दे दिया गया है जिससे इसकी उपादेयता अधिक बढ गई है। संग्रह अनेक जैन ग्रन्थोंके आधारसे किया गया है। यथास्थान उनके नाम भी प्रायः दे दिये गये हैं।

पुस्तक प्रशंसनीय है। प्रत्येक जैन गृहस्थको पढने योग्य है इसलिए वे इसे अपने संग्रहमें अवश्य रखें। विशेषकर महिलाओंके लिए जो सदैव व्रत आदि करती रहती हैं अत्यन्त उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तकके सम्बन्धमें पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसाद जी वर्णीने लिखा है—

"आपने यह संग्रह महान् परिश्रमसे किया। एक ही पुस्तकसे व्रत-विधान सरसतासे मिल सकता है। आपका परिश्रम प्रशंसनीय है।"

लेखक और प्रकाशक बधाईके पात्र हैं। छपाई सफाई बहुत ही अच्छी है। ऐसी पुस्तकोंके प्रचारकी आवश्यकता है।

पुस्तकके अन्तमें लेखकने अपने औषधालयका सूचीपत्र भी दे दिया है। पुस्तक प्रत्येक दृष्टिसे उपादेय है।

घरेलू प्राकृतिक-चिकित्सा

लेखक—श्री धर्मचन्द्र सरावगी

प्रकाशक—मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी, ३९१ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता

पृष्ठ-संख्या १६ * मूल्य ~)

प्रस्तुत पुस्तकमें कुछ प्राकृतिक चिकित्साओंका उल्लेख है। सिर या दाँत आदिमें दर्द हो, बुखार, आगसे जल जानेपर, क़ब्जियत तथा फोड़ा फुन्सी आदिके समय सर्वसुलभ मिट्टी तथा पानी आदिसे हम किस प्रकार अपने कष्टको दूर कर सकते हैं, इसका अनुभूत प्रयोग इस पुस्तकमें बतलाया गया है। देहाती क्षेत्रोंमें जहाँ पर कि औषधालयों, औषधियों तथा डाक्टर वैद्योंका सर्वथा अभाव-सा है, इस पुस्तककी एक-एक प्रति प्रत्येक घरमें होना जरूरी है। इससे जनताको बहुत लाभ होगा।

—महादेव चतुर्वेदी

सरल बोध सार संग्रह

लेखक—भैरोदान सेठिया

प्रकाशक—अगरचन्द्र भैरोदान सेठिया, पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

पृष्ठसंख्या १५२ * मूल्य ॥~)

प्रस्तुत पुस्तकमे जैनधर्मकी अनेक प्रसिद्ध बातोंका संग्रह किया गया है। उत्तराध्ययनादि ग्रन्थोंका स्वाध्याय करके वयोवृद्ध लेखकने यह पुस्तक लिखी है। लेखक यद्यपि श्वेताम्बर जैन है किन्तु इनकी दृष्टि साम्प्रदायिकतासे मुक्त है जैन धर्मके प्रचारकी भावनासे इस पुस्तकका प्रकाशन हुआ है। पुस्तक अच्छी है। यदि ढंगका सम्पादन और छपाई-सफ़ाई और आकर्षक होती तो और भी अधिक सफलता मिलती।

आदर्श विवाह-विधि

सम्पादक—ऋषभदास राँका और जमनालाल जैन

प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा

पृष्ठसंख्या २८ * मूल्य।~)

अनेक प्राचीन और अवार्चीन सभी सम्प्रदायोंकी विवाह विधि सम्बन्धी पुस्तकोंका मनन करके विद्वान् सम्पादकोंने प्रस्तुत पुस्तकका सम्पादन किया है। सम्पादन बहुत अच्छा है। छपाई सफ़ाई भी अच्छी है। इस पुस्तकके अनुसार १ घंटेमें विवाह सम्पन्न हो सकता है। इससे अधिक संक्षेप सम्भव नही हो सकता। पुस्तक सभीके कामकी है। इसमें सभी सम्प्रदायोंकी अच्छी बातोंको उचित स्थान दिया गया है। विवाहके पहले, विवाहके समय और बादमें करने योग्य बातोंका संकलन प्रस्तुत पुस्तकमें सुन्दरताके साथ किया गया है।

—अमृतलाल जैन, दर्शनाचार्य

सम्पादकीय

—किन्तु यदि वे !

दैनिक 'हिन्दुस्तान' (नई दिल्ली) में श्री विशालाक्षने एक टिप्पणी लिखी है—युवक-युवती विद्रोह करें। यह प्रेरक टिप्पणी इस प्रकार है—

"मेरी पुत्री मैट्रिकमें गत वर्ष उत्तीर्ण हो चुकी है, अब 'विशारद' की तैयारी कर रही है। रूप और शीलमें यदि पचीससे कम है तो ७५ से अधिक भी है। उसके विवाहके लिए वर्ष भरसे समाजमें योग्य लडका खोज रहा हूँ, किन्तु जिसके पास भी जाता हूँ, वह हजारों से कम की बात नहीं कहता। कम-से-कम माँग ६ हजारकी की गई है। सारा जीवन राष्ट्र-सेवामें बिताया वह राष्ट्रसेवा अब मानो पुत्रीके विवाहमें भी परीक्षा करना चाहती है जिस समाजमें उत्पन्न हुआ हूँ वह अपने-आपको श्रेष्ठ मानता है, उसके सभा सम्मेलनोंमें 'कान्यकुब्जा द्विजा श्रेष्ठा' के राग अलापे जाते हैं। क्या श्रेष्ठताका परिचायक लडकोंका यह क्रय-विक्रय ही है? मैं व्याकुल हूँ क्या करूँ?"

उपर्युक्त अंश एक पत्रके हैं जो **मध्यप्रदेशके** एक नगरसे प्राप्त हुआ है। स्पष्ट है कि लेखक महोदय *कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं और उन्होंने जीवन भर राष्ट्र-सेवाके पीछे रहकर धन-संग्रहकी ओर ध्यान नहीं रखा। पूरा पत्र बडा मर्मस्पर्शी है और लेखकके हृदयकी शुद्धता और उनकी आदर्शवादिताका परिचय देता है।*

× × ×

दहेजका प्रश्न केवल कान्यकुब्ज समाजको ही नहीं, अनेक समाजोंको बुरी तरह खा रहा है। कई वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके ही एक महाराष्ट्रीय मित्रसे मेरी बातचीत हुई थी। मैंने उनसे पूछा था "लडकियोंका कालेज अलग होने पर भी आपने अपनी पुत्रीको लडकोंके कालेजमें क्यों भेजा?" उन्होंने जो उत्तर दिया था, वह मुझे उस समय पसन्द नहीं आया था, किन्तु आज वह बुद्धिमत्ता-पूर्ण मालूम होता है। उन्होंने कहा था

"हुडा (दहेज) का प्रश्न इतना विकराल हो गया है कि मेरी-जैसी साधारण स्थितिके व्यक्तिका अपनी पुत्रीके लिए योग्य वर प्राप्त कर लेना असम्भव-सा दीखता है। लडकोंके कालेजमें पढनेसे लडकी किसी-न-किसी लडके पर अपने गुणोंकी छाप डाल ही देगी। इस प्रकार वह स्वयं अपना विवाह कर लेगी 'हुडा' आडे न आ सकेगा।"

एक आदरास्पद सिंधी बुजुर्गने भी मुझे बताया था कि अपने प्रदेशमें उन्होंने दहेजके विरुद्ध ज़ोरदार आन्दोलन चलाया। कुछ हद तक उन्हें सफलता मिली, किन्तु वह सफलता इतनी पर्याप्त नहीं थी कि वे अपनी ग्रैजुएट पुत्रीके लिए अपने समाजमें सुयोग्य वर प्राप्त कर लेते। फलतः उन्हें अनिच्छापूर्वक उसका विवाह दूसरे समाजमें करना पड़ा—वास्तविक बात तो यह है कि पुत्रीने स्वयं अपना साथी खोजकर उन्हें दहेजकी चिन्तासे मुक्त कर दिया। दिन-रातकी आर्थिक चिन्ताकी तुलना में उसने माता-पिताका वह दुःख देखना पसन्द किया, जो उन्हें समाजका बन्धन तोड़नेसे हुआ।

× × ×

दहेजकी यह समस्या देशके लाखों माता-पिताओंके सामने है और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे अगणित बालक-बालिकाओंके नाश का कारण बनी है। कुछ समाज ऐसे भी हैं, जिनमें लड़कोंकी ओरसे दहेज दिया जाता है—लड़कियोंको नीलाम पर चढ़ाया जाता है।

× × ×

एक सज्जन दहेजके विरोधी थे, किन्तु लड़केके विवाहमें भारी दहेज पर अड़ गये। मेरी उनसे बात हुई तो बोले: "मेरे लड़का ही नहीं है, लड़कियाँ भी हैं। लड़कियोंके विवाह कैसे करता? लड़के के विवाहमें जो दहेज लिया है, वही लड़कियोंके विवाहमें देकर छुट्टी पाऊँगा।" इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति दहेजका विरोधी है, उसे समाज चुनौती देता है—अपने पाशसे निकलने नहीं देता।

× × ×

इस सामाजिक अनर्थको मिटाये बिना समाज उन्नति कैसे कर सकता है? धनसे गुणोंका मेल सदा ही नहीं हो सका और जब तक वर-कन्याका क्रय-विक्रय जारी है, तब तक समाजमें श्रेष्ठतम सन्ततिकी उत्पत्ति भी सम्भव नहीं है। जिस क्षणस्थायी स्वार्थके पीछे समाज दीवाना हो गया है, वह कितनी दूर तक उसकी जड़ें काटता है, इसकी ओर उसके कर्णधारोंका ध्यान क्यों नहीं जाता?

कुछ आदर्शवादी युवकोंका ध्यान इस बुराईकी ओर गया है और उन्होंने सक्रिय विद्रोह करनेमें आगा-पीछा नहीं किया। उनके सामने समाजका शिर नत होना चाहिए। किन्तु यह विद्रोह अब तक अत्यन्त सीमित है। इसके शीघ्र-से-शीघ्र सर्वव्यापक हो जानेकी आवश्यकता है। प्रत्येक युवक और युवतीके जीवनमें विवाहका अवसर साधारणतः आता ही है। युवावस्थामें विद्रोहकी मनोवृत्ति भी प्रबल होती ही है। अतएव क्यों न प्रत्येक युवक और युवती इस विद्रोहमें ही अपनी शक्ति लगाये?

विद्रोहके कई रूप हो सकते हैं, जिनमें माता-पिताको सहयोग देना चाहिए। अवश्य ही, सच्चा विद्रोह उन्हें करना होगा, जो अनर्थ-पीड़ित हों, जिनके लिए माता-पितासे दहेज

माँगा जाता हो, जिनके सामने यह समस्या नहीं है, या जो "पानेके अधिकारी" हैं, वे मूक सहयोग देकर भी बहुत-कुछ कर सकते हैं, किन्तु यदि वे "पाने" के विरुद्ध विद्रोह करें, दहेजको पाप मानने लगें तो समस्याका अन्त होने देर न लगे।

विचार मर्मस्पर्शी है और अब इस विषयमें सारा देश सहमत है कि दहेजकी प्रथाका वर्तमान रूप समाजके लिए अत्यन्त कष्टदायक है, पर प्रश्न यह है कि इससे समाजका पीछा कैसे छूटे? उत्तरमें कहा गया है कि "किन्तु यदि वे—युवक-युवती विद्रोह करें, तो समस्याका अन्त होते देर न लगेगी।"

लगभग एक शताब्दीसे समाजकी कुप्रथाओंके विरुद्ध देशमें प्रचार हो रहा है। यह प्रचार व्यर्थ नहीं गया, इससे समाजमें एक वातावरण बना है, पर यह स्पष्ट है उससे कुप्रथाएँ दूर नहीं हुईं।

इसपर हमारे मनमें जो एक 'क्यों' उभरती है, क्या वह किसी ललकारसे कम है? हमारे देशके समाज-सुधार आन्दोलनका काला पहलू यह है कि वह किसी नई समाज-व्यवस्थाके लिए कभी नहीं उठा। वह चल रही समाज-व्यवस्थाके सुधारका मीठा सुझाव ही देता रहा है, तो क्या सब सुधारोंका एक ही सुधार नहीं है कि हम अब एक नई समाजव्यवस्था-का नक्शा बनायें?

सुधारसे अच्छी कोई बात नहीं, पर सुधार सम्भव है या नहीं? इस प्रश्नका सर्वोत्तम उत्तर इस प्रश्नमें है कि सुधार हो रहा है या नहीं? और हम देख रहे हैं कि सुधार हो नहीं रहा है। एक शताब्दीमें हम बहुत मामूली कुरीतियोंको भी नहीं बदल सके, बड़ी बात तो बड़ी बात!

और विश्वका इतिहास साक्षी है कि हम जब सुधारका प्रयत्न करके भी सुधार नहीं कर पाते, तो विस्फोट होता है। तो हम जो जीवनके चौराहेपर खड़े, बस अगति हुए खड़े ही रहते हैं और चाहकर भी किसी पथपर पैर नहीं बढ़ा पाते, तो क्या किसी विस्फोटकी प्रतीक्षा ही कर रहे हैं?

देशके समाजशास्त्रियोंका धर्म है कि वे इस प्रश्नपर गहराईसे विचार करें कि देशको इस विस्फोटसे बचाना हितकर है या इसकी ओर बढ़ाना?

गतिरोधकी सीमा!

सुधारके पथमें हमारे जीवनका गतिरोध किस सीमातक पहुँच गया है, यह विचार भी मर्मवेधी है। हम कुछ चीज़ोंको पसन्द करते हैं, कुछ-को नापसन्द, पसन्दकी निकटता और नापसन्द की दूरी, मनुष्यका स्वभाव है, पर विचित्रता यह है कि हम आज भावनामें जिन चीज़ोंको पसन्द करते हैं, व्यवहारमें उन्हींसे दूर रहना चाहते हैं और उन्हें हमारे निकट लानेका हमारे जीवनमें रमानेका समाज कोई प्रयत्न करता है, तो हम उसका घोर विरोध करते हैं।

उदाहरणके लिए आज हरेक पुराणपन्थी, धर्मका हरेक रक्षक, हरेक वयोवृद्ध सज्जन सावित्रीके पति-

व्रत धर्मकी प्रशंसा करता है, पर अपनी कन्याको वह सावित्री नहीं बनाना चाहता !

सावित्रीके चरित्रका अन्तःस्वरूप क्या है ? यही तो कि उसने जान लिया कि सत्यवान्‌की मृत्यु निकट है, फिर भी उससे ही विवाह किया। इसका अर्थात् हुआ कि सावित्रीने अपने पतिके चुनावमें अपनी सम्मति-कोही समाजकी सम्मतिसे अधिक महत्त्व दिया, पर आज समाजमें कितने पुराणपन्थी हैं, जो पतिके चुनावमें पुत्रीकी सम्मतिको महत्त्व दे ? वे तो इस सम्बन्धमें पुत्रीका कुछ कहना भी बेहयाई मानेंगे। फिर उनकी सावित्री-पूजाका क्या अर्थ ? बस यही कि वे इतने निर्जीव हो गये हैं कि उस सिद्धान्तमें श्रद्धा रखते हैं, उसका व्यवहार नहीं कर सकते !

आगा खाँ !

आगा खाँ, इस गतिरोधकी ही एक दूसरी तस्वीर है। वह खोजोंके धर्मगुरु हैं, पर धर्मके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं। दुनिया भरकी घुड़-दौड़ोंमें वे बाजी लगाया करते हैं और खाओ, पीओ, मौज उड़ाओके प्रतिनिधि नहीं, प्रतीक हैं। संक्षेपमें वे वाजिद-अलीशाहके पाश्चात्य संस्करण हैं। वे सदा पेरिस आदिमें ही रहते हैं और अपने चेलोंसे उन्हें लाखों रुपये साल मिलते हैं। पुराणके इन्द्र-जैसा जीवन बिताकर भी उनके पास करोड़ों रुपये हैं। उनके बेटेने कुछ दिन पहले एक विलायती ऐक्ट्रेससे शादी की थी। अब तलाक हो गया है। उस ऐक्ट्रेस-की पुत्रीका पालन-पोषण करनेके लिए शायद ३५ लाख पौण्डपर अभी-अभी सौदा पटा है।

संक्षेपमें धर्मकी दुनियामें जो जीवन लांछिततम माना जायेगा, वह उनका जीवन है, पर मुसलमानोंमें एक पूरी जाति—खोजा—उनपर जान देती है। आगा खाँको एक बार सोनेसे और एक बार हीरोंसे तोला जा चुका है और अब मार्च १९५२ मे उन्हें प्लेटिनम (विश्वकी सबसे क़ीमती धातु) से तोला जा रहा है।

भविष्यके मनोविज्ञानाचार्य पता नहीं खोजा जातिकी श्रद्धाभावनाका विश्लेषण करनेमें कितना सिर खपा-येंगे, पर यह तो निश्चित है कि २-४ हजार वर्ष बादकी दुनियामें आगा खाँ सामूहिक अन्धश्रद्धाके सर्वो-त्तम नमूने माने जायेंगे !

४०००० आदमी मुँड़े !

अन्धश्रद्धाका एक ऐसा नमूना अभी-अभी हमारे देशमें प्रदर्शित हुआ है कि उसने पुराने शायद सब रिकार्ड तोड़ दिये !

कोई आदमी मरता है, तो परि-वारका वह आदमी जो उसकी क्रिया करता है, अपना सिर उस्तरेसे मुँड़-वाता है, यह भारतके हिन्दुओंमें पुरानी प्रथा है, पर राजस्थानमें इस प्रथाको एक सामूहिक रूप दिया गया है कि जब वहाँ कोई राजा मरे, तो उसकी सारी प्रजा अपना सिर मुँड़ाये। इसके पीछे यही भावना काम करती है कि राजा अपनी सारी प्रजाका पिता है।

अभी-अभी जोधपुरके युवक महा-राजाकी (जिनका अब शासनसे कोई

भारतीय ज्ञानपीठ काशी के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

मुद्रक और प्रकाशक



सम्पादक—

मुनि कान्तिसागर : लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

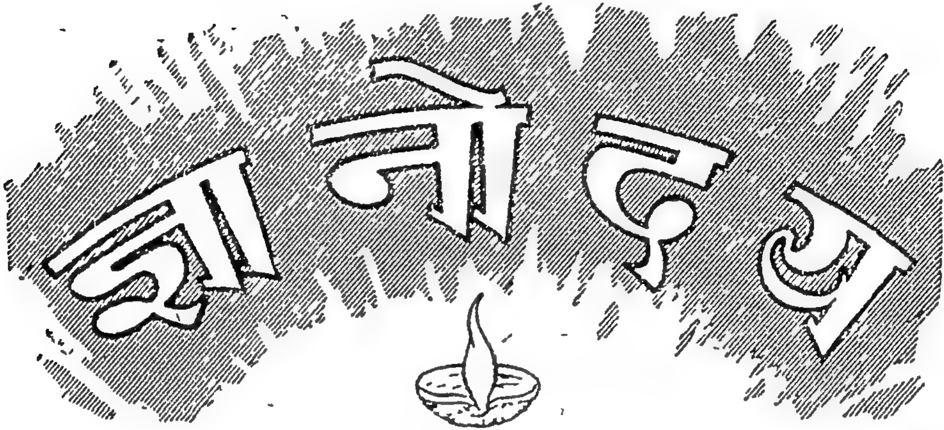
● ● ●

इस अंक में—

वार्षिक ६) • एक प्रति ॥=)

ज्ञानोदय— भारतीय ज्ञानपीठ काशी
पोस्ट बा० नं० ४८, बनारस १

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स



वर्ष ३] • काशी, अप्रैल १९५२ • [अंक १०

एकला चल रे !

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

चल अकेला, चल अकेला, एकला चल रे
यदि चले कोई न संग पुकार तेरी सुन,
तू अकेला ही चला चल रे !

यदि न कोई बात बोले—
ओ अभागे, ओ अभागे !
यदि न कोई ओठ खोले
लौट जाएँ और सब मुँह—
फेर भय आतंक को ले
प्राण अपने खोल, निज मुँह खोलकर तू—
बात मनकी बोल अविरल रे !
एकला चल रे !

यदि सभी जन लौट जाएँ—
ओ अभागे, ओ अभागे,
यदि सभी जन मुँह फिराएँ !
गहन पथ चलते समय वे
दृष्टि यदि तुझसे चुराएँ—
रक्त-रञ्जित पाँव से पथ-कण्टकों को
तू अकेला ही कुचल-दल रे !
एकला चल रे !

यदि न कोई ले उजाला,
ओ अभागे, ओ अभागे
यदि न कोई दे उजाला—
मेंह, आँधी की अँधेरी रात में
कर वन्द ताला !
वज्र ज्वाला में जला निज वक्ष-पंजर
तू अकेला ही जला जल रे !
चल अकेला, चल अकेला, एकला चल रे !

रूपान्तर—डाक्टर सुधीन्द्र एम० ए०



...ना है,

तीर्थंकर

महावीर

श्री देवेन्द्रकुमार एम० ए०

महावीर, महावीरसे, पर आत्मासे, शरीरसे नहीं। शरीर उनका सब तीर्थङ्करोंमें छोटा था, आयु भी कम थी, पर आत्मा बड़ी थी, इतनी बडी कि उसके बड़प्पनमें उन्होंने राजपाट ठुकरा दिया, आत्मसाधनाकी उमंगमे लोकसुखोंसे मुँह मोड़कर—वनकी राह पकड़ी, उन्होने लोकसुखोंसे मुँह मोड़ा था, पर लोकसेवासे नही, सेवाका अधिकार पानेके लिए भी उन्होंने लोकसे याचना नही की। वे भिक्षुक नहीं, महाभिक्षुक थे, पर जिस चीजको ठुकराकर वे भिक्षुक बने उसे पुनः किस मुँहसे माँगते। वे राज्यतंत्रमें जन्मे थे और उसमें यह अधिकार जन्मसे ही प्राप्त था। प्रजातंत्रमें यही अधिकार 'जनमत' (वोट) के रूपमें जन-जनसे संग्रह किया जाता है, पर महावीरकी आस्था न तो प्रजातंत्र में थी और न राज्यतंत्रमें, वे आत्मतंत्रके उपासक थे, और इसलिए आत्मसाधनाको उन्होंने लोकसेवाकी कसौटी बनाया, उसपर अपने आपको कसा, तपकी आगमें 'स्व' को इतना गलाया कि उनका हृदय विश्वकल्याणकी व्यथासे भर गया, अब उन्हें वह विश्वदृष्टि मिली जो 'स्व'से विगत थी। क्योंकि उसका अहं साधनामें गल चुका था, दृष्टिकी इस समतामे उन्हें लगा कि जिसे अभी तक उन्होंने अपना

परायापन था, ॰ पराया समझ बैठे थे अपनापन है, व्यक्ति जितना अहको काटता है उतना ही 'पर'के बंधनोसे छूटता है और जितना ही बंधनमुक्त होता है उतनी ही उसे अपनी व्यापक अनुभूति होने लगती है, तब उसे 'स्व' में भी 'पर', और 'पर' में भी 'स्व' दिखाई पड़ने लगता है। जीवनकी इसी व्यापक अनुभूतिमे महावीरके महावीर बननेका रहस्य-बीज निहित है।

साधनापथपर वह असग चले थे और अब कर्मपथपर भी उन्हें असग ही चलना था। वह उनके जीवनका पूर्वार्ध था क्योकि वे महावीर बन चुके थे। यह उनके जीवनका उत्तरार्ध था क्योकि तीर्थङ्कर बननेकी उनकी साध अभी अधूरी थी। और वे पुन उस ओर मुड़े कि जिस ओरसे मुडकर आए थे, सहज जिज्ञासा लेकर जब वे ससार छोडकर आये थे तो ससार उनके साथ था, और अब सहज समाधान लेकर वे ससारमें प्रवेश करने लगे तो ससार उनसे छूट चुका था। उनके जानेपर जन-परिजन खिन्न थे, और अब उनके आनेपर प्रसन्न थे, स्वय महावीरके मनमें कोई द्विधा नही थी। वे लगातार ढाई युगो तक भारतीय जनपदोमें घूमते रहे। ये युग भारतीय इतिहासके सक्रान्ति-युग थे। बडे जनपद छोटे जनपदोको निगलकर अपना कलेवर बढा रहे थे। राज्योमें सार्वभौम सत्ताकी स्थापनाके लिए छीनाझपटी चल रही थी, समाज अनेक आर्थिक निकायोमें बँट गया था, आर्य अनार्यकी पुरानी भावना जन्मगत ऊँच-नीचके रूपमें मूर्त हो रही थी, आध्यात्मिक जीवनमें कई विचारधाराएँ प्रवाहित थी, महावीरने नानात्वके उस प्रवाहमें तीर्थ बाधनेका प्रयत्न किया, ऐसा तीर्थ कि अपनी ऊँचाईके साथ जग-जीवनके तलको छूता था। वर्णभेद वहा नही था, और सबको आत्मस्वातन्त्र्यके साथ आत्मविकासका पूरा अवसर प्राप्त था। उनके तीर्थ-निर्माणकी सामग्री पुरानी थी, पर बाँधनेकी कला नई थी, जो कुछ उन्हें पुरखोसे मिला और जो कुछ जीवनके चारो ओर पाया, उस सबका उन्होंने समन्वय किया, वे पार्श्व परम्परामें उत्पन्न हुए थे, पर उसकी लीकपर आँखें बन्द करके नही चले, चलते तो तीर्थ कैसे बाँधते, वह तो प्रवाहमें बह जाना होता।

महावीर आत्मसाधक थे, पर लोक-समस्याओकी उपेक्षा उन्होंने नही की, उनके जीवन और आदर्शोपर सामयिक परिस्थितिकी पूरी छाप है, उन्होंने जन्ममूलक वर्णव्यवस्थाको नही माना, वे योग्यतामूलक समाज-व्यवस्थामें विश्वास करते थे, क्योकि व्यक्तिकी ऊँचाईका आधार उसकी योग्यता है, न कि जन्म, भगवान बुद्ध उनके सहकर्मी थे, और यह सच है कि इस युगमें जो क्रांति हुई—उसका बीज उपनिषदोकी विचार-लहरसे जम चुका था, यज्ञोकी हिंसाका निषेध ब्रह्मोपासना आदिके लिए महावीर-को ही पूरा श्रेय नही भी दिया जाय, तो भी उनका महत्त्व कम नही होता, उनका महत्व इसमें है कि उन्होंने

लोक-जीवनके असाधारण प्रवाहमें साधारण तत्त्वोंसे नये तीर्थकी रचना की। यह तीर्थ—सर्वोदय तीर्थ था जिसे उन्होंने किसी नदीके किनारे या गिरिशिखर पर खड़ा नहीं किया, वह तो स्वयं, व्यक्तिमें है, उन्होंने अपने जीवनसे यही सिद्ध किया है—व्यक्ति ही तीर्थ है और तीर्थकर भी। उसके निर्माणकी उपयुक्त भूमिका है योग्यता-मूलक समाजव्यवथा। इसीलिए उन्हें वर्णमूलक समाजका विरोध करना पड़ा, अपने जीवनमें अपरिग्रहको उन्होंने जिस कड़ाईसे अपनाया उससे उस युगकी संचयकी उग्र लालसाकी झलक मिलती है, क्योंकि कोई महापुरुष उन्ही बातोंको अपने जीवनमें ढालता है जिन्हें समकालीन समाज हेय समझने लगता है। उपनिषदोंकी ब्रह्मजिज्ञासा अहिसामूलक थी, और बाह्य उपासनाकी अपेक्षा आत्मचितनकी ओर उनका रुझान था, पर अभी मनुष्यके नियमनका सूत्र ब्रह्मके अधीन था, उन्होंने मनुष्यके अधीन कर दिया, इस असीम अधिकारके हाथ लगनेसे मनुष्यमें अहं बढ़ना स्वाभाविक है, पर वह जब अहवादी बनने लगता है तो वह कर्तव्य से गिरने लगता है, स्वाधीन न रहकर पराधीन हो जाता है?

महावीरकी विचारधारा व्यक्तिमूलक थी, भारतीय संस्कृतिमे भी विचारोंकी एकताकी अपेक्षा उनके समन्वयका अधिक महत्त्व रहा है, विचारोंके समन्वयको ही स्याद्वाद कहते हैं। सत्यको समग्ररूपसे जाननेके लिए जब हम उसे कई दृष्टियोंसे देखते हैं तो ज्ञानमें नम्रता आती है और मनमें दूसरेके विचारोके प्रति आस्था जगती है, संक्षेपमें उनके कथनके अनुसार समाज-रचनाका आधारभूत तत्त्व योग्यता है, जन्म नहीं, व्यक्तिका आदर्श अकिंचनता है, संचय नही, और लोकसेवाकी कसौटी विचारोंका समन्वय है, एकता नही।

भारतीय संस्कृति उस महानदीके समान है जिसमें नाना विचार-प्रवाह मिलते है और जिससे निकलते भी है, पर जो लोकमें हमेशा बहती रहती है, उसके तटपर कई तीर्थ बने और मिटे, तीर्थङ्कर महावीरने भी लगभग ढाई हजार वर्ष पहले एक सर्वोदय तीर्थकी रचना की थी, भले ही वह आज समयके प्रवाहमें बिखरी प्रतीत हो, पर उसके निर्माणकी कला अमिट है, और कोई चाहे तो नये तीर्थके निर्माणमें उसका उपयोग कर सकता है। उनकी यह कला थी कि लोककी उपासनाके लिए—लोककी वासना छोड़ दो, साधनाद्वारा अपने आपको इतना तरल बनाओ कि लोकमें घुलमिल सको, युगकी आस्तिकताके अनुसार समन्वयदृष्टिमें ऐसे आदर्श चुनो और उन्हें जीवनमें ढालो कि तुम्हारा जीवन भावी समाजकी जीवनपद्धतिका आधार बन जाय।

●

● ● ●

सुख और शांति का मार्ग

श्री जयभगवान जैन एडवोकेट

सुखी और सतुष्ट जीवन बितानेके लिए जरूरी है कि हम अपने व्यवहारोमे निरहकार और निर्मोही हो, परन्तु अपने आदर्श और लक्ष्यमें स्थिरचित्त हों, हम अपने व्यवहारमें सीधे और सरल हो, परन्तु अपनी विचारणामें गहन और गम्भीर हो। हमारा जीवन कमलके समान निर्मल हो, जो पकमें डूबे हुए भी निरन्तर अपने मस्तिष्कको उससे ऊपर रखता है और सदा आकाशमें भामण्डलकी ओर निहारता रहता है।

ऐसे सुन्दर जीवनको पानेके लिए हमे निम्न नियमोके आधारपर अपने को एक निश्चित साँचेमें ढालना चाहिए।

१ सच्ची धारणा—

"ब्रह्माऽस्मि" मै शुद्ध निरञ्जन ब्रह्म स्वरूप हूँ, पच भूतोंसे सदा भिन्न और पृथक् हूँ। जन्मना, जीर्ण होना और मरना मेरा धर्म नही। यह सब शरीरके धर्म है। मै तो सनातन और

अविनाशी हूँ। सदा जीवित रहा हूँ, जीवित हूँ और सदा जीवित रहूँगा। जीवनमें ऐसी धारणाको सुबह-शाम सन्ध्या सामायिकके समय ध्यान अथवा निजी सुझाव द्वारा सदा दृढ़ करते रहना चाहिए।

२ सच्चा ज्ञान—

ज्ञानी जनके लिए वह ज्ञान ही उपादेय है जो जीवनकी महत्ता पवित्रताको बढ़ाता है, उसे इच्छाओंसे मुक्त करता है, दुःख और शोकसे छुड़ाता है, उसे आशा उत्साह देता है और उसे शान्ति सुन्दरतासे भर देता है। यह ज्ञान आत्मज्ञान द्वारा ही प्राप्त होता है कि "मैं स्वय सत्य, ज्योति और मार्ग हूँ। मैं स्वयं महान् सत्य, महान् प्रयोजन, महान् कल्याण हूँ। वह ब्रह्म मैं ही हूँ, जो विविध रूप आधारोंका कर्ता है, जो विधिका विधाता है; वह ब्रह्म मैं ही हूँ जो बाह्य वस्तुओंको उनके अर्थ और मूल्य देता है, उन्हें भला और बुरा, शुभ और अशुभ, हेय और उपादेय निर्धारण करता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ जो देहोंको लावण्य और सुन्दरतासे भरता है, उन्हें मनोहर और ललित बनाता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ, जो समस्त विद्याओं, समस्त सच्चाईयो, समस्त कल्पनाओं और आदर्शोंका स्रोत है।" यह है आत्म-विद्या, ब्रह्म-विद्या जो प्रत्येक मनुष्यको स्वाध्याय, आत्मचिंतन, गवेषणा और अनुसन्धान द्वारा हासिल करते रहना चाहिए। परन्तु कितना खेद है कि इस ब्रह्मज्ञानकी ओर हम सदा ही उपेक्षा करते रहते हैं। हमने जहाँ भौतिक विज्ञानकी अनेकों संस्थाएँ खोली हुई हैं, वहाँ ब्रह्म-विज्ञानकी संस्थाएँ नहीके बराबर हैं।

सच तो यह है कि जो इस आत्म राम और इसके अन्तिम लक्ष्य को जाने बिना इस भवसे विदा होता है—वह चाहे कितना ही बड़ा वैज्ञानिक विद्वान् और राजनीतिज्ञ क्यों न हो, ज्ञानियोंके लिए वह संसार-वनका एक निरा घुमक्कड़ है, बिना नाविकके नाव है, वह केवल मौतका ग्रास है।

३. सच्चा चलन—

[क] "मानसिक समता"—जीवनमें खेद खिन्नता अधिकतर मनके ही संकल्प-विकल्पोंसे पैदा होती है—इस लिए मनको ऐसा दृढ़ और स्थिर बनाया जावे कि वह जीवनकी समस्त अवस्थाओंमें; दुख और सुखमें; लाभ और हानिमे, योग और वियोगमें, युद्ध और शान्तिमें, देश और विदेशमें समबुद्धि और शान्त रहे।

[ख] 'आत्म-शुद्धि'—आत्म-शुद्धि बाहरका मल धोनेसे हासिल नही होती, यह भीतरी विकारोका निर्मूल करनेसे हासिल होती है। इसके लिए:—

(१) मानसिक वृत्तियों और कषायोको संयम द्वारा वश किया जावे।

(२) वाणीको ऐसा काबू किया जावे कि वह जब बोले, हित और मित वचन बोले, दूसरोंके लिए कभी भी हानिकारक न बोले।

(३) इन्द्रियोंको ऐसा वशीभूत किया जावे कि वे उच्छृङ्खल होकर भोग-विलासोंमें रमण न करें।

(४) मास मदिरा आदि तामसिक और नशीली चीजोंके सेवनसे सदा अपनेको दूर रखा जावे।

[ग] "न्यायपूर्ण व्यवहार"—मानव जीवनमें सामाजिक कलह क्लेशका अधिकतर कारण अन्यायपूर्ण व्यवहार है, सामाजिक शान्तिके लिए—

(१) अपने हकसे अधिक न लेकर न्याय-पूर्ण आजीविकाका व्यवहार करना चाहिए।

(२) हर प्रकारकी चोरीसे बचना चाहिए।

(३) हर प्रकारके जूएसे परहेज करना चाहिए।

[घ] "कल्याणकारी व्यवहार"—'जियो और जीने दो' का व्यवहार ही जीवनके लिए कल्याणकारी मार्ग है, हमें सदा अपने जीवनका निर्वाह ऐसा करना चाहिये कि वह दूसरोंके जीवित रहने, उगने और बढ़नेमें कदापि बाधक नहीं बल्कि दूसरोंके लिए सहायक सिद्ध हो। इस प्रकार जीवन निर्वाहके लिए हमें सदा सब प्राणियोंके लिए मैत्री, गुणी जनोंके लिए विनय, पीडित जनके लिए अनुकम्पा, और विप्रीत जीवोंके लिए माध्यस्थताका व्यवहार करना चाहिए।

[च] 'अपरिग्रहचर्या'—व्यावहारिक आवश्यकताओंसे अधिक धन धान्य आदि वस्तुओंका संचय करना व्यक्ति और समाजके लिए बहुत हानिकारक है। हमें निरन्तर अपरिग्रह व्रत द्वारा आवश्यकताओं और संग्रहकी वस्तुओंको एक निश्चित मर्यादामें रखना चाहिये और इस मर्यादाको सदा कमीकी ओर ले जानेका प्रयत्न करते रहना चाहिए।

[छ] "दान चर्या"—यह जानते हुए कि लोकके सभी जन अपने समान हैं और सबके कल्याणमें ही अपना कल्याण है, मनुष्यको चाहिये कि वह असहायको अपने समान स्वस्थ, सपन्न बुद्धिकुशल और निर्भय बननेमें यथा शक्ति सदा अपने तन-मन-धनका दान करता रहे।

यह हैं वे नियम जिनपर चलकर मनुष्य अपने व्यक्तित्व, सामाजिक और राष्ट्रिक जीवनको सुखी बना सकता है। जैसे व्यक्तियोंके सम्मेलनसे समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रिय सत्ताका निर्माण होता है वैसे ही व्यक्तियोंके सुधारसे ही समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रिय सत्ताका सुधार हो सकता है इसलिए समष्टिगत सुधारके लिए व्यक्तिगत सुधार होना सबसे जरूरी है।



आज मेरा जन्म-दिन है !

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, सम्पादक—'आजकल'

वर्षमें एक बार ही तो आता है वह दिन। जी हाँ, एक बार। आज कोई काम न किया जाये, छुट्टी रहे आज—यह भी मुझे एकदम नापसन्द है। सूर्य उसी प्रकार उदय हो रहा है, जैसे कल ठीक इसी समय उसकी किरणें जगमगा उठी थीं। ओ युग-युगके उदय होते सूर्य, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। सोचता हूँ, यह अभिवादन तो वैसा ही है जैसा कि बाबाजीको पसन्द है। वाह, बाबाजी ! धन्य है आप और धन्य है आपकी माया। ऐसा ही होना चाहिये। आज एक नया अधिकारी आता है। बाबाजी उससे मिलने जाते है और उसका अभिनन्दन करते हुए कह उठते हैं—मैं तो उदय होते सूर्यको प्रणाम कर रहा हूँ। अब यदि वह अधिकारी इस अभिवादनसे खुश हो उठता है तो इसमे बाबाजीका क्या दोष ? न मैं कोई अधिकारी हूँ, न कही मेरी नई नियुक्ति हुई है, फिर भला बाबाजी मुझसे भेंट करने क्यों आने लगे और बाबाजीको यह तो किसीने बताया ही नही होगा कि आज मेरा जन्म-दिन है।

बाबाजीकी प्रतीक्षा व्यर्थ है। उन्हें तो आजकल हजार काम है। वे आज इधर नहीं आयेंगे। जन्मदिनके अनुरूप कैसे छुट्टी मनाऊँ, यही सोच रहा हूँ। किससे कहूँ कि मेरे माथे पर केसरका तिलक लगा दो ? सोंचता हूँ, क्यो न अपने हाथसे ही तिलक लगा लूँ ? एक वर्ष बीत गया। नया वर्ष आ गया। मजा तो जब था कि पहले वर्षके जानेसे थोड़ा पूर्व ही नया वर्ष आ जाता; दोनो एक दूसरेको देख तो लेते। यह सम्भव नही, पर बाबाजीको तो पहले वर्षके बीत जानेके बाद नये वर्षके आनेकी बात बहुत पसन्द नही आती। उदय होते और अस्त होते दोनों मर्द एक साथ खड़े हों, इसीमें तो बाबाजीके जीवनकी सार्थकता है। अस्त होते सूर्यकी झाँकीके सम्मुख उदय होते सूर्यका दृश्य देखकर बाबाजीकी आत्मा पुलकित हो उठती है। अपने जन्मदिनकी उन्हें तनिक भी याद नही रहती, पर यदि उदय होते सूर्यका जन्मदिन हो तो वे दौड़े दौड़े जाते है। बस साहब वे प्रशंसाके पुल बाँध देते हैं। मुझमे तो प्रशंसाके योग्य कोई भी गुण नही। व्यर्थ है मेरा जन्मदिन, व्यर्थ है इसकी याद, व्यर्थ है केसरका तिलक !

कौन मुझे माला पहनाने आयेगा ? फूल तो बहुत खिलते हैं। मालाका कही अभाव नही, पर क्या सचमुच

माला बहुत आवश्यक है ? क्यों न अपने हाथोंसे माला गलेमें डाल लूं ! इसके लिए बाबाजी तो आनेसे रहे। अरे कोई है जो बाबाजी तक मेरा सन्देश ले जाये ! घरमें आज कोई नहीं। एकान्त भी तो सदैव नहीं मिलता। पड़ौसमें किसीके यहांसे प्रसव-पीड़ाका समाचार आया था। मेरी पत्नी वहां चली गई। पुनी स्कूल-को भाग गई। बस रह गया मैं अकेला। कोई नहीं जानता कि आज मेरा जन्मदिन है। ढोल बजाना तो मुझे भी पसन्द नहीं, पर यह भी कैसा जन्मदिन है कि किसीको कानोंकान खबर तक न हो। प्रसव-पीड़ामें मेरे पड़ौसकी वह नारी आज मृत्युके अचलमें क्यों न जा सोये, बाबाजीको इसकी क्या चिन्ता हो सकती है। उन्होंने तो आजकल बड़े-बड़े काम अपने ऊपर ले रखे हैं।

जीमें आता है कि घरमें ताला लगाकर चाबी पड़ौसमें अपनी पत्नीको देता जाऊँ, पर प्रश्न तो यह है कि जाऊँ कहां ? मनके सभी तार जैसे किसी छन्दके स्पर्श मात्रसे पुलकित हो उठे हों। जाने किस किसका रूप खिल उठता है। छी छी ! चतुर्दिक् कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य तो नज़र नहीं आता। मुर्दा और पाउडर से सने चेहरे ही तो सामने आते हैं। ऐसेमें कैसा सौन्दर्य-बोध ! बाबाजीको शायद उसकी कुछ चिन्ता नहीं। आज इस होटलमें पार्टी दी जा रही है। कल उस होटल में, चाय हो चाहे डिनर, पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको भी वे जरूर बुलाते हैं। अधिक नहीं तो एक-आध सुन्दरी ही सही। सुन्दरीकी परिभाषा उनसे मत पूछिये। इस पचड़ेमें वे नहीं पड़ते। हाँ, तो प्रश्न तो यह है कि मैं कहाँ जाऊँ, जहाँ कोई रूपवती विद्यापतिके शब्दोंमें गुनगुना उठे—'जनम अवधि हम रूप निहारनु नयन न तिरपित भेल ?' सोचता हूँ आजकी रूपवती भी तो इस भाषा द्वारा अपने भाव व्यक्त कर सकती है। भाषामें लाख भेद हों, भाव तो कुछ यही रहता है—'लाख लाख जुग हिये हिया राखनु, हिया तऊ जुड़ल न भेल !' चतुर्दिक् भीड़ है, शोर है। कहां मिलेगी सुननेको यह एकाकी आवाज़ ? सौन्दर्यका दायित्व भी तो कुछ होगा। वस्तुतः सौन्दर्य शृंगारके नीचे दब गया है। सच पूछो तो इस सौन्दर्यसे मन चिढ़ उठता है। यह कोरी नकल, यह निरी देखा-देखी। संस्कृतिके स्पर्श से जो सौन्दर्य प्राणवान नहीं, वह आज 'लिपस्टिक' के पीछे भागता है, केशोंमें बेकारके घूंघर डलवाता है और तभी वह माथे पर केशोंका छज्जा-सा बनाकर जानेका क्या नया विज्ञापन देता है। पर यह कैसी चर्चा चल पड़ी। आज मेरा जन्मदिन है। प्रश्न तो यह है कि इस बार जन्म-दिन कैसे मनाया जाये ?

जी में आता है कि घोड़ेकी पीठ पर बैठकर उसे सरपट दौड़ाऊँ और यह चिन्ता एकदम छोड़ दूँ कि मैं गिर भी सकता हूँ और इस प्रकार हड्डियां चकनाचूर हो जायेंगी। शायद कोई कहे कि यह तो पागलपन है, निरी मूर्खता, पर बार बार यह विचार मनका द्वार खटखटाता है। बाबा

जीको तो मेरी यह बात बिल्कुल पसन्द नही आयेगी। यह देखकर कि मुझमें अभी तक बचपनकी भावना जीवित है, वे नाक-भौ चढ़ायेंगे पर इसमें उनका दोष नही। उन्होंने इसीमें लाभ देख लिया है कि आदमी गिन-गिनकर क़दम उठाये, नाप-तोल कर बात करे, हालाँकि, अपने इस आदर्श पर वे स्वयं अभी तक पूरी तरह नही चल पाते। बोलते है तो बोलते चले जाते है और यह भी भूल जाते है कि कोई उनकी बातोंमें रस-ले रहा है या नहीं।

मै भविष्यमें दूर तक देखना चाहता हूँ। अभी इन्सानको इन्सान बनना होगा। जाने किस दिन इन्सान का जन्म होगा, पर बावा जीका दूसरा मत है। वे तो जिस नये अधिकारीको प्रणाम करने जाते हैं, उसीके चेहरेपर इन्सानको ढूँढ़नेका यत्न करते हैं। वाह, बाबा जी, यह भी अच्छी दार्शनिक विचारधारा है। क्यों बाबा जी, क्या आप कभी अपना जन्मदिन नहीं मनाते ?

अस्त्र-निर्माण करनेवाले कारखाने बराबर अस्त्र बना रहे हैं। अणुबम जैसी संहारक वस्तुके आविष्कारके पश्चात् भी उससे निम्न कोटि के अस्त्र तैयार हो रहे हैं। यह क्यों ? यह प्रश्न तो मैं बाबा जीसे पूछना चाहता हूँ। सड़क पर कीड़ोंकी तरह रींगते हुए मनुष्य भला मेरे इस प्रश्न का उत्तर कैसे दे सकेंगे ?

रेडियो पर रवीन्द्रनाथ ठाकुरका बंगला गान हो रहा है—

फिरे चल माटिर टाने,
जे माटि आँचल पेते चेये आछे मुखेर टाने।
जार बुक फेटे एइ प्राण उठेछे,
हासिते जार फुल फुटेछे रे,
डाक दिल जे गाने गाने।
दिक हते ओई दिगन्तरे कोल रयेछे पाता,
जन्म मरण ओरि होतेर अलख सुताये गाथा।
ओरे हृदयबाला जलेर धारा,
सागर पाने आत्महारा रे,
प्राणेर बानी वये आने।

—'लौट चल माटीके खिचावसे—
जो माटी आँचल पसारकर देख रही है तेरे मुखकी ओर,
जिसकी छाती फाड़कर यह प्राण विकसित हुआ है।
जिसकी हँसीसे फूल खिला है रे,
जो एक-एक गानमें तुझे पुकार रही है।
इस छोरसे उस छोर तक उसीकी गोद फैली हुई है,
जन्म और मरण उसीके हाथके अलक्ष्य-धागोमें गुँथे हुए है,
उसीके हृदयका गला रूप यह जलधारा है,
जो आत्म-विस्मृत होकर सागरकी ओर दौड़ रही है
और प्राणोंकी वाणीको वहन करके लाती है।'

मै सोचता हूँ कि इस गानमें मेरे ही जन्मदिनका अभिनन्दन हो उठा है। बाबा जीको यह गान गाकर सुनाऊँ तो वे शायद इसकी भाषामें कोई दोष ढूँढना शुरू कर दें। शायद वे कहें कि बँगला भाषामें फूल फूटनेका प्रयोग तो बहुत भद्दा है, इससे तो फूल खिलनेका प्रयोग ही सुन्दर है। पर मैं आज किसीका दोष क्यों देखूँ ? माटीकी टेरमें तो युग-युगका स्नेह संजोया हुआ है। यही टेर मुझे प्रिय है, इसी टेरके कारण आज मै बावा जीके दोष भी नहीं देखना चाहता। आज मेरा जन्मदिन है।



दरिद्रता

• श्री अमृतलाल जैन दर्शनाचार्य

दु ख दु खमिति ब्रूयान्मानवो नरक प्रति।
दारिद्र्यादधिक दु ख न भूतं न भविष्यति ॥ अज्ञात

नरकोंके दु खको मनुष्य सबसे बडा दु ख भले ही कहे, किन्तु मेरी दृष्टिमें तो दरिद्रतासे बढकर दु ख न तो कभी पहले हुआ है और न आगे भी कभी होगा।

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरण सरोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेश मरणं दारिद्र्यमनन्तक दु खम् ॥ शूद्रक

दरिद्रता और मरण इन दोनोंमेंसे मुझे मरण पसन्द है दरिद्रता नही, क्योंकि मरणमें तो थोडा ही क्लेश होता है किन्तु दरिद्रताके दु खोंका तो कभी अन्त ही नही आता।

सङ्ग नैव हि कश्चिदस्य कुरुते सम्भाष्यते नादरात्,
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिना सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया
मन्ये निर्धनता प्रकामसपर षष्ठ महापातकम् ॥ अज्ञात

ऐसा प्रतीत होता है कि दरिद्रता छठा पाप है, क्योंकि जिसे दरिद्रता घेर लेती है उसकी कोई सगति नही करता। सगति तो दूर रही, कोई आदरसे बोलता भी नही। उत्सवोंके समय यदि वह धनिकोंके घर पहुँच जाय तो बुरी दृष्टिसे देखा जाता है। इसे अपने चिथडोंको देखकर बडी लज्जा लगती है इसलिए वह श्रीमानोंसे दूर ही रहता है।

अहो नु कष्टं सततं प्रवासस्ततोऽतिकष्टः परगेहवासः ।
कष्टाधिका नीचजनस्य सेवा ततोऽतिकष्टा धनहीनता च ॥ अज्ञात

हमेशाके प्रवासमे जितना कष्ट होता है उससे कहीं अधिक कष्ट दूसरेके घर रहनेमें होता है। दूसरेके घर रहनेके दुःखसे नीचकी नौकरीमें अधिक दुःख होता है और उससे भी अधिक दुःख गरीबीमें होता है।

वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयः पत्रफलाम्बुभोजनम् ।
तृणानि शय्या वसनं च वल्कलं न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम् ॥ अज्ञात

बाघ और मदमाते हाथियोंसे भरा जंगल अच्छा है, पेड़पर रहकर पत्ते, फल और जलसे पेट भर लेना बुरा नही, घासपर सोना तथा वृक्षकी छाल पहनना भी ठीक है पर अपने कुटुम्बियोंमे निर्धन होकर रहना अच्छा नहीं।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे ।
न तेन दृष्टं कविना समस्तं दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारि ॥ २ ॥ अज्ञात

जिस कवि (कालिदास) ने यह कहा है कि चन्द्रमाके अनेक गुणोंमें उसका एक दोष—कलङ्क छिप जाता है उसने दरिद्रताको नहीं देखा जो करोड़ों गुणों-पर पानी फेर देती है।

अन्य दोष भले ही गुणोंमें छिप जायँ पर दरिद्रता एक ऐसा दोष है जो करोड़ों गुणोंके बीचमें भी नही छिपता बल्कि उन गुणोको ही छिपा देता है।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहिता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन,
सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत् ॥ भर्तृहरि

वही पहलेकी इन्द्रियाँ है, इनमें जरा भी विकलता नहीं हुई, वही नाम है, वही अकुण्ठित बुद्धि है और वचन भी वही है किन्तु आश्चर्य है कि पैसेकी गर्मी निकलते ही मनुष्य क्षण भरमें औरका और हो जाता है?

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ शूद्रक

गाढ़ अन्धकार होनेपर लाये गये दीपकके समान दुःख भोगनेके बाद प्राप्त हुआ सुख अच्छा प्रतीत होता है किन्तु जो मनुष्य सुखकी अवस्थासे दरिद्रतामें पहुँचता है वह जीवित होता हुआ भी मरेके समान है।

चन्देरी

श्री चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर'

रहे चिरतन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा।
उठा तुङ्ग शिर-शृङ्ग विंध्य गिरि नित रक्षा-रत होता,
वेत्रवती का परम पूत पय पादाम्बुज को धोता,
जिसका नाम-स्मरण मात्र मनमे कायरता खोता,
यहीं बहा अद्भुत साहस-पुरुषार्थ-शौर्य का सोता।
धीर-वीर-रणसिंह-शरगण की आँखों का तारा।
रहे चिरतन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा॥

महर्षियों ने ज्ञान 'तपोवन' मे तप करके पाया।
दे उपदेश, कदराओं में मूर्ति-समूह रचाया,
पद्मकीर्ति के पाद-पद्म में सविनय शीश झुकाया,
जिनने शीतल सुखद शाति का अनुपम पाठ पढाया,
जिनके अनुगामी हैं समझे तृणवत् भूतल सारा।
रहे चिरतन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा॥

कीर्तिपाल की कीर्ति, कीर्तिगढ, यहाँ चद्रगिरि मानी,
नृपति मेदिनीराय यहीं पर हुए वीर बलिदानी,
राजपूत महिलाओं के जौहर की अमिट निशानी,
बुन्देलों के राजभवन ये कहते विभव-कहानी,
देवीसिंह नृपाल-श्रेष्ठ का यश-सौरभ विस्तारा।
रहे चिरतन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा॥

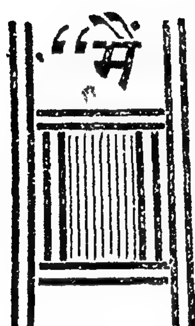
मरदनसिंह वीर भूपति की फहरी युद्ध-पताका,
'स्वतन्त्रता के प्रथम समर' में जिसका गूँजा साका,
वस्त्र-कला में निपुण मध्यभारत का यह है ढाका,
शिल्प-कला-कौशल की कोने कोने फैली राका,
नगर 'पुरन्दर' का, सुरपुर भी इसके आगे हारा।
रहे चिरतन चन्देरी जिसको निज मान दुलारा॥

राजपूत और मुग़लोंके — — उस महान् मोर्चेपर

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

● ● ● ● ●

[१]



"मैं आपकी शरण आया हूँ महाराज !"

रणथम्भौरके राजा हमीर अपने दरवारमें वैठे अपना राजकाज देख रहे थे कि किसीने पुकारा—"मैं आपकी शरण हूँ महाराज!"

हमीरने आँखें ऊपर उठाई, तो एक बहादुर मुसल्मान उनके सामने। सिर उसका झुका, गला उसका व्यथा से भर्राया और मुद्रा उसकी पीड़ित !

"कौन हो तुम ?" हमीरने पूछा।

"महाराज, मैं एक दुखिया हूँ, मेरे प्राण संकटमें है, आपकी शरण आया हूँ !" आगन्तुकने कहा।

आगन्तुककी पूरी कहानी यों—"मेरा नाम माहमशाह, काम सिपाही-गिरी। वादशाह अलाउद्दीन खिलजी-का खादिम। एक मामूली वातपर वादशाह नाराज और मेरे लिए फाँसीका हुक्म। वे घड़ियाँ नजदीक कि जव फाँसीका फन्दा दम घोंटकर मेरी लाश चील और कुत्तोंके लिए एक स्वाद नाश्तेकी तरह फेंक दे कि मैं जेलसे फ़रार और अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए यों आपकी शरणमें हाजिर—मेरी रक्षा कीजिये महाराज!"

हमीरने गौरसे माहमशाहको देखा। माहम बहुत घवराया हुआ था। "दिल्ली और रणथम्भौरके वीचमें तो राजपूतोंके कई राज्य हैं, तुम उनमें क्यों नही गये माहम ?" हमीरने गम्भीरतासे पूछा।

और भी दीन होकर माहमने कहा—"महाराज, मैं सबके दरवाजे गया, सबन मुझे सहानुभूति दी, पर कोई शरण न दे सका; क्योंकि मैं दिल्लीके वादशाह अलाउद्दीन खिलजी का भगोड़ा हूँ और मुझे शरण देकर कोई उन्हे नाराज करना नहीं चाहता !"

हमीरने अपने सलाहकारोंकी ओर देखा और उन्हे उत्साहित पाया। उनकी राय थी—"महाराज, माहमशाह की तलवार आज आपके द्वार शर-णार्थी है, पर कल तक वह हमारे खूनकी प्यासी थी। हम उसे अपनी छायामें ले, दिल्लीके तख्तकी लप-लपाती क्रोधाग्निको न्योता क्यों दे ?"

"यह दिल्लीके तख्तकी लपलपाती क्रोधाग्निको न्योता देनेका सवाल नही है सरदारो, यह कर्तव्यका प्रश्न है, आनका प्रश्न है। जव माहम इस द्वारसे निराश लौटेगा, तो स्वर्गमें हमारे पूर्वज क्या सोचेंगे ? क्या उस

गीतामें वर्णित निष्काम कर्मयोगके सर्वोत्तम जीवित स्टैच्यू न थे ?

और किलेमें यौवनकी किलकारियाँ भरती, इन स्त्रियोंका क्या होगा ? उन्होंने फैसला किया कि हम किलेका द्वार खुलनेसे पहले जौहर करेंगी।

अब वे सब निश्चिन्त थे, जैसे उन्हें जो करना था, कर चुके थे। रातको वे सब सो रहे थे, सुबह जल्दी उठनेके लिए और सुबह इन्हें जल्दी उठना था—हमेशाको सोनेके लिए। ऐसी जीवन्त नींद रातके सितारोंने फिर नहीं देखी, यह वे हमेशा आपसमें अब भी कहा करते हैं।

पौ फूटी, तो सब जागे और पुरुषोंने नित्यकर्मोंसे निपट, सबसे पहले एक विशाल चिता सजाई। स्त्रियोंने पूजन किया, कीर्तन किया। वे अपने-अपने पतियोंसे मिलीं। पुरुषोंने उन्हें प्यारसे थपथपाया, उन्होंने उनके पैर छुए। ओह, आज वे अपने सर्वश्रेष्ठ शृंगारमें थीं, जैसे जीवनकी सर्वोत्तम यात्रापर आज उन्हें जाना था और यों वे अपनी दर्पदीप्त गतिसे चिताकी ओर चलीं—जैसे स्वयंवरके बाद दुलहनें अपने रथकी ओर बढ रही हों ?

यह लो, वे चढ गईं चिता पर और बैठ गईं पास-पास अपनेको सँभाले-सवांरे। कुछने सुना, कुछने कहा—"अच्छा अब स्वर्गमें मिलेंगे।" और चिताकी लपटोंमें वे घिर गईं।

क्या आत्माकी अमरताका विश्वास और मृत्युका वरण इतिहासके किसी और पृष्ठमें भी इतने प्रदीप्त रूपमें लिखा गया है ?

किलेका द्वार खोल दिया गया और रणथम्भौरके योद्धा रणमें कूद पडे। रण था यह, दिल्लीकी फौजोंके लिए, रणथम्भौरवालोंके लिए तो आत्मदानका यज्ञ ही था। वे यज्ञकी श्रद्धासे युद्धमें उतरे। माहम और हमीर साथ-साथ आगे बढे और काल बनकर बरसे। दूसरे सिपाही भी खून की आखिरी बूंद तक लडे।

क्या इन योद्धाओंकी रक्त पिपासा समाधिस्थ योगियोंकी तरह आत्मलीन न थी। ओह, रणथम्भौरकी ये शहादतें, ये बलिदान, ये कुर्बानियाँ, जो वीरता के इतिहासमें अपना जोड नहीं रखतीं और आज सदियोंके बाद भी जिनसे अगरबत्तियों-सी जीवनके सौरभकी भीनी एवं प्रेरक गंध आ रही है।

दुनियाकी अधूरी भाषामें आजका विजेता अलाउद्दीन खिलजी अपने जयकार सुनता रणथम्भौरके किलेमें घुसा तो वह उसकी आत्माके चारों ओर गूँजती एक हँसीसे हकबक हो गया।

यह हँसी किसकी थी ? वहाँ वह हँसनेवाला कौन था ?

यह हँसी उस दहकती चिताके लाल अंगारोंकी थी, जो कह रही थी—मूर्ख अलाउद्दीन, तू रणथम्भौरकी ईंटोंको ही जीत सका, उसकी इज्जत, उसकी गैरत और उसकी वीरता सदा अजेय है।

और रणथम्भौरके खण्डहर आज भी, उस अजेय वीरताके गान अँधेरी रातोंमें आकाशके तारोंको सुनाया करते हैं।

हमारी महान संस्कृति

[१]

मैं विश्वास करनेको तैयार हूँ कि कुछ व्यक्तियोंको मेरे विचार बाहरी जीवनसे संबन्धित न प्रतीत हो—ऐसे बाहरी जीवनसे, जो केवल दूरका अथवा नदी तटका दृश्य मात्र है, जिसमे न कोई उत्तरदायित्व होता हो और न कोई क्रियात्मक प्रवृत्ति। किन्तु मेरे विचार तो जो कुछ भी मैंने अध्ययन किया, लिखा, अनुभव किया और जीवनमें ढालनेका प्रयत्न किया, उसीका परिणाम है। ये विचार दृढ़ विश्वासोंसे उद्भूत है और इन्होंने जीवनमे अनेक निर्माणात्मक प्रवृत्तियाँ उत्पन्न की है।

संस्कृति क्या है ? किसी न किसी प्रकारसे जीवनकी सुन्दरता और संस्कृतिमें अटूट संवन्ध है, किन्तु तब सुन्दरता क्या है ? यह भी मस्तिष्ककी परिपक्वतासे संबन्धित है, किन्तु तब परिपक्वता क्या है ?

संस्कृति यथार्थमें जीवनका भौतिक साज तो नहीं है, न ही हमारी यात्राके लिए उपयोगी वायु-

---

लेखक

 *श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी* 

यान या खबरें देनेवाला रेडियो और न ही हमारे अस्तित्वको खतरेमें डालने वाला अणुबम, यह सब तो सभ्यता है। श्रीराम और सीता, व्यास और युधिष्ठिर, कृष्ण, बुद्ध और ईसा वल्कल-वस्त्र पहनते थे, पैदल चलते थे और पुराने अस्त्र-शस्त्र उपयोगमें लाते थे। वे हमसे कम सभ्य थे, किन्तु यह कहनेकी कौन हिम्मत कर सकता है कि संस्कृतिकी दृष्टिसे हम उनसे आगे हैं।

विस्तृत अर्थमें संस्कृतिका संबंध एक सुनिश्चित जातिसे है। यह जीवनका एक विशेष मार्ग है। यही इस जातिके पृथक् रूपको स्पष्ट करती है। दूसरे शब्दोंमें जिस क्रमसे सभी जातियाँ जीवन-यापन करती हैं वह संस्कृति नहीं है। संस्कृतिकी संज्ञा प्राप्त करनेके लिए तो किसी भी जातिके लिए एक ही क्रमसे लगातार जीवन-यापन करना आवश्यक है। वह जीवन-क्रम दीर्घकाल तक एक जीवन-धाराके समान इस प्रकार बहना चाहिये और एक स्वतंत्र और चेतन दृश्यके सदृश इस प्रकार फैलना चाहिये कि जिससे सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हो जाये और बौद्धिक एवं ललित विचारधाराको एक मार्ग मिल जाय, एक उद्देश्य निश्चित हो जाये।

उदाहरणके लिए भारतीय संस्कृतिने अपनी चेतन शक्ति कभी नहीं खोई। बदलती हुई परिस्थितियों, दुःखपूर्ण उतार-चढ़ाव और विभिन्न सभ्यताओंके होनेपर भी इसके मूल तत्त्व शाश्वत रहे। इतिहासके आरम्भ से लगातार हमारी जातिने उनका उद्देश्य और अर्थ समझा है। परिणाम स्वरूप हर एक युगमें क्रमवद्धना-को सुरक्षित रखते हुए हमने नवीन सांस्कृतिक सफलताएँ प्राप्त की। हमें इस चेतन शक्तिका कार्य उस नव जागरणके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता है, जो गत १५० वर्षोंसे दर्शन, साहित्य और कलाके नये नये रूपोंमे प्रकट हुआ है। आधुनिक समस्याओंको मूल तत्त्वोंके आधारमें सुलझानेके लिए महान् व्यक्तिगत और सामाजिक प्रयोगोंमें हमें इस नव जागरणके दर्शन हो सकते हैं।

[२]

पुनः व्याख्या करनेपर संस्कृति एक केन्द्रिय भावनासे प्रभावित एक जीवन-क्रम है यह भावना किसी उद्देश्यका माध्यम नहीं है, किन्तु स्वयं ही युग-युगान्तर तक विस्तृत एक उद्देश्य है। यह भावना मूल तत्त्वोंकी सृष्टि करती है और इसका प्रतिबिम्ब उस जातिकी सामूहिक विचार-धारापर पड़ता है, जो उस जीवन-क्रमको बनाये रखती है। जब यह भावना अपनी चेतन शक्ति खो देती है, तब संस्कृति नष्ट हो जाती है। प्राचीन मिस्र, यूनान और रोम इसके उदाहरण हैं, क्योंकि जब उनकी संस्कृतिकी सरिताएँ अव-रुद्ध हो गई थीं, तब केवल मिस्र और यूनानवासी ही शेष रह गये थे, उनमें केन्द्रिय भावनासे पोषित प्राचीन तत्त्वोंकी चेतनशील प्रेरणा नहीं बची थी।

जब यह भावना समयके साथ-

साथ एक धाराके समान बहती है, तब इससे प्रसूत मूल तत्त्व प्रत्येक युगके ऐतिहासिक, आर्थिक एवं वातावरण सम्बन्धी निश्चयों द्वारा लहरोंके समान बनते और बिगड़ते, बढते और रुकते हैं। यद्यपि ये निश्चय उन मूलतत्त्वोंकी आकृति और विस्तार बदल देते हैं, किन्तु जब तक इन तत्त्वोंको केन्द्रिय भावनाके शक्ति-स्रोतसे नव जीवन और शक्ति प्राप्त होती रहती है, तब तक ये निश्चय उनकी शक्ति, सार और अर्थ नष्ट नहीं कर सकते।

यदि केन्द्रिय भावना द्वारा मूल तत्त्वोंको शक्ति देनेके कार्यमें किसी भी जातिके सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बहुत बड़ी सीमा तक प्रयत्नशील होते हैं, तभी इस जातिके इतिहासका एक अभिप्राय या उद्देश्य, शक्ति या कार्य होता है। उपर्युक्त प्रयत्न तभी सफल होते हैं, जब जातिके योग्यतम व्यक्ति पर्याप्त संख्यामें भाग ले। साथ ही इन व्यक्तियोंमें उस मूल भावनाके प्रति इतना विश्वास होना भी आवश्यक है कि वे इसके प्रति ईमानदार रह कर ही आत्म-परिपूर्णत्व प्राप्त कर सकें। जब कभी कोई युग ऐसे व्यक्ति उत्पन्न नहीं करता है, तभी संस्कृतिका क्षय आरम्भ हो जाता है और उसका दीप बुझ जाता है।

किसी भी जीवित संस्कृतिकी सच्ची परीक्षा यह है कि क्या उस जातिके सर्वोत्तम व्यक्ति उसके मूल तत्त्वोंको पूर्ण और निर्दोष मानते हैं, उन तत्त्वोंको जो कि स्वयं ही साध्य है न कि किसी परोक्ष साध्यका साधन मात्र। साथ ही क्या वे हर एक युगमें केन्द्रिय भावनाको जीवनमें उतार कर आत्म-परिपूर्णत्व प्राप्त करते हैं।

आत्म-परिपूर्णत्वसे किंचित् भी अस्पष्ट अर्थका भान नही होता है। यह तो निर्दोष अनुभव है। एक सत्य है, संसिद्धिकी एक गति है। यह तो उस समय प्राप्त होता है जब स्वयंमें जो कुछ है उससे भी अधिक स्वानुभूतिकी ज्योति मन, वचन और कर्मके प्रत्येक रूपको प्रकाशित कर देने वाली शक्तिशाली ज्वाला बन जाती है। यह ज्योति उसी समय दीप्त की जा सकती है, जब यह किसीको ज्ञान उत्पन्न हो जाता है कि मैं संपूर्ण जीवनमें या जीवनके कलात्मक, साहित्यिक या किसी भी एक रूपमें अपनी संस्कृतिकी केन्द्रिय भावनाको व्यक्त करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

[३]

भारतवर्षमें युगोंसे हमारे सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति केन्द्रिय भावनासे प्रसूत मूल तत्त्वोंपर विश्वास करते रहे हैं। यथार्थ ही महाभारत भारतवर्षकी "सामूहिक गुप्त भावना" कही गई है। गीताने अर्जुनसे गांधी तक युगों-युगोंमे आत्मसिद्धिकी प्रेरणा दी है और आजके युगमे भी भारतीय गणतंत्रके राष्ट्रपतिसे लेकर लाखों साधारण नागरिको तकके लिए वह शक्तिका स्रोत है। विश्वामित्र और वशिष्ट, भीष्म और युधिष्ठिर, कृष्ण और राममें आत्मपूर्णत्व के कुछ अस्पष्ट-से ढाँचेके एकबारगी ही दर्शन हो जाते हैं। वह रहस्यमयी शक्ति, जिससे राम-कृष्णने प्राचीन

मूल्योंको नवीन बल दिया था गाँधीने लाखोंमें कर्मको जगा दिया, इसी धुंधली और बहुधा अज्ञात अनुभूतिका परिणाम थी। वे इसी भावनाका प्रतिनिधित्व करते थे, जिसका आभास हमारी स्वप्निल इच्छाओंमें प्राप्त है।

मैं तो मूल तत्त्वों और उनके पीछे छिपी भावनाकी शक्तिकी बात करता हूँ। न कि उस साजकी जो कि रीति-रिवाजों या परम्पराओं, अनान या धार्मिक विश्वासों द्वारा लाद दिया गया है।

परम्पराएं जब नष्ट हो जाती हैं, तब उनका पुनरुद्धार कभी भी नहीं होता है। बहुतसे धार्मिक विश्वास तो मनुष्यके बौद्धिक अनुभवोंकी देन हैं, जब बुद्धिकी गति बदलती है विश्वास भी बदल जाते हैं, किन्तु भावना इस सबसे परे है।

युग-युगोंसे हमारी संस्कृतिको जिन्दा रखनेवाली यह भावना क्या है? युग-युगकी विभिन्न सजावटोंसे दूर कौन-सा इसका रूप है?

निश्चय ही इस भावनाकी तहमें सम्पूर्ण जीवनका एक मात्र लक्ष्य—मानव व्यक्तित्वका असीमसे पूर्ण एकात्मक होना है। इस एकात्म्यमें आनन्दकी अभिव्यक्ति है। ऐसे आनन्दकी जो न कभी फीका पड़ता है और न क्षीण होता है।

विस्तृत वर्णन न करते हुए मैं इस एकात्मके तीन रूपोंकी ओर संकेत करना चाहता हूँ।

प्रथम—मनुष्य शक्ति और प्रतिष्ठाका अभिन्न केन्द्र है, वह स्वयंके भाग्यका निर्माता है और यदि उचित दिशामें अग्रसर हो तो, उसमें समाधि, निर्वाण, मोक्ष, कल्याण या और भी अन्य शब्दसे सम्बोधित पूर्ण आत्म दर्शन करनेकी शक्ति है।

द्वितीय—कार्य कारणके नियमसे परिचालित नैतिक व्यवस्थापर विश्व टिका हुआ है और अन्तिम स्वयंभू में विश्वास—चाहो, तो उसे ईश्वर नामसे पुकारो—और उसके कार्यको पूर्ण करनेके लिए उसका निमित्त बननेकी तत्परता ही मनुष्यके भाग्यकी सर्वश्रेष्ठ सफलता है।

आप कहेंगे 'यह तो धर्म या दर्शन है, संस्कृति नहीं। सामाजिक आदर्शोंका क्या हो? सांस्कृतिक उन्नति कैसे हो? और राष्ट्र किधर जाय?'

हजारों वर्ष पहले मनुष्य केवल एक पूर्व निश्चित सामाजिक नालिया-में रहनेवाला एक कीड़ा मात्र था। केवल परागहीन दो पैरका पशु था। न उनका प्रतिष्ठासे सम्बन्ध था, न सौभाग्यसे। उसे अमर अस्तित्वका भान भी न था। किन्तु उसमें सर्वोच्च जीवनकी कल्पना थी और उच्चतर जीवनकी पर्याप्त आकांक्षा थी। उसमें चेष्टा थी। परिणामस्वरूप उसे ईश्वरका भान हुवा। वह आत्माका अस्तित्व मानने लगा। उसमें महत्ताकी भावना जगी, जिसने उसे प्रभुत्वकी चेतना दी और वह मूलतत्त्वोंकी अजे-यताको महत्त्व देने लगा। उसे एक गुप्त भेदका सुराग मिला कि ईश्वर मनुष्यरूपमें अवतार लेता है और मनुष्य ईश्वरका निमित्त बनकर स्वयं ईश्वर बन जाता है। कृष्णका अवतार होता है और अर्जुन अपने-आपको

समर्पणकर, केवल निमित्त मात्र बनकर कृष्णमें लीन हो जाता है।

अपने आपको स्वयंभूके समक्ष सर्मपित करते हुए मानव अपनी सीमाको लाँघ सकता है और वह मानवरूपसे उठकर दैवी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। इसी केन्द्रिय भावनाके आधारपर भारतीय आर्योंने अपने मूल तत्त्वोंकी सृष्टि की थी और तत्पश्चात् भारतीयोंने अपनी संस्कृतिका निर्माण किया था।

यह केवल एक धार्मिक या दार्शनिक् भावना नही थी, यह एक भीष्म क्रियात्मक शक्ति थीं, मनुष्य एक सशक्त ईश्वर वन गया था, सामाजिक संबन्ध और वौद्धिक एवं कलात्मक कृतियाँ, जो सभी उसके जीवनमें अति आवश्यक है उसी भावनासे प्रेरित मूल तत्त्वो द्वारा प्रभावित हुई थी और संस्कृतिकी दिशामें यह दूसरा क़दम था।

मैं यहाँपर इस भावना द्वारा प्रसूत कुछ मूल तत्त्वोंका भी आभास दे दूँ। स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध शोधकर एक अटूट बन्धनमें परिणत कर दिया जाता था। नर और नारीकी आत्माएँ विवाहके रासायनिक प्रयोग द्वारा एक हो जाती थीं। वाणी और जिह्वाके समान अविच्छिन्न बन जाती थीं। पार्वती-परमेश्वरम्का रूप धारण कर लेती थी। शारीरिक चर्या आत्माके सत्यमे परिणत हो जाती थी। इस मौलिक मूल्यने हमारे समाजकी इकाई, हमारे अभेद्य कुटुम्वका निर्माण किया था और सीता और सावित्रीके समान अवर्णनीय सौंदर्य-प्रतिमाओंका साहित्य और कलाके क्षेत्रमें निर्माण कर और जीवनमें जन मनकी महान् अजेयताके प्रति सतीका अद्भुत आत्मसमर्पण उपस्थित कर एक महती क्रियात्मक शक्तिके स्रोतको बहाया था।

दूसरा मूलतत्त्व माता और पितामें देवत्वकी स्थापना थी। जीवनके अभिन्न शिव और शक्तिकी भक्ति थी। संस्कृतिके लिए छटपटाती मानवताको इस तथ्यने दो ठोस आधार दिये। एक पिता जो भूत, वर्तमान और भविष्यके बीचमें जोड़नेवाली केन्द्रिय कड़ी था और दूसरी माता जो शक्तिका अटूट स्रोत थी। व्यक्तिको इन्होंने एक नई ही प्रतिष्ठा दी। इस तथ्यने मातृपक्षीय कुटुम्ब-व्यवस्थाको हटाकर शक्ति और सौन्दर्यके आधारपर गृहस्थीकी स्थापना की थी। इसने कुल, गोत्र और जातिकी स्थापना की, पितृ-भक्ति आरम्भ की और जातिमे कुलदेवता, महर्षि और राजर्षि उत्पन्न किये, हमारे देशमे जहाँ पितृपक्षका महत्त्व था, वहाँ ईश्वरको परमपिता मानकर नये तथ्योकी सृष्टि हुई और सर्वोपरि "वसुधैव कुटुम्बकम्" अर्थात् संपूर्ण पृथ्वी ही मेरा कुटुम्ब है, उस भावनाकी नीव पड़ी। एक बार जब इस तथ्यने सामूहिक गुप्त भावनाओंमें जड़ जमा ली, तब प्राणी मात्रसे प्रेम और ब्राह्मण, परिहा और कुत्तेमें समानताकी भावनाका उदय हुआ और वह सस्कृतिका अगला क़दम था।

राम-कृष्णने मूक प्राणियों पर दया (जीव दया) की भावनाको दृढतासे अस्वीकार किया। उन्होंने

पूछा—उसमें भी ईश्वर है जैसा कि मुझमें, तब दयाका क्या प्रश्न ? श्री कृष्णने अन्तिम कदमका वर्णन करते हुए कहा है कि "सबको मुझमें, मुझे सबमें देखो।" व्यक्तित्वके आत्मसात्का अर्थ था संपूर्ण एकात्म।

[४]

जब तक कि सब संस्कृतियाँ इस तथ्यको स्वीकार नहीं कर लेती, तब तक कोई भी संस्कृति सार्वलौकिक नहीं हो सकती और न ही मानव-हृदय की आकांक्षाको पूर्ण कर सकती है अथवा मानवीय समस्याओंको सुलझा सकती है। हमारी संस्कृति बताती है कि सब जातियोंके सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियोंको प्रयत्न करना चाहिए कि वे उनके व्यक्तित्वको सर्वांग रूपमें आत्मसात् कर सकें।

यह महत्त्वपूर्ण है, किन्तु संसार तो इस मूल तथ्यको अस्वीकार कर स्वयं से ही युद्ध ठाने हुए है, कुछ संस्कृतियाँ स्त्री और पुरुषको शारीरिक बन्धनोंसे चालित समाजका अंग मान कर नये तथ्योंका निर्माण करनेकी कोशिश करती है। वे आत्माके ऐक्यकी प्रतिष्ठाको अस्वीकार कर उन्हें सांसारिक नियमों द्वारा व्यवस्थित करना चाहती है। वे देश-भक्तिमें भी पितृत्वकी भावनाकी पवित्रताको कोई मूल तथ्य नहीं मानती और न ही ईश्वरमें परम-पितृत्वके दर्शन करती हैं। उनके तथ्य पृथक्ताकी भावना लिये हैं। वे मानवताको ऊँच और नीचकी श्रेणियोंमें बाँटती हैं और विश्व-बन्धुत्वकी आशापर वज्रपात करती है। निर्माणात्मक कलाके क्षेत्रमें भी उनके तथाकथित तथ्य साहित्य और कलाके क्षेत्रमें ऊँच और नीचके बीच भी पत्थरकी दीवार खड़ी कर देते हैं।

जब एक बार ऐसे तथ्य स्वीकार कर लिये जाते हैं, तब वे मानव समुदायको एक इकाईमें परिणत कर देते हैं, जिससे कि मनुष्य शून्य स्थितिमें पहुँच जाये। हेगलके सिद्धान्तोंके भारसे दबे हुए कुछ विचारकोंने इसका यह गलत अर्थ लगाया कि एक आदर्श व्यवस्थाके समक्ष व्यक्तित्वको पूर्णरूपसे मिटा देना चाहिए। इस प्रकार मानवकी प्रतिष्ठाको शून्यमें परिणत कर दिया गया। ऐसे असंख्य शून्योंपर राज्यकी सार्वभौमताको एक स्वयमें पूर्ण भावना मान लिया गया।

प्लेटोके कथनको उलट-पलटकर सुन्दरताकी दूसरी परिभाषा बनाई गई कि मनुष्य घृणित कार्योंसे घृणित विचारोंकी ओर, घृणित विचारोंसे घृणित तथ्योंकी ओर, घृणित तथ्योंसे स्वयं पूर्ण घृणाकी ओर बढ़ता है। इन संस्कृतियोंके अनुसार मनुष्यमें अब समस्त देवत्व नहीं रहा, वह तो केवल एक कीड़ा है।

यह तो उस केन्द्रिय भावनाको अस्वीकार करना है, जिसका अभिप्राय है कि मनुष्यमें वह ज्ञान, इच्छा और शक्ति है, जिससे वह केवल असीमकी ओर बढ़ ही न सकता है, किन्तु असीमको भी प्रगतिके लिए जीवनकी दिशामें अग्रसर कर सकता है और साथ ही हम उसके बिना प्रकृतिके

लक्ष्य "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श, विचारोंके प्रभाव और नैतिक व्यवस्था-के प्रभुत्वको भी नहीं समझ सकते।

[५]

व्यक्तित्वका पूर्ण एकात्म धार्मिक विचारोसे घिरा होनेपर भी इसी संसारसे संबन्ध रखता है। यह तो मनुष्यके संपूर्ण व्यक्तित्वका आत्मसात् है, जिससे कि वह अक्षय आनन्दके रूपमें सौन्दर्य-सृष्टिका साधन वन सके।

सौन्दर्य और आनन्द एक दूसरेसे कभी भी विलग नहीं किये जा सकते। सुन्दर कलाकृति अनन्त आनन्द देती है। जहाँ आनन्द नही है, वहाँ सौन्दर्य नहीं है। एक शिल्पकार पत्थरमें सौन्दर्य बोध करता है, तो एक कवि शब्दोंमें, एक सांस्कृतिक व्यक्ति शिष्टा-चारसे, तो एक भक्त अपनी भावनासे, और इन सवको देखकर हम स्वयंमें जो कुछ भी है, उससे भी अधिक स्वानुभूति करते हैं।

एक आत्मसात् व्यक्तिका संपूर्ण व्यक्तित्व सौन्दर्यका निमित्त और प्रेरणाकी जीती-जागती मूर्ति वन जाता है और हमारे समक्ष आत्म-दर्शनका आनन्द स्पष्ट होने लगता है। वह मनुष्य जो एकात्मता प्राप्त कर लेता है वह स्वयं ही सौन्दर्यकी कला-कृति है। उसके जीवनमें भाव और शब्द एक लय हो जाते हैं। उसे न मोह होता है, न लालच, वह अपनी शक्ति किंचित् भी क्षय नही करता। वह तो पूर्णताका एक साधन होनेकी नम्रता अनुभव करता है। इस पूर्णतामें यदि हमें उसके दर्शन हो जाते हैं, तो हम भी पूर्णताकी ओर पहुँच जाते हैं, स्वयंमें देवत्वका अनुभव करने लगते हैं।

इसलिए संस्कृतिका सम्पूर्ण अर्थ जीवन-कला और साहित्यको केवल परिवर्तनशील उत्तेजनाओ या इन्द्रिय-गत चेतनाओं, परम्पराओं या उद्देश्यों-का माध्यम वनाना ही नहीं है, किन्तु आत्मदर्शन करना है। एक ऐसे अनु-भवको प्राप्त करना है, जिससे हममेसे प्रत्येकको आत्मदर्शनका आनन्द प्राप्त हो सके और हर एक कह सके कि 'मै उससे वहुत अधिक हूँ, जो मै हूँ! और हरेकके जीवनका यही एक ढंग है, केवल साधनका भेद और शक्तिकी न्यूनाधिकता हो सकती है!'

अनुवादक—*श्री शंकर विजयवर्गीय*



रावणका उदाहरण इस प्रसगमें सर्वोत्तम प्रतीत होता है—

"इक लख पूत सवा लख नाती ।
ता रावण घर दिया न बाती ।"

कितने आश्चर्यकी बात है ? धन-जन सम्पन्न रावणकी यह दुर्गति क्यो हुई ? केवल एक अहकारके कारण। सोचता था कि सीताजीको रामसे लडाई लिये बिना यदि वापिस कर दूँगा तो शान ही क्या रह जायगी ? परन्तु हुआ विपरीत ही ! एक लाख पुत्रोमेंसे न कोई एक अजुलि जल देनेको रह गया ! और न सवा लाख नातियोमेंसे कोई उसकी चितापर दीपक जलानेको रह गया ! ऐसे ही उदाहरणोको देखकर शास्त्र पुराण-कारोने, नीतिविद् विद्वानोने ससारको चेतावनी दी—

"आयास-कोप भय-दु खमुपैति मर्त्यो,
मानेन सर्वजननिन्दितवेषरूप ।
विद्या दया-दम-यमादिगुणाश्च हन्ति,
जानेति गर्ववशमेति न शुद्धबुद्धि ।"

अभिमान, अहकार एक ऐसा छूत रोग है जिसमे मानसिक पीडा, कोप, भय, दु ख उसके साथ ही चले आते है। विद्या, दया, दम, यम, आदि समस्त मानवीय गुणोको खोकर निन्दित वेषमें दर-दर ठोकरें खाता है।

"जिह्वासहस्रकलितोऽपि समासहस्रै-
र्यस्या न दु खमुपवर्णयितु समर्थ ।
सर्वज्ञदेवमपहाय परो मनुष्य-
स्ता श्वभ्रभूमिमुपयाति नरोऽभिमानी॥"

अहकार पिशाच उस नरकका दूत है जहाँ जाकर मनुष्य उन दु खोको पाता है जिनका वर्णन भगवान् सर्वज्ञ-को छोडकर हजारो जीभसे हजारो वर्षोंमे भी और कोई नही कर सकता।

हमारा दैनिक जीवन ही ऐसी बातोका प्रमाण है कि जहाँ अभि-मानीको दर-दर अपमान सहना पडता है वहाँ विनयी पुरुष पूजा जाता है। नदी किनारे खडा अकडा वृक्ष पानीके बहावमें बहकर साफ हो जाता है परन्तु नमनेवाले गोंदलेके पेड पानीके प्रबल प्रवाहमें भी ज्यो-के-त्यो खडे रह जाते है। वस्तुत मार्दव धर्म (नम्रता-विनय) मान कषायका नाश एव पाचो इन्द्रियो और मनका निग्रह करनेवाला है। नम्रता करुणाकी वह लता है जिसमें सद्भावनाके फूल और सद्गुणके फल लगते है। इसलिए भारत के महामना सन्त वर्णीजीको भी अपना अनुभव प्रकट करना पडा कि—"विनय के सामने सब सुख धूल है। इसमें आत्माका महान् गुण जागृत होता है, विवेक शक्ति जागृत होती है। जिसने हृदयमें विनय धारण नही किया वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है ?' वस्तुत उपनिषदोकी भाषामें विनय मानव धर्म है। और इसे ऐसा मानना ठीक भी है। ससारमें ऐसे वे बडे विरले ही है जो इस मानव धर्मके परिपालनके लिए लौकिक उक्तिया का अनुसरण करते है—

'बडे बडाई ना करें, बडे न बोलें बोल।
हीरा मुँहसे ना कहे, बडा हमारा मोल॥'

उन्हें भय रहता है कि स्वप्रशसा से उन्हें केवल अपयश ही मिलनेवाला है। यदि अपने कुल जातिका अभि-मान किया तो सन्देह नही वह पर्याय मिलेगी जिसमें प्राणीका मूल्य भाजी-के साथ रुँकनमें बिक जानेवाले कौडे

का होता है ! पर्याय पानीका बबूला है, बना कि तुरन्त फूट गया ! कुल, जाति, तप, बल, आज्ञा, बुद्धि, सुन्दरता और प्रभुता यह आठों ही अहङ्कार ऐसे मद हैं जिनमें मस्त मानवको धर्म कर्म कुछ भी याद नहीं रह जाता ।

इतना सब कुछ होने पर भी, आजके राष्ट्रीय वातावरणमें भी साधारण लोगोंकी तो बात क्या *विवेकी बुद्धिजीवी साधु वर्ग भी जाति मदको प्रोत्साहन दे रहा है !* हिन्दू समाजके तथाकथित बड़े दूसरोंको अछूत कहकर दुत्कार रहे हैं। उनकी समझ मे नहीं आता कि जब आत्मा और ईश्वर सबका एक ही है, एक-सा ही है, तब छूआछूतको स्थान देना मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं है। *हिन्दू धर्ममें तो अस्पृश्यताने ऐसा रूप लिया है जिसकी छायामें ही लाखों करोड़ों मनुष्य जाति-भेदके कारण चक्कीमें दबे चनेकी भाँति पिस रहे हैं।* एक *ओर धर्मशास्त्रोंमें विनयकी कथा की जा रही है तो दूसरी ओर जाति मदका प्रसाद भी वितरण किया जा रहा है !* कहना होगा कि छूआछूत धर्मका अंग नही है अपितु उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है। उसका निवारण करना ही मार्दव धर्मका परिपालन है। जहाँ विश्वबन्धुता सर्वप्राणियोके साथ समभावकी द्योतक है वहाँ अस्पृश्यता विषमताका जीता रूप है। इसीलिए बापूने कहा था—'अस्पृश्यता दूर करनेका अर्थ है समस्त संसारके साथ मित्रता रखना, उसका सेवक बनना।'...'अहिंसाके मानी है जीव मात्रके प्रति पूर्ण प्रेम, और अस्पृश्यता निवारणका भी यही अर्थ है।' अपने आपको अहिंसाका पुजारी माननेवाले धर्माचार्य यदि इस सूर्य सत्यको अपनानेका कष्ट करें तो उनकी शिष्य-परम्परा भी उनकी इस विनय-परम्पराको चलाती रहेगी। *धर्मके नामपर अस्पृश्यता जैसी राक्षसीको ज़िन्दा रखनेवाले आचार्य यदि अपनी टेक नहीं छोड़ते तो कहना होगा कि जातिमद, कुलमद, ऊँच-नीचकी क्षुद्र व नीच मनोवृत्ति जिनमें है वे भले ही राष्ट्रीयता, धार्मिकताका ढोल पीटें, भले ही राष्ट्रीयता उनके चमड़े तक हो परन्तु उनका अन्तर टटोला जाय तो साम्प्रदायिकता, जातीयता जैसी घृणित दुर्भावनाएं ही दिखाई देंगी !* जब गुरुओंका यह हाल है तब चेलोंकी क्या चलाई ? जिन्होने अपने तुच्छ स्वार्थोंके लिए दीन दुखियोंकी छलकती आँखोंके ढुलकते मोतियों-से आँसुओंका कोई मूल्य नहीं समझा, अन्तरकी आहों पर 'ओफ! आह !!' भी नही किया, निर्धन किसान और ग़रीब मजदूरोंके शोषणको ही आत्मधर्म समझा है उन्हें राष्ट्रीयताघातक जातिमद जैसी मोहक मदिराका चढ़ जाना स्वाभाविक ही है।

जब कभी यूरोप अमेरिकाके लोगोंने गांधीजीसे अपने कर्तव्य-मार्गको पूछा तभी उन्होंने उत्तर दिया—"इस देशमें मै ज़ो कर रहा हूँ उसीका सूक्ष्म अध्ययन किया जाय यही मेरा सन्देशा है।" कितनी नम्रता ? कितना आत्म-विश्वास ? विश्ववन्द्य बापूके विना आज भारत वैसा ही है जैसा

रक्खे थे। मैं उन्हींपर लेटकर धीरे-धीरे सिसक-सिसककर रोता रहा।

माताजीको क्या पडी साँप हम कुछ भी खाते रहें और यह ववर्चीका बच्चा ? इसे तो किसी दिन ऐसी ईंट फिराकर मारूँगा कि खोपडी खिल जायेगी। न जाने कितनी देर मैं रोता रहा। तभी पासवाले बँगलेमें रहनेवाला समवयस्क लडका मुझे खोजता हुआ आ गया। उसके स्वास्थ्यके कारण सब लोग उसे 'सैण्डो' कहते थे। मुझे देखते ही बोला—"तुम यहाँ लेटे हो, देखो कितनी नावें जीजीसे बनवाकर मैं ले आया हूँ। नहरपर चलो, वहाँ बहायेंगे।" और उसने दूसरे हाथवाला डिब्बा खोला। मैं धीरेसे उठा। कमीजसे मुँह पोंछा और चल दिया उसके साथ। सोच लिया, खूब देरमें लौटूँगा, तभी माताजीको पता चलेगा।

हम दोनों बगलेसे बाहर आ गये। घरसे कोई दो फर्लांगपर नहर थी। दोनों चुपचाप चल दिये। दोपहरका समय हो गया था। भूख अब मेरी शायद मर चुकी थी। नहरके किनारे पर घने पेड लगे हुए थे, छोटा-सा बगीचा भी था। हम दोनों किनारेकी हरी घासपर आकर बैठ गये। सैण्डोने डिब्बा खोला और छोटी कागजकी नावें निकाल-निकाल घासपर रखने लगा। मैं उन्हें खोल-खोल कर तैयार करने लगा। हम दोनों तल्लीन थे। सहसा पीछे कुछ खटखटाहट हुई। मैंने सिर घुमाकर देखा—ओफ ! मेरी ऊपरकी साँस ऊपर और नीचेकी नीचे रह गई। खूब जोरसे चीख पडनेको मन हुआ, पर भीतरसे उठी हुई चीख गलेमें इस बुरी तरह फँस गई कि कुछ देर तक लगा साँस आयेगी ही नहीं ! एक बहुत बडा आदमी बगीचेसे निकलकर हमारी ओर आ रहा था—इतना बडा कि सारे जीवनमें मैंने उसकी कल्पना भी नहीं की। कोई पच्चीस-तीस फीटका वह रहा होगा। बगीचेके आमके पेडोंके बराबर वह ऊँचा था।

एक बार एक मन्दिरमें खूब बडा-सा नगाडा-सा देखा था उस जैसा उसका मुँह, खूब बडी घनी काली मूँछें, खूब बडे बडे और तगडे हाथ-पैर। डरके मारे मैं उसकी आँखें देख ही नहीं सका। रामलीलामें बने कागजके रावणकी याद मुझे आ गई। मैं उसकी ओर अधिक देखनेका साहस नहीं कर सका। दोनों हाथोंमें मुँह ढककर वहीं पृथिवीसे चिमट गया, मालूम नहीं सैण्डोने क्या किया।

तभी किसी बडी भारी मोटी-सी चीजने मेरी बाँह पकडकर मुझे उठा लिया। मैंने आँखें खोलीं जरा-सी, देखा उस भयानक 'दानव' ने अपना हाथ बढाकर मुझे बाँहसे उठा लिया था। दूसरे हाथसे उसने सैण्डोको पकड रखा था। फिर हमें झुलाता हुआ वह एक ओर चल दिया। मेरा मस्तिष्क बिलकुल भाव-शून्य हो गया था। मुझे आश्चर्य है उस समय मेरा 'हार्टफेल' क्यों नहीं हो गया। मेरी बाँह जैसे उखडी जा रही थी। पीडाके मारे मेरा अंग-अंग तडप रहा था। चाहनेपर भी चीख नहीं निकल पा रही थी—मैं रो नहीं पा रहा था।

भीतर ही भीतर इच्छा होती एक बार रो लूं—चीख लूँ, तो शायद शान्ति मिल जाए। उस समय मुझे अनुभव हुआ कि पीड़ामे रोना और चीखना कितना शान्तिदायक है। धीरे-धीरे मै चेतना-शून्य हो गया। मुर्गोकी तरह वह हमें ले चला।

धीरे-धीरे जब मुझे होश हुआ तो मुझे लगा मै पृथ्वी पर पड़ा हूँ। आँखें खोलीं, पर तभी जैसे दहकते सलाखों-के डरसे फिर बन्द कर ली। उसी एक दृष्टिमें मैंने जो कुछ भी देखा वह वर्णनातीत है–बीचमें काफ़ी बड़े-बड़े लक्कड़ जलाकर आग जलाई हुई थी उसके चारों ओर चार या पाँच वे बड़े-बड़े दानव बैठे हुए थे।

सबसे पहिले मेरी दृष्टि जिसपर पड़ी वह एक स्त्री थी। कपड़े वे सब हम लोगोंकी ही भाँति पहिने हुए थे। शायद उन भयानक दैत्योके मध्य वह सुन्दरी रही हो, पर मुझे तो उनका भीमाकार देखकर ही एक ऐसे दुर्निवार आतकने आच्छन्न कर लिया कि मेरा मन और मस्तिष्क बिल्कुल जड़-निष्क्रिय हो गये और शायद यह अवस्था लाभदायक ही रही। बाते वे हम लोगोंकी ही भाषामें कर रहे थे, न चाहने पर भी गरम और पिघलते सीसेकी भांति वे बातें मेरे कानोंमें पहुँचती हुई नसोंका रक्त जमाये दे रही थी। आश्चर्य है उस समय एक-एक शब्द जैसे मेरी समझमें आता हुआ मेरी पसलियोंमें हथौड़ेकी चोट कर रहा था। वे बातें जिनकी उस आयुमे मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था, आज तक मुझे ज्यों की त्यों याद हैं। आज उस बातको सोचता हूँ तो लगता है शायद मैं सिन्दबाद जहाजीके युगमें पहुँच गया था; चौथे या पाँचवें सफ़रमें जब वह और उसके साथी एक ऐसे ही दैत्यके पल्ले पड गये थे। अब तो झुझलाहट होती है कि वैसी ही कोई छूटनेकी तरक़ीब मुझे याद क्यों नही आई। गुलीवरने भी अपनी यात्रामें ऐसे ही दैत्योंका वर्णन किया है। आस्कर वाइल्डने बालकोंको प्यार करनेवाले एक दैत्यकी बात लिखी है, पर वे सभी दयालु थे! दास्तान अमीर हम्जामें साहिब क़ुरान अमीर हम्जा खुद ऐसे दैत्योंसे लड़ता फिरा था। वहाँ ऐसे फन्देमे पड़नेका सवाल ही नहीं था। आज वे सब बातें याद आती है। खैर, मेरी क्रिया-शक्ति उस समय तो जैसे बिलकुल ही मर गई थी। मैंने अनुभव किया मेरे पैर पर किसीका पैर रक्खा है; शायद वह सैण्डोका रहा हो। पहिले तो उनकी बातें तनिक भी समझमें नहीं आई, केवल जैसे 'माइक' लगाकर कोई चीखता हो, ऐसे स्वर कानोको फाड़े डालते थे, पर जब उनका अभ्यास हो गया तो लगा उन लोगोंमे अच्छी खासी बहस छिड़ी है—

"अभी तक वे लोग आये नही है, भोजके समय तक शायद देर हो जायेगी।" आवाज उस स्त्रीकी-सी लगी। कुछ रुककर वह बोली—"भगवान् करे उन्हे कोई भी न मिले, न जाने इन बेचारोंको तुम कहांसे पकड़ लिये हो।"

"भगवान् करे!" किसी पुरुष-कण्ठकी विद्रूपभरी वाणी सुनाई दी—

विजय-विकास-गाथा है ! यही संस्कृति है। संस्कृतिका अर्थ ही है आदिम स्वभावके संस्कारोंका इतिहास। स्वच्छन्द मैथुन मनुष्यकी आदिम प्रवृत्ति थी, लेकिन ऐसी सारी प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करने पर ही तो हम उन्नति कर रहे हैं।" उसने अकाट्य तर्ककी तरह कहा।

तभी एक जैसे सारी बातोंको मज़ाकमें उड़ाता हुआ बोला—"कुछ कहो यार, हम तो मांस खाना छोड़ेंगे नहीं।"

"मुझे आश्चर्य है तुम अपनेको कवि कहते हो। बताते हो कि तुम्हारा हृदय भावुकतासे छलकता आ रहा है, साध्यगगनकी सारी लालिमा उदासीके रूपमें तुम्हारी भावनाओंमें उतर आई है और नीडकी ओर लौटते हुए पक्षियों की आतुरता तुम विह्वल होकर बखानते हो। दिखाते हो कि जड़ और चेतन सभीमें तुम जीवनका स्पन्दन अनुभव कर रहे हो और तुम्हारे हृदय का अतुल अभाव प्यारके आँसुओं द्वारा द्रुमदल पल्लव, बादल, चाँद, रश्मि, शमा, शबनम, उषा, लहर, रागिनी, ज्योत्स्ना, नेशकुन्तल, फूल, कलियाँ और साध्य तारक सभी पर बरस पड़ता है। उफ ! यह सब कैसी विडम्बना है।"

"अरे किस जमानेकी बातें लेकर बैठ गये। म्याँ, एक बार चख लो, फिर देखो तुम्हारी यह सब बातें कहाँ चली जाती हैं। मैं अपनेको यदि कवि कहता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं है कि मैं खाना पीना सभी छोड़ दूँ।"

मुझे आश्चर्य हुआ कि इन लोगोंमें भी कवि है। जरा-सी पलक खोलकर देखी, बड़े-बड़े लम्बे बाल पीछे की ओर सँवारे हुए, दाढ़ी मूँछ साफ ! मनमें न जाने किसने कहा यह कवि है !

"अरे छोड़ो भी इन झगड़ोंको, न जाने कबसे गोश्त खाने न खानेपर बातें होती चली आ रही हैं, आजतक तो यह रुका नहीं है। सारा संसार खाता है, हमारे पुरखे खाते थे। लाओ इसे भून लें, वे लोग तो आते नहीं हैं अभी।" एक बोला।

"अच्छा लाओ।"

मैं चौंक गया। यह किसके विषय में है। तभी देखा एकने सैण्डोकी बाँह पकड़कर उठा ली। वह बेचारा एक बार ज़ोरसे कराहा, उसके दोनों पैर टूटे हुए हिल उठे। उसका लाल चेहरा एकदम पीला पड़ गया था और पीड़ाकी एक ऐंठन-सी बार-बार उस पर दौड़ जाती थी। एक दैत्यने उसके पैर पकड़ लिये एकने हाथ, फिर बीचमें जलती हुई लपटोंके बीचमें ले गये ! उफ ! वह दृश्य आज भी जब याद करता हूँ, तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं ! हाथ और पैर दोनों ओरसे विवश बेचारा सैण्डो जलाया जा रहा था—जीवित। पहिले कुछ क्षण वह कितनी बुरी तरह चीख रहा था, कैसा असहाय-सा वह तड़फड़ा रहा था। सारा शरीर उसका ऐंठ ऐंठकर रह जाता था, लेकिन लपटें थीं कि उसे खाये जा रही थीं। मुझे कुछ क्षणोंको लगा, जैसे मेरी सारी नसोंका रक्त शीतल पानी बन गया है। उसकी एक-एक कराह—चीख—चिल्लाहट गरम-गरम

कीले-सी मेरे मस्तिष्कमें ठोकती जा रही थीं। धीरे-धीरे वह निश्चेष्ट हो गया। एक बार हम कंजरोंके झोपड़ों-की ओर निकल गये थे।

वहाँ देखा चूल्हेमें आग जलाकर एक जीवित कछुएको उन्होंने उल्टा चूल्हेपर रख दिया था—कढ़ाईकी तरह! कैसे हाथ पाँव उस समय वह चला रहा था। हाथ भर लम्बी उसकी गरदन निकल आई थी—हाथ पाँव भी बाहर निकल आए थे। सैण्डोका शरीर काला पड़ने लगा और एक असह्य उबकाई लाने वाली चिरायँध सारे वायुमण्डलमें फैल-फैलकर मेरी साँस रोकने लगी! भुनती हुई जीवित मछलियों, पंख जलाई जाती हुई जिन्दा मुर्ग़ियोंकी तड़पन व्याकुलता और विवशताकी चेष्टाएँ मेरे मस्तिष्क में दहकते अंगारे भरने लगी। मै जैसे स्वयं तड़प रहा था और जैसे मुझे भी कोई भून रहा था! कही इसके बाद मेरा नम्बर हो तो? और आगे मैं सोच नही सका, गला मेरा सूख गया था।

"तुम्हारा तो दावा यह है कि तुम दूसरेके हृदयके साथ तादात्म्य कर लेते हो।" वह पहिलेवाला बोला—"सुनते है तुम्हारी वह कविता जिसमें तुमनै वाल्मीकिके क्रौंच पक्षीकी मर्म-व्यथाको छन्दोंमें बाँधा है अमर रचना है।"

"क्यों?—उसमें क्या अस्वाभाविकता है?" तिनककर कवि बोला—वह सैण्डोके हाथ पकड़कर बड़े मनोयोगसे उसे भुनवा रहा था। थोड़ी देर चुप रहकर उसने कहा—"आप उस अवस्थाका अनुभव नहीं कर सकते। आज भी जब मैं उस कविताको पढ़ता हूँ तो रोने लगता हूँ। आह! कितनी व्यथा है, कैसी वेदना है!"

"तो क्या वैसी ही पीर ये लोग अनुभव नहीं करते? मै किसी धार्मिक दृष्टिकोणसे नही, 'रीजनेबुल' (सकारण) और मानवताके नाते कह रहा हूँ। पीड़ाको अनुभव करने और आत्म-रक्षाकी भावना प्रत्येक जीव में है, जो सिद्ध करती है कि जीवनके प्रति वे इतने विरक्त नहीं है——न मोक्ष पानेको ऐसे व्याकुल।"

"अरे भई, कौन जानता है कि कौन क्या अनुभव करता है और मालूम नही ये लोग अनुभव करते भी हैं या नही। मेरा तो यह दावा है कि ये लोग कुछ भी अनुभव नही करते, यह सब हमारे मस्तिष्ककी उपज है।" झुँझलाकर कवि बोला और चिरायँध नाकमें पहुँचनेसे जो पानी उसके मुँहमें भर आया था, उसे सटकने लगा।

भूनकर उन्होने सैण्डोको अलग रखा। एक दैत्यने लकड़ीके बड़े कुन्देके पीछे रक्खे बहुत बड़े तलवार जैसे चाकूसे बड़ी-सी बोटी सैण्डोकी बगल-मेसे काट ली, फिर एकदम मुँहमें रख गया। एक दुर्दमनीय वमनकी उत्तेजना मेरे भीतर उठी। फिर मै उस ओर देख नही सका। मैने बड़ा साहस करके मुँह दूसरी ओर फेर लिया, पर उस ओर देखते ही मेरा भय चौगुना बढ़ गया। सामने बड़ा-सा पीपलका पेड़ था, न जाने कितनी लोमहर्षक वस्तुएँ वहाँ टँगी हुई थी। उलटे लड़के, किसीका हाथ, पैर, कही सिर, सब इसी प्रकार सजा-सजाकर लटकाये गये

थे—जैसे कसाईकी दूकानपर लटके हों। वह पीपल जैसे सारा आदमियोंकी लाशोंसे छाया हो।

"हलाल करोगे या झटका ?" तभी मैंने सुना।

"झटकेमें क्या रक्खा है, हलाल करो।"

"मैं कह नहीं सकता उस समय मेरी क्या अवस्था हो गई थी। न जाने कैसे मुझे मालूम पड़ गया कि वे मेरे ही लिए कह रहे थे। मेरा सारा शरीर एक बार जैसे 'सुन्न' पड़ गया। एक बार इच्छा हुई उठकर भाग जाऊँ, पर वह खरगोश, वह कछुआ, मछली, मुर्गी—जिनके मुँह सैण्डोकी तरह के थे, मेरे मस्तिष्कमें दौड़ गये। हे भगवान्, मुझे बचा, कुछ न कुछ शीघ्र होना चाहिए। इन लोगोंका कुछ ठीक नहीं है। कैसे निर्दयी आदमी हैं बेचारेको जीवित जला डाला—मेरा क्या करेंगे ?

तभी किसीने अचानक मेरी छातीपर जोरसे अपना वज्र-सा पाँव रख दिया। मैंने देखा वह २० फुट ऊँची भयकर मूर्ति लम्बा छुरा लिये खड़ी थी! एक क्षणको लगा उसका मुँह बकरीके बच्चेकी तरह का है, लगा—नहीं वह बवर्चीसे अधिक मिलता है। सारी शक्ति लगाकर मैंने प्रयत्न किया कि तड़पकर छूट जाऊँ, किन्तु मुझसे हिला नहीं गया। आह, ये लोग मुझे भी अभी खा जायेंगे। बड़े भयकर दृढ़ निश्चयसे वह झुका, उसकी आँखोंमें खून झलक उठा—वे मशाल-सी जल उठीं! उसका छुरा नीचे बढ़ा, मैं पूरे बलसे चीख पड़ना चाहता था, पर साँस नहीं निकल रही थी। मेरे शरीरके अणु-अणुमें ऐसी दुर्निवार छटपटाहट हो रही थी कि काश! किसी प्रकार उसके पंजेसे छूट पाता। उसका छुरा मेरी गर्दनकी ओर बढ़ रहा था। हे भगवान्, इसका हाथ एकदम टूट जाये। अभी यह मेरी गर्दन छुरेसे रेतेगा जैसे बकरेकी गर्दन रेतते हैं। उफ! मेरे सारे शरीरमें मोटे-मोटे रोंगटे खड़े हो गये थे! एक क्षणमें मेरी आँखोंके आगे दावतका दृश्य आ गया, जिसमें मेरा बड़ा स्वादिष्ट गोश्त बनाया गया है, लोग उँगलियाँ चाट-चाटकर खा रहे हैं, बोटियाँ मेरी आँखोंमें नाच उठीं, भुनता मसाला,—बोटियाँ अभी! छुरा मेरी गर्दनपर रख दिया गया था। अभी यह घूमने ही वाला है, मैं विवश हूँ, असहाय हूँ, सारी करुणा, सारी याचना, सारी दीनता अपनी आँखोंमें भरकर मैंने उस दैत्यकी आँखोंमें देखा, पर वहाँ पत्थरकी भयकर क्रूर आँखें थीं। मेरी आँखोंमें पापाजी, माताजीका चित्र चमक उठा। छुरा एक बार जोरसे फिरा ओफ! वह धार—वह पीड़ा और उस समय मेरी पसलियाँ तोड़कर छाती फाड़कर एक भयकर चीख ज्वालामुखीके विस्फोटकी भाँति फूट पड़ी—मैं अचेत!

एकदम देखा—माताजी, बवर्ची, पापाजी और न जाने कौन कौन मेरे चारों ओर घबराये से जमा थे और मैं कमरेमें बिस्तरोंके ढेरके ऊपर पसीनेसे लथपथ पड़ा धीरे-धीरे सुबक रहा था!

यह है जाड़ेकी एक रात !

—— श्री विजयचन्द्र जैन ——

एक चित्र—

यह है जाड़ेकी एक रात !
कितनी नीरव, कितनी प्रशान्त,
कितनी मादक, कितनी शीतल ?
चल रही मौलश्रीकी सुगन्धिसे सनी वायु—
हँस रहे गगनमें निशानाथ।
तारोंका पहने हुए हार,
फिर रहे नील-नभ-आँगनमें
स्वच्छन्द मेघके कोमल शिशु,
नभसे लो अमृत बरस रहा।
सारी धरती है सुधा-स्नात !
यह है जाड़ेकी एक रात !!

इस नीरवतामें कभी-कभी,
सुन पड़ता है कोकिलका रव।
पत्तोंकी मरमरके भीतर,
तिनकोंके सुखद घोंसलोंसे—
इन विहँग कुमारोंका मृदु स्वर,
कानोंमें रस-सा घोल रहा।
लो दूर गेहूँके खेतोंसे—
कोई किसान गा रहा गीत—
उसकी नरसलकी वंशी ही,
उसका कबसे दे रही साथ,
करती अपनेसे आप बात !
यह है जाड़ेकी एक रात !!

वातायनसे निर्लज्ज चाँद,
हम तुमको कैसे झाँक रहा ?
कर रहा दुष्ट अपने मनको,
हँस रहा और फिर ऊपरसे।
हम भी तो कैसे हँस-हँस कर
जगको भूले कर रहे बात,
देती हो आननसे बखेर,
निर्झर-सी निर्मल श्वेत हँसी।
मैं सोच रहा हूँ मन ही मन—
हो गया सफल मेरा जीवन,
हो गया सफल मेरा यौवन,
यह सौ रातोंकी एक रात।
आये न कभी इसका प्रभात।
यह है जाडेकी एक रात !!!

दूसरा चित्र–

यह है जाडेकी एक रात !
मुझ पै न वस्त्र हैं पूरे-से,
मैं अधभूखा, अधनंगा हूँ,
जग कहता मैं भिखमंगा हूँ,
मैं रात काटता पटडी पर,
अपने इन फटे चीथडोंमें,
पर रात आजकी तो देखो।
कितनी नीरव, कितनी भीषण ?
चल रहा आज तीखा समीर,
देता जो मेरा हृदय चीर,
हो रहा मुझे तो यह प्रतीत,
जम गया ठण्डसे आज गात।
यह है जाड़ेकी एक रात !

कहते हैं कविताके बच्चे
विरहीको लगता उष्ण चाँद
फिर क्यों मेरे ही लिए कहो,
बरसाता है यह निठुर बर्फ।
रुकती-रुकती आ रही साँस,
पेड़ोंके सूखे ठूटोंपर ;
रोते उलूक या चमगादड,
वे चिता वह्निके आसपास
लड़ रहे श्वान जो भाग्यवान् ,
उस ओर किन्हींकी कब्रें हैं,
उनमें कुछपर जल रहे दीप !!
उस ओर दूर रोदनका स्वर,
उठता गिरता, गिरता उठता—
मर गया अरे होगा कोई,
पत्नीपर जिसका दाह बोझ !
पर छोडो यह क्या नई वात !
यह है जाड़ेकी एक रात !!!

चल रहा बर्फ-सा है समीर।
तन रहा काँप, बज रहे दाँत,
मैं तो कबका मर चुका अरे।
यदि नहीं मरा, तो अब सचमुच ही मरना होगा।
मुझसे यह कटती नहीं अरे,
जाड़ेकी बेधक एक रात,
है सौ रातोंकी एक रात—
इसका न कहीं क्या है प्रभात ?



एक दूसरा तारा बीचमें ही बोल उठता है—"यह ठंडी होती हुई जिन्दगी, जिसके तमाम अरमान, तमाम खुशियाँ, जाने कबकी मर चुकी ? तुम क्या समझोगे इनको ? हमारी व्यथाको तुम जानो ही क्या ? यह हमारा नन्हा-सा तन जिसमें न तो किसीके मनमें अनुभूति भरनेकी ही सामर्थ्य है, और न किसीके भाग्यका पथ-प्रदर्शक बननेके लिए आकर्षण ही। किसीको सदा ठोकरें मारते रहो, हमेशा उपेक्षा करते रहो और अन्तमें एक दिन उससे कह दो—इन ठोकरों-को फूलोंकी माला समझो, इस उपेक्षा-को दया। उफ ! कितना बड़ा उपहास है, दुर्बलतापर कितना चुटीला व्यंग्य।"

चाँदके हँसते हुए चेहरेपर सफेदी आ जाती है। काँपते हुए स्वरमें वह कुछ कहना चाहता है, कि एका-एक रूई जैसे हलके बादलका एक टुकड़ा पूरबी आकाशसे तैरता हुआ आता है। चाँदके पास आकर बादल-की गति मन्द हो जाती है। हलके परों जैसे श्वेत वस्त्र पहने परियाकी रानी उठ खड़ी होती है और बंशी जैसा मधुर स्वर हवाकी लहरोंपर बह चलता है—

"जीवनको संकुचित दृष्टिकोणसे देखनेवाले चाँद और तारो ! अपने दृष्टिपथका विस्तार करो। जीवनके सच्चे और स्वस्थ रूपको ही अपना आदर्श मानो। दुख और सुख तो केवल मनकी विभिन्न भावनाएँ हैं, कोरी मृग-तृष्णा। उनसे बनता बिग-ड़ता ही क्या है ? मानसिक धरातल को ऊँचा उठाओ। प्यारे तारो, तुमको अपना जीवन क्षुद्र लगता है, पर क्षुद्रताका यह विचार ही क्यों ? तुम ऊँचे हो, आकाशके इस विस्तृत नील पटपर तुम्हारा अकेलेका व्यक्तित्व न सही, सामूहिक व्यक्तित्व तो अपार है। अपने एकान्त व्यक्तित्वकी साधना भूलकर सबके हितमें अपनेको लीन कर दो, और तब तुम्हारा क्षोभ एक अव्यक्त आनन्दसे विभोर हो जाएगा।"

"और तुम, चाँद ! तुम भी मत भूलो कि जीवनके परिवर्तन क्षणिक हैं। चिरन्तन सत्य जो है, वह तुम्हारा अस्तित्व है। अपनेको उठाओ, इतना अधिक कि तुम्हारे बाह्य-स्वरूप, बाह्य आकर्षणको भूलकर तुम्हारे आकाशके ये साथी—तुमको, अपना जैसा अनु-भव करने लगें।"

सफेद बादल धीरे-धीरे पश्चिमी क्षितिजकी ओर बढ़ता जाता है। स्वरोंकी गूँज मिट भी नहीं पाती है कि बंशीका-सा मधुर स्वर वातावरण-में भर जाता है। बादल दूर होता जाता है, पर मीठे स्वरोंकी गूँज नहीं मिटती। चाँद मन्त्रमुग्ध होकर स्फुट स्वरोंमें गा उठता है। आकाशके हलके-उजले सभी तारे उसका साथ देते हैं, और जान पड़ता है कि तारोंके एक अनन्त संगीतकी सृष्टि हो गई हो।

* * *



ग़नीमत हुई

श्री 'प्रभाकर'

राधारमण हिन्दीके यशस्वी लेखक हैं। पत्रोंमें उनके लेख सम्मान पाते हैं और सम्मेलनोंमें उनकी रचनाओंपर चर्चा चलती हैं। रात उनके घर चोरी हो गई। न जाने चोर कब घुसा और ट्रंक उठा ले गया—शायद जाग हो गई और वह भागा।

राधारमण बहुत परेशान है। बार-बार उसके मुँहसे निकल पड़ता है—"हाय, मेरी तो सारी उमरकी कमाई चली गई!" वह पागल हुआ जा रहा है। बात हवापर चढ़ी, पड़ौसमें फैल गई—पचासों आदमी आ जुटे—एक भीड़ लग गई।

"अब हुआ, सो हुआ। भगवान् और देगा। दुखी मत हो, सन्तोष करो बेटा!" बूढ़ोंने सान्त्वनाके शब्द कहे।

कई तरुण कण्ठ एक साथ खुल पड़े "राधे! आखीर चला क्या गया?"

"मेरेवाला ट्रंक चला गया और देखो, उसके पास हीं किशोरीके जेवरका ट्रंक बच गया!"

"क्या था तुम्हारे ट्रंकमें?" उत्सुकता उमड़ पड़ी।

"पुराने मासिक पत्रोंकी कतरनें और मेरे तीन ग्रन्थोंकी पाण्डुलिपियाँ थीं, हाय, अब क्या होगा भगवान्!"

बूढ़ोंकी आकुलता शान्त हो गई। उन सबकी ओरसे ही जैसे, रमाशंकरने कहा—"ख़ैर, ग़नीमत हो गई बेटा, कि जेवर बच गया। क़ाग़ज़ोंका क्या, फिर लिख लेना। तू तो रात-दिन लिखता ही रहता है।"

बिहारी दादाने पूर्ण सन्तोषकी मुद्रामें लौटते हुए कहा—"ले बोल, हम तो घबरा ही गये थे कि जाने क्या दौलत लुट गई!"

राधेने इधर ध्यान नही दिया। उसके कलेजेमे काँटा-सा चुभ रहा था—"ख़ैर गनीमत हुई!" और वह सोच रहा था कि जेवर चला जाता, तो शायद वह भी यही कहता!"

इस कहानीको पढ़कर मुझे आपबीती एक घटना स्मरण हो आई। घटना सम्भवतः १९२५ या २६ की है। मेरे हाथमे एक रजिस्टर था, उसे मै अपने एक परिचित पंसारीको थोड़ी देरके लिए रख लेनेको कहकर किसी कामसे चला गया। आध घण्टेमे वापिस आकर देखता हूँ तो रजिस्टरसे काग़ज फाड़-फाड़कर सौदा बाँध कर ग्राहकोंको दिया जा रहा है। मैने घबराकर रजिस्टर उठाया तो, बूढ़े लाला सहज स्वभाव बोले—"अच्छा, यह तुम रख गये थे, मुझे खयाल ही नही रहा। ख़ैर कोई हर्जा नहीं हुआ। कोरा कागज एक भी नही छुआ, सिर्फ लिखे लिखे ही फाड़े है।"

---- लिखे हुए कागज़ोंके जाया जानेका रंज तो हुआ ही, मगर उनके भोलेपनने वह मज़ा दिया कि कुछ न पूछिये।

—गोयलीय

दिल्लीके जैन मन्दिर और जैन संस्थाएँ

श्री पन्नालाल जैन अग्रवाल

अरसेसे यह विचार चल रहा था कि देहलीके जैन मन्दिर और जैन संस्थाओंका एक संक्षिप्त परिचय सर्वसाधारणके लिए संकलित किया जाय। आज उसे ही यहाँ स्थान-क्रमसे पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसमें यदि कहीं कुछ कमीबेशी रही हो तो उक्त संस्थाओंसे परिचित सज्जन उससे सूचित करनेकी कृपा करें —

धर्मपुरा—

(१) नया मन्दिर—यह ला० हरसुखरायजीका विशाल मन्दिर है। वि० सं० १८५७, ई० सन् १८०० में इसका बनना प्रारम्भ हुआ था और वैशाख सुदी ३ सं० १८६४, ई० सन् १८०७ में प्रतिष्ठा हुई थी। दर्शनीय वेदी, पच्चीकारीका अद्भुत काम, दीवारोंपर सुनहरी चित्रकारी, प्राचीन हस्तलिखित लगभग १८०० शास्त्र और छपे हुए प्रायः सभी शास्त्रोंका संग्रह ये सब इस मन्दिरकी विशेषताएँ हैं। स्फटिक, नीलम, मरकत और पाषाणकी सं० १११२ की बनी हुई कितनी ही प्रतिमाएँ यहाँ हैं। दोनों समय इसमें पुरुषोंकी शास्त्रसभा होती है। स्त्रीसमाजकी भी एक शास्त्रसभा सुबहके वक्त हुआ करती है।

(२) स्वाध्यायशाला, (३) आराईशफण्ड (मिथ्यात्वतिमिरनाशिनी दि० जैन सभाश्रित), (४) जैन पाठशाला (चौथी कक्षा तक) स्थापित संवत १९४३, सन् १८८६, (५) जैनवस्त्रफण्ड (दि० जैनप्रेमसभाश्रित), (६) मित्रमण्डल कार्यालय—स्थापित सन् १९१५, (७) श्रीवर्धमान पब्लिक लायब्रेरी—स्थापित सन् १९२७, (८) धर्मशाला—श्रीमती द्रोपदी देवीकी (भूमि नये मन्दिरजीकी) स्थापित संवत् १९९४, सन् १९३७, (९) धर्मशाला—कमरा, धर्मपत्नी ला० चन्दूलाल मुलतानवालोंका, स्थापित संवत् १९७६,

सन् १९२२, (१०) जैनकन्याशिक्षालय—स्थापित सन् १९०८ (पाँचवीं कक्षा तक)। ये दश संस्थाएँ मुहल्ला धर्मपुरामें है।

गली पहाड़के बाहर—

(१) चैत्यालय—ला० भौदूमलजी द्वारा निर्मापित, (२) चैत्यालय—ला० मीरीमलजीका। ये दो जैनमन्दिर मुहल्ला गली पहाड़के बाहरमें हैं।

मस्जिद खजूर—

(१) पंचायती मन्दिर—यह मन्दिर लगभग २०३ वर्ष पुराना सन् १७४३ का बना हुआ है जिसका पीछे कुछ वर्ष हुए नूतन संस्कार हुआ था और उससे इसने विशाल रूप धारण किया है। इसे शुरूमें मुहम्मदशाहके कमसरियेट डिपार्टमेंटके आफ़िसर आज्ञामलने बनवाया था और बादको उसे पंचायती किया था। इसमें ३ विशाल प्रतिमाएँ हैं जिनमें पार्श्वनाथ जीकी मूर्ति श्यामवर्ण ५ फ़ुट ६ इंच ऊँची और ३ फ़ुट ५ इंच चौड़ी है। अन्य दो प्रतिमाएँ श्वेत रंगकी है, जिनमे प्रत्येक ३ फ़ुट ५ इंच ऊँची और २ फ़ुट ८॥ इंच चौड़ी हैं। इनके अलावा कई रत्नप्रतिमाएँ, हस्तलिखित लगभग ३००० शास्त्र और छपे हुए कितने ही शास्त्रोंका संग्रह आदि भी इस मन्दिरकी विशेषताएँ हैं।

(२) धर्मशाला—पंचायती मंदिरकी।

मस्जिद खजूरके बाहर—

(१) पद्मावती पुरवाल दि० जैन मन्दिर—स्थापित सन् १९३१।

(२) मेहरमन्दिर—ला० मेहरचंदजीका बनाया हुआ, जिसमें १६७००० रुपये खर्च हुए। प्रतिष्ठा २३ जनवरी सन् १८७९ को हुई। नन्दीश्वरद्वीपके ५२ चैत्यालयोंकी अपूर्व रचना, छपे हुए व हस्तलिखित शास्त्रोंका संग्रह, प्रातःकाल शास्त्रसभा, ये इस मस्जिद खजूरके मेहर मन्दिरकी ख़ास चीज़ें हैं।

वैद्यवाड़ा—

(१) दिगम्बर जैन बाड़ा मन्दिर—मय चैत्यालय शान्तिनाथ स्वामी, लगभग २०५ वर्ष पुराना (सन् १७४१ में निर्मित, विशाल प्रतिमा, स्फटिककी प्रतिमाएँ, हस्तलिखित शास्त्रभंडार, स्त्रीसमाजकी शास्त्रसभा ये सब इसकी विशेषताएँ हैं। (२) शान्तिसागर दि० जैन कन्यापाठशाला (पाँचवीं कक्षा तक), (३) सुन्दरलाल दि० जैन औषधालय, (४) सुन्दरलाल दि० जैन धर्मशाला और (५) चैत्यालय (गलीमें), ये इस वैद्यवाड़ाके धर्मायतन है।

सदरबाजार—

(१) हीरालाल जैन हायर सेकेंडरी स्कूल—स्थापित सन् १९२०।

(२) शिवदयाल फ्री नाईट स्कूल (श्रीपार्श्वनाथ युवक मंडल द्वारा संचालित)।

(३) 'जैन संसार' (उर्दू मासिक) पत्र कार्यालय।

(४) धर्मशाला—ला० मूलचन्द मुसद्दीलालकी। ये सदर बाजारकी संस्थाएँ है।

डिप्टीगंज उर्फ़ महावीर नगर—

(१) लाल चैत्यालय, (२) श्री लालचन्द जैन धर्मार्थ औषधालय—स्थापित सन् १९४०। ये दोनों धर्मा-

संवत् १८९१ (सन् १८३४) में जिसकी प्रतिष्ठा हुई। स्फटिककी मूर्तियें, संवत् १२५१ की मूर्ति, लगभग १४०० हस्तलिखित शास्त्र और छापेके ग्रन्थोंका इसमें अच्छा संग्रह है। पुरुषसमाजकी शास्त्रसभा होती है। (२) वतनफंड (जैन सेवासमितिके तत्त्वावधानमें)। (३) छोटा मन्दिर–ला० इन्द्रराजजीका बनवाया हुआ लगभग १०६ वर्ष पुराना (सन् १८४०) इसमें संवत् १५४९ की प्रतिमाएँ हैं। ला० इन्द्रराजजीने कावुलके एक दुर्रानीसे एक प्रतिमा अपना सब सामान बेच कर ५००) रुपयेमें खरीदी थी। उसे पहले अपने घरमें प्रतिष्ठित किया, बादमें पंचोंके सुपुर्द कर दिया। दुर्रानी से जो प्रतिमा खरीदी थी वह संवत् १५४९ की थी। (४) जैन धर्मशाला, (५) मुनि नमिसागर परमार्थ पवित्र औषधालय—स्थापित सन् १९३१ (६) जैन संस्कृत व्यापारिक विद्यालय, आठवीं कक्षा तक (रजिस्टर्ड), स्थापित सन् १९११ में।

गली अनार—धर्मपुरा—

(१) चैत्यालय बीबी तोखन।

सतघरा—धर्मपुरा—

(१) चैत्यालय मुंशी रिखबलाल। (२) मन्दिर—ला० चन्दामल, स्त्री-समाज शास्त्रसभा, (३) श्राविका-शाला।

सतघरा (बाहर) धर्मपुरा—

(१) हिसार—पानीपत अग्रवाल दि० जैन पंचायत कार्यालय—हाउस नम्बर ९४८।

छत्ता शाहजी (चावड़ीबाजार)—

अग्रवाल जैन औषधालय—ला० अमरसिंह धूमीमल नागजीका, स्थापित सन् १९३६।

नई सड़क—

(१) भारतवर्षीय दि० जैन महासभा कार्यालय (रजिस्टर्ड) स्थापित सन् १८९४ में। (२) जैनगजट (साप्ताहिक) पत्र-कार्यालय।

कटड़ा खुशालराय—

(१) अग्रवाल दि० जैन मन्दिरान मैनेजिंग कमेटी कार्यालय हाउस नम्बर ६९२।

गन्दानाला—

(१) जैन मन्दिर।

सब्जीमंडी—

(१) पार्श्वनाथ मन्दिर (बर्फखानेके पास)। (२) आदिनाथ-मन्दिर (गली मन्दिरवालीमें), स्त्री-समाजकी शास्त्रसभा, (३) श्री शान्तिसागर दि० जैन कन्या पाठशाला (पांचवीं कक्षा तक)। (४) श्री शान्तिसागर दि० जैन औषधालय। (५) दि० जैन महावीर चैत्यालय (जमना मीलस), (६) जैन विद्यार्थीमंडल (सभा) व पत्र कार्यालय (मासिक) रोशनारा रोड।

मोगल–जगपुरा देहलीसे ४ मीलकी दूरी पर—

(१) यहाँ एक जैन चैत्यालय और (२) जैन कन्या पाठशाला है।

पटपड़गंज देहलीसे ५ मील दूर—

(१) यहाँ एक जैन मन्दिर है, जो ला० हरसुखरायजीका बनवाया हुआ है।

देहली शाहदरा देहलीसे ४ मील दूर—

(१) जैनमन्दिर ला० हरसुखरायजीका बनवाया हुआ मन्दिरवाली गली

में शास्त्रभंडार सहित है। (२) जैन पाठशाला, (३) रघुवीरसिंह जैनधर्मार्थ औषधालय।

कुतुबमीनार (देहलीसे ११ मील दूर)

(१) खंभोंपर जैन मूर्तियाँ खुदी हुई है (कीली लोहेके सामनेकी दालानमें नीचे तथा ऊपरकी मंजिलमें)

नोट—यहाँ तक जितना परिचय दिया गया वे सब मन्दिर और संस्थाएँ दिगम्बर जैन है।

श्वेताम्बर और स्थानकवासी जैन संस्थाएँ

चेलपुरी—

(१) श्वेताम्बर जैन मन्दिर, सन् १८१६ का

किनारीबाज़ार—

(१) आतमवल्लभ जैन धर्मशाला, स्थापित १८ अप्रैल सन् १९३६, (२) श्री आतमवल्लभ प्रेमभवन उपनाम श्री जैन श्वेताम्वर धर्मशाला, स्थापित संवत् १९५२, सन् १८९४, पुस्तकोंके संग्रह सहित।

कटरा खुशालराय—

(१) जैन श्वेताम्बर पौशाल श्रीसंघ श्रीरंगसूरीश्वर खतरगच्छकी स्थापित संवत् १९८३, सन् १९२६। (२) जैन जागृति संघ कार्यालय (तीनों संप्रदायोंका)।

नवघरा—

(१) श्वेताम्बर जैन मन्दिर लगभग २३० वर्ष पुराना अर्थात् सन १७१६ का।

वैद्यवाड़ा

(१) श्री जैन श्वेताम्वर खतरगच्छीय जैनधर्मशाला, लाला नवलकिशोर खैरातीलाल रक्यान जौहरीकी स्थापित संवत् १९८२, सन् १९२५।

मालीवाड़ा—

(१) स्थानक (पत्तलवाली गलीमें) (२) महावीर जैन औषधालय। (३) श्री गंगादेवी धर्मार्थ ट्रस्ट (गली दारोगा कन्हैयालाल, मकान न० २०७९ में)।

चीराखाना—

(१) चिन्तामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर मन्दिर। (२) श्री जैन तरुणसमाज कार्यालय, (३) श्री एस. एस. जैन कन्या पाठशाला (छठी कक्षा तक), (४) धर्मशाला मुन्नालाल सिंघी, मकान नं० ३८३।

नई सड़क—

(१) श्री महावीर जैन हाईस्कूल।

चाँदनी चौक—

(१) श्री एस. एस. जैन महावीर भवन। (२) महावीर जैन पुस्तकालय, स्थापित सन् १९२३।

मंडीरूई—

(१) जैन श्रमणोपासक मिडिल स्कूल, स्थापित सन् १९१६।

डिप्टीगंज—

(१) श्री जैन श्वेताम्बर स्थानक, (२) श्री जैन पब्लिक लायब्रेरी।

सब्ज़ी मंडी—

(१) श्री पार्श्वनाथ जैन लायब्रेरीमय धर्मशाला, (२) स्थानक सोहनगंज (चन्द्रावल रोड)।



गणधर सार्धशतक और बृहद्वृत्ति

श्री मुनि कान्तिसागर

[१]

जैन धर्मसे सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थोंके भाण्डारमें गणधरसार्धशतक और उस सुवर्णकणोंके लघु समुदायका बृहद्वृप्य 'बृहद्वृत्ति' अपना बडा ही महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। गणधरसार्धशतक प्रसिद्ध गणधरोंकी प्रशस्तिका सूत्ररूप लघु संग्रह है। इसमें एक सौ पचास प्राकृत गाथाएँ पैंतीस गणधरोंका संक्षिप्त प्रशंसात्मक परिचय देती हैं। गणधरसार्धशतकके निर्माता प्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीजिनदत्त सूरिका जन्म गुजरात प्रान्तके धवलक्कपुर स्थानमें हूंबड वैश्यकुलोत्पन्न श्री वाछिग जीकी धर्मपत्नी वाहडदेवीसे विक्रम संवत् ११३२ में हुआ था। श्री धर्मदेवोपाध्यायने प्रतिभावान असाधारण बालकको देखकर उसकी मातासे बालकके श्रीसम्पन्न गुणोंकी चर्चा की तथा संसारके हितके लिए उसे मुनि बना लेनेकी अनुमति माँगी। भक्तिसिक्त हृदयवाली माताने संसारके कल्याणार्थ मातृहृदयमें बल सञ्चित कर बालकको दीक्षित होनेकी आज्ञा दे दी। संवत् ११४१ में श्री धर्मदेवोपाध्यायजीने नव वर्षके उस बालकको दीक्षा देकर सोमचन्द्र नामसे विभूषित किया। श्री धर्मदेवोपाध्यायजी जिनचन्द्र सूरिजीके खरतरगच्छके आचार्य थे इसीलिए सोमचन्द्रजी भी खरतरगच्छीय हुए। इसके २८ वर्षके पश्चात् श्री जिनवल्लभ सूरिजीके स्वर्गारोहणके बाद श्री देवभद्राचार्यने सोमचन्द्रजीकी तपस्या और प्रतिभाकी शक्ति देखकर उन्हें ही श्री जिनवल्लभ सूरिजीके स्थानपर श्री जिनदत्त सूरिके नामसे अभिषिक्त किया। इस प्रकार नव वर्षका वह प्रतिभावान् बालक सैंतीस वर्षकी अवस्थामें संवत् ११६९ में सूरिपदपर प्रतिष्ठित हुआ। श्री जिनदत्त सूरिकी प्रतिभाने श्रावकोंके हृदयपर अपना पूर्ण पवित्र अधिकार स्थापित कर उन्हें आदर्श श्रावक बनानेमें पूरी सफलता प्राप्त की। यही जिनदत्त सूरि गणधरसार्धशतकके प्रणेता हैं।

जिस समय जैनधर्मके युगप्रवर श्री जिनदत्त सूरि भारतवर्षमें अवतीर्ण हुए थे उस समयका राजनीतिक वातावरण भी यदि हम थोडा सा जान लें तो उस पृष्ठभूमिपर इस प्रधान नायकका चित्र और प्रभावोत्पादक हो जायगा।

श्री जिनदत्त सूरिजीने ईस्वी सन् १०७५ से ११५४ के मध्यके समयको सार्थक किया था। विक्रम संवत्के अनुसार यह समय ११३२ से १२११ आषाढ़शुक्ल एकादशी तकका है। इसी आषाढ़ शुक्ल एकादशीको श्री जिनदत्त सूरिजीका उन्यासी वर्षकी आयुमें स्वर्गारोहण हुआ।

इसी समयके वीचमें कश्मीरमें १०६३ सन्से ११५० सन् तक तीन राजा हुए। क्रमानुसार प्रथम कलश, द्वितीय हर्ष तथा तृतीय जयसिंह हैं। इन्हीं जयसिंहके समयमें "अलंकार-सर्वस्व" कार राजानक रुय्यक सभा-पंडित थे। कन्नौजमें राठोरवंशीय राजा राज्य करते थे। श्री जिनदत्त सूरिके समकालीन गोविन्दचन्द्र ११०४ सन्से सन् ११५५ तक पाञ्चालके राजा थे। नैषध काव्य तथा 'खण्डन-खण्डखाद्य' वेदान्त ग्रन्थके प्रणेता श्री हर्ष इन्हींके सभापति माने जाते है। जयचन्द संयोगिताके पिता इनके पौत्र थे। पृथ्वीराजके साथ इन जयचन्दके वैमनस्यके कारण भारतवर्षको विदेशी दासत्वका विशेषतः बौद्धिक दासत्वका अनुभव आज तक आंशिक रूपसे करना पड़ रहा है। वुन्देलखण्डमें चन्देल राजा कीर्तिवर्माने सन् १०४९ से ११०० तक राज्य किया। इनके अन्तिम समयमें श्री जिनदत्त सूरि पचीस वर्षके रहे होंगे। इन्हीके समय-मे श्रीकृष्ण मिश्रने प्रवोधचन्द्रोदय नाटक लिखा और १०६५ सन्में कीर्तिवर्माके राजदर्बारमें उसका अभिनय हुआ।

बंगाल और विहारमें पालवंशीय राजा रामपाल बड़े प्रतापी थे। इन्होंने सन् १०८४ से ११३० तक राज्य किया। सन् १०८४ में ही श्री जिनदत्त सूरिजीको श्री सोमचन्दके नामसे दीक्षा दी गयी थी। राजा रामपालकी मृत्युके समय जिनदत्तजी सूरि ५५ वर्षके रहे होंगे। इस कालमें मगधके विहारोंमें बौद्धोंकी प्रधानता थी।

पालवंशीय राजाओंकी सीमाके भीतर ही एक भागपर अधिकार करके सामन्तदेवके पौत्र तथा हेमन्तसेनके पौत्र तथा हेमन्तसेनके पुत्र विजयसेनने सेन-वंशका राज्य स्थापित किया। सामन्त-देव दक्षिणसे आये हुए थे तथा मयूर-भंज रियासतके कसियारीमें पिता-पुत्र ने एक छोटा सा राज्य स्थापित किया था। ११०८ सन्के पूर्व ४२ वर्ष तक विजयसेनने राज्य किया था। इस समय श्री जिनदत्त सूरि ३३ वर्षके रहे होंगे। ११०८ के आसपास विजय-सेनके पुत्र वल्लभसेनने शासनकी बाग-डोर अपने हाथमें ली। नवद्वीपके विद्यापीठका शिलान्यास इन्होंने ही किया था। सेनवंशीय राजा ब्राह्मण थे और इन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी सुदृढ़ स्थापना वंगालमें की। सन् १११९ में इनके पुत्र लक्ष्मणसेन गद्दीपर आये और इन्होने ८० वर्ष राज्य किया। इनके राजत्वकालके प्रथम ३५ वर्षोंमे श्री जिनदत्तजी सूरि राजपूतानेमें धर्म-विस्तार कर रहे थे। गीत-गोविन्दकार जयदेवजी इनकी सभाके पंचरत्नोंमे थे। लक्ष्मणसेनका दरवार भागीरथीके तट-पर नवद्वीपमें लगता था। नवद्वीपके विद्यापीठकी इन्होंने वड़ी उन्नति की।

श्री जिनदत्त सूरिजीके समयमे

दक्षिण भारतमें कल्याणी चालुक्यवंशका राज्य था। निजाम राज्यमें गुलवर्गा के पास कल्याण नामक शहर इस वंशकी राजधानी था। श्री जिनदत्त सूरिजीके जन्मके एक वर्ष पश्चात् सन् १०७६ में कल्याणी चालुक्य विक्रमाङ्क (विक्रमादित्य षष्ठ) सिंहासनारूढ हुए। सन् ११२७ तक ये राज्य करते रहे। इस समय श्री जिनदत्त सूरिजीकी अवस्था ५२ वर्षकी थी। विक्रमाङ्कके पुत्र सोमेश्वर तृतीय ११२७ से ११३८ तक राज्य करते रहे। यहाँ तक सूरिजी ६३ वर्षके थे।

श्री जिनदत्त सूरिजीके जन्मके एक वर्ष पूर्व ही सन् १०७४ में दक्षिण में चोलवंशीय राजाओंमें अन्तिम राजा अधिराजेन्द्रके समय तक विशिष्टाद्वैत मतके प्रवर्तक रामानुजाचार्य इस शैव राजाके त्रास मैसूर हीमें रहे। इनके बाद अन्यत्र चले गये।

इसी समय मैसूर (महीशूर) के होयल वंशीय राजा जैनधर्मके आश्रयदाता थे। इस वंशके प्रथम नरेश विट्टिदेवने द्वारसमुद्रको अपनी राजधानी बनाया। ये सन् ११११ से ११४१ तक राज्य करते थे। यह समय श्री जिनदत्त सूरिजीके छत्तीसवें वर्षसे छाछठवें तकका है। इनके मन्त्री गंगराजने जैनधर्मको आश्रय दिया। चोल आक्रमणसे नष्ट जैन मन्दिरोंको इन्होंने फिरसे बनवा दिया। इसके बाद रामानुजाचार्यसे विट्टिदेवने वैष्णव धर्मकी दीक्षा ले ली और विष्णु अथवा विष्णुवर्धनके नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्री जिनदत्त सूरिजीके समकालमें कलिंगके पूर्वगंग राजाओंमेंसे राजा अनन्तवर्मा राज्य करते थे। इनका राजत्वकाल १०७६ से ११४७ तक है। सूरिजीके द्वितीय वर्षसे बहत्तरवें वर्ष तक अनन्तवर्मा राज्य करते रहे। गंगासे गोदावरी तक इनका राज्य फैला हुआ था। श्री जगन्नाथका मन्दिर इन्हींके समयमें बना था। श्री जिनदत्त सूरिजीके समयसे जगन्नाथके मन्दिरका समय भी सम्बद्ध है।

इसके उपरान्त श्री जिनदत्त सूरिजीकी जन्मभूमि तथा उनके प्रधान कर्मक्षेत्र गुजरातके समकालीन राजनीतिक वातावरणपर भी किञ्चित् ध्यान देना आवश्यक होगा। वैसे तो विहारक्रमसे सूरिजी गुजरातसे नागपुर इत्यादि स्थानोंमें आये थे, पर इनकी प्रधान कर्मभूमि गुजरात और मरुभूमि ही है। गुजरातमें चालुक्यवंशीय राजाओंका शासन ईसाकी सप्तम शताब्दीसे ही प्रारम्भ हो गया था। पर आठवीं शताब्दीमें सिंधके अरब सरदारके आक्रमणसे इस वंशकी शक्ति कम हो गयी थी। दशम शताब्दीके अन्तमें ९६१ से तेरहवीं शताब्दीके मध्य १२४२ तक अनहिलवाडपट्टनमें चालुक्यवंशीय राजाओंने गुजरातपर शासन किया। ई० सन् ७२० के लगभग अनहिलवाड पट्टनको गुजरातकी राजधानी बननेका अवसर मिला था।

चालुक्यवंशीय प्रायः सब राजाओंने जैन धर्मको आश्रय दिया था। श्री जिनदत्त सूरिजीके समयमें इस वंशके राजा कर्ण सन् १०६४ से १०९४ तक राज्य करते थे। सन्

१०९४ में सूरिजीकी अवस्था उन्नीस वर्षकी थी। इस समय उन्हें सोमचन्द्र नामसे विभूषित हुए दस वर्ष हो चुके थे; क्योंकि सन् १०८४ में ही सूरिजीको नव वर्षकी अवस्थामे दीक्षा दी गयी थी। कर्णने कई मन्दिर और तालाब बनवाये। उनमेंसे अनहिलवाड़का कर्णमेरु मन्दिर तथा कर्णावती (अहमदाबाद)का कर्ण सागर प्रसिद्ध है। कर्नाटकके कदम्ब राजा जयकेशी की कन्यासे इनके पुत्र जयसिह सिद्धराज उत्पन्न हुए। सिद्धराज वड़े प्रतापी थे। शैव होनेपर भी जैनधर्मसे इनका अनुराग कम न था। पिताकी मृत्युके समय सिद्धराज बालक थे। शासनका कार्य बालकके लिए माता ही करती रही। वयस्क होने पर सिद्धराजने शासन प्रारंभ किया तो माताने उनसे सोमनाथके मन्दिरका कर माफ़ करवा दिया था। त्रैलोक्यमल्ल तथा राजराज इत्यादि इनकी कई उपाधियाँ थीं। गुजरातका प्राचीन शिल्प इन्हींके समयमें उन्नत हुआ था। प्रसिद्ध पंण्डित हेमचन्दाचार्य इनकी सभाके प्रधान पण्डित थे। वाग्भटालङ्कारके रचयिता विख्यात वाग्भट इनके महामात्य थे।

इन्हीकी राजसभामें श्वेताम्बर जैन आचार्य भट्टारक देवसूरि और कर्नाटकके दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचन्द्रमें शास्त्रार्थ हुआ था। इस शास्त्रार्थका निर्णय करनेके लिए हेमचन्द्राचार्यजीने मध्यस्थता की थी।

जयसिंह सिद्धराजका शासन-काल सन् १०९४ से ११४३ तक था। यह समय श्री जिनदत्तजी सूरिके वयके उन्नीसवें वर्षसे अड़सठवें वर्ष तक था।

जयसिंह सिद्धराजके पश्चात् उनके भतीजे कुमारपाल पचास वर्षकी अवस्थामें राजा हुए। इनका शासनकाल ११४३ से सन् ११७४ तक था। इनके प्रधान उपदेशक हेमचन्द्राचार्यजी थे। कपर्दी तथा वाग्भट उनके अमात्य थे। इन कुमारपालके समय ही श्री जिनदत्त सूरिजीका स्वर्गारोहण हुआ।

अजयमेरु (अजमेर) के अर्णोराज तो जिनदत्तजी सूरिके शिष्य ही थे। सम्भव है सम्हार (शाकम्भरी) तथा अजमेरके अधिपति चौहानवंशीय प्रसिद्ध विग्रहराज चतुर्थ भी इनके समकालीन रहे हों। विग्रहराज चतुर्थ ही प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहानके पितृव्य थे।

भारतवर्षकी इस ऐतिहासिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमिपर इस प्रधाननायक प्रसिद्ध महात्मा श्री जिनदत्त सूरिजीका चित्र अङ्कित है। इन राजाओंमेंसे वहुतोंपर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सूरिजीका प्रभाव पड़ा होगा। इनके द्वारा प्रसारित उपदेशोंका प्रभाव तो प्रत्येकपर पड़ा ही था; क्योंकि मानव धर्मके शाश्वत सिद्धान्तोंके उपदेशक ये महात्मा लोग हुआ करते थे। "सत्य और अहिसा" इनका मूलमन्त्र था।

जिनदत्त सूरिजीकी रचनाएँ

प्रायः प्रत्येक धर्मके युगप्रवर अद्वितीय प्रतिभा लेकर ही अवतीर्ण हुआ करते हैं। जैन युगप्रवर भी प्रतिभाकी अतुल सम्पत्ति लेकर ही अवतीर्ण हुए थे। जिनदत्त सूरिजीके पूर्व

वैदिक धर्ममें भी अद्वैत वेदान्तका प्रतिपादन करते हुए जब श्री शङ्कराचार्यने नाम और रूपको उपाधि मात्र माना और मायाको भ्रम कह दिया तब तो पुराण-कालकी अवतार-भावनाको बडा धक्का लगा। शक्ति-शील-सौन्दय-सम्पन्न भगवान्के अवतार अब भ्रमसे प्रतीत होने लगे। जब माया केवल भ्रम है तो ब्रह्म मायाके आवरणमें आ ही कैसे सकता है। इसलिए भक्तोंके लिए सगुण ब्रह्म रूपवान्, शरीरी अवतारकी स्थली अब शून्य और अन्धकारमय ही दिखलायी पडने लगी। इसी समय श्री जिनदत्त सूरिजीके समकालीन विशिष्टाद्वैत मतके प्रवतक आचाय रामानुजका जन्म हुआ। इन्होंने ब्रह्म (अद्वैत) को माया-का विशेषण देकर विशिष्ट कर दिया। इन्होंने भक्त हृदयको फिर आश्रय दिया यही कहकर कि माया भी सत्य है, ब्रह्मका एक अश है। ब्रह्ममें चेतन आत्मा तथा जड प्रकृति दोनोंके अश हैं। ब्रह्म इन सबके साथ रहता है। इससे अवतारवादको फिर आश्रय मिला और अपनी हीनावस्थामें शक्ति, शील और सौन्दर्य सम्पन्न राम और कृष्णकी उपासना कर जाति शक्ति-सम्पन्न हुई। इसी युगमें रामानन्द, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य इत्यादि धर्म प्रवतक तथा सूर, तुलसी, मीरा, सहजो इत्यादि सगुणोपासक कवि जैनाचार्योंके साथ ही ससारको स्वर्ग बनानेके कार्यमें लगे थे। सूरिजीके साथ इनमेंसे केवल रामानुज जी थे। गीतगोविन्दकार कृष्णभक्त महात्मा जयदेवजी सूरिजीके समकालीन हैं।

श्री जिनदत्त सूरिजी भी महात्माओं-का एक प्रवाह लेकर ही अवतीर्ण हुए थे। यद्यपि इनके समयमें हिन्दू राज्य प्राय सबल थे, पर वे सब सोमनाथके युद्धमें गजनवी द्वारा विजित हो चुके थे। इसीलिए असत्यके बाद सत्य और अहिंसाका प्रचार करनेके लिए जैन मुनियोंकी यह मन्दाकिनी बह पडी थी। इसका प्रभाव केवल हिन्दुओं पर नही प्राणिमात्र पर पडा था। बहुतसे यवन इत्यादि भी इन महात्माओंके प्रभावसे प्रभावित हुए थे। सूरिजीके समकालीन विभूति निम्नाङ्कित हैं —

(१) जिनभद्र सूरि (२) देवचन्द्र सूरि (३) देवभद्र सूरि (४) धनेश्वर सूरि (५) नन्न सूरि (६) पार्श्वदेव गणि (७) महेन्द्र सूरि (८) मुनिचन्द्र सूरि (९) यशोदेव सूरि (१०) यशो-देवोपाध्याय (११) रत्नप्रभ सूरि (१२) रामचन्द्र सूरि (१३) रामदेव गणि (१४) वर्धमान सूरि (१५) शान्ति सूरि (१६) सिद्ध सूरि (१७) हरिभद्र सूरि (१८) हेमचन्द्र सूरि (१९) आम्र-देव सूरि (२०) चक्रेश्वर सूरि (२१) चन्द्रप्रभ सूरि (२२) चन्द्रसेन सूरि (२३) विजयसिंह सूरि (२४) वादिदेव सूरि (२५) वीराचार्य सूरि।

इतने प्रतिभावान् महात्मा प्राय एक समयमें ही भारतवर्ष भरमें विहार करते हुए सत्य और अहिंसाका सन्देश प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचानेका पुण्य प्रयत्न कर रहे थे। इन्हीं महात्माओंका प्रभाव है कि मानसिक दासताके बन्धनमें पडी हुई जाति आज तक अपने हृदयको पवित्र रख सकी है और धर्मका सात्त्विक बल आज तक दिख-

लायी पड़ रहा है। इन्ही सब महात्माओंके प्रभावके कारण आज भी भारतवर्षका त्यागी हृदय महात्मा गांधीके रूपमें सत्य और अहिंसाके सन्देशसे जातीय जीवनको इतना सबल बनाकर राष्ट्रको एक नवजीवन दे सका।

जिनदत्त सूरिजीके समकालीन जितने भक्त थे वे सब अच्छे कवि भी थे; पर इनके अतिरिक्त भी बहुत-से ख्यात कवि, इतिहासकार, कोषकार तथा साहित्याचार्य थे। हेमचन्द्राचार्य १०८८ सन् से सन् ११७२ तक भारत-वर्षके धार्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्रको अपनी प्रतिभासे आलोकित करते रहे। साहित्य, व्याकरण, छन्द, धर्म, दर्शन, कोष इत्यादि प्रत्येक क्षेत्रमें इनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। ये सूरिजीसे तेरह वर्ष छोटे थे; पर इनका स्वर्गा-रोहण सूरिजीसे अठारह वर्ष बाद हुआ। औचित्यविचारचर्चा तथा कविकण्ठाभरण इत्यादिके प्रणेता क्षेमेन्द्र सन् १०२५ से १०८० तक थे। इनके समयमें सूरिजी केवल पाँच वर्ष के थे।

प्रसिद्ध काव्यप्रकाशके लेखक मम्मटाचार्य सन् १०५० से ११०० तक थे। ये सूरिजीसे २५ वर्ष बड़े थे और सूरिजी जब २५ वर्षके हुए तब मम्मट-का स्वर्गवास हुआ। अलङ्कारसर्वस्व-कार रुय्यक भी इनके समकालीन ही थे। सन् ११४९ में कल्हणने राज-तरंगिणी लिखी उस समय सूरिजी ७४ वर्ष के थे।

यादव प्रकाशजी सन् १०५५ से ११३७ तक थे। इन्होंने वैजयन्ती-कोषका संग्रह किया। रामानुजाचार्य-के विद्यार्थी जीवनमें ये उनके गुरु थे; पर बादमें प्रतिभावान् आचार्यसे इन्होंने दीक्षा ले ली और उनके शिष्य हो गये। यह एक विचित्र घटना है। इनके स्वर्गवासके समय सूरिजीकी अवस्था ६२ वर्ष की थी।

विश्वप्रकाश कोषके रचयिता महेश्वर सन् ११११ में थे। सन् १११२ में सूरिजी इस पदपर प्रतिष्ठित हुए थे। नानार्थसंग्रह कोषके निर्माता अजयपाल ११४० सन्के पूर्व थे। इस समय सूरिजी ६५ वर्षके थे। हारा-वलि इत्यादि कोषोंके रचयिता पुरु-षोत्तम देव ११५९ के पूर्व ही थे। यह समय सूरिजीके स्वर्गारोहणके पाँच वर्ष बादका है।

सोमपालविलास, सप्तशतीछाया तथा सूक्तिमुक्तावलीके रचयिता जल्हण ११४७ में थे। ये भी सूरिजीके समकालीन ही थे। इस प्रकार अद्वि-तीय प्रतिभासम्पन्न महात्माओके समयमें सूरिजीने युगप्रवर श्री जिन-वल्लभ सूरिजीका स्थान प्राप्त किया और अपने समयकी साहित्यिक प्रवृ-त्तियोके अनुसार इनमे कवित्व-प्रतिभा भी निराली ही थी।



पुस्तकोंकी दो प्रतियाँ आने पर ही समालोचना होगी

भगवान् महावीरकी अहिंसा और महात्मा गांधी

लेखक—श्री पृथ्वीराज जैन एम ए शास्त्री

प्रकाशक—श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर

पृष्ठ संख्या २४ मूल्य ।)

विषय तो जैसा पुस्तकके नामसे ही स्पष्ट है, इस पुस्तकमे जैनधर्मका मूल आधार, अहिंसाका स्वरूप, साधु और गृहस्थधर्म, अहिंसाका प्रभाव, महात्मा गांधीकी अहिंसा, जैन अहिंसा से गाधीवादकी समानता, गाधीजीकी अहिंसाका जैन अहिंसासे भेद आदि महत्त्वपूर्ण विषयोका सरल तथा सरस भाषामें तात्त्विक विवेचन किया गया गया है। साथ ही भगवान् महावीर तथा महात्मा गांधीके जन्मसे पूर्व भारतवर्षकी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति कैसी थी, वर्णवाद, जातिवाद, धर्मके नामपर अनाचार अत्याचारका कैसा विकराल रूप समाजको पीडित कर रहा था इन सब बातोका भी विचार बडे मार्मिक ढगसे किया गया है।

इसके अलावा जैनधर्मकी अहिंसाको ही राजनीतिक क्षेत्रमें महात्मा गाधीने कैसे उतारा इन सब विषयोको इस छोटी-सी पुस्तकमें एक साथ बतलाते हुए लेखकने वास्तवमें इसमें 'गागरमें सागर' भरनेका सफल प्रयास किया है।

पुस्तक जैन अजैन सर्वसाधारणके लिए बडे महत्त्व की है।

—महादेव चतुर्वेदी

रिष्ट-समुच्चय

रचयिता—श्री आचार्य दुर्गदेव

सम्पादक—श्री नेमिचन्द्र जैन, ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक—श्री जवरचन्द फूलचन्द गोधा, जैन ग्रन्थमाला, इन्दौर

पृष्ठ-संख्या १७२ + ३४ :: मूल्य ३।)

जैसा कि नामसे विदित होता है, जैनाचार्य श्री दुर्गदेवने अरिष्टोंके विशाल विषयको बड़ी खूबीके साथ इस ग्रन्थमें रखा है। इसमें अनेक रोगों तथा उनके भेदोंका वर्णन है। रिष्ट दो प्रकारके होते हैं—व्यक्तिगत और साधारण। व्यक्तिगत अरिष्टोंसे अच्छे बुरे शकुन, भाग्य और दुर्भाग्य आदिकी बातें जानी जाती हैं; किन्तु साधारण रिष्टोंसे राष्ट्रकी विपत्तियाँ, क्रांति, परिवर्तन, दुर्भिक्ष, संक्रामक रोग आदि भविष्यकी बातें ज्ञात की जाती हैं। इन दोनों प्रकारके अरिष्टोके लक्षण पहलेसे ही दिखाई देने लग जाते हैं।

व्यक्तिगत शुभाशुभ फलोके सूचक भी बहुतसे लक्षण होते है यथा—स्वप्नमें स्वतः आकाशमें उड़ना, किसीका मरण देखना, फल पुष्प आदिका देखना व्यक्तिके लिए शुभ सूचक होता है तथा विवाह, अंगभंग, शिरोमुण्डन आदि अशुभसूचक होता है। इन सब बातोंका प्रस्तुत पुस्तकमें पूर्णरूपसे विवेचन किया गया है।

प्रथम श्रेणीमे शारीरिक रिष्टोंका, द्वितीय श्रेणीमे मरण-सूचक चिह्नोका, तृतीय श्रेणीमे निजछाया, परछाया तथा छायापुरुष द्वारा मृत्युसूचक लक्षणोंका बड़े सुन्दर ढंगसे निरूपण किया गया है। तत्पश्चात् स्वप्न दर्शन द्वारा मृत्युके लक्षणोंका वर्णन है। फिर प्रश्नों द्वारा भी इन सब विषयोंका प्रतिपादन किया गया है।

होरा प्रश्न इसका एक महत्त्वपूर्ण अंश है। शनिचक्र, नरचक्र इत्यादि चक्रोंके द्वारा भी मरण समयका निर्धारण किया गया है। विभिन्न नक्षत्रोंमें रोग उत्पन्न होनेसे कितने दिनों तक बीमारी रहती है, रोगीको कितने दिन कष्ट उठाना पड़ता है आदि विषयोंका वर्णन है। ग्रन्थमें कहीं-कहीं मन्त्र-तन्त्रका भी सफल प्रयोग बतलाया गया है।

अन्तमें प्रश्न लग्न आदि बनानेका बहुत सरल ढंग बतलाया गया है। संस्कृत तथा प्राकृत गाथाओंका सरल हिन्दीमें अनुवाद कर दिया गया है जिससे पुस्तक सर्वसाधारणके लिए उपयोगी बन गई है। १८ पृष्ठकी प्रस्तावनामें सम्पादकने ग्रन्थकारके परिचयके साथ ही ग्रन्थकारके अन्य ग्रन्थोंका परिचय भी दे दिया है। सकेत-पूर्ति-सूची तथा गाथानुक्रमणिका आदिसे ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गई है।

—महादेव चतुर्वेदी

भारतीय ज्ञानपीठ काशी का नया प्रकाशन

वसुनन्दि-श्रावकाचार

प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड, बनारस

आकार २२.X२९ आठपेजी   पृष्ठ सख्या लगभग २५०

मूल्य पाँच रुपया

इस आचार्य वसुनन्दिकृत श्रावकचारका प्रकाशन ४५ वर्ष पूर्व बा० सूरजभानजी वकीलने उस समय किया था जब जैन समाजमें शास्त्रोंको छपानेके आदोलनका सूत्रपात ही हुआ था। तबसे अबतक शास्त्रोंको छपानेका खूब प्रचार हुआ और सिद्धात ग्रथोतकका मुद्रणकार्य आज चालू है। इस बीचमें बहुत-सा जैन साहित्य मुद्रित होकर प्रकाशमें आया, किन्तु वसुनन्दिश्रावकाचार जैसे उपयोगी ग्रन्थके सर्वांग सुन्दर सस्करणका अभाव खटकता रहा। प० हीरालालजीकी दृष्टि इस ओर गयी, उन्होंने उसका नवीन अनुवाद किया और भारतीय ज्ञानपीठने उसको प्रकाशित करके उस अभावकी पूर्ति की।

प्रस्तुत सस्करणमें प्रथम तो ६४ पृष्ठकी प्रस्तावना है, उसके पश्चात् विस्तृत विषयसूची है। फिर हिन्दी अनुवादके साथ मूलग्रन्थ आरम्भ होता है। मूलग्रन्थमें ५४६ प्राकृत गाथाएँ हैं जो ७२ पृष्ठोंमें समाप्त हो जाती है। उसके बाद परिशिष्ट है। परिशिष्टमें मूलग्रन्थमें आगत कुछ बातो पर विशेष टिप्पण दिये गये है, जो बहुत उपयोगी है। इसके बाद ग्रन्थमें आगत प्राकृत भाषाकी धातुओंकी विस्तृत तालिका सस्कृतरूप और हिन्दी अर्थ सहित दी गई है। यह तालिका प्राकृत भाषाके अभ्यासियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। अन्तमें गाथानुक्रमणिका है।

प० हीरालालजी अपने विषयके प्रौढ विद्वान् है और उसका प्रत्यक्ष साक्षी इस ग्रन्थकी विद्वत्तासे भरी हुई खोजपूर्ण प्रस्तावना है। श्रावकाचारोंके तुलनात्मक विवेचनको पढकर विद्वान् पाठकका हृदय आनन्दित हुए बिना नही रह सकता। यद्यपि प्रत्येक पाठक उनके मन्तव्यों और निष्कर्षोंसे पूरी तरह सहमत नहीं हो सकता, किन्तु उन्होंने उसके द्वारा जो दर्शन कराया है वह पाठककी दृष्टिको परिष्कृत करनेमें बहुत कुछ सहायक हो सकता है। मेरे जाननेमें श्रावकाचारोंका यह तुलनात्मक विवेचन पाठकोंके लिए एक दम नया है, क्योंकि अभीतक इस विषयपर किसीने इतना सागोपाग विचार नही किया।

जहा तक प्रस्तावनाकी सैद्धान्तिक विचार-सरणिका प्रश्न है उसे उचित कहा जा सकता है। यद्यपि अष्ट मूल गुणोंके सम्बन्धमें कुछ चर्चाएँ विचारणीय है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण में वैसा औचित्य नही है। उदाहरणके लिए आचार्य कुन्दकुन्द और समन्त-

भद्रके बीचमें स्वामी कार्तिकेयको रखना और रत्नकरण्ड श्रावकाचारको असंदिग्ध रूपसे कार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा भगवती आराधनाका आभारी बतलाना। हम नही समझते कि पंडितजीने किस आधारपर 'असंदिग्ध' और 'निःसन्देह' जैसे शब्दोंका प्रयोग किया है। इनके स्थानमें यदि 'सम्भवतः' शब्द होता तो वह उचित था। इसी तरह अमितगतिके पश्चात् अमृतचन्द्र सूरिको रखना भी ठीक नहीं है। अमृतचन्द्र सूरि इतने अर्वाचीन नहीं हैं।

ग्रन्थकार वसुनन्दिने श्रावकाचारके अन्तमें अपनी प्रशस्ति दी है। उसमें उन्होंने लिखा है कि श्रीनन्दिके शिष्य नयनन्दि थे और नयनन्दिके शिष्य नेमिचन्द्र थे। उन नेमिचन्द्रके प्रसादसे मैंने यह ग्रन्थ रचा।

पं० हीरालालजीने अपनी प्रस्तावनामें नयनन्दिका परिचय देते हुए लिखा है कि नयनन्दि रचित अपभ्रंश भाषाका सुदर्शनचरित आमेरके भंडारमें है। प्रस्तावनामे उसकी प्रशस्ति उद्धृत की गयी है। उस प्रशस्तिमें नयनन्दिने जो अपनी गुरु-परम्परा दी है उसमें श्रीनन्दि नामके किसी आचार्यका उल्लेख नही है। फिर भी पं० हीरालालजीने कुछ विशेषज्ञोके आधारपर सुदर्शनचरितकी प्रशस्तिके रामनन्दिको और श्रावकाचारकी प्रशस्तिके श्रीनन्दिको एक व्यक्ति मानकर दोनों नयनन्दियोंको एक ही मान लिया है और उसके आधारपर वसुनन्दिका समय निर्धारित किया है।

सुदर्शन चरित्रकी प्रशस्तिके आधार पर पं० हीरालालजीने एक और अति साहस कर डाला है। नयनन्दिने अपने गुरुका नाम महापण्डित माणिक्यनन्दि लिखा है। इसपर पं० हीरालालजीने लिख डाला है कि नयनन्दि सुप्रसिद्ध तार्किक एवं परीक्षामुख सूत्रकार पण्डित माणिक्यनन्दिके शिष्य थे। केवल नाम सादृश्यके आधारपर इस प्रकारकी एकरूपता करनेसे इतिहासकी हत्या होनेका ही भय है।

इसी तरहके और भी ऐतिहासिक स्खलन है। किंतु प्रकृत विषयपर इन स्खलनोंका कोई गम्भीर प्रभाव नहीं पड़ता। और उनका सैद्धान्तिक विवेचन पठनीय एवं मननीय है। क्षुल्लक और ऐलक पदके सम्बन्धमें भी यही बात है। अस्तु,

अनुवाद बहुत सुन्दर है। छपाई कागज वगैरह भी उत्तम है। इस सुन्दर, कृति तथा उसके प्रकाशनके लिए, लेखक तथा प्रकाशक धन्यवादके पात्र है।

—कैलाशचन्द्र शास्त्री



सम्पादकीय

तीरकी तरह एक प्रश्न

इस वर्षकी होली आई और चली गई, पर मेरे हृदयमें एक वाक्य तीरकी तरह जो इस बार खडा हुआ, वह होलीका हुल्लड समाप्त होनेपर भी ज्योका त्यो खडा है। वह वाक्य एक प्रश्न है और प्रश्न किसी पुरुपका नही, किसी महापुरुपका नही, स्वय इतिहास-पुरुप का है।

वह प्रश्न यह है—कोई एक हजार वर्ष पहले मुसलमानको अछूत बनाकर हिन्दू जाति एक बहुत बडे खतरेसे बच गई थी, पर क्या स्वतन्त्र भारतमें अपनेको स्वय अछूत बनाकर मुसलमान जाति एक बहुत बडे खतरेमें पडनेकी तैयारी नही कर रही है?

इस प्रश्नके पीछे एक हजार वर्षों-का हमारा इतिहास छिपा है, इसलिए यह अपनी व्याख्या चाहता है और सच तो यह है कि वह व्याख्या ही शायद इस प्रश्नका उत्तर भी दे दे।

देवताकी जगह मनुष्य

साहित्य और अन्धश्रद्धाकी शक्ति-से पता नही कितने दिन पहले हिन्दू-समाजमें एक चमत्कार हुआ कि देवता तो लुप्त हो गये और उन देवताओंका परिचय देनवाले मनुष्य ही देवता बन बैठे। शायद एक ऐसा समय आया कि मनुष्य अप्रत्यक्ष देवताओंके चमत्कारी गुणोकी अपेक्षा, श्रेष्ठ पुरुषो और महापुरुषोंके ऐतिहासिक गुणोसे अधिक प्रेरणा पाने लगा और बस उसकी इसी वृत्तिने इन ऐतिहासिक पुरुषोको इतना उभार दिया कि इन्होने ही देवताओंका स्थान ले लिया।

राम अयोध्याके राजा थे, सीता उनकी आदर्श पत्नी और हनुमान् उनके आदर्श सेवक। कृष्ण महाभारत के नेता थे, राधा उनकी प्रणयिनी। बुद्ध और महावीर समकालीन राज-त्यागी वैरागी राजकुमार थे। शिव उत्तराखण्डके कला-प्रवर्तक राजा, पार्वती उनकी दृढ पत्नी और गणेश उनका पुत्र। दुर्गा एक वीर महिला, जिसने पुरुषोको शायद पहली बार नारीकी शक्तिका परिचय दिया। ये सब धरतीपर जन्मे नर-नारी अपने गुणोंके कारण मनुष्योकी श्रद्धाके पात्र बने और इस श्रद्धाने अन्धी होकर उन्हें देवता बना दिया।

देवताका दुश्मन देवता

कहा तो कि यह श्रद्धा अन्धी थी, इसलिए यह यही न रुकी, इसने अपने देवताओंको अपनी ही भाव-नाओंमें लपेट भी लिया। उदाहरणके लिए रामके भक्तोने रामकीए महिमा तो गाई ही, शिवकी हीनता भी

बखानी और इस तरह विशाल भारतीय समाज उस दिमागी बँटवारेका शिकार हुआ, जिसने जाने कितने झगड़े कराये और खून-खच्चर भी।

हाजमा बिगड़ गया

विशाल भारतीय समाजका सबसे बड़ा गुण हाजमा था। जो जातियाँ बाहरसे विजयी होकर आईं, वे यहाँ बस गईं और ऐसी बसी कि आपा खोकर यही समा गईं। शकोंका संवत् तो भारतमें आज भी है, पर शकोंका पता कही नही। इस दिमागी बँटवारेने इस हाजमेको खराब कर दिया; क्योंकि भारतका निवासी अब अपने ही दायरेमें सिमटकर जीनेका आदी हो चला था और ये दायरे नित-नूतन बनकर छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बडे होते जा रहे थे!

इसी स्थितिमें मुसलमान एक तूफानकी तरह भारतमें आये। क्या ये भारतवासियोंसे अधिक बहादुर थे? ना, यह बात तो नही, पर बात यह है एकेश्वरवादके नये विश्वाससे वे उफन रहे थे और यहाँका दिमाग टुकड़ोंमें बँटा था—बस उन्हें जीतना था, वे जीतते गये।

सन्त जाग उठे

हमारे इतिहासका यह एक चमत्कार है कि जब-जब यहाँका राजनीतिज्ञ भटका, सन्त जाग पड़ा; इसीलिए हमारा इतिहास राजनीति से सन्तोका अधिक आभारी मुसलमानी जीतके खतरेको भाँपा और समाजके मानसमें विचारधाराके बीज बो दिये। वे बीज ये थे—"मुसलमान म्लेच्छ है, विधर्मी है, अस्पृश्य है, उनके साथ सम्पर्क रखना अधर्म है!"

दोनोंमें कोई लगाव न रहा!

इन बीजोंकी रचना करनेमें सन्तोंने जनताके मनोविज्ञानकी परखका कमाल कर दिया। बात यह है कि भारतीय समाज एकके मुक़ाबलेमें दूसरेको हीन माननेका आदी था ही, उसमें ये बीज जम गये, फूट आये और पनपकर फल देने लगे। मुसलमान और हिन्दूके बीच एक दीमागी दीवार खड़ी हो गई और इस तरह हिन्दू-समाज वैभवशाली और विजयी मुसलमानके प्रभावमें आनेसे बच गया। यही यह भी कि आन्तरिक सम्पर्कके अभावमे विजयके दर्पसे अभिभूत मुसलमान, जिसकी ग्रहण-शक्ति पहले ही कमजोर थी, एकदम अपनेमें सिमट गया और भारतमें ही अरबका वातावरण बना, उसमे जीने लगा।

यों समझिये कि भारत... रिवाज, भारतके महापुरुष, ... उपमाएँ, परम्पराएँ, भा... चीजसे उसके मानसका ... नही रहा। वह ... था, शासक होकर ... नीतिकी गाँठ ... रही, पास ... कोई जोड़ ...

पहला सूत्र हो गया। १६२० में खिलाफत आन्दोलनने इस पर एक गहरी चोट की और अनेक जगह मन्दिरोंमें नमाज़ और मस्जिदोंमें शख बजे, पर अँगरेज राजनीतिने १६२४ से १६२८ तक इस अलगावको ऐसा उभारा कि यह एक पैनी छुरी बनकर दोनोंके बीच आ गया।

अलगावका साक्षात्कार

इस अलगावका साक्षात्कार मुझे कोई २२ साल पहले एक दिन हुआ। मेरे एक मित्रके पुत्रकी सगाई थी। मित्र बड़े आदमी थे, सगाईमें शहरके प्रतिष्ठित लोग आये थे, उनमें तीन मुसलमान सज्जन भी थे। एक मुंसिफ साहब, एक खानबहादुर, एक एक्ज़ीक्यूटिव अफसर महोदय।

पुरोहित जब तिलक करता हुआ मुंसिफ साहबके पास गया, तो प्रथाके अनुसार वह उनके मस्तक पर बिना तिलक दिये ही आगे निकल गया। मुंसिफ साहब खड़े होकर बोले—'क्यों पण्डत साहब, क्या हमारी पेशानी आपको कुछ भद्दी लगती है, जो आप हमें छोड़ गये?' पुरोहितने उनके मस्तक पर भी तिलक लगाकर चावल लगा दिये।

उनके लिहाज़में दूसरे दो मुसलमानोंको भी तिलक लगवाना पड़ा। बड़ा लुत्फ रहा और सचमुच गोरे चिट्टे मुंसिफ साहबके चौड़े मस्तकपर टर्किश कैपके नीचे लाल तिलक ऐसा फबा कि क्या कहिये! मुंसिफ साहब तिलक लगाये बाजारके बीचमें निकले, तो शहर भरकी चर्चा हो गये। शामको मैं उनसे मिलने गया, तो बोले—"पण्डितजी मुसलमानी नमाज़में है, हिन्दूपन पूजामें, मुसलमानी रोज़ेमें है, हिन्दूपन व्रतमें, पर समाजी मामलेमें दोनों इतने दूर क्यों रहें कि मैं आपके यहाँ भगी बनकर जाऊँ और आप मेरे यहाँ भगी बनकर आयें?"

उस दिन पहली बार अनुभव किया था कि यदि भारतमें दोनों जातियोंको सुख-शान्तिसे रहना है, तो सामाजिक सम्पर्कको हमें एक नया रूप अब देना ही होगा, पर उसके बाद वैर-विरोधकी एक तेज़ धारा ऐसी आई कि दिमागी बँटवारेका चक्र देशके बँटवारे पर ही जाकर रुका।

स्वतन्त्र भारतमें

देश स्वतन्त्र हो गया और हमारे नेताओंको शत-शत बधाइयाँ कि वे देशमें नया शासन, नई व्यवस्था और नई अखण्डताकी स्थापना करनेमें समर्थ हो सके। उनके पुण्य परिश्रमसे यह सिद्ध हो गया कि अब हमारा देश यही नहीं कि नये बँटवारोंकी ओर न बढ़ेगा, बल्कि यह भी कि बँटवारेकी मूलवृत्तिको ही नष्ट करके हम चैन लेंगे। इस तरह अब इस देशके हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, बौद्ध, पारसी और ईसाई अपने-अपने धर्ममें पूर्ण स्वतन्त्र होते हुए भी एक विशाल समाजका अंग बनकर रहेंगे।

यह किस तरह?

भिन्न-भिन्न अंगोंकी यह मानसिक एकता क्या इस तरह बनेगी कि हरेक अंग अपने चारों ओर एक दीवार बनाकर बैठ जाये? या इस तरह हरेक

अंग अपनेको ढाले कि वह एक दूसरेमें मिलने लायक़ तो हो ही जाये, साथ ही दूसरेको अपनेमे मिलाने लायक़ हो जाय ? निश्चय ही सफलताका दूसरा मार्ग है !

इस सफलताके लिए हिन्दू समाजको अपने भीतरसे अस्पृश्यताका दुर्भाव उखाड़ फेंकना है और मुस्लिम समाजको अपने भीतरसे उस मज़हबी अलहदगीके जज्बेको दूर करना है, जो उसे दूसरोंसे मिलने नही देती !

प्रसन्नताकी बात है हिन्दू समाजमें अस्पृश्यताके विरुद्ध घनघोर युद्ध हो रहा है और अस्पृश्यताके पैर अब उखड़ चले हैं, पर दुःखकी बात है कि मुसलमानोमें उस मजहबी अलहदगीके ज़हरको अभी ठीक-ठीक महसूस भी नहीं किया गया, इस होली पर कई जगह जो उपद्रव हुए वे इस बातके अखण्डनीय सबूत हैं।

होलीकी मस्तीमें !

इसे आप ज़रा यों समझें—होलीका दिन है। मुहल्लेके लोग चौराहे पर जमा है। रंगोंमे लिपे-पुते और शराबोर। जो उधरसे निकलता है, रँगा जाता है, न बचता है मोटर न ताँगा, न पैदल और न ग़रीब, न अमीर—बस मस्तीका आलम छाया हुआ है। तभी उधरसे आ निकले दो-तीन मुसलमान; लोगोंको आज सफेद कपड़ोसे दुश्मनी है, उन पर भी चल गई पिचकारी, पर इधरसे छूटी पिचकारी, उधरसे बरसीं गालियाँ और इधरसे पड़े जूते; बस हो गया दंगा ?

और दीवाली भी !

अच्छा यह तो होलीका हुल्लड, छोड़िये इसे। किसीको नही लगा मुँह रंगकर बन्दर बनना अच्छा, पर यह लो बरसात बीत गई, शरद आई, लोगोंने बरसातमें बिगड़े अपने मकानोंको लीपा-पोता और आज सबने मिलकर की दीपावली—अँधेरी रातमे शहर-गॉव जगमगा उठे, पर ये मुसलमानोंके मकान पर भी आज क्यों अँधेरा है ? आज रोशनी करनेमें इस्लामकी कौन शरैयत रुकावट डालती है ?

धोती, हिन्दी और जय !

त्योहारोंकी बात छोड़िये, उनके पीछे कही-न-कही मजहबी रंगत है ही, पर १५० के लगभग वर्षोंमें ही अँगरेजोंके साथ रहकर जो मुसलमान हैट, नकटाई, कालर, और पतलून-बूट पहनना सीख गया, वह धोतीसे क्यों घबराता है ? अँगरेज़ीमें जो मुसलमान डाक्टरेट ले सका, वह हिन्दीके हरूफ़से क्यों चौंकता है ? कृष्ण, बुद्ध और ईसा उसके लिए प्रेरक क्यों न हों ?

मुसलमानके रोम-रोममे यह मजहबी अलहदगी किस हद तक छाई हुई है, इसका पता इस बातसे लगेगा कि १९३० का आन्दोलन चलने पर हजारों मुसलमानोंने अपने मौलवियोंसे यह पूछा था कि क्या हम लोग नारेकी जगह जय बोल सकते है ?

मै समझता हूँ, मेरा यह प्रश्न, जो इस बार भी होलीमें तीरकी तरह मेरे दिलमें खड़ा रहा, अब आपके सामने स्पष्ट हो गया है और इसलिए अपने राष्ट्रके समझदार मुसलमान

दोम्नोंके सामने मैं उसे निहायत अदबके साथ यहाँ फिरसे रख रहा हूँ—कोई १००० वर्ष पहले मुसलमानको अछूत बनाकर हिन्दू जाति बहुत बडे खतरेसे बच गई थी, पर क्या स्वतन्त्र भारतमें अपनेको स्वय अछूत बनाकर मुसलमान जाति एक बहुत बडे खतरेमें पडनेकी तैयारी नहीं कर रही है ?

यह गुण्डापन है !

इस वारेमें यह प्रश्न बहुत महत्त्व का है कि क्या भारतके विशाल समाजको यह नैतिक अधिकार है कि वह किसी दूसरे समाजको मानसिक रूपमें अपने पास आनेके लिए तैयार हुए बिना बलपूर्वक उन्हें अपनी ओर खींचनेका प्रयत्न करे ?

यह प्रश्न इतना आवश्यक और सामयिक है कि मैं उसे उघेडकर आपके सामने रखना चाहता हूँ। यदि मुसलमान होलीके रगमें शरीक नहीं होते, तो क्या हमारा यह अधिकार है कि हम उन्हें इसके लिए मजबूर करें और इसके लिए लडाई-झगडेपर उतारू हों ? इसका साफ उत्तर यह है कि यह एक खुला गुण्डापन है। सामाजिक सम्पर्क मित्रता है और मित्रता कभी ताकतके जोरसे नहीं होती। हिन्दुओं-में भी तो अभी लाखों-करोडो है, जो हरिजनोकी छायासे कापते हैं। फिर उनको हमारे हरिजन लोग राह-चलते बरपबक छूने लगें तो उन्हें कैसा लगे ?

राष्ट्रकी नई उन्नतिके लिए वह सम्पर्क अनिवार्य है, पर यह सहिष्णुता और नम्रतासे ही होगा, क्रोध और झगडेसे नहीं। फिर क्या अपनेमें मिलानेकी इस भावनामें चैलेंजकी वह भावना नहीं है, जो युद्धकी मा है, मिलनकी जननी नहीं ?

—क० ला० प्रभाकर

वीर-जयन्ती

गत वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको वीर-प्रभुकी जयन्ती समूचे भारतमें अत्यन्त उत्साह-पूर्वक मनाई जायगी। इस वीर-जयती-की प्रणालीसे जैनधर्मका काफी प्रसार हुआ है। पहले जैन-समाजके उत्सव आदि अत्यन्त सकुचित रूपमें होते थे। प्राय जैन मन्दिर, जैन धर्मशाला और जैनउपाश्रय ही उत्सव और व्याख्या-नादिके क्षेत्र नियत थे। सार्वजनिक सभाओंके करनेका न तो आम तौरपर साहस होता था और न इस तरहके व्याख्यानदाता ही प्राप्त थे।

वीर-जयन्तीकी यह परिपाटी पड जानेसे वडा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है। इस अवसरपर अब प्राय सर्वत्र सार्वजनिक स्थानोंपर सभाएँ की जाती है, कविसम्मेलनो-मुशायरोंका भी आकर्षक कार्यक्रम रखा जाता है, सवधर्मसम्मेलन किये जाते है, नगर-जुलूस निकाले जाते है और व्याख्यान देनेके लिए नेताओं—लोकसेवी विद्वा-नोको भी बुलानेका प्रयत्न किया जाता है। कितने ही स्थानोंपर जैन-धर्मके सभी सम्प्रदायोंके अनुयायी भेद-भाव भूलकर यह उत्सव मनाते है और अपने भिन्नधर्मी देशवासियोंको भी प्रेमपूर्वक उसमें सम्मिलित करते है।

इस प्रयत्नसे भ्रातृत्वकी भावना बढती है, जैनधर्मके प्रति जिज्ञासा

उत्पन्न होती है, फ़ैली हुई अनेक भ्रामक धारणाएँ दूर होती हैं और जैनधर्मके मानवोचित सिद्धान्तोंका व्यापक प्रसार होता है।

वीर-जयन्तीके समान और भी सार्वजनिक तथा व्यापक दृष्टिकोण-वाले उत्सवोंकी परिपाटी डालनी चाहिए। वीरसेवामन्दिर-द्वारा वीर-शासन-जयन्तीका आयोजन भी इसी तरहका पुण्य प्रयास है। अब इसका व्यापक प्रचार होनेकी नितान्त आव-श्यकता है। कलकत्ता, बम्बईमें पर्यू-षणपर्वपर व्याख्यानमालाकी सूझ भी अभिनन्दनीय है। आशा है अब जैन-समाजके बहुजनतावाले शहरों—इंदौर, अजमेर, व्यावर, जयपुर, सहारनपुर, देहली, जबलपुर, अहमदाबाद आदिके उत्साही कार्यकर्ता भी इस प्रथाका अनुसरण करेंगे। १५-२० शहरोंके कार्यकर्ताओंकी एक समिति बन जानी चाहिए, जो सार्वजनिक २०-२५ व्याख्यानदाताओंका निर्वाचन करके इस तरहका कार्यक्रम निर्धारित करे, जिससे ये विद्वान् १० शहरोंमें निरा-कुलतापूर्वक जाकर पर्यूषणपर्वमें व्या-ख्यान दे सकें। इस संगठित प्रणालीसे व्यय भी कम होगा और स्थानीय कार्यकर्ता विद्वानोंके बुलाने आदिकी झंझटसे भी बच सकेंगे। दस रोज एक-से-एक नये विद्वान्का व्याख्यान सुननेके लिए जनता भी उत्साहित रहेगी और जैनधर्मको धीरे-धीरे सार्व-जनिक रूप भी प्राप्त होगा।

भारतके लोकोपयोगी और सार्व-जनिक कार्योंमें जैनोंका सदैव भरपूर सहयोग रहा है। हर उन्नत कार्योंमें सर्वत्र जैनोंने हाथ बटाया है, फिर भी वे सार्वजनिक दृष्टिकोणमें कितने उपेक्षित हैं, यह आभास पग-पगपर होता है।

इसका कारण यही है कि हमने इस विज्ञापनके युगमें जैनधर्मके सिद्धा-न्तोंको जनताके सामने लानेका ठीक-ठीक प्रयत्न नहीं किया। न हमने जैनधर्म सम्बन्धी कोई ऐसा ग्रन्थ-निर्माण किया, जिससे जनता जैनधर्मके व्यापक रूपको समझ सके; न हमने जैनधर्मानुयायी आचार्यों, कवियों, सेनानायकों, शूरवीरों और कर्मवीरोंका प्रामाणिक इतिहास ही प्रकाशित किया है; न हमने जैन-चित्रकलाका परिचय दिया है और न हमने अपने लोकसेवी कार्यकर्ताओंका ही उल्लेख किया है। फिर किस आधार पर और किस विशेषतापर लोग जैनधर्मकी ओर आकर्षित हों और क्योंकर सार्वजनिक-रूपमें जनताके सामने उल्लेख हो।

इस विज्ञापनके युगमें विज्ञापनके बलपर जापानी इमीटेशन घर-घर पहुँच सकते हैं और विज्ञापनका साधन न मिलनेसे हीरे-मोती बक्सोंमें रखे धूल फाँकते रहते हैं।

अतः आवश्यकता इस बातकी है कि जैनसमाज अपने संकुचित सम्प्र-दायके गड्ढेसे निकलकर जैनधर्मके सत्य-अहिंसा-अपरिग्रहवादका सार्व-जनिक रूपसे विश्लेषण करे। हमारे साधु, मुनिराजोंको अब उपाश्रय और मन्दिरकी संकुचित चारदीवारीसे निकलकर आम जनताके सामने अपने दिव्य उपदेश देने चाहिएँ। हमें अपने मन्दिरोंके पुराने ढंग

बदलने होंगे। उनके सोने-चाँदीके चँवर-छतर-उपकरण तथा वर्तमान पूजा-पद्धति ही जैनधर्मके व्यापक प्रचारको रोकती है। जैनधर्मके मन्दिर ऐसे होने चाहिएँ कि जहाँ न चौकीदारकी आवश्यकता रहे, न पुजारीकी और न ताले-कुञ्जीकी। एक ऐसी आमफहम (सबकी समझमें आने योग्य) दर्शन-पूजा-पद्धति हमें चालू करनी होगी जो मानवमात्रके लिए उपयोगी हो सके। हर मनुष्य भगवान्की शरणमें जा सके, हमें इस ओर अविलम्ब प्रयत्न करना होगा।

सदियों पूर्व श्रवणबेल्गोलमें भगवान् बाहुबलिकी मूर्तिका निर्माण करके हमारे पराक्रमी पूर्वजोंने हमारे सामने एक आदर्श रख दिया था और बता दिया था कि जिस वीतराग मूर्तिके ऊपर न चँवर है न छतर है जो न तालेमें बन्द है न पुजारीके आश्रित है, उस मूर्तिके आगे वे भी नतमस्तक होंगे जो हीरे-जवाहरातकी मूर्तियोंसे भी प्रभावित नहीं होते हैं। हम इस व्यापक और महान् आदर्शको न समझ पाये और हमने वीतराग भगवान् और जिनवाणी माताको तालोंमें बन्द करके रख दिया।

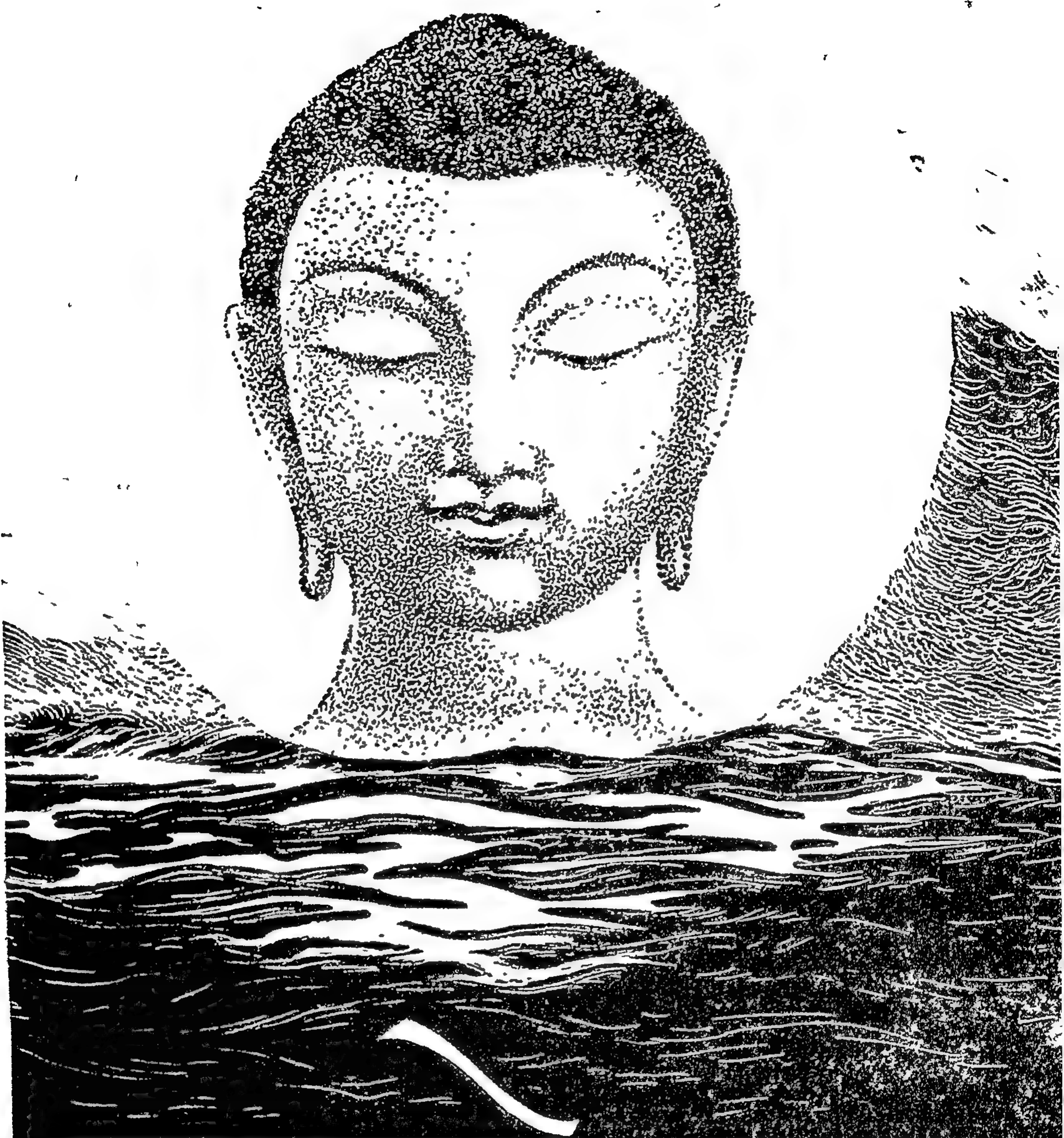
—गोयलीय

सन् १९५१ की प्रकाशित पुस्तकें



भारतीय ज्ञानपीठ काशी

मुद्रक और प्रकाशक—बाबूलाल जैन फागुल्ल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
सन्मति प्रेस, बनारस



ज्ञानोदय

मई १९५२ [११] वी० नि० २४७८

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

सम्पादक–

मुनि कान्तिसागर • लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' • अयोध्याप्रसाद गोयलीय

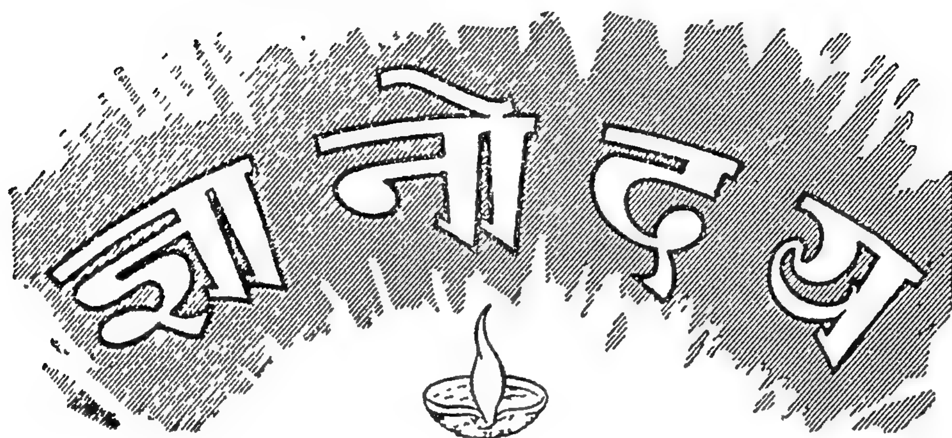
• • •

इस अंक में–

वार्षिक ६) • एक प्रति ॥=)

ज्ञानोदय– भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स



वर्ष ३] • काशी, मई १९५२ • [अंक ११

मंदिर का सन्नाटा

श्री अमृतलाल चञ्चल

तू किसकी पूजा करता है ?
मन्दिर के इस सन्नाटे में,
तू किसकी पूजा करता है ?

माला में तेरी प्रीति नहीं,
पूजा में रही प्रतीति नहीं,
तू आँखें मूँदे बैठा है,
जैसे उसका आवास यहीं !
नयनों के पट तो खोल ज़रा,
रे क्यों इतना भरमाता हैं ;
तेरा वह प्रभु तो मुझे कहीं,
इस घर में दृष्टि न आता है ?
अपनी अर्चा के ये प्रसून,
फिर, किसके आगे धरता है ?

और समृद्धिकी पूर्णता तक ले जायगा या हमें साहित्यसे भिन्न किसी दूसरी वस्तुका आश्रय लेना पडेगा ? हो सकता है कि अब तकके सृजित साहित्यमें कोई ऐसा दूषित पदार्थ आ गया हो, जिसने हमारे विकसित जीवनके कुछ रसोमें कटुता उत्पन्न कर दी हो और आगे अधिक सावधानीके साथ शुद्ध, परिष्कृत साहित्यका सृजन कर हम अपने लिए निर्बाध सुख-स्थिति का निर्माण कर सकते हों।

हम देखते है कि साहित्य हमारे विकासका एक प्रमुख, शायद सर्व-प्रमुख साधन हुआ है, किन्तु उसने हमें जो कुछ दिया है उसमें सुखोकी अभिवृद्धिके साथ-साथ दुखोकी भी अभिवृद्धि हुई है। साहित्य आगे बढ़ रहा है। सम्भवत यह और भी अधिक रसो और वैभवोकी सृष्टि हमारे लिए करेगा। साथ ही हमारी यह आशका भी साधार है कि कही उन रसो और वैभवोके समकक्ष हमारी कटुताओ और अभावोमें भी वृद्धि न होती जाय।

यदि हमारे आज तकके साहित्यमें किसी असावधानी अथवा अवाछित विक्षेपके कारण कोई वैसा दूषित तत्त्व आ मिला है, तो हम आगे उसे दूर रखते हुए अधिक परिष्कृत साहित्यके सृजनका प्रयत्न कर सकते है, लेकिन यदि यह दूषित तत्त्व साहित्यका ही कोई अनिवार्य अग है तो हमारे सामने केवल दो सम्भावनाएँ शेष रह जाती हैं एक, या तो हम साहित्यसे भिन्न किसी अन्य ऐसे साधनकी खोज करें जो मानव-समाजको अबाध सुख-स्थिति तक ले जा सके, या दूसरी यह कि हम पूर्ण सुखी मानव-समाजके निर्माणकी आशा छोडकर अपनी विवशताओमे ही सतोष करें और जहा तक बन पडे, उन्हें ही सह्य रूप देनेका प्रयत्न करते रहें।

साहित्य क्या है ? एक व्यक्तिकी अनुभूत कोई भावना या सोचा हुआ कोई विचार जब भाषाके माध्यमद्वारा लिखित (और श्रव्य अथवा कथित भी) रूपमें किसी दूसरे व्यक्ति तक पहुँचता है, तब यही 'साहित्य' होता है। एक व्यक्ति द्वारा प्रेषित यह साहित्य अपने प्राप्त-कर्ता दूसरे व्यक्तिके हृदय और मस्तिष्क पर किसी सीमातक प्रेषक व्यक्तिके भाव या विचारके अनुरूप ही एक भाव या विचार उत्पन्न कर देता है। एक व्यक्तिके भावो और विचारो को दूसरे व्यक्तिके अन्तरमें प्रतिबिम्बित करना, यही साहित्यका काम है। यह भी ठीक है कि उस प्रतिबिम्बित भाव विचारमें प्रतिबिम्बित करनेवाले व्यक्ति का अपना भी कुछ पुट रहता है, किन्तु यह विचार-भाव उस व्यक्तिका मौलिक विचार-भाव नही होता, यह उसका पूर्णतया अनुभूत और सर्वथा आत्मीय-कृत नही हो सकता।

साहित्यकी गति विचार और भावनाके क्षेत्रमें सीमित है। भावना और विचारके क्षेत्रके आगे या भीतर मानव-हृदयकी अनुभूतिका क्षेत्र है। अनुभूति ही भावना और विचारकी जननी है। जब हम अपनी चेतनाके किसी बाह्य या आन्तरिक पट पर किसी भी प्रकारके स्पर्शका अनुभव करते हैं, तब उस स्पर्शकी भूमिका पर ही हमारे

मनमें कुछ भावों और विचारोंका सजन होता है। स्वीय अनुभूतिके आधार पर जिन भावों और विचारोंका सृजन होता है, वे हमारे मौलिक, सर्वथा आत्मीय भाव-विचार हैं; दूसरों की अनुभूतिके आधार पर सृजित भाव-विचार जिन्हें साहित्य हमारे पास तक पहुँचाता है, हमारे लिए एक सीमाके आगे, बाह्य, अनात्मीय और अपरिचित भाव-विचार ही हो सकते हैं और इसीलिए हम उनका पूरा उपयोग भी नही कर सकते।

साहित्यका काम प्रतिबिम्बित करना है, अनुभूतिका काम सृजन करना है—उन भावों और विचारोका सृजन जिनका वाहक बनकर साहित्य उन्हें दूसरे हृदयों-मनोंमें प्रतिबिम्बित करता है। साहित्य द्वारा इस प्रकारका प्रति-बिम्बीकरण मानव-हृदयकी अनुभूतिको जगानेमे किसी सीमा तक सहायक होता है—सहायक होता है, वह अनु-भूतिका स्रष्टा नही हो सकता। साहित्य अनुभूतिके लिए सुविधाजनक कुछ वातावरण प्रस्तुत कर सकता है, जैसे उचित मात्रामे जल-वृष्टि और धूप किसी वृक्षके आत्म-सृजनमे सहायक हो सकती है, किन्तु वृक्षकी वास्तविक सृजन-सामग्री उसके मूल-गत बीज और उस बीजके आसपासकी धरतीमें समाये हुए तत्त्वोंमें ही होती है। अनुर्वरा धरतीमें लगाये हुए वृक्षको ऊपरसे कितनी भी धूप और जलवृष्टि मिल जाय, वह पनप नही सकता। इस प्रकार साहित्य—[स्मरण रहे, दूसरोके भावों और विचारोके प्रतिबिम्व-साधक-को ही मै साहित्य कह रहा हूँ] मानव-हृदय—मनका एक बाह्य पोषक मात्र है। मानव-मनके विकासमें साहित्यने बहुत बड़ा काम किया है। उसने उसे दूसरोंकी अनुभूतियोंकी चलशील छायाओंका स्पर्श देकर उनकी कल्पना-क्षमता और अनुकरण-क्षमताको जगाया है; लेकिन साहित्य हमारे लिए अनु-भूतिका सृजन नही कर सकता। आज-की इतनी समृद्धि और सम्पन्न, साथ ही उतनी ही दुखी और सशंक मानव-जातिके लिए विविध-रसपूर्ण, आरोपित भावों और विचारोंकी नहीं, आत्म-सृजित गहरी अनुभूतियोंकी ही आव-श्यकता है। हम देखेंगे कि इसी दिशा-मे हमारा अदर्शन हमारी वर्तमान पीड़ाका एकमात्र कारण है।

साहित्य हमारे सामने एक भाव-विचार प्रस्तुत करता है; प्रेम करो, दया करो। किसी व्यक्तिने प्रेम और दयाकी अनुभूति की है। उस अनुभूति से उत्पन्न भावों और विचारोंको वह अपने सृजित साहित्य द्वारा हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। अपने साहित्य द्वारा वह प्रेम और दयाके अनेक रोचक चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित कर देता है। कुछ समयके लिए हम उस प्रेम और दयाके आक-र्षणमें बँध जाते हैं; हमें लगता है, प्रेम और दयाका स्रोत हमारे भीतर फूट पड़ा है, लेकिन क्या यह साहित्य हमें सचमुच प्रेम और दयाकी अनुभूति करानेमे समर्थ होता है?

इन पंक्तियोंके लेखक और सभी पाठकोने प्रेम और दयाकी बहुत-सी गाथाएँ पढ़ी-सुनी हैं, किन्तु क्या हममें से कोई प्रेम और दयाकी अनुभूति

का दावा कर सकता है ? और फिर जिन्हें हम दया-प्रेमकी गाथाएँ कहते हैं, उनमेंसे कितनी मौलिक अनुभूतियों का चित्रण है और कितनी प्रतिबिम्बित कल्पनाओंका विवरण है, हम नहीं कह सकते। आजकी मानवतामें, और उनके साहित्यमें दया, प्रेम, त्याग, बन्धुत्व जैसे अनेक नामोंकी बड़ी चर्चा है; फिर भी यह स्पष्ट है कि हम इनकी मौलिक अनुभूतिसे सर्वथा वञ्चित हैं और जिसे हम इन वस्तुओं की अनुभूति कहते हैं वह हमारी अनुभूति होकर किन्हीं विचारों और भावोंका प्रतिबिम्ब-मात्र है।

क्या यह सम्भव है कि एक बार प्रेम या दयाकी आमूल अनुभूति कर लेनेपर हम आगे कभी भी उससे वंचित होकर घृणा और क्रूरताका अपने हृदयमें दर्शन कर सकें ? ऐसा होना असम्भव होगा। बात यह है कि जिन अनुभूतियोंकी, उनसे उत्पन्न बाह्य छायाओं—भावों और विचारों से प्रेरित होकर हम चर्चा करते हैं उनकी छायाओंमें ही इतने संलग्न हो जाते हैं कि उनकी अनुभूतिके लिए हमारे पास अवकाश नहीं बचता।

साहित्य—दूसरे व्यक्तिका भाव-विचार—मेरे लिए किसी वस्तुकी ओर संकेत कर सकता है, उसके दर्शन नहीं करा सकता। पिछले वाक्यको मैंने उससे पहलेका वाक्य लिखनेके बाद दो मिनटका अन्तर देकर लिखा है। इस दो मिनटके समयमें मुझे जो नई अनुभूति हुई है, क्या उसको मैं अपने किसी भी शब्द-चित्रण द्वारा आपतक पहुँचा सकता हूँ ?

अभी तीन-चार मिनट पहले मैंने पास ही किसी शिकारीकी बन्दूककी आवाज़ सुनी थी। उसमें मेरे लिए ध्यान देने योग्य कोई बात न थी। उसके मिनट-दो मिनट पीछे एक बयबागह, शिकारीकी गोलीसे बचकर भागा हुआ, मेरे इस टीले परसे जहाँ बैठकर मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, मेरे पाससे निकल गया है। मुझे देखकर कुछ क्षणके लिए वह रुका, मुझे उसने एक दूसरा हिंसक शिकारी नहीं समझा और कुछ आश्वस्त भाव से आगे बढ़ गया। उसके इस व्यवहार में मुझे एक नया सम्मान, उसके बच निकलनेका एक नया तोष और यह सब मिलाकर एक नई सुखमयी अनुभूतिकी प्राप्ति हुई है। क्या अपने किन्हीं शब्दों द्वारा—अपने साहित्य द्वारा—मैं अपनी उस अनुभूतिको आप तक पहुँचा सकता हूँ ?

अपने डेरेसे आधा मील दूर, घने वनके बीच जिस टीलेपर बैठकर मैं अपना दैनिक साहित्य सृजन करता हूँ, उसके चारों ओर बिखरे वन्य सौन्दर्य का कुछ विवरण मैं आपको अपने साहित्य द्वारा दे सकता हूँ, किन्तु उसकी जो अनुभूति मुझे होती है, क्या उसे भी मैं आपके अन्तस्तलमें उत्पन्न कर सकता हूँ ?

सौन्दर्यकी कुछ अनुभूति—अपनी पात्रता भर अपनी सबसे बड़ी अनुभूति—मैंने सम्भवतः नारीके रूपमें की है। लेकिन यदि मैंने नारीके रूपमें सौन्दर्यको कुछ भी देखा है, तो इस वनकी कायामें उसे देखनेसे वंचित नहीं रह सकता। फिर भी अनेक

स्थलोंपर मुझे अभी असुन्दरताके दर्शन होते हैं। इसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि मैंने अभी सौन्दर्यकी—वास्तविक रूपमें सौन्दर्यकी—अनुभूति नही की। मैं अभी केवल उस अनुभूतिके मार्ग पर हूं। क्या कोई साहित्य—किसी पूर्णातिपूर्ण सौन्दर्य-दर्शीके भी व्यक्त किये हुए भाव और विचार—मुझे सौन्दर्यकी अनुभूति करा सकते है ?

कभी नही ! मै उस अनुभूतिकी ओर स्वयं ही बढ़ सकता हूँ, और भावुकता, तर्क तथा कल्पनाके प्रवाहसे अलग होकर ही बढ़ सकता हूँ। साहित्यकी सीमा यहाँ स्पष्ट है। अपने प्रस्तुत लेख-साहित्य द्वारा मै जो कुछ आप तक पहुँचाना चाहता हूँ उसकी अपूर्णता और इस प्रकार साहित्यकी असमर्थताका अनुमान मेरे सामने है। यदि आपने भावना और कल्पनासे स्वतंत्र अनुभूतिका साक्षात्कार नही किया, तो मेरा उपरोक्त साहित्य आपको एक उलझन-भरा शव्द-जाल ही प्रतीत हो सकता है।

साहित्यकी एक सीमा है और उसके आगे उसे मानव-चेतनाके मार्गसे हट जाना चाहिए। मानव-चेतनाको अनुभूतिकी आवश्यकता है—निस्संदेह उस अनुभूतिकी, जिसकी ओर साहित्य संकेत करता है। दया, क्षमा, त्याग, सेवा, सहयोग और इनसे भी बड़े प्रेम, सौन्दर्य, आत्मीयता, निर्भीकता, सम्पन्नता, शालीनता आदि नामके जिन तथ्योंकी ओर, उनके सम्बन्धमें कुछ भाव-विचार प्रस्तुत करके, साहित्य संकेत करता है, उनकी अनुभूतिकी ही मानव-समाजको आवश्यकता है और निस्संदेह इस अनुभूतिका ही उसके पास अभाव है।

आजके सभ्यता-सम्पन्न युगमें मनुष्यकी असाधारण पीड़ा और अतृप्तिका उत्तरदायी मानव-समाजका वह वर्ग है, जो साहित्यको अपने सिर पर उठाकर उसकी सीमाके आगे तक ले चलता है। वह वर्ग कौन-सा है ? वह साहित्य-स्रष्टा और साहित्य-ग्राही, दोनों वर्गोंके वीच फैला हुआ है। हमारा साहित्यकार आज साहित्यके सृजनमें—अपने भावो और विचारोकी दूसरों पर वर्षा करनेमे तथा हमारा साहित्यानुरागी साहित्य-सेवी उस साहित्यके उदरस्थीकरणमें इतना व्यस्त है कि इन दोनों को ही अनुभूतिके लिए फुर्सत नहीं है। अखवारों और पुस्तकोंकी वाढ आज सभ्यता और शिक्षाकी वृद्धिकी मापक मानी जाती है।

इनकी उपयोगितासे इनकार नही किया जा सकता। जिस रूपमे और जहाँ इनकी आवश्यकता है, वहाँ इनकी वृद्धिका अवकाश अभी है ही, किन्तु जहाँ इनकी अतिमात्रा (overdosing) है, जहाँ जिन हृदयों—मनोमें—ये आवश्यक मात्रामे पहले ही पहुँच चुकी हैं वहाँ आवश्यकतासे अधिक स्थान घेरकर ये अनुभूतिमे वाधक ही वन सकती है।

अनुभूतिके लिए जिस स्थिरता और नीरवताकी आवश्यकता है, वह साहित्यके—विचारों और भावनाओके—प्रवाह-रवमें सम्भव नही है। यह स्थिरता एक विशेष, अभीष्ट दिशामें गति है; वह नीरवता जीवनका संगीत है। अनुभूति ही जीवन है। साहित्य

केवल जीवनके कुछ छाया-चित्र ही प्रस्तुत कर सकता है। छायाकी अपेक्षा उसकी स्रष्टा वस्तु कहीं अधिक सजीव और सक्रिय हो सकती है। एक शब्द-में, साहित्यके आगे हमें जीवनकी आवश्यकता है और यह जीवन—हमारी अनुभूति-पूर्ण रहनी—ही मानवताको समृद्धि और सुखकी पूर्णता तक ले जा सकती है।

अनुभूति स्वयं अपना वाहन, स्वयं अपनी भाषा है। आदमीके बनाये मिट्टी और काठके कठघरोंमें यह भाव और विचारकी भाषा पहनकर प्रतिध्वनित होती है, किन्तु जीवनके मुक्त आकाशमें अपनी निरावरण वाणी बोलती है। यहाँ वह कहीं अधिक सजीव और सक्रिय है। प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक गहरी अनुभूति सम्पूर्ण मानव-समाजको समृद्ध-तर बनाती है। मेरी अनुभूति मेरे स्वहित और लोक-हितके लिए जितनी शक्तिमती और प्रभाव-मती है, उसका विचारों और भावोंकी भाषामें अनुवाद शतांश-सहस्रांश भी समर्थ नहीं है। मेरी प्रत्येक अनुभूतिका प्रभाव मेरे आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्वपर मेरे आसपासके वृक्षों और पशु-पक्षियों पर, मेरे सम्पर्कमें आनेवाले घर, पड़ोस और सड़कके प्रत्येक व्यक्तिपर बिना उस अनुभूतिके सम्बन्धमें एक शब्द कहे भी, पड़ता है और जब उस अनुभूतिको मैं शब्दोंमें बाँधकर उसे अपना 'साहित्य' बना देता हूँ तब? तब वह केवल कुछ व्यक्तियोंके मनमें एक चलता हुआ प्रिय-स्पर्शी, अनुकरणमूलक विकार मात्र उत्पन्न कर सकता है।

बस, साहित्यके आगे भी मनुष्य-को एक अन्य वस्तुकी आवश्यकता है और वह है, उसकी स्वतंत्र, मौलिक अनुभूति। इस अनुभूतिमें साहित्य एक सीमाके आगे बाधक ही हो सकता है, इसलिए मनुष्यको ऐसे अवकाशकी भी आवश्यकता है, जिसमें वह साहित्य-के प्रवाहसे तटस्थ रह सके। इसके लिए विद्याओं और पाण्डित्योंका संग्रह नहीं, मानव-समाजके भावों-विचारोंका कोलाहलपूर्ण बाह्य सम्पर्क नहीं, एकांत प्रकृतिकी नीरव वाणी ही कुछ सहायक वातावरण प्रस्तुत कर सकती है।

साहित्यकी उठी हुई उँगलीका संकेत लेकर, साहित्यसे प्रणाम-पूर्वक विदा लेकर जब मनुष्य साहित्यके इंगित श्रद्धा, सौन्दर्य, प्रेम, सेवा आदि की स्वयं अनुभूतिकी ओर अग्रसर होगा, तभी वह इन्हें जान सकेगा और तभी अपने लिए नये सुखी संसारका निर्माण कर पायेगा।



सूरज ग्रहण की परेशानी

• महात्मा भगवानदीन •

दरवाजा खटका, कोई अन्दर आया, मेरी बेटी शकुन्तला, "कौन है, कौन है" करती कमरेमें पहुँची। वहाँसे लौटकर मुझसे बोली, "कोई आपसे मिलने आया है।"

मैं खाना खा रहा था। मैंने सोचा—आनेवाले सज्जनको कमरेमें बैठा दिया जाय, खाना खानेके बाद उनसे मिला जाय, पर, न जाने क्यों, जल्दी ही दिलका फ़ैसला हुआ कि फ़ौरन मिला जाय। मैं कटोरी हाथमें लिये, जैसे ही कमरेमें पहुँचा, मुझे दो आदमी नमस्ते करते सुनाई पड़े। आज ही मैं अपनी ऐनक खो चुका था, इसलिए मैं उन्हे न पहचान सका। मैं उनसे बोला, "मेरी आँखें ठीक नहीं देखती। मैंने पहचाना नहीं, कहिये, आप कौन है ?" उन दोमेसे एक बोला, "मैं हूँ जस्सू।"

जस्सू मेरे मित्रके पोते होते है। परसों ही मैं उनके बाबाके साथ बंबई था। यही जस्सू अपनी माँके साथ परसों बंबई स्टेशनपर दिल्लीके लिए मुझे विदा करने आये थे। यह तय था कि जस्सू कल रवाना होकर आज दिल्ली पहुँच जायँगे, मैं उनके ठहरनेका प्रबन्ध करा दूँगा।

ऐनक खो जानेसे मैंने जस्सूको स्टेशनसे लानेका काम अपने पोते दिलीपके सुपुर्द किया था।

मैं जस्सूको दिलीपके बिना आया

देखकर चकराया। मैंने पूछा, "क्या दिलीपने तुमको आसानीसे ढूंढ लिया? उसने तुम्हें पहले कभी नही देखा।"

जस्सू बोले, "हाँ जी, पहचान तो आसानीसे लिया, पर एक अजीब घटना हो गई।"

मैंने पूछा, "वह क्या?"

जस्सू बोले, "हुआ यह कि दिलीपजी ठीक वक्तसे स्टेशन पहुँचे। उन्होंने मेरा नाम लेकर मेरे साथियो-से मेरा पता बहुत जल्दी लगा लिया। मै उन्हें पहचानता न था फिर भी उन्होंने कुछ इस ढगसे बातें की कि मैं समझ गया यह कोई अपने ही आदमी है, मुझे लेने आये है। मैं उनके साथ हो लिया। उन्होंने मुझे और मेरे साथीको उतारने, सामान सँभलवाने, कुलीके करने, रिक्सामें बैठाने आदिमें इतनी फुर्ती और चुस्ती दिखाई जितनी कभी काग्रेसके वालिन-टियर नेताओ और डेलिगेटोके स्वागत में दिखाया करते थे। दिलीपजी हमको रिक्सामें बिठाकर और रिक्सा वालेको कुछ हिदायत देकर अपनी साईकल लेने चल दिये। उनके लौटनेसे पहले दोनो रिक्सा वाले, हमारे रोकने पर भी, चल दिये। हम समझे कि रिक्सावाले अच्छी तरह वह जगह जानते है जहाँ हमें पहुँचना है। हम बेफिक्र हो गये, दिलीपजीके आनेकी चिन्ता छोड दी। हम यह भी समझते थे कि दिलीपजी साईकल सवार है, जल्दी हमको पकड लेंगे। फिर रिक्सावालोको भी क्यो रोका।

दोनो रिक्सावाले डाकखानेके पास जाकर खडे हो गये, बोले, "हमें बाबूजीने डाकखानेसे ऊरे खडे होनेकी हिदायत दी है।"

पाँच मिनट बीते, दिलीपजीका कोई पता नही, दस मिनट बीते तब भी कोई पता नही, पन्द्रह बीते, पच्चीस बीते, यहाँ तक कि आध घटा हो गया। हम मुश्किलमें पडे। हम न दिलीपजीका ठीक-ठीक पता जानते थे और न उस जगहका जहाँ जानेकी रिक्सावालोको हिदायत दी गई थी।

हम रेलसे थके हुए उतरे थे। कपडे हमारे काले हो रहे थे। बाल कोयलोंसे भरे हुए थे, हाथ-पाँव ढीले पड रहे थे। रात भर रेलमें ठीक जगह न मिलनेसे आँखोके पलक नही चाहते थे कि वह अपने सहारे खडे हो और आँखोको बाजारका सिनेमा देखनेके लिए बेमतलबकी तकलीफ सहें। ऊपर-नीचेकी पलकें मिलकर आराम करना चाहती थी। उधर दिमागकी आज्ञाएँ निकलती थी कि ठहरो। किसी सुभीतेके स्थानपर पहुँचकर ही तुमको आराम करने दिया जा सकता है। इधर पलक दिमागकी हुकुमउदूली करते, उसका असर यह होता कि सिर कभी बाईं तरफ और कभी दाईं तरफ ढलकता। तिसपर रिक्सावालोने "बाबूजी, उत-रिये, बाबूजी, उतरिये" का शोर मचा रखा था। इस खींचतानसे मस्तक खीझ उठता और मैं बार-बार यह सोच उठता था कि यह दिलीप-कुमार अजीब आदमी है, कहाँ बेतुकी जगह लाकर हमें पटक दिया? क्या दिल्लीवालोकी महमान-नवाजीका

यही तरीक़ा है। दिल्लीवालोंके बारेमें जो उड़ी हुई बातें सुन रखी थीं वह सच नजर आने लगी। पर जो मेरे साथ गुजर रही था ऐसी बात तो सुनी भी न थी। इसलिए मनको और भी तक़लीफ हो रही थी। मैं समझ ही न पा रहा था कि आखिर हम ग़रीबोंके साथ दिलीपजीने यह किया तो क्या किया? यह तो हो नहीं सकता कि वह साईकलसे हमें पकड़ न लेते, या अगर पकड़ न पाये होते तो डाकघर तक न पहुँचते। क्योंकि डाकघरका पता तो रिक्सा-वालोंको उनका बताया हुआ था। मैं जब बहुत परेशान हो गया तो अपने साथीसे बोला, "यह तो अजीब मामला है, अब बोलो, क्या करना चाहिये?"

मेरा साथी बोला, "हो सकता है, दिलीपजीके साथ कोई एक्सीडेंट हो गया हो, क्योंकि जिस मोहब्बतके साथ उन्होंने हमारा पता लगाया, हमारे लिए कुली किया, अपने पाससे दाम चुकाये, हमारे लिए रिक्से ढूंढ़े, हमें रिक्सोंपर सवार किया, उनसे यह उम्मीद हरगिज नही की जा सकती कि वह हमें इस तरह ऐसी जगह छोड़ दें, कि हम दिक्कतमें पड़ जाये। जरूर उनके साथ कोई अनहोनी बात हो गई दीखती है, ज़रूर वह किसी बड़ी मुसीबतमें होंगे। उनकी मुसी-बतको देखते हुए, हमें इस मुसीबतका कुछ ख़्याल न करना चाहिये।

मैं अपने साथीसे बोला, "यह बात तो तुम ठीक कहते हो, पर हम तो इस शहरके लिए एकदम नये हैं, न किसीसे जान है न पहचान, जायें तो कहाँ जायें?"

मेरा साथी बोला, "क्यों न किसी होटल या धर्मशालामें चला जाय?"

मैं बोला, "क्यों न वहीं चला जाय, जहाँ हमारे और साथी ठहरे हुए हैं"

मेरा साथी बोला, "उनके पास पहुँचकर अपनी हँसी उड़वानेसे क्या फ़ायदा?"

हम दोनोंमें इधर बातें हो रही थी, उधर रिक्सावालोंने शोर मचा रखा था। इससे मेरा दिमाग़ झन्नाया हुआ था। जी होता था कि रिक्सा वालोंको एक एक चपत जमाई जाय। अचानक मुझे वह पता याद आ गया जहाँ एक बार, दिल्लीके चावड़ी बाज़ारमें, हमको ठहरानेकी बात बंबईमें चली थी। बस हम दोनों वहीं पहुँच गये। वहाँ हर तरहका सुभीता था। वहीं हम नहाये धोये, खाना खाया और दिलीपजीकी तलाश में निकल पड़े। दरियागंजमें उनके मकानका जल्दी पता चल गया। घरपर एक महिला मिली जिन्होंने कहा कि न दिलीपकुमार घरपर हैं और न उनके पिताजी। हम लोग वहाँ एक पत्र छोड़कर आपकी तलाश मे निकले, और अब आपके सामने मौजूद हैं।"

मैं यह सब सुन थोड़ा मुस्कराया, सोचमें पड़ा और घबराया, फिर यह फ़ैसला किया कि जस्सू और उसके साथीको लेकर दिलीपके घर पहुँचा जाय। फ़ैसलेके साथ ही हम रवाना

हो गये, बाहर एक मोटर ताँगा मिल गया। दरियागज स्टैंड पर पहुँचकर हम दिलीपजीके घरकी ओर चल दिये। दरियागज पहुँचने पर जस्सू एक ओर मुडकर एक जीने पर चढने लगे। मैंने पूछा, "यहाँ किसको पहचानते हो ?"

जस्सू बोले, "यही तो दिलीप कुमारका घर है, यही तो हम अपना पत्र दे गये थे।"

यह जवाब सुन मैं एकदम हँस पडा। उन्हें ऊपर जानेसे रोक, अपने साथ लिया और सीधा दिलीपकुमारके घर पहुँचा। वहाँ घर पर कोई न मिला, मिली तो दिलीपकी छोटी बहन कुसुम मिली। कुसुम बबई हो आई थी और जस्सूको खूब पहचानती थी। उसे देख वह हँस पडी और बोली, "खूब, भाई साहब तो तुमको ढूंढते फिर रहे हैं और बेहद परेशान हैं। वह समझे हुए हैं यह सब ग्रहण देखनेका नतीजा है, उसका कहना है, ज्योतिषियोंने ठीक लिखा है कि सूरज ग्रहण देखनेसे इन इन राशिवालोंको दिक्कतमें पडना होगा। वह अभी-अभी बाबाजीके पास आपके बारेमें खबर देने गये हैं। थोडी देरमें आते होंगे।'

मैंने यही ठीक समझा कि दिलीपके वापिस आने तक यहीं रुका जाये। थोडी देरमें वह भी आ पहुँचे। उनकी परेशानी जो एकदम दूर हुई तो सिवाय हँसनेके उनके पास कुछ न रह गया। हँसते हुए बोले, "आप रिक्से भगाकर इतनी जल्दी क्या चले आये ? मैं समझा, आप दोनों वहाके लिए, जहाँ आपने बबईमें ठहरना तय किया था, चल दिये। मैं वहाँ गया पर आप वहाँ न मिले। मैं घबडा उठा, कभी स्टेशन, कभी घर। हरह-तरहके ख्याल उठने लगे। दिल्ली आजकल तरह-तरहकी वारदातोंके लिए बदनाम हो रही है। एकदम ख्याल आया कि अवश्य रिक्शावाले आपको कहीं उडाकर ले गये। बाबाजीने आपके बारेमें मुझसे यह कह रखा था कि आप भोले-भाले है। इससे मेरे शकके पौधेको और पानी मिला। मैंने चाहा कि मैं अपनी बहनको आपकी तलाशमें भेजूं, क्योंकि भागदौडमें मैं बहुत थक गया था, पर वह तैयार न हुई। मैं फिर दौडा और बाबाजीके पास पहुंचा। वहाँ पता चला कि बाबाजी वहाँ नही हैं और यह भी मालूम हुआ कि आप दोनोंको लेकर दरियागज गये है। फिर मैं यहाँ आया, देखता हूँ, आप सब यहाँ मौजूद हैं।

बताइये अब मैं ज्योतिषियोंकी बात क्यो न मानूं ? यह बेमतलबकी परेशानी आखिर हुई तो क्यो हुई ?

मैं बोला, "भूख लगना परेशानी है, ज्यादा भूख लगना और बडी परेशानी, पर जितनी ज्यादा भूख होगी उतना ज्यादा खाना खाया जायगा। इसलिए भूखको परेशानी समझना, परेशानीको न समझना है। खानेके आनन्दके लिए भूखकी परेशानी जरूरी है। ऐसे ही जिन्दगीके आनन्दके लिए ऐसी परेशानियाँ आवश्यक हैं। अब कोई भूख और परेशानीका नाता ग्रहणसे जोड बैठे तो उसमें ज्योतिषियोंका क्या कसूर ? ज्योतिषियोंकी आमदनीके लिए, कोई आदमी गली खोल बैठे तो ज्योतिषी उसके अहसानमन्द होंगे। ऐसी परेशानियाँ आये दिन होती रहती हैं, इन परेशानियोंके बिना सुख मिल ही नही सकता। जिसको यह परेशानियाँ नही वह सुखसे दूर रहता है और सुख उससे दूर रहता है। भलाई इसीमें है कि परेशानियोंका स्वागत किया जाय और सुखका आनन्द लिया जाय।

प्रशंसा और आत्मप्रकाशन

• • •

महान् लेखक श्री बेकन

• • •

[१]

प्रशंसा सद्गुणोंका प्रतिविम्ब है; किन्तु है उस दर्पणके समान जो केवल प्रतिबिम्ब डालता है। यदि प्रशंसा करनेवाले साधारण लोग होते हैं, तो साधारणतया प्रशंसा भी नकली और तुच्छ होती है और सद्गुणीकी अपेक्षा अहंकारी ही उसके पात्र होते हैं; क्योकि उत्तम गुणोंमेंसे बहुतसे तो जन-साधारणकी समझके परे होते हैं। निम्न श्रेणीके गुणोंकी ही वे प्रशंसा कर सकते है। मध्यम श्रेणीके गुणोंकी तो वे आश्चर्यचकित होकर सराहना करने लगते हैं; किन्तु सर्वोत्तम गुणोंका जरा भी अनुमान लगानेका मस्तिष्क उनके पास नही होता। वे तो दिखावे और तुलनात्मक विवेचनसे ही अधिकाधिक सन्तुष्ट हो सकते है। सचमुच कीर्ति तो उस नदीके समान है, जिसमें हल्की और फूली हुई वस्तुएँ तो तैरती रहती हैं, किन्तु भारी और ठोस वस्तुएँ डूब जाती है। फिर भी यदि योग्य और न्यायप्रिय मनुष्य किसीके विषय में एकमत हो सकें, तो (जैसा कि बाइबिलमें कहा गया है) वह यश सुगन्धित इत्रके समान है। वह चारों ओर व्याप्त है और आसानीसे मिट नही सकता; क्योंकि इत्रकी सुगन्ध फूलकी सुगन्धकी अपेक्षा अधिक टिकाऊ होती है।

प्रशंसाके कई झूठे भी पहलू होते हैं और परिणाम-स्वरूप किसीको भी उसके प्रति शंका होना स्वाभाविक ही है। प्रशंसाकी कई बातें केवल चापलूसीका परिणाम होती हैं और यदि चापलूसी करनेवाला साधारण श्रेणीका है, तो वह कुछ ऐसे साधारण विशेषणोंको याद रखेगा जो कि हरेक व्यक्तिके साथ जोड़े जा सकते है। यदि वह चापलूस चालाक है, तो वह स्वयं मनुष्यके हृदयमें बैठे 'अहं'का लाभ उठायगा और वह मनुष्य जिस गुणमें अपने आपको बहुत कुछ समझता

है, वह चापलूस भी उसके उसी गुण का सबसे अधिक गान करेगा, किन्तु यदि वह चापलूस ढीठ होगा, तो वह यह ध्यान रखेगा कि सामनेवाले मनुष्यको किस गुणकी कमी अखरती है और कौन-सी कमीके कारण वह शर्मिन्दा है। वह धूर्त जान-बूझकर उसपर वह गुण थोपनेकी धृष्टता करेगा।

कुछ प्रशंसा तो आदर और सदिच्छाके वशीभूत होती है। उदाहरणके लिए शासको और महान् व्यक्तियोकी प्रशसाका उद्देश्य उनकी प्रशसा द्वारा उन्हें सोनेसे जगाना है। ऐसी दशामें लोगोको यह कहकर कि वे क्या है यह बता दिया जाता है कि उन्हें क्या करना चाहिए, किन्तु कुछ व्यक्तियोकी तो केवल उन्हें चोट पहुँचानेकी बुरी भावनासे ही प्रशसा की जाती है, जिससे कि उनके प्रति समाजमें ईर्ष्या और द्वेषकी भावना जग जाय। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्यका सबसे घातक दुश्मन वह है जो उसकी प्रशसा करे।

यूनानियोमें यह कहावत प्रचलित थी कि "जिसकी प्रशसा केवल हानिके इरादेसे की जाती है, उसकी नाकपर फुन्सी होनी चाहिए।" हम भी कहा करते हैं कि "झूठ बोलनेवालेकी जबानपर छाले पडते है।" यथार्थमें उचित प्रशसा वही है, जो अवसर-विशेषपर पात्रकी उपयुक्तता देखकर की जानेसे कुछ लाभप्रद हो सके। सालोमनने कहा है कि "यदि कोई रोज सुबह जल्दी उठकर अपने मित्रकी जोर-जोरसे प्रशसा करे, तो वह उसके लिए शापके समान सिद्ध होगी।" किसी भी वस्तु या व्यक्तिका सीमासे अधिक गुणगान करना विरोधको उत्तेजित करना है और परिणामस्वरूप इससे ईर्ष्या और घृणाकी सृष्टि होती है।

आत्म-प्रशसा करना कुछ विरले अवसरोको छोडकर कभी भी शिष्ट नही कहा जा सकता, किन्तु जहाँ तक किसी मनुष्यके खुदके पद या उद्यमको प्रशसा करनेका प्रश्न है, वह उदारता और सम्मानपूर्वक की जा सकती है।

रोमके पादरी धर्मवेत्ता, मठाधीश अथवा अध्यापक होते है। वे सासारिक व्यवहारको बहुत ही घृणापूर्ण दृष्टिसे देखते है। वे युद्ध, राजदूत-कार्य, न्याय-कर्म और अन्य सभी सासारिक कार्योको शहर या जिला हाकिमका कार्य बताते हुए उनकी भर्त्सना करते है। उनकी दृष्टिमें मानो ये सब कार्य केवल हाकिमो और सरकारी अमीनोके है, किन्तु फिर भी यही हाकिम और अन्य कर्मचारी कितनी ही बार आशासे अधिक भले काम करते है और उन पादरियोकी सासारिक कार्योके प्रति घृणा किसी भी प्रकार उचित नही ठहराई जा सकती है।

सेंट पाल जब स्वय की प्रशसा करता है, तो बीच-बीचमें जोड देता है कि "मैं एक मूर्खके समान बोलता हूँ" किन्तु अपने पद और कार्यके विषयमें बोलते हुए कहता है—"मैं अपने पदकी अत्यधिक प्रशसा करूँगा।"

[२]

एसपने एक सुन्दर बात कही है

कि एक मक्खी रथके पहियेकी धुरी पर बैठ गई और कहने लगी, ओह ! देखो तो ! मैं कितनी धूल उड़ाती हूँ । संसारमें इसी प्रकारके कुछ मिथ्या मनुष्य होते है । यदि कोई भी वस्तु स्वयं ही या किसी महान् आधारके सहारेसे आगे वढ़ती है, तो वे सोचते है कि वे ही इस वढ़तीके कारण हैं, यद्यपि इसमें उनका ज़रा भी हाथ नही होता है ।

जो मनुष्य आत्म-श्लाघी होते हैं, उनके लिए कलह-प्रिय होना भी आवश्यक ही है, क्योंकि शेख़ीका आधार ही होड़ा-होड़ी है । उनको अपने वृथाभिमानको पूर्ण करनेके लिए शक्तिका प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है । वे न तो चुप रह सकते है और न कोई वात गुप्त रख सकते हैं और इसलिए वे सफल नही हो सकते ।

फिर भी सांसारिक व्यवहारोंमें इस गुणका वहुत उपयोग है; जहाँ कहीं भी किसी सद्गुण या महानताके प्रति एक प्रसिद्धि और सुविचारका वातावरण तैयार करना हो । किसीने कहा है कि एकके वारेमें दूसरेसे झूठ वोलना भी कभी-कभी वहुत लाभकारी सिद्ध होता है । एक व्यक्ति दो राजाओंको तीसरेके विरुद्ध एक साथ लानेके लिए उनकी आपसी चर्चामें मध्यस्थता करता है । वह दोनों राजाओंकी शक्तिको एक दूसरेके सामने वढ़ा-चढ़ाकर वताता है । कभी-कभी ऐसा मध्यस्थ व्यक्ति, उसका जितना भी उन व्यक्तियोंमेंसे हरेक पर प्रभाव है, उससे अधिक दिखावा कर चर्चासे संवंधित दोनों व्यक्तियोंकी दृष्टिमें अपना मूल्य बढ़ा लेता है । ऐसे और इसी प्रकारके अन्य उदाहरणोसे यह सिद्ध होता है कि 'कुछ नही' होते हुए भी 'कुछ' बना जा सकता है, क्योंकि कोरा असत्य भी विचार उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होता है और विचार उत्पन्न होने पर ही कोई ठोस कार्यका निर्माण हो सकता है ?

सैनिक अधिकारियों और सिपाहियोंमें आत्म-प्रकाशन और वाह्य दिखावा एक आवश्यक गुण समझा जाता है, क्योंकि लोहा ही लोहेको रेतता है और एकमें साहसके अहंकारसे ही दूसरेमें साहस उत्पन्न हो सकता है । हरेक मनुष्य दूसरेके शेख़ी भरे कार्योंसे वाजी मार ले जाना चाहता है । जिस वड़े कार्यमें वड़े ख़तरे और साहसकी आवश्यकता होती है, उसमें शेख़ीवाजोंके आ मिलनेपर जीवन आ जाता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति जिनकी प्रकृति गंभीर और शान्त होती है, ऐसे जहाज़ोंके समान होते हैं, जिनमें जहाज़को डांवाडोल होनेसे बचानेके लिए वजन तो भरा रहता है, किन्तु गति देनेके लिए पालोंका उपयुक्त प्रवन्ध नही होता ।

विद्वत्ताके आकाशमें भरी जानेवाली उड़ानमें गति भरनेके लिए आत्म-प्रकाशनके पंख होना वहुत आवश्यक है । सिसरोने एक स्थानपर लिखा है कि जो व्यक्ति आत्म-प्रकाशनकी निन्दा करनेवाली पुस्तक लिखते हैं, वे भी उस पुस्तकपर अपना नाम छपवानेसे नहीं चूकते । सुकरात, अरस्तू, गेलन इत्यादि सभी व्यक्ति

आत्म-प्रकाशनसे पूर्ण थे। यथार्थमें आत्म-प्रकाशन तो मनुष्यकी स्मृतिको सदाके लिए बनाये रखनेमें सहायक होता है। सद्गुण तो सदा ही इस मानव प्रकृतिके प्रति ऋणी रहते आये हैं, क्योंकि यह प्रकृति ही अप्रत्यक्ष रूपसे उनका गुणगान करती आई है। सिसरो, सिनेका, प्लिनियन इत्यादि ग्रीकवासियोंका यश सदा ही ताजा न रहा होता, यदि उसमें उनकी स्वय की आत्म-प्रशसाका पुट न लगा होता। उनका यह आत्म-प्रकाशन उस वार्निशके समान है, जो किसी भी वस्तुको केवल चमका ही नही देती, किन्तु उसकी उम्र भी बढा देती है।

अभी तक मैंने जो कुछ भी आत्म-प्रकाशनके विषयमें कहा उससे उस गुणका अर्थ नही है, जिसका प्रयोजन यही होता है कि मनुष्यके प्रत्येक वचन और कार्यमें स्वयके स्वार्थके लिए आत्म-दिखावेकी भावना हो। सच्ची आत्म-प्रशसा अहकारका परिणाम नही होती है, किन्तु स्वाभाविक उदारता और विवेकका फल होती है। कुछ व्यक्तियोंमें यह गुण केवल सुन्दर ही नही शिष्ट भी होता है, क्योंकि क्षमा-याचना, समर्पण, विनय इत्यादि गुणोका यदि उचित प्रयोग हो, तो ये सब ही आत्म-प्रकाशनकी कलाएँ हैं। इन सब कलाओंमें सबसे अच्छी कला वह है, जब मनुष्य दूसरोके उस गुणकी उदारता-पूर्वक प्रशसा करता है, जो स्वय उसमें पूर्णताको प्राप्त हो गया है। किसीने कितना सुन्दर सूत्र कहा है—"दूसरोंके किसी गुणकी प्रशसा कर तुम अपना भला करते हो, क्योंकि जिसकी तुम प्रशसा करते हो, वह या तो उस गुणमें तुमसे श्रेष्ठ है या हीन। यदि वह हीन है और उसकी प्रशसा की जाती है, तो तुम्हारी उससे भी अधिक। यदि वह श्रेष्ठ है और उसकी प्रशसा नही की जाती है, तो तुम्हारी तो और भी नही।"

अहकारियोंसे बुद्धिमान् घृणा करते हैं और मूर्ख उनको पूजते हैं। चापलूस उनको मूर्तिवत् पूज, अपना उल्लू सीधा करते हैं और अहकारी स्वय अपने वृथाभिमानसे ऊपर उठ नही सकते।

अनुवादक—श्री शकर विजयवर्गीय



आशा के सुमन



न आओ कभी पर बुलाता रहूँगा।
सपन में सुनहले झुलाता रहूँगा॥

भला साधनाएँ हुईं कब न पूरी,
सभी कामनाएँ न रहतीं अधूरी,
न आओ पथिक बन कभी इस डगर से,
तरी तीर से पर लगाता रहूँगा!

मिटा आश-अभिलाष मैं एक युग से,
रहा वेणु अपनी बजा एक युग से,
न गाओ कि इन सरगमों पर, इन्हें मैं—
तुम्हारे स्वरों से मिलाता रहूँगा!

न जाने तुम्हारे हृदय में बसा क्या,
किसी के सपन का किसी को पता क्या,
नई एक दुनिया बनाता रहूँगा,
नई एक दुनिया मिटाता रहूँगा!

बनो चाँद नभ के हटे यह अँधेरा,
अरे! फिर कहाँ कौन अस्तित्व मेरा,
क़सम है तुम्हारी सदा मेघ बन-बन,
तुम्हें अङ्क में मैं छुपाता रहूँगा!



श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

निर्मल के परिवार में

श्री प्रेमकपूर 'कंचन'

शर्म और बेशरमी क्या, सब स्थिति और शक्तिपर निर्भर है, जैसा चाहो मनको समझा लो। हमारे देशका मध्यवर्गी समाज एक ऐसी चादर ओढे है, जिससे उसका दम घुटता रहे, पर वह उस चादरको उतारकर फेंक देनेके लिए प्रस्तुत नही। वह चादर है उसकी मान, मर्यादा, आदर्श, इज्जत की। इस वर्गका हर इसान, हर इकाई भूखो मरेगा, दु ख उठायेगा, नगा रहेगा, पर वह अपनी स्थितिके नीचे किसी ऐसे कामको करनेके लिए तैयार नही होगा, जिससे उसके बडप्पनमें फर्क आ सके

जब आप ध्यानसे देखना शुरू करेंगे, तो आपको आश्चर्य होगा कि यह नागरिकता नामकी चीज जो हमारी सारी सास्कृतिक प्रवृत्तियोका केन्द्र-बिन्दु है, नगर नामकी चीज पर ही तो आधारित हो सकती है ?

अशोक उसका अधकचरा जवान बेटा है। शीला घरकी अधकचरी कली। अशोकके तीन छोटे भाई है और दो छोटी बहिन, इतना छोटा-सा ही तो ससार है निर्मल का।

निर्मलके इतने बच्चे है, यह उसका दोष है ? जमानेका, समयका, या दुनियाका दोष है ? नगरकी आत्मा इसी नई आबादीपर तो जीवित है। निर्मलकी कहानी बहुत पुरानी नही। नही ऐसी कहानी पुरानी होती है। जब आज भी वह इस भरे-भरे वातावरणमे ऊब उठता है, उसकी आत्मा छटपटाने लगती है, तो उसे एक ही घटना याद आती है। उस घटनाको सोचते-सोचते उसकी बेकली बढ जाती है। बेचैनी पैर फैलाती है। वह अध-कटे बकरेकी तरह छटपटाता है, जिसका न आदि है न अत,—अस्फुट स्वरोमें एक ही शब्द, एक ही लाइन, एक ही वाक्य तो उसके खुले हुए मुंहमें घुल जाते हैं—भगवान् ऐसे गरीब घरमें इतने बच्चे क्यो देता है!

यह एक ऐसा अद्‌भुत प्रश्न है जो कि निर्मलकी आत्मासे निकलकर दुनियामें गूंज उठा—भगवान् गरीबके घर इतनी सन्तान क्यो देते है ?

निर्मल इस दुनियामें अकेला नही आया। उसके साथ उसकी उम्रके और भी न जाने कितने आदमी है। दूर जानेकी क्या जरूरत एक प्रकाश-को ही देख लो।

प्रकाशकी बात विद्रोहके झडेकी

तरह उसके दिमाग़की तरीमें उभड़ आई। कैसा ख़ुशनसीब है वह। बहुत पहले प्रकाश उसे एक नये ढंगसे मिला था। वही तो वह घटना थी आज जिसके पीछे निर्मल इस क़दर झख मार रहा है।—"प्रकाशका प्रयोग सफल था—मेरा असफल—" वह धीरे-धीरे बुदबुदाया और आँखें मूँदकर बैठ गया।

प्रमिला उसकी रूपमती रानीका नाम है, जिसके मुँहपर आज रूपकी रेखाका भी निशान अवशेष नही रह पाया है। कौन ले गया यह सब!

निर्मलको इस क़दर सोचमें बैठे देखकर प्रमिलाने न जाने कहाँके बचे-खुचे प्यारको संजोकर उसकी बाहोंपर अपना शीतल हाथ रखते हुए कहा—"किस सोचमें हैं, साढ़े ग्यारह बज गये—सुबह आफ़िस जल्दी जाना है।"

निर्मलको ऐसा लगा जैसे साँपनी चुटकी ले रही है। झटकेसे उसका हाथ हटाते हुए रह गया। प्रमिला अपने आपको कोसती हुई अपना-सा मुँह लेकर रह गई। सचमुच उसने ग़लती की थी। अब उसके सम्मानका समय नहीं रह गया था।

हटानेके जोशमें निर्मलने प्रमिलाका हाथ तो हटा दिया था, लेकिन मनमें अन्दर ही अन्दर वह कटा जा रहा था।—"कैसा वेहूदापन आज मेरे सिर-पर सवार हो गया था।"

रात निकल रही थी, घरमें शांति थी। एक दिन वहुत पहले ऐसी ही दिलकश मीठी-सी शरद शान्ति उसके जीवनमें आई, जब जीवनकी मदहोश तरंगोंसे उसका कलेजा धड़क रहा था। दोनों अपने आप उस शादीको याद करते-करते ख़ुदमें विलीन होते जा रहे थे। जड़वत् निर्मल बैठा था। मूर्तिवत् प्रमिला खड़ी थी, खोई हुई स्मृतियोंमें विलीन-सी। उसकी आँखोंकी तरीमें वे स्वप्न पनप रहे थे, जिनको पूजाके थालमें सँजोकर वह इस घरमें आई थी। इसी कमरे, इसी जड़े शीशेके सामने खड़े होकर उसने अपने उठते हुए रूपको देखा था और गर्वसे खिल-खिला पड़ी थी। आज उसे शीशेके सामने खड़े होते हुए भय लगता था। किसी रईसजादेसे पूछो जिसका धन जुएमें चित हो गया हो, उसकी ग़रीबी किस बेकलीसे कटती है। प्रमिला एक दिन रूपकी अमीर थी और आज उसका खजाना नष्ट हो गया था, ख़ाली हो गया था। इसलिए उसका मालिक भी उसे झिझकार रहा था। वह सोच-कर रो पड़ना चाहती थी।

तभी निर्मल बोला—'मेरी शादीको कितने साल हो गये होंगे प्रमिला?"

यह प्रश्न प्रमिलाको तीरकी तरह लगा और वह बिंधी हुई शेरनीकी तरह गर्वसे बोली—"यही कोई नौ-दस वर्ष?"

"हमारी शादीके साथ ही प्रकाशकी भी शादी हुई थी। उसकी पत्नी नीरा तो तुम्हारी सहेली रह चुकी है।"

"हाँ" प्रमिलाने सिर हिलाया।

"मैंने तुमसे पहले कभी नही कहा।" निर्मल बोला—"आज अपनी बेबसीकी वात मुँहमें रुकती ही नही प्रमिला।" प्रमिला निर्मलके वहुत निकट आकर खड़ी हो गई और निर्मलकी पीठपर हाथ रखकर गम्भीरतासे सुनने लगी।

निर्मल कहता गया—"प्रमिला!

प्रकाशको भगवान्ने दो बच्चे दिये प्रबोध और सुधा। वह कहता था मैं इसी में खुश हूँ। भगवान्की विरासतमें यह ग़रीब और अमीरका फ़र्क क्यों बन जाता है प्रमिला। प्रकाशके पिता और मेरे पितामें कोई फ़र्क नहीं था, दोनों एक ही स्टेटसके आदमी थे। हम दोनोंने एक ही क्लास तक एक ही तरहकी शिक्षा पाई, आज मुझमें और प्रकाशमें इतना अन्तर क्यों पड़ गया?

"प्रकाशके प्रबोध और मेरे अशोकमें ज़मीन आसमानका अन्तर है। ऐसा क्या प्रमिला?"

"अपने अपने भाग्यका फेर है यह।"

"नहीं, मैं नहीं मानता। प्रकाशका प्रबोध हँसता हुआ जवानीकी ओर बढ़ रहा है। उसके लिए दुनियाके सातों दरवाज़े खुले हैं, क्योंकि उसके बापके पास पैसा है और मेरे पास प्रमिला! शीला मेरी बच्ची है उसकी शादीके लिए जहाँ चिट्ठी डालो टकासा जवाब मिल जाता है। ओह, गरीबके बच्चे।"

"आप क्यों घबड़ाते हैं, क्यों अफ़सोस करते हैं। कल अशोक भी चार पैसा कमाने लगेगा तो हमारी हालत सुधर जायगी।"

"नहीं प्रमिला, नहीं। मैंने कभी अपने बापके समयमें यह अनुभव नहीं किया था कि मैं गरीब हूँ, पर मेरे बच्चे दूसराका भरा कटोरा दूध देखकर यही सोचकर तो मन मार लेते हैं कि उनके बापके पास पैसे नहीं हैं। वे ज़िद्द क्यों नहीं करते प्रमिला।"

"भगवान् जिसे गरीबी देता है उसका कलेजा पहले ही छोटा कर देता है, वे मुसीबतके आदी हो जाते हैं। अगर ऐसा न हो तो उनका कलेजा न फट जाय नाथ, पर यह सब हमारी ही गलती है कि इतने बच्चे हैं। मैं समझती हूँ अगर अब भी हम लोग "

"क्या बकती हो, कि मैं पाप करूँ?"

एक ज़माना गुज़र गया। निर्मलका जीवन झीखते-झीखते बीत गया। प्रमिलाकी मुसीबतोंका आलम बढ़ता गया। कमज़ोरी और बुढ़ापेने जब उसे कुसमयमें ही धर दबोचा, तो हारकर उसने अधकचरे अशोककी मँगनी कर दी, शादी कर दी और उसे भी उसी कीचड़में घसीट लिया जिसमें वे खुद उलझे उलझे उकता गये थे। उन्होंने अपना मन समझाया, बाप और माँका फ़र्ज़ तो पूरा करना ही है। अशोक आवारा न निकल जाय, उसे कहीं-न-कहीं ढंगसे लगा देना या चिपका देना है और उसके पैरोंमें मज़बूत साँकल डाल देनी है, जवानीसे लदे रूपकी साँकल। अशोककी शादी हो गई, बहू आई, गीत गाये गये, चार दिन रौनक रही और अब बेटे-बेटीसे भरा निर्मलका घर पोते-पोतियोंकी प्रतीक्षा करने लगा।

तीर्थ और मंदिर

निर्वाण-भूमि : द्रोणगिरि

श्री देवेन्द्रकुमार एम० ए०

भारत-भूमि नाना सस्कृतियोंकी तरह—नाना तीर्थोंकी भी आधारभूमि है, जीवनके शाश्वत सत्य और सौन्दर्यको स्थायी रूप देनेके लिए—भारतीयोंने इनके निर्माणमे धन और कलाको कुछ भी नही गिना। यह प्रसन्नताकी बात है, पर यह दुःखकी बात है कि उन्होने इन तीर्थोंका कोई प्रामाणिक इतिहास नही लिखा। सम्यक् श्रद्धाके लिए किसी वस्तुका इतिहास-ज्ञान अत्यन्त अपेक्षित है। जैनतीर्थोंकी भी यही हालत है। आरंभमें जैनतीर्थ कम थे—और जो थे वे जनरवसे दूर—निर्वाणभूमिके रूपमें पूजित थे। पर मध्ययुगमें तीर्थोंकी संख्या खूब बढ़ी। इनमे कुछ तो अतिशय तीर्थके रूपमे, और कुछ पुराने तीर्थोंके नामपर कल्पित कर लिये गये है। पंडित आशाधरके पूर्वकी दो दिगम्बर-पोथियाँ हैं, निर्वाण-भक्ति और निर्वाण-कांड। इनमें सिद्धक्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रोंके नाम गिनाये हैं। पहली पोथी संस्कृतमें है और दूसरी प्राकृतमें। निर्वाण कांडमें द्रोणगिरिको सिद्धक्षेत्र या निर्वाण-भूमि माना है और कहा गया है कि *फलहोड़ी गाँवके पश्चिम भागमें द्रोणगिरि की शिखरसे गुरुदत्त आदि मुनियोने निर्वाण प्राप्त किया। पर द्रोणगिरि की भौगोलिक स्थितिका ठीक पता न होनेसे बुदेलखंडकी बिजावर रियासतमें सेंधपा स्थानको ही आजकल द्रोणगिरिके रूपमें माना पूजा जाता है। श्री नाथूरामजी प्रेमी इससे सहमत नही है और उन्होंने "विविध-कल्पतीर्थ"के आधारपर जोधपुरमें मेड़ता गाँवके निकट †फलोधी नामके श्वेताम्बर तीर्थको ही प्राचीन द्रोण-

---

* फलहोड़ी बड़गामे पच्छिमभायम्मि द्रोणगिरिसिहरे। गुरुदत्तादि मुनिंदो णिव्वाण गया णमो तेसिं॥ † देखो जैन-साहित्य और इतिहास।

गिरि माना है।*फलोधीसे ही फलहोडी शब्दका विकास हुआ। पर यह निर्मूल है। क्योंकि द्रोणगिरि दिगम्बर तीर्थ ही है, इसलिए श्वेताम्बरोंने उसे अपना तीर्थ बना लिया होगा, पर उसमें द्रोणगिरिका नाम अवश्य मिलना चाहिए—दूसरे फलोधीसे फलहोडीकी व्युत्पत्ति भी ठीक नहीं बैठती। बुंदेलखंडमें तो सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरिकी कल्पना और भी तर्कशून्य है, क्योंकि उसमें कला और संस्कृतिका प्रचार अपेक्षाकृत बादमें हुआ। कलाकी दृष्टिसे खारवेलके समयमें ही खजुराहोमें जैन मंदिर बने और यही वहाँकी सबसे प्राचीन कलात्मक निधि है, अतएव प्राकृतिक सौन्दर्य, प्राचीन सांस्कृतिक परंपरा और यातायातकी सुविधासे सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरिके अस्तित्वकी कल्पना यदि कहीं की जा सकती है तो वह हिमालयकी मध्य उपत्यका कुमाऊँमें। यह भी कल्पना ही है। पर अधिक संगत और साधार कल्पना है। कुमाऊँमें उत्तरप्रदेशके अल्मोडा और नैनीताल जिले सम्मिलित हैं। इनमें जो पर्वत-श्रेणियाँ हैं उनमें द्रोणगिरि पहाड या ऐतिहासिक दृष्टिसे हिन्दू परम्परा में बहुत मान है। कहते हैं, हनुमान् संजीवनी बूटीका पहाड इसी पहाडसे उठा ले गये थे। अब भी वहाँ जडी-बूटियाँ बहुत मिलती हैं। उसपर वैष्णवी देवीका मंदिर है। प्राचीन भौगोलिक दृष्टिसे इस प्रदेशको पिंडर नदीका उपरला प्रवाह तथा रामगंगा और कोशी एवं सरजूकी दूनें सींचती हैं। नदीकी धारा पहाड काटकर जो तट बनाती है उसे दून कहते हैं। द्रोणगिरि पर्वतके पच्छिममें आठ मील के लगभग फलौडी गाँव है। इसके बारेमें पता चला है कि प्राचीन समय में आदिग्राम नामका बहुत बडा गाँव था, जो अब तीन भागोंमें बँट गया है, और उसके एक अंशका नाम फलौडी है। फलौडी और द्रोणगिरिके बीचमें पांडवोंकी तपोभूमि है तथा अन्य कई प्राचीन ऐतिहासिक चिह्न है। फलौडी फलहोडीका विकसित रूप हो सकता है, अत्यन्त प्राचीनताके अर्थमें भी 'बडा' शब्द का व्यवहार होता है जैसे आदिनाथको 'बडे भगवान्' भी कहते हैं। संभव है, इसी प्रकार आदिग्राम ही बडगाँव कहा जाने लगा हो, पहाड पर जैन मंदिरोंके होनेका प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि प्राचीन तीर्थोंमें चरणचिह्न ही होते थे, मंदिर और मूर्तियोंका प्रचार बादमें हुआ है, दूसरी विचारणीय बात यह है कि मूलाराधनासारमें लिखा है कि

हत्थिणपुर गुरुदत्तो सम्मलिथालीव बोम मतम्मि। उज्झतो अधिमास पडिवण्णो उत्तम अट्ठ ॥—मूलाराधना।

गुरुदत्तादि मुनि हस्तिनापुरके रहनेवाले थे। यदि यह सत्य हो तो हस्तिनापुर के साधुओंके लिए यह द्रोणगिरि

* अपि सवालक्खदेसे मेडतयनगर समीवठिओ वीरभवणाइं णाणाविहदेवालयाहिरामो फलवद्धी नाम गामे फलवद्धिनामाधिज्जाए देवीए भवणसुंगमिहर चिट्ठइ।—विविधकल्पतीर्थं।

जितना सुगम और निकट है उतना बुन्देलखण्डका नही।

काशीपुर और रामपुर होकर द्रोणगिरि पहुँचना बहुत आसान है। हस्तिनापुर प्राचीन जैन बस्ती रही है और उसके निकट बिजनौरमे उत्तर-प्रदेशके पुरातत्त्व-विभागकी ओरसे जो खुदाई हुई है उसमें दो हजार वर्ष पुराना पार्श्वनाथ क़िला निकला है। हस्तिनापुर प्राचीन अन्तर्वेद और मध्यदेशकी केन्द्रीय नगरी थी आधुनिक घग्घर तथा सरस्वतीके काँठेसे लेकर—प्रयाग, और कभी-कभी विहार तकका प्रदेश प्राचीन मध्यदेश था, नैपालवाले अभी भी इस प्रदेशके रहनेवालोंको 'मदेसिया' कहते है। भारतीय संस्कृतिका उदय और विकास सबसे पहले यही हुआ। अतः अन्तर्वेदवालों को तपोभूमिके लिए हिमालयकी यह उपत्यका ही अधिक सुविधाजनक रही होगी। आधुनिक गढ़वाल और कुमाऊँ मिलाकर ही प्राचीन इलावृत्त अथवा मध्य-हिमालय कहते है। स्व० पार्जीटरकी कल्पना है कि आर्य लोग उत्तर पच्छिमसे न आकर इसी इलावृत्तके रास्ते मध्यदेश मे बसे। श्री डा० एल० डी० जोशीने* यहाँके मूल निवासी खसोके रीति-रिवाजोंका अध्ययन करके इसी बातकी पुष्टि की है। इसके विस्तारमें जाना यहाँ अप्रासंगिक है—पर इतना निश्चित है कि मध्यहिमालयका मध्यदेशसे घनिष्ठ संबंध रहा है, और तराईकी बस्तियों (काशीपुर, रामनगर) के रास्तेसे वहाँ पहुँचना सुगम था।

जैन परंपरामें आदिनाथने कैलाश पर्वतसे मोक्षलाभ किया। वे जब अयोध्यासे कैलाश जाकर तप और मोक्ष साध सकते थे—तो हस्तिनापुर वालोंको द्रोणगिरि जाना कोई बड़ी बात नहीं। आदिपुराणमें वर्णित भरतकी दिग्विजय से पता चलता है कि उसने पश्चिम द्वार (अपरांत) को जीतकर सिंधुनदीके किनारे जाकर विजयार्द्ध पर्वतके राजों पर आक्रमण किया, फिर उसने हिमवान् पर्वतपर चढाई की, वहाँसे गंगाके उद्गमसे जाकर कैलाश पर्वतमें आदिनाथके दर्शन किए†। हिमवान् या विजयार्द्ध पर्वतका वर्णन हिमालयसे हूबहू मिलता है, कुछ-कुछ मेरी धारणा यह है कि पश्चिमी हिमालयको पहले विजयार्द्ध कहते थे और मध्य हिमालयको हिमवान्, और शायद कैलाशको सुमेरु। कुछ विद्वानोंकी धारणा यह है कि भगवान् आदिनाथका कार्य-क्षेत्र हिमालयकी तराई भी रहा।

पिछली दिवालीको मै 'द्वाराहाट' गया था, यह कसवा कुमाऊँकी बहुत पुरानी बस्ती है, जो उक्त द्रोणगिरिके ही अंचलमें बसी है। वहाँ बहुत-से प्राचीन जीर्णशीर्ण मंदिर अब भी हैं उनकी तमाम मूर्तियाँ लापता हैं, खोज करनेपर पत्थरके खंडपर उत्कीर्ण चंदप्रभु पार्श्वनाथ तथा महावीरकी

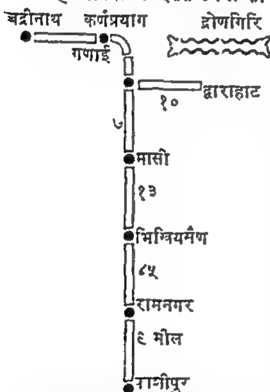
---

* देखिये "खस फेमिली ला"—डा० एल० डी० जोशी।

† देखिये आदिपुराण, पर्व १६ के १४० से १५० श्लोक।

सपरिकर प्रतिमाएँ हमें मिली। इनमें एक मूर्ति ही प्राप्त हो सकी।

मूर्तियाँ-वेदीकी अष्ट है, जो लगभग १ हजार वर्ष प्राचीन प्रतीत होता है। काले पत्थर पर श्री पार्श्वनाथकी मूर्ति बहुत ही सुन्दर है जो वहाँके श्री नदकिशोरजी पतको हल चलाते समय मिली। द्वाराहाटके निर्माणके विषयमें अनेक जनश्रुतियाँ है, पर असलमें 'द्वार' की हाट होनेसे ही उसका नाम द्वाराहाट पड़ा। यह बद्रीनाथके रास्तेमें है, नीचेके चित्रमें यातायातकी दृष्टिसे उसका महत्त्व स्पष्ट हो जायगा*। इससे इतना तो



सहज सिद्ध है कि सात आठ सौ वर्ष पहले द्वाराहाटमें जैनोंकी वस्ती अवश्य थी। यह भी पता चला है कि काशीपुरमें एक बहुत बड़ा किला है, जो उज्जैन किलाके नामसे प्रसिद्ध है। उसीके पास द्रोणसर है-वहाँ भी कुछ जैनमूर्तियाँ है। बाबू ज्योतिप्रसाद जैन (इनकमटैक्स आफिसर आगरा) ने सूचित किया है कि "भोट-अनुश्रुति" के अनुसार बद्रीनाथकी 'मूलमूर्ति' पार्श्वनाथकी थी, जिसे बौद्धोंने बुद्ध भगवान्‌की मूर्ति बना ली-और आ० शकरके समय उसे बद्रीनाथकी मूर्तिके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया। स्पष्ट और ठोस प्रमाणके अभावमें हम चाहे इसपर विश्वास न करें, तो भी इस विषयमें निश्चित खोज करनेकी आवश्यकता अवश्य है। क्योंकि हिमालय की उपत्यकामें बौद्धधर्मका प्रचार बहुत रहा है। वहाँ बौद्ध तान्त्रिकोंके बड़े-बड़े तन्त्रपीठ थे जिनका आ० शकरने बादमें कीलन कर दिया। और अब जैनचिह्न मिलनेसे इस बातके न माननेमें कोई कारण नहीं कि हिमालयकी मध्य उपत्यका कभी वैदिक जैन बौद्ध संस्कृतियोंकी सगमभूमि थी। निर्वाणभक्तिमें सह्याद्रि और विन्ध्याद्रि के साथ "हिमवत" को भी जैन तीर्थोंमें गिनाया है और हिमवत मध्यहिमालय ही प्रतीत होता है। इसलिए इस प्रदेशमें प्राचीन जैन अवशेष मिलनेकी पूरी सभावना है। इस प्रकार ऐतिहासिकता, प्राकृतिक सौन्दर्य एव भौगोलिक दृष्टिसे निर्वाण-काडकी निर्वाण भूमि यही द्रोणगिरि होना चाहिए-न कि बुन्देलखड।

* यह सूचना मुझे श्री प० केशवदत्तजी फलौदियाने दी, आप उक्त फलौदी गाँवके ही निवासी हैं, पर अब अलमोड़ामें आकर रहने लगे है। द्वाराहाटमें अलमोड़ाके प्रसिद्ध नागरिक श्री लाला मूलचन्द जी जैनकी प्रेरणासे द्वाराहाट गया था। वहाँ प्राप्त मूर्ति भी आपके घर विराजमान है। आप वैसे पानीपतके रहनेवाले है। इस कार्यमें आपने बहुत सहायता की है।

विचार-कण

श्री कृष्णलाल वर्मा

१—पूर्ण अहिंसक मनुष्य ही मुक्ति पाता है।

२—जिसके हृदयमें पूर्ण अहिंसा विराजती है—

[क] वह किसी मनुष्यसे उसके विचारोंको बदलनेका आग्रह नहीं करता।

[ख] वह मनुष्य-मनुष्यमें भेद नहीं करता।

[ग] वह अपने विचारों ही को सत्य और दूसरेके विचारोंको मिथ्या प्रमाणित करनेकी कोशिश नहीं करता।

[घ] उसका हृदय पृथ्वीकी तरह विशाल होता है। जैसे पृथ्वी उच्चाति-उच्चको और नीचातिनीचको, पवित्रसे पवित्र और अपवित्रसे अपवित्रको, अत्याचारी और अत्याचार-पीडितको, दुर्गंध और सुगंधको, उसका पेट चीरने और उस पर हरियाली उगानेवालेको अपनी छाती पर समान स्नेह-भावसे खेलने-कूदने देती है, उसी तरह पूर्ण अहिंसक भी सब तरहके जीवोंको अपने विशाल हृदयमें स्थान देता है। सबकी सब तरहकी बुराइयों-या भलाइयोंको भूल जाता है। वह केवल यह समझता है कि ये राग द्वेषसे पीड़ित जीव हैं। इसलिए हो सके तो इनकी भलाई करनी चाहिए। अगर उनकी भलाई शरीरसे न हो सके तो वचनसे और मनसे करनी चाहिए।

[च] उसकी दया-चाँदनी संसारकी दुःखाग्निसे जलते हुए सभी प्राणियोको शीतल बनाती है।

[छ] अहिंसाके भावोंसे जन्मी हुई उसकी करुणा-किरणें सभीको बल देती हैं, सबके हृदय-कमलोंको विकसित करती हैं।

[ज] गुणी और निर्गुण, मूर्ख और बुद्धिमान्, ज्ञानी और अज्ञानी, स्वार्थ-परायण और निःस्वार्थ सभी अहिंसासे समभावी बने हुए उसके शांत हृदयसे कल्याणकारी आशीर्वाद पाते हैं।

भगवान् महावीर इसी तरहके अहिंसक थे। उन्होंने इसी अहिंसाका, छद्मस्थावस्थामें आचरणीय और सर्वज्ञावस्थामें मौखिक भी उपदेश दिया था।

अगर हम भी इन्द्रियोको वशमें करनेकी और स्वार्थ-भावनाओंको कुचलनेकी निरंतर कोशिश करें और कोशिश करके एकके बाद एक स्वार्थकी भावनाओंको जीतते जाएँ, बाहरसे अंदरकी तरफ आत्मभावोंमें लीन होते जाएँ तो हम भी पूर्ण अहिंसक बनके भगवान् महावीरके सच्चे अनुयायी बन सकते हैं।

पूर्व और पश्चिम

भेद और समन्वय

अंग्रेजीके प्रसिद्ध कवि किपलिंग-का कहना था कि पूर्व और पश्चिम अलग अलग है, और ये सदा अलग ही रहेंगे—दोनो कभी नही मिल सकेंगे । आजकी दुनिया इसको नही मानती । वह इसको 'साम्राज्य-वाद' की आरती उतारनेवाले और साम्राज्यवादी वातावरणमें पले एक अग्रेज कविका मानसिक विकारमात्र मानती है । क्या यह ठीक है ? इस माननेमें भावुकताकी कुछ मात्रा तो अधिक नही ?

आज जब एकके बाद एक धडा-धड अन्तर्राष्ट्रीय सघ स्थापित हो रहे

****

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

****

हैं, 'मानव एक है' का मंत्र जगह-जगह जपा जा रहा है और 'विश्व-सरकार'-की स्थापनाका कुछ लोग स्वप्न देख रहे हैं, तब सचमुच यह राग बेसुरा मालूम होता है कि इस बातको बल देकर कहा जाय कि पूर्व और पश्चिम अलग-अलग है।

दोनों भला अलग क्या है, अलग क्यों है? दोनोंको एक दूसरेसे अलग करनेवाली बात है, जीवनके प्रति दोनोंका दृष्टिकोण। पूछा जा सकता है, इससे आपका क्या अभिप्राय है? एक घटनाका उल्लेख इस प्रश्नका उत्तर दे देगा।

मै एक जगह कुछ मित्रोंके साथ बैठा हुआ था। चुनावकी धूम थी। गप्पें भी उसीके सम्बन्धमें थी। बैठे सज्जनोंमें एक नामी वकील भी थे। बातें जब गर्मी पकड़ रही थीं, उसी समय एक सम्भ्रान्त महिला आई। उसके वस्त्र यही बताते थे, वह ऐंग्लो-इण्डियन थी। वह वकील महोदयसे पहलेसे परिचित थी। उसने आते ही कहा—"वकील साहब, मै अपने पतिको तलाक देना चाहती हूँ, कोई उपाय निकालिए।"

दूकानपर बैठे लोगोके लिए प्रश्न कुछ विचित्र था। वे सबके सब आश्चर्यसे उस महिलाकी ओर देखने लगे। इस सवालके कारण बातचीत बन्द हो गई थी। वहाँ मौन था, पर उसमें उत्सुकता और कौतूहलकी कमी न थी। वकील साहबने पूछा—"तलाक क्यों देना चाहती है आप?"

महिला—"मेरा पति सभ्य और शिष्ट नहीं है।"

वकील—"आखिर यह तो बताइए कि आपने अपने पतिमें ऐसी क्या बात देखी, जिससे आप मानने लगी हैं कि वे सभ्य नहीं है?"

महिला—"वे सभ्य समाजके बीच बैठनेके योग्य नहीं!"

वकील—वह कौन सी बात है, जिसके कारण उनके साथ सभ्य समाज में बैठनेसे आपको शर्म मालूम होती है?"

महिला—"मेरे वर्तमान पतिको मेज पर बैठकर छुरी-कॉटेसे खाना नही आता!"

वकील—"परन्तु यह बात तो विवाहसे पहले ही आपको मालूम हो गई होगी। हिन्दुओंकी तरह तो आपके यहाँ विवाह होता नही। विवाहसे पहले आपके यहाँ तो अच्छी जान-पहचान कर ली जाती है, फिर विवाह होता है। तब क्या आपको यह त्रुटि नही दिखाई दी थी?"

महिला—"वकील साहब, इस बहससे क्या लाभ? आप यह बताइए कि दुश्चरित्रताके अलावा और किसी कारणसे भी तलाक दिया जा सकता है, या नही!"

वकील—"देखिए, मै एक अच्छा पढ़ा-लिखा आदमी हूँ, और मेरी पत्नी एक अक्षर भी पढ़ी-लिखी नहीं, परन्तु फिर भी मै गुजारा कर रहा हूँ। वह अनेक बार ग़लती करती है, अनेक बार भारी ग़लती करती है। बार-बार समझानेपर भी वही भूल करती है, पर धीरजके साथ सब सहता हूँ, सुधारनेका यत्न करता हूँ, और विवाहित जीवनके लगभग बीस वर्ष शान्ति

और मुझसे बीत गये हैं। आप भी धीरज और सहिष्णुतासे काम लीजिए।"

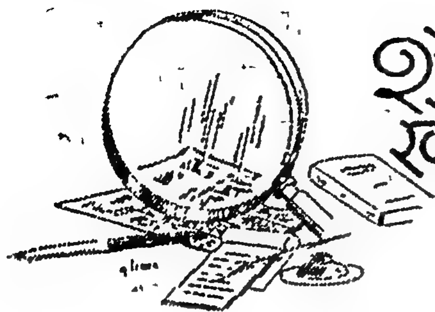
महिला—"वकील साहब, मैंने तलाक देनेका निश्चय कर लिया है। हम दोनो अब एक छतके नीचे नहीं रह सकते। आप तलाक देनेका मार्ग ढूँढकर बताइए, सोमवारको मैं फिर आऊँगी।"

महिलाके चले जानेके बाद वकील साहबने टिप्पणी करते हुए कहा,—"वह पैसा चाहती है और कोई बात नही। दीखता है वर्तमान पतिके पास पैसा नही रहा।"

वहाँसे उठनेके बाद भी यह बातचीत मेरे मनमें चक्कर काटती रही। पूर्व और पश्चिमका जीवनके प्रति दृष्टिकोण एक नहीं। हो भी नही सकता। एक पुनर्जन्म मानता है, दूसरा नही मानता। एकके लिए जो कुछ है, वह यही लोक है। दूसरेके लिए परलोक भी है। सुखका उपभोग यदि इस जीवनमें नही किया, तो जीवन निरर्थक है, पर दूसरा नये जीवनकी आशासे जी सकता है और आजके दुःख सह सकता है। विवाह-मन्त्रोंमें कहा गया है कि पति-पत्नी दोनो एक दूसरेके गुणोंपर ही ध्यान दें, दोषोंको न देखें। यदि कोई दोष हो, किसी अगमें कोई विकृति और दोष हो तो उसको भुला दे। जब जीवनके प्रति दृष्टिकोणमें इतना अन्तर है, तब क्या पूर्व और पश्चिम परस्पर मिल सकते है और एक हो सकते हैं ?

एकके वर्तमान अवस्थासे असन्तोष होनेपर परिवर्तन करनेकी उद्दाम आकाक्षा है, और उसके लिए वह सब कुछ करनेको तैयार है। दूसरा वर्तमान अवस्थामें असुविधा होनेपर उसमें सुधार करनेका यत्न करता है, पर उससे सम्बन्धकी रस्सी तुड़ानेकी कोशिश नही करता। उसकी कोशिश यही रहती है, कि बँधी रस्सी टूटे नहीं। यदि ढीली हो गई है, तो वह सहानुभूतिमें सहिष्णुता और धीरजके साथ उसको फिरसे जीवन सितारकी खूँटियोंकी तरह कसनेकी कोशिश करता है। एक परिवर्तनके लिए परिवर्तन चाहता है, अत सदा चलायमान है। दूसरा नवीनता तो चाहता है, परन्तु पुरानेको ढाहकर नहीं, उसीका रग-रूप बदलकर। वह गतिका नही, स्थिरताका उपासक है। उसको वेग और तीव्र गति प्रिय नही, पर स्थायित्व प्रिय है, और इसको वह दुर्लभ मानता है। इस अवस्थामें क्या पूर्व और पश्चिममें मेल सम्भव है ?

भेद मौलिक है। गुलाब और केवडे, मोनिया और रजनीगधामें भी अन्तर है, पर दोनोंके लिए एक बागमें पास-पास स्थान हैं। क्या इसी प्रकार जीवनके प्रति दृष्टिकोणमें मौलिक मतभेद रखते हुए भी पूर्व और पश्चिम गलबाँही डालकर नही चल सकते ?



गणधर सार्धशतक और बृहद्वृत्ति

श्री मुनि कान्तिसागर

[२]

गणधर सार्धशतक और उसकी भाषा

गणधरसार्धशतक में १५० प्राकृत गाथाएँ हैं। इनमें २५ गणधरोंकी प्रशस्तियाँ उज्ज्वल तारिकाओंकी तरह चमक रही हैं। प्रथम दो गाथाओंमे मंगलाचरणके रूपमें आदि गणधर ऋषभसेनकी स्तुति की गयी है। जम्बूस्वामी और गौतम स्वामीकी स्तुति और प्रशस्ति तीन-तीन गाथाओंमें की गयी है। सुधर्म स्वामीकी प्रशस्ति दो गाथाओंमें है। प्रभवाचार्य जी, शय्यम्भव जी, आर्यमहागिरि, आर्य सुहस्ती, भद्रगुप्त जी, श्री शीलाङ्क, श्री वर्धमान सूरि, श्री अशोकचन्द्र, श्री धर्मदेव, श्री हरिसिह, श्री सर्वदेव तथा श्री भद्रवाहुगुरु की प्रशस्तियाँ केवल एक एक गाथामें हैं। श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री सम्भूत सूरिका स्तवन केवल एक ही गाथामें किया गया है। स्थूलभद्रजीके लिए पाँच गाथाएँ प्रयुक्त हुई है। आर्यसमुद्र, श्री मंगु तथा श्री सुधर्माजीका सूत्ररूप प्रशस्तिमय परिचय भी केवल एक ही गाथासे दिया गया है। श्री वज्र स्वामीकी प्रशस्ति चौदह गाथाओंमें की गयी है। आर्यरक्षितकी प्रशस्तिके लिए दश गाथाओंका प्रयोग किया गया है। दो गाथाएँ उमास्वातिवाचक जी इत्यादि की प्रशस्तियोंकी भूमिका की तरह लिखी गयी है। उमास्वातिवाचक जीका प्रशंसात्मक परिचय दो गाथाओंमें दिया गया है। हरिभद्राचार्य जीकी प्रशंसा आठ गाथाओंमें की गयी है। देवाचार्य, नेमिचन्द्र तथा उद्योतन सूरिजीका परिचय दो गाथाओं में ही समाप्त कर दिया गया है। जिनेश्वर सूरिजीके परिचयके लिए तेरह गाथाओंका उपयोग किया गया है पर उन्हीमेसे एक एक वुद्धिसागर सूरिजी तथा जिनभद्रजीका परिचय देनेके लिए उपयुक्त हुई है तथा जिनचन्द्र सूरि और अभयदेव जीके लिए दो-दो गाथाएँ लिखी गयी हैं क्योंकि इन महात्माओंके जीवनसे जिनेश्वर जीके गुण अधिक उज्ज्वल हुए हैं। ये सब मिलकर तेरह होती हैं और प्रायः सवका सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूपसे जिनेश्वरजीके परिचयसे ही है।

उन्हींके परिचयके अग बनाकर इन चार महात्माओंके परिचय हमारे सामने प्रस्तुत किये गये हैं। इसके उपरान्त देवभद्र सूरिजीका परिचय चार गाथाएँ देती हैं। यहाँ तक चौरासी गाथाएँ हुई। शेष ६६ गाथाएँ युग-प्रवर जिनवल्लभ सूरिजीके जीवनपर बडा ही सुन्दर तथा कवित्वमय प्रकाश डालती हैं। इन गाथाओंमें महात्माओं के लक्षण, उनके आहार-व्यवहार पर बडी कुशलतासे जिनदत्त सूरिजीने प्रकाश डाला हैं। जिनवल्लभ सूरि जीके स्वर्गारोहणके पश्चात् उन्हींके स्थानमें सूरि जीको युगप्रवरका सम्मान मिला था। जिनवल्लभ सूरि जीके जीवनने सूरि जीके जीवनको कर्म-सौन्दर्यसे विभूषित करनेके लिए उपादान एकत्रित किये थे। इसीलिए उनका जीवन सूरिजीके हृदयके दर्पण पर सुन्दर बिम्बकी तरह प्रतिफलित हो रहा था। यही कारण है कि इन महाप्रभाव महात्माके लिए सूरि जीकी वाणी अधिक मुखर हो सौन्दर्य-विधान कर सकी, अन्यथा अपने दीक्षागुरु धर्मदेवोपाध्याय जीका परिचय भी सूरि जीने एक ही गाथामें दिया है। यही है गणधर सार्धशतकका संक्षिप्त परिचय।

गणधर सार्धशतककी भाषा प्राकृत हैं। उपदेशक महात्माओंने सदासे ही लोकभाषाको ही अपने उपदेशोंके लिए माध्यम बनाया हैं। जिन दिनों संस्कृत लोकभाषा थी उपदेशात्मक रचनाएँ उसीमें हुई। गौतम बुद्धने जनताकी भाषाको उपदेशका माध्यम बनाया इसीलिए पाली ही धम्मपद इत्यादि ग्रन्थोंकी भाषा है। जैनाचार्योंने प्राकृत और अपभ्रंशको अपने उपदेशका माध्यम बनाया। जैन धर्मग्रन्थ इन्हीं भाषाओंमें अधिक पाये जाते हैं। जनता जिस भाषाका उपयोग करती है, सच्चा धर्मोपदेशक धर्मको प्रत्येक व्यक्तिकी सम्पत्ति बना देनेके लिए अपने उपदेश उसी भाषामें करता है, अपने ग्रन्थ उसी भाषामें लिखता है। संस्कृतके वाल्मीकिरामायणका हिन्दी रूपान्तर गोस्वामीजीने इसी मनोवृत्ति से किया था। तुलसीके समय तक संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाएँ जनतासे दूर हो चली थीं। यही कारण है कि लोकप्रसिद्ध अवधीको गोस्वामी जीने मानसका माध्यम चुना। जिनदत्त सूरिजीके समय प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ जनताके दैनिक व्यवहारमें प्रयुक्त होती थी। अपभ्रंशका प्रचार तो खूब हो चला था। सूरिजीने अपने उपदेशोंको प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें सजीव बनानेके लिए अपनी रचनाएँ इन्हीं भाषाओंमें की हैं। मधुरता और उच्चारण-सौकर्यके दो लक्षणोंसे विभूषित कर प्रकृतिने संस्कृतको पाली तथा प्राकृतके रूपमें परिवर्तित किया। पाली और प्राकृत भाषाएं संस्कृतसे अधिक मधुर हैं। सूरि जीकी प्राकृत भी साहित्यकी दृष्टिसे ऊँचा स्थान प्राप्त करनेके योग्य है। प्राकृतकी विख्यात मधुरता सूरिजीके शब्द-चयन की विशेषता है।

साहित्य-समालोचनाके विकासके इतिहासमें भी सूरिजीका युग आदर्श पर पहुँचा हुआ था। वाग्देवताके

अवतार माने जानेवाले साहित्य-समालोचक प्रसिद्ध मम्मटाचार्य सूरि जीके प्रायः समकालीन ही थे; क्योंकि मम्मटाचार्यका देहान्त सूरि जीके पच्चीसवें वर्षमें हुआ था। मम्मटके युगमें रस ही काव्यकी आत्मा माना जाता था। ईसाकी आठवी शताब्दीमें भामह और दण्डीने अलंकारको ही काव्यकी आत्मा माना। उनके बाद नवम शताब्दीमें वामनने शब्द-चयनकी रीतिको ही, कोमलता कठोरता, समस्तता (समास) तथा व्यस्ततापर ही ध्यान रखते हुए काव्यकी आत्मा माना। इनके कुछ ही परवर्ती आनन्दवर्धनने अपने ध्वन्यालोकमें ध्वनि (व्यंजना) को ही काव्यकी आत्मा माना। सूरि जीका युग ईसाकी ग्यारहवींका अन्तिम चरण और बारहवी शताब्दीका पूर्वार्ध है। इस युगमें ध्वनिकारके समान ही मम्मटाचार्यने अलंकारको गौण स्थान देकर रसको ही मुख्य माना। काव्यात्मा रस (भाव) को छोड़ अन्यत्र नही। काव्यके साथ रसका अनिवार्य सम्बन्ध मम्मटने माना और इसीलिए उन्होंने ध्वनिको प्रधानता दी, क्योंकि रस भी व्यंग्य ही होते है, वाच्य नहीं। हर्ष-शोक इत्यादि स्थितियाँ आश्रयके अनुभावोंसे व्यक्त होती हैं। जिस व्यक्तिके हृदयमें अनुभूति रहती है वह उस अनुभूतिमें डूबकर तन्मय हो उसके अनुकूल व्यवहार करता है। ये व्यवहार ही शब्दमय उक्तियोंसे अथवा कर्मोके रूपमें अनुभूतिको व्यक्त करते हैं। रस-ध्वनिका यही प्रकार है। काव्यकी इस आत्माके सम्मुख सूरिजीके युगने अलंकारोंको गौण माना। मम्मटने घोषणा की :—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥

काव्यमें उपस्थित रहनेवाले उस रसको (तं सन्तं) जो (ये) अंग बनकर (अंगद्वारेण) कभी-कभी (जातुचित्) और अधिक आकर्षक बना देते हैं (उपकुर्वन्ति) वे अनुप्रासादि शब्दालंकार तथा उपमादि अर्थालंकार केवल हार इत्यादि अलंकारोंके समान हैं।

आत्मतेजसे अनुप्राणित सुन्दर शरीरपर ही आभूषणोंकी शोभा है। निर्जीव शवपर अलंकार भयावह ही प्रतीत होंगे। उसी प्रकार काव्य जब अपनी आत्मा रससे अनुप्राणित हो सुन्दर हो तभी अलंकार भी उसकी शोभावृद्धिके लिए सहायक सिद्ध होंगे। अलंकारोंकी सार्थकता रसको और अधिक प्रभाववान् बनानेमें है। जो अलंकार रसको उद्दीप्त नही करते वे व्यर्थ है। काव्यमें यदि सुन्दर भाव है तो उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य रहेगा ही। भावहीन काव्यको अलंकारोंसे सजानेका प्रयत्न करना शवको हार इत्यादिसे सुशोभित करनेके समान है। काव्य रसकी स्थितिमे सजीव हो सकता है; पर रसके अभावमें केवल अलंकारोंमें काव्यत्व नही है। इस प्रकार सूरिजीके युगमे रसको मुख्य माना गया और अलंकारको गौण। रसका रहना आवश्यक समझा गया, पर अलंकारका रहना अनिवार्य नही। अलंकार यदि रसको अधिक प्रभाव-

युक्त करता हो तो रहे, अन्यथा उसकी आवश्यकता नहीं।

साहित्य-समालोचनाकी इस चेतना-के युगमें सूरिजीने अपनी रचनाको भावमय ही रखनेका प्रयत्न किया था। वह युग अलकारोंका था इसी-लिए अलकारोंके विरोधमें युगकी वाणी मम्मटके शब्दोंमें मुखर हुई थी। सूरिजीने अलकारोंका प्रयोग उसी सीमामें किया है जो कि युगकी चेतना ने उनके लिए निर्धारित की थी। गणधर सार्धशतककी देवभद्रसूरि विषयक उक्ति देखिए —

सूर-ससिणो वि न समा जेसि ज ते कुणंति अत्थमण। नक्खत्तगया मेस मीणं मयर पि भुजते ॥

८१ ग सा श प्राकृत गा

सूर-शशिनावपि न समौ येषा यत् तौ कुरुतोऽस्तमनम्। नक्षत्रगतौ मेष मीन मकरमपि भुञ्जाते ॥ सस्कृतच्छाया।

देवभद्र सूरिजीकी वन्दना करते हुए जिनदत्त सूरिजीने कहा है कि सूय और चन्द्रमा उन महात्माकी समता नहीं कर सकते, क्योंकि सूय चन्द्रमा तो अस्त होते हैं। ये महात्मा कभी पतित नहीं होते। ये अपने यशो-राशिकी आभासे स्वर्गारोहणके बाद भी ससारमें प्रकाशवान् ही रहते हैं। प्राकृतका 'अत्यमण' यह अर्थ भी व्यक्त करता है कि महात्माओंका मन विषयो से दूर रहता है। देवभद्र सूरिजी विषयोंके स्पर्शमें नहीं आते। देवभद्र सूरि 'अत्थमण' (वासनालिप्त) नहीं होते। तब ये अत्थमण (अस्तमन) करनेवाले सूर्य-चन्द्र उनकी समता कैसे कर सकते हैं। सूर्य-चन्द्रमा तो नक्षत्र-मार्गसे चलते हुए मेष, मीन और मकरका सेवन भी करते हैं। क्षत्र (सदाचार) के विरुद्ध नक्षत्र (दुरा-चारों) में पड़कर ये तो मेष (भेड़), मीन (मछली) और मकरका सेवन (भोजन) करते हैं। पर पूज्य देवभद्र सूरि तो सदैव सन्मार्गगामी होनेके कारण सत्य और अहिंसाके वरेण्य दूत हैं। नक्षत्रमार्गसे होते हुए सूर्य और चन्द्रमा मेष इत्यादि बारह राशियो-पर जाते हैं। इस अर्थका विरोधा-भासके रूपमें प्रयोग करके श्लेषके द्वारा सूर्य और चन्द्रको देवभद्र सूरि-जीसे हेय सिद्ध किया गया है। यद्यपि यहाँ अलकार ही प्रधान दिखलायी पड रहा है, पर अलकारोंके इस प्रयोगने श्री देवप्रभ सूरिजीको सूर्य तथा चन्द्रमासे भी श्रेष्ठ समझनेकी प्रवृत्ति जिनदत्त सूरिजीकी देवभद्रजीके प्रति भक्तिकी भावनाको अधिक प्रभाववती बना रही हैं। इसलिए यहाँ अलकार भावाभिव्यक्तिमें अधिक सहायक होकर मम्मटके अनुसार प्रयुक्त हुआ है। सूरिजीके इस अलकार - प्रयोगकी प्रकृतिसे परिचित होकर सहृदय इनकी इस प्रकृतिसे अवश्य परिचित हो जायँगे कि हृदयकी भक्तिने ही सूरि जीको अलकारकी ओर इसलिए उन्मुख किया कि उनके पूज्य देवभद्र जीकी अच्छी प्रशसा हो सके। जिनवल्लभ सूरि जीको अपनी भक्ति समर्पित करते हुए तो जिनदत्तजीने उस भक्ति-की भावनाको अलकारोंसे अच्छा सजाया है। मेघ, जलधि, सूर्य, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, शिव इत्यादि सब जिन-वल्लभजीकी स्तुतिके समय उनके

गुणोत्कर्षको बढ़ानेके लिए उपादान बनाये गये है। इन सबके आलंकारिक प्रयोगसे जिनदत्त सूरिजीकी भक्ति अधिक सुन्दर हो सकी है। श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति तथा विरोधाभास इत्यादि अलंकारोंका प्रयोग बड़ा ही सुन्दर हुआ है। जिन-वल्लभ सूरिजीकी बहुत-सी विद्याएँ विद्युत्के प्रकाशके समान है। अपने उपदेशसे सूरिजी संताप दूर करते है और मेघ जल तथा छायासे। सर्वत्र फैलकर मेघ अच्छी वृष्टि करता है। वायुके झोंके जलपूर्ण मेघको छिन्न-भिन्न नही कर सकते। वह गर्जन भी नहीं करता। जिनवल्लभ सूरि भी विश्वमें अपने उपदेशामृतकी वृष्टि करते है। आपत्तियाँ और शत्रु उन्हें विचलित नही कर सकते। आत्म-प्रशंसा और व्यर्थकी वितण्डासे वे दूर रहते है। सूर्य अन्धकार नष्ट करता है, जिनवल्लभजी मोहतिमिर (अज्ञा-नान्धकार) दूर करते है। ज्ञानके प्रकाशके प्रभावसे शुद्ध दृष्टि मोक्षका मार्ग देख लेती है। चन्द्रमा तो सक-लंक है वह कैसे निष्कलंक जिनवल्लभ जीकी समता कर सकता है। विष्णुने विधि (ब्रह्मा) उत्पन्न किया, जिन-वल्लभ जीने विधि (धार्मिक विधि) को उत्पन्न किया। सुन्दरी लक्ष्मी (गुरुश्री:) विष्णुके पास है, गुरुश्री: (गुरुकी प्रतिभा, वृहस्पतिकी प्रतिभा) सूरिजीके पास भी है। जिनदत्त सूरि-जीके अलंकार प्रयोगकी कुशलताकी ओर यह एक अपर्याप्त इंगित मात्र है। सहृदय इन इशारोंसे बहुत अधिक, स्वयं अपनी निजी प्रतिमासे सौन्दर्य संचयकर सूरिजीको समझ लेंगे। क्योंकि सूरिजीके पूर्ण सौन्दर्यको अव-तरित करनेके लिए लेखनीमें अधिक शक्ति चाहिए। मै तो केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि अलंकारोंका समुचित प्रयोगकर जिनदत्त सूरिजीने गुरुओंके प्रति अपनी भक्तिको और अधिक सुन्दर रूप दे भाषाको सप्राण कर सुन्दर भावोंकी सृष्टि की है।

श्री सुमतिगणि तथा गणधरसार्ध-शतककी वृहद्वृत्ति

प्रस्तुत गणधर सार्धशतकपर वृह-द्वृत्ति भाष्य लिखनेवाले सुमतिगणिजी है। विक्रम संवत् १२९५ तदनुसार ईस्वी सन् १२३८ मे गणधरसार्धशतक-की वृहद्वृत्ति वैशाख द्वितीया गुरुवार को प्रतिभावान् लेखक सुमतिगणिजीकी लेखनीसे अन्तिम शब्दरत्न पाकर पूर्ण हुई।

सुमतिगणिजीके समय अनहिल-वाड़मे भीम द्वितीय ईस्वी ११७९ से १२४२ तक शासन कर रहे थे। इन्ही-के समयमे इस वृहद्वृत्तिकी रचना हुई। राजा कुमारपालने अपनी मौसीके पुत्र अर्णोराज (आनंद) को व्याघ्रपल्ली ग्राम दिया था। व्याघ्रपल्लीके नामसे ही चालुक्यवंशीय अर्णोराज वाघेला वंशमें मूल पुरुष हुए। जिस समय उत्तर गुजराजमें भीम राजा थे उसी समय साबरमती तथा नर्मदाके बीच धोलका प्रान्तपर वाघेला चालुक्योंका प्रभाव बढ़ रहा था। अर्णोराजके पुत्र लवण-प्रसाद भीमदेवके मन्त्री थे। भीमदेवने लवणप्रसादके पुत्र वीरधवलको अपनी वृद्धावस्थामें अनहिलवाड़का शासन सौंप दिया था। लवणप्रसादके मन्त्री

वस्तुपाल और तेजपालकी प्रतिभाके बलसे वाघेला स्वतन्त्र हो गये थे। वीरधवलके पुत्र वीसलदेव सन् १२४३ में अनहिलवाडके राजा हुए। सन् १२६१ तक इन्होंने राज्य किया। १३०४ के पश्चात् इन भागोंपर भी मुसलमानोंके खिलजी वंशका आधिपत्य हो गया। यद्यपि सुमतिगणिके समयमें भारतपर मुसलमानोंका प्रभाव बढ़ रहा था पर चालुक्यवंशीय हिन्दू राजा जैनधर्मके लिए अपने हृदयमें बड़ा सम्मान रखते थे। मंत्री वस्तुपाल तथा तेजपालने आबू, गिरनार और शत्रुञ्जयके इन तीन स्थानोंमें नेमीनाथके प्रसिद्ध मन्दिर बनवाये थे। इनके अतिरिक्त भी मालवामें परमारवंशीय, मैसूरमें होयसलवंशीय, कलिंगमें पल्लववंशीय, देवगिरिमें नासिक तक यादववंशीय राजा लोग भी राज्य कर रहे थे, पर इनके राज्य भी मुसलमानोंसे आतंकित ही रहा करते थे। सुमतिगणिके समयकी यह संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है।

सुमतिगणिजीके समयकी साहित्यिक पृष्ठभूमि भी दर्शनीय है। रुक्मिणीहरण तथा त्रिपुर दाह इत्यादि छः नाटकोंके रचयिता वत्सराज सन् १०५० से १२२५ तक थे। ये गणिजीके समकालीन ही थे। कर्णसुन्दरीकार बिल्हण सन् ११६३ से १२१३ तक वर्तमान थे। ये भी गणिजीके समसामयिक कुछ समय तक अवश्य रहे होंगे। चन्द्रावती संस्थान (जोधपुर मारवाड) के राजा यशोधवलके कनिष्ठ पुत्र प्रह्लादनदेव ई० सन् १२०८ में थे। इन्होंने "पार्थ-पराक्रम" व्यायोगकी रचना की थी। १२०९ में इनका स्वर्गवास हुआ। प्रसिद्ध धनुर्धर दिग्विजयी धारावर्षके ये कनिष्ठ भ्राता थे। अपने पराक्रमके कारण धारावर्षसे गुजरातके राजा समझे जाने लगे थे। ११६३ में प्रह्लादनदेवको युवराज पदमें विभूषित किया गया। ये राजा न हो सके और युवराजावस्थामें ही स्वर्गवासी हुए। आबू पहाडकी प्रशस्तिमें सोमेश्वरने इनको सरस्वतीका अवतार माना है। कीर्तिकौमुदीमें इनको सरस्वतीका पुत्र माना गया है। किसी स्थलपर यह भी कहा गया है कि मुंज और भोजकी मृत्युके कारण सरस्वतीका शोक इन्होंने ही दूर किया। ये योद्धा, दानी और विद्वान् थे। गुजरातका पालनपुर इन्हींका स्थापित प्रह्लादनपुर ही है।

धोलकाके राणा वीरधवलके जैन अमात्य वस्तुपाल तथा वीरधवलके पुत्र वीसलदेवके सभा पण्डित अरिसिंह सन् १२४२ में थे। इन्होंने "कविता रहस्य अथवा काव्य-कल्पलता" की रचना की थी।

इन्हीं वीसलदेवके राजपण्डित अमरचन्द्र सूरिजी थे। ये जिनदत्त सूरिजीके शिष्य थे। इनका समय १२४३ सन्से १२६० सन् है। इन्होंने बालभारत महाकाव्य, काव्यकल्पलता-परिमल, जिनेन्द्रचरित, मुक्तावली, कलाकलाप, छन्दोरत्नावली तथा अलंकारप्रबोध इत्यादि ग्रन्थोंकी रचना की थी। मोहराजपराजयकार यशःपाल १२२९ सन्में थे। इन कवियोंके अतिरिक्त भी सुमतिगणिजीके साथ-साथ बहुत-से कवि तथा टीकाकार इत्यादि थे।

बृहद्वृत्ति

गणधरसार्धशतककी यह वृत्ति एक विस्तृत भाष्यका आकार पा गयी है। इसका यह आकार सुमतिगणि जीकी प्रतिभाका फल है। इसका श्रेय इनके गुरु प्रसिद्ध आचार्य जिनपति सूरिजीको भी है जिनके प्रसादसे गणिजी इतने प्रतिभासम्पन्न हो सके। इस वृत्तिकी यन्त्रालय प्रतिलिपि मेरे सामने प्रस्तुत है। इस प्रतिलिपिके प्रत्येक पृष्टपर प्रायः दश या ग्यारह शब्दोंकी सोलह या अठारह पंक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थमें अभी ऐसे हस्तलिखित ग्यारह सौ उनसठ पृष्ठ हैं। केवल डेढ़ सौ गाथाओंकी इतनी बड़ी वृत्ति ऐसे ही प्रतिभाशाली लेखककी लेखनी ही प्रस्तुत कर सकती थी।

गणधरसार्धशतककी प्रथम गाथाकी व्याख्या तीन सौ पृष्ठोंमें की गयी है और व्याख्याके अन्तमें सूरिजीने लिखा है **"इति श्री युगप्रवरागम श्रीमज्जिनदत्तसूरिगणधरविरचित गणधरसार्धशतक प्रथम गाथार्थः किञ्चिल्लेशतो व्याख्यातः।"** इससे यही प्रतीत होता है कि जिनदत्त सूरिजीकी प्रतिभासे गाथाओंके शब्द इतने सार्थक हैं कि एक गाथापर इतने बड़े-बड़े तीन सौ पृष्ठ लिखनेपर भी गणिजीको लेशमात्र ही सन्तोष हुआ। ये तीन सौ पृष्ठ केवल लेशमात्र अर्थ व्यक्त करते हैं। दूसरी गाथाकी व्याख्या ३११वें पृष्ठ तक है। तीसरीसे पाँचवीं गाथाओंकी व्याख्या ३७२वें पृष्ठपर समाप्त हुई है। छठवीं और सातवीं गाथाओंका व्याख्यान ३७५वें पृष्ठ तक है। आठवीसे दसवीं गाथाएँ ५६५वें पृष्ठ तक व्यक्त की गयी है। ग्यारहवींसे इक्यावनवीं गाथाके लिए ७७६वें पृष्ठ तकका स्थान दिया गया है। ५२वीसे ७६वीं गाथाओंका अर्थ-निर्देश १०३९वें पृष्ठ तक है। शेष चौहत्तर गाथाएँ ११५९वें पृष्ठ तक स्पष्ट की गयी हैं। पूरे ग्रन्थके शरीरमें भिन्न-भिन्न स्थानोसे १२००० श्लोकोके उद्धरण इत्यादि दिये गये हैं।

भारतवर्षका हृदय, शरीर और मस्तिष्क अपनी-अपनी अन्तिम सीमा छू चुके हैं। हृदय तो मानवसे देव होकर रुका। कवि होकर उसने अतुल सौन्दर्यकी सृष्टि की। उसके शरीरने इतनी दक्षता प्राप्त की कि भारतीय कला-कुशलता जगद्विख्यात हो गयी। एक ओर जब शरीरकी दक्ष अँगुलियोंने ढाकामें ऐसी महीन मलमल तैयार की जिसकी साड़ी एक चनेके कोषमें रखी जा सके तो उसके बहुत पहले भारतीय मस्तिष्क अखिल ज्ञानभाण्डारको सूत्रोंके अति लघुरूपमें रखकर **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** **'बिन्दुमें सिन्धु समान'** की व्याख्या कर रहा था। सूत्रोंका एक युग हीं था जब कि व्यापक शब्द ब्रह्मके विपुल विस्तारमें फैली हुई अनन्त ज्ञान-राशि भिन्न-भिन्न शास्त्रोंके सूत्र ग्रन्थोंमें लघु रूप पाकर सिन्धुसे बिन्दुके रूपमें महान्से अणुके रूपमे परिणत हो गयी। न्याय, मीमांसा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, वेदान्त इत्यादि सब सूत्ररूप हो गये। गणधर सार्धशतक भी पैंतीस गणधरोंके जीवन-सागरके बिन्दुकी तरह ही है। उस बिन्दुको सुमतिगणिजीने सरिताका

रूप दिया है, क्योंकि वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उन्हें लेशमात्र ही सन्तोष हुआ है इस व्याख्या से। भिक्षुको बिन्दुके उदाहरण तो सामने हैं। वृहद्वृत्तिने बिन्दुको सरिता बना दिया। भारतवर्षकी परम्परा बताती है कि 'प्रणव' (ओंकार) तथा शून्यकी व्याख्या करनेवाले पुस्तकालय भारतवर्षमें थे। दो-चार ग्रन्थोंकी तो कोई बात ही नहीं थी, यह है बिन्दुको सिन्धु बनाने की बात। यह है भारतवर्षका मस्तिष्क। अणुकी व्याख्या ब्रह्मकी व्याख्या होगी ही। ऐसी व्याख्या करनेकी प्रतिभा चाहिए। यद्यपि कालचक्रने भारतवर्षका बहुत बडा साहित्य नष्ट कर दिया फिर भी महाभाष्यकार पतञ्जलि, ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यकार शङ्कर तथा बडे-बडे जैन भाष्यकार उस जतीनके ऐतिहासिक सम्मरण हैं। सुमतिगणिजी उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जिनदत्तजी सूरिका एक भी सार्थक शब्द बिना व्याख्याके असन्तुष्ट नहीं रखा गया है। प्रत्येक शास्त्रका उद्धरण प्रसगवश वृहद्वृत्तिके शरीरमें मिल जायगा। दिग्दर्शन मात्रके लिए श्री जिनेश्वरसूरिजीकी अनहिलवाड पट्टनकी यात्राका स्थल देखा जाय, जिसका चौंसठवी गाथासे श्री जिनदत्तजी सूरिने वर्णन किया है। सूरिजीने अनहिलवाडकी नाटकसे उपमा दी है। राजा दुर्लभराजको नायक माना है। प्रधान व्यक्तियोंको पात्र माना है, सुख-सम्पत्तिपूर्ण हासविलाससे पूर्ण व्यक्तियोंको विदूषक माना है। इस प्रकार नाटकसे पूर्णोपमा है। इसकी व्याख्यामें गणिजीने रुद्रटालङ्कारसे विदूषक लक्षण तथा धनञ्जयके दशरूपकसे नायकलक्षणका उद्धरण दिया है। पचसन्धि इत्यादि नाटकके विभिन्न उपादानोंके लक्षण भी यहाँ प्रसगवश सगृहीत हुए हैं। इस प्रकार प्रत्येक शब्दकी ऊहापोहपूर्ण पूरी व्याख्या की गयी है। भिन्न-भिन्न विषयोंके सैकडो ग्रन्थोंके उद्धरण इस भाष्यके शरीरमें मिलते हैं जिनसे तत्कालीन तथा पूर्ववर्ती इतिहास, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति और कला तथा साहित्य इत्यादि पर प्रचुर प्रकाश पडता है। इतिहासके अन्वेषणमें यह ग्रन्थ अन्वेषकोंको पर्याप्त सहायता करेगा।

वृहद्वृत्तिकी भाषा

सुमतिगणिजीके लिए संस्कृत गद्यकी एक बहुत बडी परम्परा महायज्ञका काम कर रही थी, बाण, दण्डी, सुबन्धु इत्यादि गद्यकाव्यके विख्यात कलाकार तथा पतञ्जलि इत्यादिके समान विख्यात भाष्यकार और बहुत-से जैन भाष्यकार और टीकाकार गणिजीको उद्बोधन दे रहे थे। इतनी सुन्दर परम्पराका गणिजीने बडी योग्यतासे उपयोग किया है। मैंने शैलीकी दृष्टिसे गणिजीकी भाषाका चार वर्गोंमें विभाजन किया है—(१) बाण तथा दण्डी इत्यादिकी भव्य वर्णनात्मक शैली, (२) मीमासान्याय तथा वेदान्त भाष्यों की विचारात्मक शैली, (३) पचतन्त्र इत्यादिकी कथोपकथनात्मक शैली, (४) साधारण स्थितिकी भाषा।

भव्य वर्णनात्मक शैली

इसमें सश्लिष्ट वर्णनकी धारामें

शब्दध्वनिसे गुंजित शब्दोंके बड़े-बड़े समासोंकी शृङ्खला बड़े-बड़े वाक्योंका सृजन करती है :—

तत्र च प्रवचनप्रभावनाप्रासादोत्तुङ्गशिखरखरतरमरुत्तरङ्गचारुचामीकरोद्दण्डदण्डनिर्धौतपूतप्रबलकलकलकलाविद्राणरणत्किङ्किणीक्वाणपटपटायमान-धवलध्वजपटायमानः *श्रीमदुज्जयनी* दुर्जयनीरन्ध्ररन्ध्रान्वेषिद्वेषिभोगियोगिनी-चक्रचक्रचित्रचरित्रचमत्कारकारिश्रीमरुमण्डलमण्डनपरचक्रपराक्रमखण्डनश्री *विक्रमपुरनगर*निवासिभूतप्रेतपरेतराज-निर्व्याजसंवासप्रोल्लासपरासनप्रवणश्रवण-मुखहर्षदद्वादशवार्षिकपराश्रुताप्रचारिप्र-विहितसुविहितजनरञ्जननिदानपरिहित-सुहितहाटप्रकटितविकटनाटकश्रीमद*ण-हिल्लपाट*क.सप्तसप्तिप्रमितवर्षावस्थान-विधानप्रवादिपञ्चाननसिंहनादभञ्जनप्र-दायिश्रीप्रकर्षसंनिकर्ष निष्कषित-दारिद्र्यमुद्रामुखितश्री*त्रिभुवन गिरि*-नीवृत्यभिनियमितपञ्चसप्तयतिवासवा-सिश्रीवामाङ्गजोपरि नवफणिफणाधिरो-पणरूपवामावर्त्तारत्रिकस्थापनस्वरूप-प्रमुखनानारूपसारशक्तिसम्भारस्फाय-मानः.................. गणधरसार्द्ध-शतकाभिख्यं प्रकरणं चिकीर्षुरादित एव समस्तप्रत्यूहव्यूहापोहाय शिष्टसमयप्रति-पालनाय वाऽभिमतगुरुदेवतानमस्कार-रूपमत्यर्थप्रदत्ता व्यभिचारिभावमङ्गल-मभिधेयादि च श्रोतृजनप्रवृत्तिहेतवे प्रतिपादयन्निमां गाथामाह—

प्रायः चार सौ शब्दोंका यह वाक्य उपमारूपकसे अनुप्राणित होकर अनुप्रासोंसे झंकृति उत्पन्न करता हुआ बड़े-बड़े समासोंकी धारामें प्रवाहित होकर संश्लिष्ट वर्णनका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। जिनदत्त सूरिजीके विशेषणोंका यह संश्लिष्ट वर्णन है। यह ग्रन्थका प्रारंभ है इसलिए इस शैलीका पूर्ण ओज यहाँ प्रदीप्त हो उठा है। ऐसी स्थितिमें बाण तथा दण्डी इत्यादि कलाकारोंने ऐसे ही गद्यका प्रयोग किया है।

विचारात्मक शैली

इसमें कारणकार्यकी परम्परासे प्रवाहित होती हुई विचारधारा, संयत वाक्य-विन्यास और केवल अनिवार्य शब्द-चयनके साथ निर्णेतव्य तथ्य तक पहुँचती है :—

न च भूताभावे स्वप्नास्वप्नगन्धर्व-पुरपाटलिपुत्रादिविशेषो युज्यते, न चालयविज्ञानगतशक्तिपरिपाकसमनन्त-रोपजातविकल्पविज्ञानसामर्थ्यमस्याः कारणं स्वलक्षणादश्वलक्षणानुपपत्तेः, नापि पारम्पर्येण तदुत्पत्तिर्युज्यते स्व-लक्षणसामान्यलक्षणातिरिक्तवस्तुभावेन पारम्पर्यानुपपत्तेः, बाह्यनीलाद्यभावे च शक्तिविपाकनियमो न युज्यते नियामकसहकारिकारणाभावात्।

इस शैलीमें एक भी अनावश्यक विशेषण नहीं प्रयुक्त हुआ है। सिद्धान्तप्रतिपादनके लिए हेत्वर्थक पञ्चम्यन्त एक शब्द ही हेतुका निर्देश करके पर्याप्त हो जाता है। यह विचारात्मक शैली न्यायमीमांसा तथा वेदान्तके भाष्यग्रन्थोंकी है। इसमें सिद्धांत, प्रतिपादक कारण तथा उदाहरण इत्यादि कम-से-कम शब्दोंमें आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट रहते हैं।

कथोपकथनात्मक शैली

यह शैली सुबोध शब्दोंका प्रयोग

पहाड कब सुनता था । आखिर धरतीको कहना पडा—जैसी तुम्हारी इच्छा, धरती बहुत रोई, बहुत रोई, किन्तु पहाड तो बहरा हो गया था ।

× × ×

दूसरे दिन पहाड अपने ऊपर उगे वनवृक्षोसे फल तोडने लगा । वनफल बोले—"स्वामी, आप हमें न तोडें ।"

"क्यो ?"

"इसलिये कि हम धरतीसेही पलते हैं । धरतीसे ही पुसते हैं । धरतीका ही रस हममें समाया हुआ है ।"

पहाड निराश होकर लौट गया । आज उसे भोजन न मिल सका । उसे आज बहुत वेदना हो रही थी ।

पहाडने सोचा । पानी तो मेघ देता है । मेघके पास जाकर मैं अभी धरतीका पानी बन्द कराये देता हूँ । देखें धरती पानी कहाँसे पाती है ?

पहाड मेघ के पास पहुँचा—"मेघ भैया, धरतीको जो तुम जल देते हो वह जल आजसे देना बन्द कर दो ।"

मेघ बोला—"पहाड, यह कैसे हो सकता है ? धरतीको जल देना बन्द कर दूं, यहँ तो कभी हो ही नही सकता ।"

पहाड बोला, "यह सम्भव है भइया, मेघ ।"

"नही पहाड, तुम नही जानते । धरती पर ही तो समुद्र हैं । समुद्रकी भापसे ही तो हमारी जिन्दगी चल रही है । कल हम धरतीको पानी न देंगे तो हम पानी किससे पा सकेंगे । जाओ भइया पहाड, ऐसी बातें नही करते ।"

मेघकी बात सुनकर पहाड बडे सोचमें पड गया । उसे बडी खीज उठ रही थी । फिर भी उसने एक तरकीब सोची । मेघने उसकी बात न सुनी तो न सुनने दो लेकिन धरतीको मज़ा चखाना ही है ।

वह सीधा किसानके पास गया । किसान अपने बैलोकी डोर पकडे हल कन्धे पर लादे खेतकी ओर जा ही रहा था कि उसने देखा, पहाड उसकी ही ओर चला आ रहा है । "कहो भइया—कैसे गरीब पर कृपा की ?"

पहाड बोला, "देखो भइया किसान, तुम्हारे दरवाजे पर एक भीख माँगने आया हूँ ।"

कृषक बोला, "मै और तुम्हे भीख ! मै तुम्हें क्या भीख दे सकता हूँ ? बोलो, क्या बात है ?"

पहाडने सारी बातें कह सुनाईं ।

किसान बोला—"पहाड सोचो तो, धरतीकी छाती चीरकर तो हम उसमें अन्न बोते हैं । फिर धरती हमें अन्नके दाने देती है । फिर उसीका दिया अन्न बोकर अपना और अपने बाल-बच्चोका पेट पालते हैं । यदि हम बोना छोड देंगे तो हमारे बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे ।" किसान रुक न सका, अपने खेत पर चला गया ।

पहाड निराश होकर लौट गया । वह सोच रहा था क्या धरतीके बिना ससारका काम नही चल सकता । सहसा उसे ध्यान आया । अरे, मैं भी तो धरती पर ही खडा हूँ ।

—— o ——



अमर शहीद भैयालाल चौधरी

श्री कपूरचन्द्र विद्यार्थी

खद्दर पहिनना, वंदे मातरम् कहना, अपनेको गाँधीवादी बतलाना, सत्य अहिसाकी महिमा गाना, देशभक्तिपूर्ण लम्बे-चौड़े भाषण देना, देशसेवापूर्ण कार्योमें भाग लेना, आगे आगे होना, जितना सरल सर्व- साधारणको अगस्त ४७ में हुआ उतना सरल उसके पूर्व न था।

इस सरलताका श्रेय हमारी ९ अगस्त सन् १९४२ की अंतिम देश-व्यापी क्रांतिको है, सफल जनक्रांतिको है। और है उन क्रांतिकारी शहीदोंको जिन्होंने 'वंदे मातरम्' कहनेके फल-स्वरूप गोली खा ली, खादी टोपी शिर पर रखनेके लिए प्राण दे दिये। महात्मा गांधीकी जय वोल फाँसीके फंदे पर झूल गये। सत्य-अहिंसाकी मान-मर्यादा रखनेके लिए सर्वस्व निछावर कर दिया। प्रिय तिरंगेको न झुकने देनेसे पहिले प्राण देकर झुक गये। वृद्ध माता-पिताके इकलौते होते हुए भी, मना करने पर भी कहना न मान कर जलूसोंमें भाग लिया, सभा-समारोहोंमें गये, पुलिसकी लाठियाँ झेलीं, तरह-तरहकी यातनाएँ सही, गोलियाँ खाकर पुलिस अधि-कारियोंकी मशीनों, दुनालियोंको वेकार सिद्ध किया, मर हटे परन्तु उद्देश्यसे पीछे नहीं मुड़े।

जवान पत्नीके सौभाग्यका आगा-पीछा नहीं सोचा, परिजन-पुरजनोंको विलखना छोड़ा, बच्चोंके भाग्य एवं सहारेकी चिंता न कर धन-वैभवके ऐश्वर्यको ठुकराते चले गये, और चल दिये शिरसे कफन बाँध हमें आज़ादी लेना है, ४० कोटि मानवोंके कंधोंसे गुलामीका जुआ उतार फेंकना है। भारत माँको वंधनमुक्त करना है, कर्मी किसान—श्रमी श्रमिकका पेट भरना है। आनेवाले स्वतंत्र युगका निर्माण करना है।

इन स्वप्नोंको साकार रूप देने,

सफल बनानेका जितना श्रेय सन् १९४२ के बलिदानोंको है उतना ही श्रेय उन बलिदानोंको भी है जिन्होंने पिछले असहयोग आन्दोलनोंमें विदेशी बहिष्कार या किसी भी रूपसे प्रत्यक्ष में या परोक्षमें स्वतन्त्रताके पानेमें अपना सहयोग दे हाथ बटाया है और आनेवाले युगको प्रगतिशील बनाया है। और इतना प्रगतिशील बनाया है कि हम अगस्त १९४२ की अंतिम क्रांतिमें सफल हुए।

इस सफलताकी साधनामें किंचित् सहयोग दमोह जिलेके चौधरी भैयालालजी जैनका भी है, जिन्होंने अपना जीवन-सर्वस्व इसी शुभ कार्यमें लगाकर वीरगति प्राप्त की।

चौधरी भैयालाल नाटे कदका वह गठीला, गौरवर्ण नौजवान था कि जहाँ भी जाता दहाड़ता जाता, सफलता हँसके लाता। उस समय जब कि देश गौराग महाप्रभुओंके शासन से पूर्ण प्रभावित था। धनीमानी श्रीमान् शासकोंके कृपाभाजन बनने, रायबहादुरी, खानबहादुरी पाने, आनरेरी मजिस्ट्रेटी प्राप्त करनेमें अपना सौभाग्य समझते थे। साधारण जनता तो क्या बड़े-बड़े रईस खानदानी नागरिक बेगारी बना लिये जाते थे। शासकोंकि इच्छानुसार वर्ताव करना, बिना किसी हिचकिचाहटके वस्तु छीनना, मान-मर्यादाका ध्यान न रखते हुए व्यवहार पालना, साधारणसे साधारण पुलिस चपरासीका कार्य था। इस स्वच्छंद ब्रिटिशशाही शासन के विरोधमें आंदोलन तो क्या, बात करना, देशप्रेमका शब्द जबानपर लाना मृत्युका सामना करना था।

ऐसी गुलाम परिस्थितिमें चौधरी भैयालालजी खादी वेष-भूषामें देशप्रेमके टिमटिमाते प्रतीक थे। उस प्रथम महासमरमें जब कि विश्ववंद्य बापूका पूर्ण सहयोग सत्तारूढ़ शासन को प्राप्त था और लोकमान्य तिलक जिसका विरोध कर जन-जागरण हेतु दौरा कर असहयोग कर रहे थे। चौधरी भैयालालजी इसी असहयोगके साथी थे।

सैनिक भर्ती करनेके निमित्त रिक्रूटिंग आफिसरने अपना भाषण दमोह म्युनिसिपल कार्यालयमें दिया, चौधरीजी श्रोता-श्रेणीमें थे, भाषणके विरोध-स्वरूप समयकी माग की। परंतु समय न देनेपर नागरिकोंकी ओर से धन्यवाद देनेके बहाने समय मांगा, फिर भी सीमित समय दिया गया जिसमें आपने रिक्रूटिंग आफिसरके भाषणका जोरदार विरोध कर दूसरे दिन तिलक मैदानमें आम सभा होने की घोषणा कर दी।

दूसरे दिन सहयोग न देनेका आम प्रस्ताव शासकोंको असह्य हो गया और चौधरीजी भारत-रक्षा-कानूनके अंतर्गत, सैयद जाफरअली सा० डिप्टी कमिश्नरके आदेशानुसार ईश्वरसिंह पुलिस सब-इन्सपेक्टर द्वारा बंदी बना लिये गये।

मामला विशेष न्यायालय मि० अहमद हुसेन सा० की अदालतमें चालू किया, उस समय जनताका विश्वास सरकारी न्यायालयोंपर था और कांग्रेस द्वारा सरकारी न्यायालयोंका बहिष्कार

न होनेसे न्यायकी माँग की गई। पैरवीके लिए प्रांतके प्रधान कॉंग्रेसी नेता, वकील, डा० मुञ्जे, बैरिस्टर अभ्यंकर, मनोहरपंत वेवड़े एडवोकेट, अर्जुनलाल सेठी, नाथूराम मोदी, सुंदर-लाल तपस्वी, दादा साहब खापर्डे आदि सभी काँग्रेसी समय-समयपर सहयोग देने पधारे। मुकदमा लगातार ८ माह चला, अंतको गवर्नर महोदय नारा-यण राव सेलाकरने स्वयं पधारकर मुक़दमा उठा लिया।

परंतु समाचार-पत्रों द्वारा सरकार ने प्रचार कराया कि भैयालालजी चौधरी क्षमा मांगनेपर निर्दोष छोड़ दिये गये। यह विज्ञप्ति जब चौधरी जीके कान पड़ी तो उल्टे पैर नागपुर दौड़े गये और गवर्नर महोदयसे इस झूठे प्रचारका विरोध किया, और सही समाचार प्रकाशित कराया गया।

इसी समय प्रांतीय सरकार द्वारा सागर जिलेके "रत्तोना" नामक ग्राम में बूचड़खाना खोलनेका प्रस्ताव आया जिसे कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिए बूचड़खानेका निर्माण-कार्य प्रारंभ होने लगा। इसका विरोध प्रांतके साथ ही साथ दमोह जिलेने भी लिया, चौधरीजीने तो ग्राम-ग्राम भ्रमण कर विरोध-प्रचारमें सक्रिय भाग लिया, जिसके परिणाम-स्वरूप सरकारको बूचड़खानेका कार्य बन्द करना पड़ा।

चौधरीजी असहयोगमे पीछे नही रहे, विदेशी वस्त्रोके वहिष्कार आन्दो-लनमें आप प्रत्येक दूकानदारको अनुनय-विनयपूर्वक समझाते मनाते और वहिष्कार कराते।

उस समयकी एक घटना है कि एक धनी मानी विदेशी वस्त्रोंका प्रधान व्यवसायी दिनको तो चौधरीजीसे सहयोग रखता और रातको चोरी-चोरी व्यापार करता। चौधरीजीको इस धोखेबाजीका पता कुछ समय बाद लगा कि आपने उसीकी दूकानके सामने आमरण अनशन प्रारंभ कर दिया। अभी अनशनके ३-४ दिन ही बीते थे कि दूकानदारको लेनेके देने पड़ गये। अन्तमें चौधरीजीसे अपराध-की क्षमा माँग जनताको विश्वास दिलाते हुए भविष्यमें इस ग़लतीकी पुनरावृत्ति न होनेकी प्रतिज्ञा की। चौधरीजीने भी जनताकी अनुमतिसे ६वें दिन अपना अनशन तोड़ दिया।

यद्यपि चौधरीजी देखनेको ज़रूर क़दके छोटे थे परन्तु बड़े-बड़े आफ़िसर भी आपके प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व और साहसका लोहा मानते थे।

एक समय इस्ताकअली जिला-धीशने सामान ढुलानेके लिए बेगारमें गाड़ी पकड़नेका आदेश सदाकतअली क़ाजीको दिया। सदाकत अपनी सख़्ती और ज्यादतीको मशहूर था। गाड़ी पकड़े सदाकत बँगलेकी ओर जा रहा था कि रास्तेमें चौधरीजीसे भेंट हो गई। चौधरीजीको देख गाड़ीवान खड़ा हो गया और दुख:गाथा कहने लगा। चौधरीजीने भी चपरासीको खरी खोटी सुना गाड़ी लौटा दी। चपरासी भागता साहबके पास गया और चौधरी जीकी हरकत कह सुनाई। दूसरे दिन चौधरीजी अदालतमे बुलाये गये। पहुँ-चनेपर आपने साहबकी ज्यादती और अन्यायपूर्ण बर्तावका विरोध किया, साथ ही भविष्यमें ऐसा न करनेका बचन भी साहब से ले आये।

चौधरीजी राष्ट्रसेवीके साथ-साथ जनसेवी भी कम न थे। एक समय दमोहमें जोरोंका प्लेग फैला। जनता इस नई बीमारी एवं संक्रामक रोग समझ एक दूसरेसे सम्बंध छोड़ने लगी। सरकारी कर्मचारी भी आपत्तिग्रस्त जनतासे मनमाना बर्ताव करने लगे। चौधरीजी ऐसे समय शांत कैसे बैठते! चन्द नौजवानोंकी एक सेवा-समिति बना मुर्दा टाने, दवा मुफ्त बांटने, सेवा-शुश्रूषा करने, खिचडी बांटने, सफाई करने आदिकी व्यवस्था कर दुखी रोगी जनताका साथ दिया।

प्लेग-कालमें बरटन सा० नामक अंग्रेज शासकसे जोरदार बहस हो पडी कारण जनताका विश्वास टीका पर न होकर देशी औषधि उपचार पर था। इस विरोधमें जनताने चौधरीजी-का साथ दिया और टीका लगाना, ज्यादती करना बंद हो गया।

जनताका कहना ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि वे राजनैतिक कार्यसे किसी मीटिंगमें भाग लेने कलकत्ते गये थे कि वहाँसे वापिस होते समय "माडारोड" स्टेशनपर जो मिर्जापुरके करीब है दूसरे दर्जेके डिब्बेमें दो अंग्रेज सैनिकोंसे वाद-विवाद छिड गया, विवाद इतना ज्यादा बढ गया कि जिसमें अंग्रेज सैनिकोंको जोश आ गया और उन्होंने इस नौजवान राष्ट्रसेवक-को गोलीका शिकार बना दिया।

इलाहाबाद जक्शनपर गाडी खडी होनेपर लाशको बाहर निकाला गया और पुलिसकी संरक्षतामें शव जलवा दिया गया। ता० १२-४-१९२२ को इस मनहूस घटनाका तार परिवारवालोंको २ दिन बाद मिला। परिजन यह दुखद समाचार सुन इलाहाबाद दौडे गये, परन्तु पुलिसने कोई निश्चयात्मक उत्तर न दे साधारण घटना—खिडकीसे टकराकर मृत्यु होनेकी बात बतलाते हुए बातको योंही टाल दिया। परन्तु इलाहाबादी साथी मुसाफिरोंसे दो अंग्रेज सैनिकोंको वाद-विवादमें हराने और उनका कोपभाजन बन प्राण हनन करनेका पता लगा जो चौधरी जीके स्वभावसे सत्य भी माना जा सकता है।

इस तरह राष्ट्रके नौजवान सिपाही चौधरी भैयालाल जी जैनने देशके प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण कर, आनेवाले सैनिकों, आन्दोलनों, क्रांतियों को प्रगति प्रदान की, और इन्हीं प्रत्यक्ष परोक्षमें किये गये बलिदानोंका सुपरिणाम हमने आजादीके रूपमें पाया इसका श्रेय चौधरी भैयालालजी जैन जैसे अमर शहीदोंको ही है।



भेद की बात

देख रहा जो कुछ वह तेरे ही भावोंकी छाया !

तुझमें ज्योति इसीसे ही तो सूरज चमका करता,
तुझमें शांति इसीसे चंदा, शीतलता है भरता,

यह कोमल आकर्षण, तेरे भव्य हृदय की माया !
देख रहा जो कुछ वह तेरे ही भावों की छाया !!

हिमगिरि तुङ्ग विशाल, इसीसे झुका न तेरा मस्तक,
सरिताएँ गतिवान, चरणकी गति न सकी इससे रुक,

नव घन बन तूने जग-मरुथल पर जीवन बरसाया !
देख रहा जो कुछ वह तेरे ही भावोंकी छाया !!

तेरी एक स्वाँस में अंकित वासुदेवकी गीता,
तेरा ही विश्वास राम, तेरी ही श्रद्धा सीता,

तू क्या यह सब भेद अभीतक जान नहीं है पाया !
देख रहा जो कुछ वह तेरे ही भावोंकी छाया !!

श्रीमती विद्यावती मिश्र

अध्ययन कैसे करें ?

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

प्राय अधिकाश व्यक्ति मानसिक रूपमे आलसी होते हैं। जब वे परीक्षाके लिए किसी पुस्तक को तैयार करने बैठते हैं, तो वे उसका अध्ययन नही करते प्रत्युत घोडेकी तरह सरपट दौडे जाते हैं। पुस्तक पढनेके पश्चात् यदि आप उनसे प्रश्न करें कि क्या पढा है, तो वे कुछ भी उत्तर नही दे पाते। कारण, उनकी स्मृति पुस्तकसे कुछ भी ग्रहण नही कर पाती। ज्ञान ऊपरसे ही निकल जाता है, नवीन सस्कार दृढतासे मन नही पकड पाता। इसी प्रकार कुछ विद्यार्थियोको उत्तेजक उपन्यास, कहानियाँ पढनेकी इच्छा होती है। प्रतिदिन वे नई पुस्तक पढते हैं किन्तु उनके मनमें केवल एक हलकी-सी छाया मात्र रह जाती है।

हमें चाहिए कि मनकी इस भाग-दौड और भँवर-वृत्तिसे छुटकारा प्राप्त करें। किसी पुस्तकसे स्थायी लाभ प्राप्त करनेके लिए हमें चाहिए कि पुस्तकको धीरे-धीरे शान्तिपूर्वक पढें। कुछ पढनेके पश्चात् रुकें तथा अपने आपसे प्रश्न करते रहें, "हमने अभीतक क्या पढा है ?" यदि मनपर नये सस्कार नही पडे हैं तथा स्मृतिने कुछ ग्रहण नही किया है तो हमें पुन उस भागको पढना चाहिए, यहाँ तक कि नये सस्कार जटिलतासे अकित हो जायँ। अध्ययन करते समय दो तत्त्वो पर विशेष ध्यान रखिये —

१—मनन -अर्थात् पढी हुई बातपर पुन-पुन चिंतन, सोचना, विचार करना जिससे कि वह मनमें बैठ सके और भूला न जा सके। पढी हुई बात पर जितना ही चिन्तन किया जायगा, वह उतनी ही स्मृतिमें अच्छी तरह जम जायगी।

२—पूर्व पर्यवेक्षण"— जो कुछ आप पहले पढ चुके हैं, उसे नये ज्ञानसे सयुक्त करना, उसे न भूलना वरन् नये विचारसे उसका मिलान करना। यदि पिछला भूलते जायँ और आगे पढते जायँ,

तो कोई लाभ नहीं है। अध्ययनका सम्बन्ध विचारसे है। टामस हाब्सने कहा है कि यदि मैं उतना ही पढ़ता जितना दूसरे लोग पढ़ते हैं तो मेरा ज्ञान उतना ही कम होता। कारण, लोग पहले पढ़े पर सोच विचार करना नही चाहते। उनकी मानसिक पाचन-क्रिया ठीक नहीं है।

यूनानी तत्त्वज्ञानी डीमाक्रोटसने जो ईसासे तीन वर्ष पूर्व हुए थे, उन्होंने अपने नेत्र इसीलिए निकलवा डाले थे जिससे व्यर्थ काग़जपर नेत्र दौड़ानेके स्थान पर वह मनन और चिन्तन कर सके। पुनः-पुनः स्मृतिमें संगृहीत ज्ञानकी आवृत्ति करनेसे ज्ञान दृढ़ होता है और संस्कार परिपुष्ट होते हैं।

३—*ध्यानावस्थिति* :—मनका तेज़ीसे पुस्तकके मैटरपर दत्तचित्त रूपमें लगा रहना। जितना ही अधिक आपका ध्यान विषयमें लगा रहेगा, उतना ही आपका मन नये ज्ञानको ग्रहण करेगा। प्रायः लोग रुचिपूर्वक पुस्तकके विषयमें दिलचस्पी नही लेते, अतः ध्यान उसपर नही लगता। कोई भी लाभ पठन-पाठनसे नही होता। ध्यानको अधिकसे अधिक लगाये रखने से ही नया ज्ञान अन्तस्तलमें अंकित होता है। बहुधा लोगोंकी आँखें तो पुस्तक पर रहती है, मन कहीं अन्यत्र चक्कर लगाता रहता है। जब तक मनकी आँखें नये ज्ञानपर केन्द्रित नही होंगी, विचार मनमें न ठहरेंगे। अधूरे विचारोंको नोट करनेसे ध्यान लगा रहता है।

४—*स्मृतिको दृढ़ बनाना* :—स्मृतिको मजबूत करना चाहिए। स्मृतिके खजानेमें ही सब ज्ञान संचित रहता है। स्मृति हमारे बौद्धिक विकासकी प्रथम सोपान है। यदि हमारा ज्ञान स्मृतिमें सुरक्षित होता रहे, तो निरन्तर ज्ञानवृद्धि होती रहे।

स्मृतिको मज़बूत करनेके लिए नोट लेने तथा पुस्तक पर कठिन और उपयोगी स्थलोंपर निशान लगानेकी आदत डालनी चाहिये। डेल कार्नेगीने लिखा है, "हाथमें लाल पेंसिल काली पेंसिल या फाउण्टेनपेन लेकर पढ़िये। जब-जब आप ऐसा संकेत देखें जिसका उपयोग आप अनुभव करते है या भविष्यमें कर सकते हैं, उसके नीचे लकीर खींच दीजिए। चिह्न लगानेसे या नीचे लकीर खींचनेसे पुस्तक अधिक मनोरंजक बन जाती है और उसको जल्दीसे पुनः पढ़ जाना सरल हो जाता है। जिस शीघ्रतासे हम भूलते हैं, उसे देखकर आश्चर्य होता है। वास्तविक और स्थायी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो मत समझिये कि पुस्तक को एक बार सरसरी तौरपर पढ़ जाना पर्याप्त होगा। भली भाँति पढ़ जानेके पश्चात् भी आपको प्रतिमास उसे दुबारा कुछ घंटे अवश्य व्यय करने चाहिये। जिस पुस्तकको आप पचाना चाहते है, उसे नित अपने सामने मेज़ पर रखिये, निरन्तर मन पर संस्कार डालते रहिए।

स्मरण रहे, जब आप उपरोक्त सिद्धान्तोंपर बार-बार विचार और इनका बार-बार प्रयोग करेंगे, तभी ये आपके स्वभावका एक अंग बनेंगे।

प्रत्येक अध्यायको बार-बार पढनेके उपरान्त ही तीसरेमें हाथ लगाइये। पढते समय अपने मनसे यह पूछते रहिये कि प्रत्येक सकेतका प्रयोग आप कैसे कर सकते है। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विचारपर चिह्न लगाइये और पुनर्विचार कीजिए।

सुप्रसिद्ध विद्वान् सतरामजीने मानसिक जीवनमें सफलता प्राप्त करने तथा स्मृतिको पुष्ट करनेके लिए नोट लेनेकी आदतपर विशेष ज़ोर डाला है। आप लिखते है, "व्याख्यानो, नाटको, भाषणो, पुस्तको और वार्तालापोकी अच्छी बातें, नवीन शैलियो, उत्तेजक विचार ये सब यदि हम उन्हें भली भाँति नोट न कर लें, तो हमारी स्मृतिमेंसे निकल जाते है। यदि हमारा मनोयोग इतना अनिश्चित है कि केवल क्षण-स्थायी सस्कार ही बनता है, तो वह अध्ययन निष्फल हो जाता है। विचार बहुत शीघ्र नष्ट हो जानेवाली वस्तु है। हमारी स्मृतियाँ बडे-बडे छेदोवाली छननीकी भाँति टपकती है।"

हेनरी हैज़लिट विचारोकी गतिके विषयमें कहते है, "विचार द्रुत गतिसे दौडे जा रहे है, उनको पकडनेके किसी भी उपायका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।"

राबर्ट लुई स्टीवनसनके पास सदा दो पुस्तकें रहती थी, एक पढनेके लिए तथा दूसरी अपने विचार उसपर लिखनेके लिए। वह सदा नोट करनेका आदी था। उसका ख्याल था कि जो विचार लिख लिये जाते है, वे स्थायी बनकर स्मृतिमें जम जाते है।

टामस हाब्स प्रात-भ्रमणको जाते समय हाथमें एक मोटा डडा रखता था। उन दिनो (१७वी शताब्दीमें) फाउण्टेनपेन नही रहते थे। वह उसी सोटेके सिरेमें दावात और कलम ऐसे ढगसे रखता था कि दूसरोको दृष्टिगोचर नही होने देता था। उसकी जेबमें एक नोटबुक होती थी, जिसमें वह भ्रमणमें मनमें आये हुए विचारोको नोट करता चलता था।

जोनेथन एडवर्ड्स नामक तत्त्व-ज्ञानीका स्मृति दृढ करनेका बडा अच्छा तरीका था। कहते है, वह घोडेपर बैठा-बैठा अपने मनमें उठनेवाले विचारोको लिखकर काग़ज़की स्लिपोको सुईसे अपने कोटके साथ टाँकता जाता था। जिस समय वह अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचता, उन कागज़ोके फडफडाते हुए टुकडोसे उसका अजीब ही हुलिया बना होता था।

किसी बातको स्मरण करनेकी रीति उसे पुन पुन दोहराना आवश्यक है। दुहरानेसे सस्कार दृढ होते है। बार-बार पढनेसे पुस्तकोके अनेक अश याद हो जाते है। ज्यो-ज्यो विवेक-बुद्धिका विकास होता जाता है, त्यो-त्यो दुहरानेकी क्रियाकी कम आवश्यकता होती है। बच्चाको याद करनेमें प्रौढकी अपेक्षा दुगुना समय लगता है। जिस याद किये हुए पाठको हम भूल जाते है, उसे दुबारा स्मरण करना आसान होता है, क्योकि पुरानी धुंधली स्मृतिके रूपमें वह फिर भी मस्तिष्कमें मौजूद होता है। सार्थक कविता जिसमें हम रुचि लेते है,

निरर्थक शब्दोंकी अपेक्षा आसानीसे याद होती है। यदि मन तरोताजा है, शान्त और उत्साहसे परिपूर्ण है, तो पाठ जल्दी याद होता है। एक उत्तम उपाय यह है कि थोड़ा-थोड़ा करके पाठ कई दिनमें याद किया जाय और और विषयको थोड़ा-थोड़ा नियमित समयके पश्चात् दोहराया जाय।

याद करनेमें अपने विचारोंका सम्बन्ध पूर्व-संचित ज्ञानसे स्थापित कीजिए। इन सम्बन्धोंसे ज्ञान ज़ंजीर-की भाँति उलझा रहता है।

समझना तथा वेग ?

किस रफ़्तारसे पढ़ें ? इसका उत्तर यही है कि ग्रहण-विस्तारके अनुसार ही हमें अपने पढ़नेका वेग निर्धारित करना चाहिये। ग्रहण-विस्तार ही आपका उद्देश्य होना चाहिये तथा उसीकी अभिवृद्धिका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। ग्रहण-विस्तार नित्य प्रतिके विस्तारसे किया जा सकता है। पढ़नेकी क्रिया अधिक तेज़ न हो, नहीं तो मन ग्रहण न कर सकेगा। यदि आँखें मनकी अपेक्षा अधिक तेज़ीसे दौड़ रही हैं, तो ग्रहण-शक्ति और भी मन्द पड़ती जायगी। पुस्तक या अखबारको जल्दीसे समाप्त करनेकी उतावली न कीजिए। जल्द-बाजीसे मन नया ज्ञान कदापि ग्रहण नहीं करता। बाहरसे यही तृप्ति होती है कि हमने पढ़ भर लिया है। इस मानसिक दौड़से कोई लाभ नहीं है। यदि गति बढ़ानेकी इच्छा है तो विवेक-वृद्धि और ग्रहण-शक्तिका विस्तार करते चलिये। पढ़नेकी गति तीव्र बनाते समय जो आश्चर्यजनक सत्य आप अनुभव करेंगे वह यह कि पढ़ने-की गति तीव्र होनेके साथ ही साथ आपकी जल्दीसे समझनेकी योग्यता भी तीव्र होती जायगी। मनोवैज्ञानिकों-का कथन है कि प्रवीण पढ़नेवाले सदा तेज़ पढ़नेवाले होते हैं तथा उनकी दक्षताके दोनों अंग—तेजी और विषयको अच्छी तरह ग्रहण करते चलना—साथ-साथ चलते हैं।

शब्द-भण्डार की वृद्धि

भाषा शब्दोंसे बनी होती है ? नया शब्द सीखनेका तात्पर्य यह है कि आप अपना भाषा-ज्ञान बढ़ा रहे हैं। पढ़ते समय नये शब्दोंको सीखना बहुत महत्त्वपूर्ण है। शब्दकोषकी वृद्धिसे ज्ञानवृद्धि होती है। वे विद्यार्थी कुछ ग्रहण नहीं कर पाते जो आलस्य-वश कठिन शब्दोंको छोड़ते कूदते हुए चले जाते हे। परिचित शब्दोंके अर्थोंकी कमीके कारण न तो उन्हें पढ़नेमें रस आता है, न ज्ञान-वृद्धि ही होती है। आप कठिन पुस्तकें न पढ़ सकेंगे; कभी-कभी अर्थ भी समझमें नही आता। इनसे बचनेके लिए आप निरन्तर अपना शब्द-भण्डार और मुहावरोंकी जानकारी बढ़ाते रहें।

अपनी दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक परीक्षा

कितना ज्ञान हमने एक दिनमें प्राप्त किया है, इसकी जानकारी प्रति-दिन रात्रिमें चिन्तन मनन द्वारा मालूम करनी चाहिये। प्रति सप्ताह सात दिनोंके कार्यों पर विचार करना चाहिये। जाँचका कार्य महत्त्वपूर्ण

है। इसमे नीर क्षीर हो जाता है। हम जिस ज्ञानको अपना समझते हैं, वह प्राय अधूरा, धुंधला, अपूर्ण निकलता है। मासके पश्चात् पूरे ४ सप्ताहोंके ज्ञान सचय पर विचार कीजिए। यदि जी चाहे तो किसी मित्र, बडे भाई, या पिताकी सहायतासे जाँचका कार्य हो सकता है। उनसे कहिये कि वे आपसे उन हिस्सोंमेंसे प्रश्न पूछें जो आपने तैयार किये हैं। आप लिखकर यदि परीक्षा दें तो और भी उत्तम है। लिखनेसे हिज्जोंकी गलतियाँ भी दूर होती हैं तथा ज्ञान पूर्ण बन जाता है। एक डायरी लिखा कीजिए। ज्यो-ज्यों पढने लिखने में दक्षता बढती जायगी, आपका ग्रहण-विस्तार प्रतिमास बढता जायगा।

योजना बनाकर पढना

ज्यों-ज्यो ऊँची कक्षाओंके लिए तैयारी प्रारभ करते हैं, त्यो-त्यो उन्हें मोटी-मोटी पुस्तकोका अध्ययन करना पडता है। परीक्षाके लिए तैयारी करते समय भी उन्हे योजना बनानी चाहिए। आप अपने आपसे यह पूछिये कि कौन-कौन सी पुस्तकें विशेष उपयोगी हैं? प्रश्नपत्रोमें किस भाग पर अधिकसे अधिक प्रश्न आते हैं? उन प्रश्नपत्रोका वर्गीकरण कर लीजिए। जब आप पढने बैठें तो उनका उत्तर एकांत करनेका विशेष ध्यान रखें।

अनेक विद्यार्थियोका मन पाठ्य पुस्तको पर नहीं लगता। बाहरकी पुस्तको पर अधिक डोलता रहता है। इससे मनोरजन तो हो जाता है किन्तु अपने विषयका कुछ भी ज्ञान नही होता। बाहरकी पुस्तकें पढते रहनेमे दिमागको कठिन गभीर विषयोके अध्ययनकी आदत नहीं रह जाती। उनको पढते हुए डर-सा प्रतीत होता है। अपनी इधर-उधर भागती हुई इच्छाओंको इधर-उधरसे पकडकर पाठ्य-पुस्तकोंपर केन्द्रित करनेकी अतीव आवश्यकता है। इच्छाशक्तिकी दृढताके साथ-साथ मानसिक शक्तिया भी चलती हैं।

अपनी योजनामें सभी तरहकी पुस्तकोका क्रम रखिये। एक घंटा हिसाब, अध्यात्म या राजनीति पढते हैं तो उसके अनन्तर एक घंटा उपन्यास, कविताएँ या जीवनियोका क्रम रखिये। मध्यमें कुछ देर विश्राम कीजिए और मनको थोडा खुला छोड दीजिए। यदि पढते समय कोई मनन योग्य विचार प्राप्त हो जाय, तो नोट करते चलिये। इन नयें विचारोपर सोचिये। यह मौलिक चिन्तन मानसिक शक्तिकी वृद्धि करता है। नोट करने और सोचनेसे सस्कार दृढ होते चलते हैं।

शाकाहार

श्री धर्मचन्द्र सरावगी

इंगलैंडमें शाकाहारियोंकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। ब्रिटेनके यशस्वी राजनीतिज्ञ सर स्टैफर्ड क्रिप्स कट्टर शाकाहारी हैं। पिछली वार जब वे बीमार पड़ें, तो उन्होने स्वीटजरलैंड जाकर केवल शाकाहारसे ही अपने स्वास्थ्यको सुधारा। कई डाक्टरोंके कहनेपर भी मांस या मांसका रस उन्होंने नही लिया और स्वास्थ्यको सुधारकर दिखला दिया कि मनुष्य व्यवस्थित शाकाहार करनेसे अपने स्वास्थ्यको सुधार सकता है।

चर्चिल सरकारमें भी इस समय यों तो कई शाकाहारी ऊँचे पदोपर आरूढ़ हैं, फिर भी पे मास्टर जनरल के पदपर लार्ड चर्बेल हैं, जो कट्टर शाकाहारी होनेके साथ-साथ न तो शराब पीते हैं, न चाय पीते हैं और न तम्बाकू ही पीते हैं। चर्चिलने अपने एक वक्तव्यमें सर चर्बेलके लिए लिखा था कि वे मेरे पुराने और विश्वासपात्र बन्धु हैं।

इंगलैंडके कृषि-मन्त्री सर थौमस डजडेलने जमींदारों, कृषकों और जनतासे अधिकाधिक खाद्यान्न समस्या को हल करनेके लिए अनुरोध करते हुए कहा था कि शाकाहारसे यह समस्या कुछ हदतक दूर हो सकती है। लार्ड व्याड और उनके मित्रोंने समझाया कि जबतक मांसाहार बन्द नहीं होगा, तबतक खाद्यकी समस्या हल नही हो सकती। मांस उपजाने के लिए जो चरागाह और भोजन जानवरोंको दिया जाता है, यदि वह चरागाह और वही भोजन मनुष्योंके भोजनमे लगाये जायँ, तो खाद्य-समस्या बहुत कुछ स्वतः ही हल हो जायगी।

उनका कहना है कि एक सुअर, एक गाय या एक भेड़को लगातार कई वर्षोंतक चराकर और कई मन अनाज खिलानेके बाद उसका १६ वाँ अंश मांस मिलता है। इस प्रकार अन्नका बहुत बड़ा हिस्सा बर्बाद होता है। इसी प्रकार उन जानवरोंको चरनेके लिए जो चरागाह छोड़े जाते है उनमें यदि अन्न उपजाया जाय, तो अन्नकी समस्या हल हो सकती है। इसलिए खाद्यकी समस्याको दूर करने के लिए सबसे अधिक जरूरी है कि लोग शाकाहारी बन जायँ।

जहाँ विदेशोंमें शाकाहारके पक्ष में और मांसके विरोधमें ऐसा प्रचार हो रहा है वहाँ भारतवर्ष-जैसे शाका-हार-प्रधान देशमें आज मांसके प्रचार की ओर अधिकसे अधिक प्रयत्न किया जा रहा है। किसी पत्रमें देखनेको मिला था कि दिल्लीकी चाँदनी चौक में सारे मुगल साम्राज्यके समयमें भी जहां खुलेआम मांस नही बिकता था, वहाँ आज कई मांसकी सरेआम दूकानें खुली हैं। क्या हम आशा करे कि विदे-शियोंसे इस सम्बन्धमे हम कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे ?



धनकी महिमा • श्री अमृतलाल दर्शनाचार्य

स्त्रीरूप मोहक पुंसो यून एव भवेत्क्षणम् ।
कनक स्त्रीबालवृद्धषण्ढानामपि सर्वदा ॥ अज्ञात

स्त्रीका सौन्दर्य केवल युवकको ही थोडी देरके लिए लुभानेवाला होता है किन्तु धन स्त्री, पुरुष, बाल-वृद्ध और नपुंसकोको भी हमेशाके लिए लुभानेवाला होता है।

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा ।
यस्यार्था स पुमाँल्लोके यस्यार्था स च पण्डित ॥ अज्ञात

जिसके पास धन है उसके मित्र होते हैं। जिसके पास धन है, उसके बन्धु होते हैं, जिसके पास धन है वह पुरुष कहलाता है और जिसके पास धन है वही पण्डित कहलाता है।

यस्यास्ति वित्त स नर कुलीन
स पण्डित स श्रुतवान् गुणज्ञ ।
स एव वक्ता स च दर्शनीय
सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥ भर्तृहरि

जिसके पास धन है वह कुलीन है, पण्डित है, शास्त्रज्ञ है, गुणोका पारखी है, वक्ता है और है दर्शनीय। कहां तक कहें, सभी गुण धनके आश्रय रहते हैं।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तत्राप्यधो गच्छताच्-
छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ भर्तृहरि

जाति जहन्नुममें जाय, सभी गुण उससे भी नीचे जायँ, शील पत्थरपर गिरकर चकनाचूर हो जाय, कुल भाड़में जाय और वैरी पराक्रमपर वज्रपात हो जाय पर अकेला धन बचा रहे जिसके बिना सारे गुण गोंजनासे हो जाते हैं।

अयं प्रभुरयं भृत्य इति या जगतः स्थितिः ।
फलं विजयते तत्र श्रीप्रसादाप्रसादयोः ॥ हेमचन्द्र

यह मालिक है और यह नौकर यह जो संसारकी स्थिति है इसमें लक्ष्मीके प्रसाद और अप्रसाद ही कारण हैं। लक्ष्मीका प्रसाद जिसे मिल जाता है वह मालिक बन जाता है और वह जिसे न मिले वह नौकर कहलाने लगता है।

सर्वासामेव नारीणां मध्ये श्रीः सुभगा खलु ।
स्पृहयन्ति महान्तोऽपि यां स्वेच्छाचारिणीमपि ॥ हेमचन्द्र

लक्ष्मी सभी स्त्रियोंसे सुन्दर है, जिसे बड़े-से-बड़े पुरुष भी चाहते हैं यद्यपि वह स्वेच्छाचारिणी-व्यभिचारिणी है।

प्राणेभ्यो न प्रियं वस्तु जगतीत्यनृतं खलु ।
लक्ष्मीकृते यतः प्राणान् गणयन्ति तृणं नराः ॥ हेमचन्द्र

संसारमें प्राणोंसे प्यारी कोई चीज़ नहीं है, यह झूठ बात है; क्योंकि लक्ष्मीके लिए लोग अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझने लगते हैं।

न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो ।
मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः ॥ विष्णुशर्मा

बुद्धिमान् मनुष्य अपना थोड़ा-सा भी धन किसीको न दिखावे। क्योंकि उसके देखनेसे मुनिका भी मन विचलित हो उठता है।

नहि तद् विद्यते किञ्चिद् यदर्थेन न सिद्ध्यति ।
यत्नेन मतिमांस्तस्मादर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ अज्ञात

ऐसा कोई कार्य नही जो धनसे सिद्ध न हो, इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य केवल धन कमानेकी ओर ही ध्यान दें।

कवि हृदयका एक आध्यात्मिक चित्र

श्री 'वत्सल' विद्यारत्न

मानव जीवनमें कभी-कभी ऐसी भयकर प्रतिकूल परिस्थितियोका ज्वार आता है कि महान् साधक व्यक्तिका हृदय भी एक क्षणको डांवाडोल हो जाता है।

धैर्यके परीक्षणकी भी तो कोई सीमा होती है, प्रतिकूल धारामें पतवार चलाते-चलाते किसी समय मानव-मन ऊब ही तो उठता है, अन्तत मानव जड पुतला तो नही है। उसमें जीता-जागता चैतन्य तो है, चोटपर चोट पडनेपर तो वज्रका हृदय भी टूट जाता है।

कवि बनारसीदास महान् आध्यात्मिक कलाकार थे। उनके काव्यकी प्रत्येक कडीमें अध्यात्मके दर्शन होते हैं। अपनी जीवन-यात्रामें समय-समयपर आनेवाले भयकर तूफानोका उन्होने अपनी आध्यात्मिक चितनाके बलपर ही सामना किया था, उन्होने जीवनमें किसी भी कष्टके सामने हार नही मानी थी।

समय-समयपर होनेवाले कठोर आघातोसे उनका हृदय वज्र बन चुका था। अन्तमें ममताका एक भयकर प्रहार उसपर पडा। कठिन यातनाएँ सहनेवाला हृदय ममत्वके इस प्रहारके सामने कुछ क्षणको अस्थिर होने लगा।

ससारका कुछ भी विश्वास क्या न हो, किन्तु यह नग्न सत्य है कि 'ममत्व' शब्द सम्पूण विश्वका आकर्षण अपनेमें रखता है।

मोहन, वशीकरण यह सब इसकी एक मुट्ठीमें है। जिस समय जिसपर अपनी यह मूढ मारता है, मन, इन्द्रिय और आत्मा सबको बेहोश कर अपनी ओर खीच लेता है। इसका प्रभाव चुम्बकसे कम नही होता।

साधु और महात्माओंके उपदेश,

पुराण, उपनिषद् और वेदोंकी वाणी ममत्वके पत्रपर जल-बिन्दुओंके समान ढलक जाती है।

ज्ञानी, ध्यानी, यती और व्रती कोई क्यों न हो इसका शासन सबपर अबाधित गति से चलता है।

कोई कितना ही विवेकशील क्यों न हो, वीणा स्वरसे मूर्छित नागराजकी तरह यह अपनी एक झंकारसे सबको निर्जीव बना देता है।

महाकवि बनारसीदासके नेत्रोंके सम्मुख ही कराल यमने उनके प्राणोंके ८ खंडोंको छीना था। जीवनके अंतिम समयमें एक पुत्रकी पूँजी ही उनके निकट शेष थी, और एक दिन संध्या समय काल लुटेरा उनके जीवनकी इस अंतिम पूँजीको भी लूट ले गया।

सांसारिक जीवन दृश्य ममत्व के चित्रपटोंका एक संकलनमात्र ही तो है, कठपुतलियोंके पीछे नचानेवालेके हाथकी डोरसे ही तो पुतलियां नाच उठती हैं, सांसारिक जीवन-दृश्योंके साथ भी उसके पीछे एक डोर रहती है। वह ममत्वकी ही डोर तो है।

'पुत्र-मोह' यह ममत्वका अंतिम शस्त्र है। रामायणके महापात्र दशरथ इस शस्त्रके एक ही आघातसे धराशायी हो गये थे, राम-वनगमनके साथ ही उनका प्राणपखेरू पिंजड़ा छोड़ उड़ गया। ममत्वके एक प्रहारने उनके ज्ञान, विवेकको पछाड़ दिया।

महाभारतके महायशस्वी, गुरु द्रोणाचार्य 'अश्वत्थामा हतो नरो वा···' सुनते ही गिर पड़े। वे पूरा वाक्य सुननेके लिए भी स्थिर नहीं रह सके।

पुत्र-पूँजीसे लुटे हुए कविकी दृष्टिके सम्मुख वह सूखा पेड़ था, ग्रीष्मके भयंकर आघातने जिसकी संपूर्ण हरियाली नष्ट कर दी थी और जो अब केवल मात्र एक 'ठूंठ' था जिसके पल्लवित होनेकी अब कोई संभावना नहीं थी।

ममत्वने उन्हें एक क्षणको 'किंकर्तव्यविमूढ़' बना दिया। उनका दग्ध हृदय एक बार कराह ही उठा—

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोय।
ज्यों पादप पतझार ह्वै, रहे ठूँठ सो होय॥

भयंकर सत्यके रूपमें उनके चित्त का उद्वेग तरंगित हो उठा था। पुत्र-वियोगसे कवि-हृदयकी वेदना साकार हो गई थी, इससे उनका आध्यात्मिक हृदय तिलमिला उठा था।

जीवन-संध्याके समय नाविक पतवार तोड़ उनकी जीवन-तरी तरंगोंमें बहती छोड़ चल दिया था। एक भयंकर तूफान उसपर चला आ रहा था—किन्तु दूसरे क्षण ही वे सँभल गये।

हिमकणोंको चीरती हुई स्वर्ण-रश्मियाँ भूमंडलपर बिखर गईं। यथार्थता उनके नेत्रोंके सामने नाचने लगी। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक वाणी पुनः झंकरित की। बंधन और मुक्तिके संग्राममें मुक्ति-विजयका गान होने लगा। शान्ति-वीणाके तार झनझना उठे।

तत्व-दृष्टि जो देखिए, परमारथकी पाँति।
ज्यों जाको परिग्रह घटे, त्यों ताको उपशांति॥

परमार्थ पथमें 'परिग्रह' ही तो गहन अन्धकार है। यही तो तत्त्व दृष्टि

पर छाकर उसे धुंधला बना देता है फिर शांति प्रकाश कहाँ?

धन 'वैभव' का अतिममत्व परिग्रह है किन्तु 'पुत्रमोह' तो और भी अधिक आत्ममोहक परिग्रह है। बंधनका प्रबल साधन इस परिग्रहका ममत्व ही है। परिग्रह जितना कम होगा ममत्वकी जंजीरें उतनी ही शिथिल होंगी। बंधन भी उतना ही ढीला होगा। ममत्वकी जंजीरें शिथिल करनेके लिए शांतिप्राप्तिके लिए परिग्रहका कम होना आवश्यक है।

पुत्र-मोहके प्रबल बंधनका प्रभाव प्राणिमात्रपर है। मेरा आध्यात्मिक हृदय इस बंधनको पकडे रहे यह मुझे सह्य नहीं। कथनीकी अपेक्षा करनी उन्हें स्वीकार थी।

वाणी द्वारा ध्वनित एक-एक शब्द जादूका काम करता गया। जितना जिसका परिग्रह कम होता है, परमार्थ दृष्टिसे उतनी ही उसे शांति मिलती है। पुत्र भी एक परिग्रह था। इसके घटनेपर अशांति क्यों यह तो शांति-प्रदायक है।

पवित्र धारामें ममत्व-मल धुल गया। हृदयने एक अपूर्व शांति-दूतके दर्शन किये।

शोक और विषादके मेघ बिखर गये और अमृत, आध्यात्मिक रसमें वे निमग्न हो गये।

क्या उनकी ये दो पंक्तियाँ ममत्व ज्वालासे दग्ध हृदयोंके लिए सुधावर्षण नहीं है? अशांत मनके लिए शांति-समीर नहीं है?

वह सच्चा कवि है जो कविताकी अनुभूतिमें उत्कृष्ट और उच्च आनन्द पाता है, चाहे उसने अपनी तमाम ज़िन्दगीमें कविताकी एक लाइन भी न लिखी हो।

—श्रीमती डयूडवेंट

सच्चा दार्शनिक और सच्चा कवि एक ही हैं, सुन्दर सत्य और सच्चा सौन्दर्य दोनोंका उद्देश्य है।

—एमसन

कविकी आँख, एक लाजवाब दीवानगीमें घूम घूमकर, भूतलसे स्वर्ग और स्वर्गसे भूतल तकको देख लेती है और ज्यों ही कल्पना अनजानी चीज़ोंको शक्लोंको साकार बनाने लगती है, कविकी क़लम उनको मूर्तिमान करने लगती है और हवाई शून्यको यहींका घर और नाम दे देती है।

—शेक्सपियर

देखता हूँ कि हर देशमें कविका एक ही स्वरूप है—वर्तमानका आनन्द लेना, भविष्यके प्रति लापरवाही, समझदारकी-सी बातें, बेवक़ूफ़की-सी हरकतें।

—गोल्डस्मिथ



पुस्तकोंकी दो प्रतियाँ आने पर ही समालोचना होगी

भारतीय ज्ञानपीठ काशीके दो नये प्रकाशन

हमारे आराध्य

लेखक—पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

पृष्ठ सं० २६० + १२ ● मूल्य तीन रुपये

इस पुस्तकमें चतुर्वेदीजीकी साफ़-सुथरी मँजी लेखनीसे अंकित किये गये कुछ जीवन-चित्र हैं। ये चित्र उन विदेशी साधकोंके हैं जिनकी कीर्ति जल, वायु और प्रकाशकी तरह देशोंकी सीमा पार कर सारे संसारमें व्याप्त हो गयी है। चतुर्वेदीजीने इन्हीं विश्वमानवोंको अपना आराध्य कहा है। आराध्योंमें महिलाएँ भी हैं और पुरुष भी। इनके शुभ नाम सुनिये—महाप्राण माइकेल बाकूनिन, प्रिन्स क्रोपाटकिन, अराजकवादी मैलटेस्टा, लुई माइकेल, ऐमा गोल्डमेन, एमर्सन, उपन्यासकार तुर्गनेव, रोमाँ रोलाँ, स्टीफ़न ज़्विग, पतिव्रता जयिनी, समाजसेवी कागावा, सम्पादकाचार्य सी० पी० स्काट, एच० डब्ल्यू० नेविनसन, आचार्यवर गीडीज, फक्कड़ थोरो, अमर कलाकार 'ए० ई०'। इस तरह 'हमारे आराध्य'में जीवनके सभी क्षेत्रों (साहित्य, समाज, राजनीति, दर्शन, विज्ञान) के प्रतिनिधियोंका समावेश हुआ है। श्रद्धालु पाठक चाहे इन सभी वन्दनीय चरित्रोंको अथवा अपनी रुचिके किसी विशेष जीवन-चित्रको अपनी आराधनाका आधार बना सकते हैं। स्वयं चतुर्वेदीजीने 'क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन और उनके कुटुम्ब' को यह पुस्तक 'श्रद्धापूर्वक समर्पित' कर अपनी अराजकवादी रुचिको प्रमुखता दी है।

ये जीवन-चित्र चतुर्वेदीजीके सम्पादनकालमें 'विशाल भारत'में तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। चतुर्वेदीजीने हिन्दीको जीवन-चरित्र लिखनेकी एक नयी शैली, एक नयी कला दी है। प्रारम्भ चरित्र-नायकके जीवनकी किसी ऐसी विशेष घटनासे करते हैं कि पाठकोंमें एक औपन्यासिक कुतूहल उत्पन्न हो जाता है और वे सम्पूर्ण जीवन-चित्र पढ़ लेनेके लिए उत्सुक हो उठते हैं। चतुर्वेदीजी एक सहृदय मनोवैज्ञानिक पत्रकार हैं। अपनी रसात्मक सहृदयतासे वे पाठकोंके रागतन्तुओंको छूते और जगाते हैं। अपनी मनोवैज्ञानिक पत्रकारितासे विशेष-विशेष प्रसंगोंको सँजोते, सजाते और प्राणान्वित करते हैं। इसीलिए उनके लिखे हुए जीवन-चरित्र इतिवृत्त न होकर जीवन-चित्र बन जाते हैं।

चतुर्वेदीजीकी लेखनीमें एक मिशनरी की सी स्फूर्ति और प्रेरणा है। उनके लिए लेखन-कला केवल एक कला न होकर अपने अभीष्ट आदर्शो के प्रचारके लिए सहयोगिनी है।

सभी जिज्ञासुओ, विशेषत नवयुवकोके लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी पथप्रदर्शिका है। अन्धकारमें भटकी मानवताको इससे जीवन ज्योति मिलेगी। —शान्तिप्रिय द्विवेदी

भारतीय ज्योतिष

लेखक—पण्डित नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुण्डरोड बनारस ४

पृष्ठ सख्या ५९२ ● मूल्य छ रुपये

प्रस्तुत पुस्तकका विषय तो नाममे ही स्पष्ट है। यह पुस्तक ५ अध्यायामें विभक्त है। प्रथमाध्यायमें विषय-प्रतिपादनकी पूर्वपीठिकाके अनन्तर भारतीय ज्योतिष शास्त्रकी परिभाषा और उसका क्रमिक विकास, होरा, गणित या सिद्धान्त, सहिता, प्रश्नशास्त्र, शकुन, ज्योतिषका उदभव-स्थान और काल एव भारतीय ज्योतिषकी प्राचीनतापर विदेशीय विद्वानो के अभिमत, मानव जीवन तथा भारतीय ज्योतिष, ज्योतिषकी उपयोगिता आदि पर बडा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। पुन भारतीय ज्योतिषके इतिहासका निम्न प्रकारसे काल वर्गीकरण किया गया है—

(१) अन्धकार काल (ई० पू० १०००० वर्ष पहलेका समय), (२) उदयकाल—(ई० पू० १०००० से ई० पू० ५००० तक), (३) आदिकाल—(ई० पू० ४९९ से ई० ५०० तक), (४) पूर्वमध्यकाल—(ई० ५०१ से ई० १००० तक), (५) उत्तर मध्यकाल—(१००० से ई० १६०० तक) तथा (६) आधुनिक काल—(ई० १६०१ से १९४६ तक)

उपर्युक्त कालोका वर्गीकरण ज्योतिष शास्त्रके विकासके आधारपर किया गया है। यो तो भारतीय सस्कृतिके इतिहासको भी उपर्युक्त वर्गोमें विभक्त किया जाता है, लेकिन यहाँ पर ज्योतिषको अनादि निधन मानते हुए भी अभिव्यजना-प्रणालीके विकास पर ही मुख्य दृष्टि रखी गई है। इन विभागोमें ज्योतिषके क्रमिक विकासके साथ ही तत्तत्कालके ज्योतिष-ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार आदिका सप्रमाण परिचय दिया गया है।

द्वितीयाध्यायमें भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त, तिथि, नक्षत्र, योग, करण राशि, लग्न आदिकी विविध सज्ञाएँ और उनके स्वामी आदिके विवेचनके पश्चात् जातक सम्बन्धी गणित विषय —[अक्षाश-देशान्तर सारणी, इष्टकाल साधन, लग्न साधन, अयनाश, दशम, द्वादश भाव, विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि दशाओमें महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा आदिके बोधक चक्र, द्रेष्काण, उच्च नीच, अष्टवर्ग आदि]की सोदाहरण प्रक्रियाका दिग्दर्शन बडे सरल ढगसे किया गया है। इस विचारमें भारतमें प्रचलित विभिन्न

पंचांगोंकी शैलीपर एक साधारण-सी दृष्टि डाली गयी होती तो इसकी उपादेयता और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती।

तृतीयाध्यायमें जातक-विषयक फलादेशका निरूपण किया गया है। इसके अन्तर्गत ग्रहोंके फलाफल, योगज फल, लग्न फल, अरिष्ट योग, विविध रोगकारक योग, सन्तान योग, सौभाग्य, आयु आदिके विचार मुख्य रूपसे प्रदर्शित किये गये है।

चतुर्थ अध्यायमे ताजिक (वर्ष-फल निर्माण विधि) का सोदाहरण सफल प्रयोग बतलाया गया है।

पञ्चम अध्याय मेलापक (गणना-विचार), मुहूर्त-विचार, प्रश्न-विचार आदिका सुन्दर शैलीमे प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार इस पुस्तकके लघु कलेवरमें ही ज्योतिषके गणित, फलित तथा सिद्धान्त इन तीनों विभागोंका अच्छी प्रकार समावेश हो गया है। भाषा इसकी इतनी सरल एवं रोचक है कि इसका स्वाध्याय करनेसे हिन्दीके गणितका एक साधारण-सा विद्यार्थी भी थोड़े ही कालमें अल्प आयाससे ही ज्योतिषी बन सकता है। इसका प्रथमाध्याय लेखककी विद्वत्ता तथा परिश्रमका स्पष्ट परिचायक है।

यह पुस्तक ज्योतिष विद्याके निपुण विद्वान्, प्रारम्भिक विद्यार्थी तथा जिज्ञासु सबके लिए बहुत ही उपयोगी है।

—महादेव चतुर्वेदी

मेरे साथी

ले०—महात्मा भगवानदीन प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा

पृष्ठ सं० १२७ : : मूल्य एक रुपया

आजकल अपने संस्मरणके रूपमें भारतीय साहित्यमें जो साहित्य सृजन किया जा रहा है उससे जीवन-निर्माणके लिए कड़ियाँ जोड़नेवाले उन पात्रोंपर प्रकाश पड़ रहा ह जिनके सम्बन्धमें हम कह सकते है कि "विन खिले मुरझा गये" या परिस्थितियाँ उन्हें ऊपर न ला सकी। प्रस्तुत पुस्तकमें ८ पात्रोंमे केवल एक पात्र रामदेवीबाई ही ऐसी शामिल हो सकी है। अन्य पात्र अजितप्रसाद, अर्जुनलाल सेठी, गुरु गोपालदास, दयाचन्द्रजी गोयलीय आदि सभी जैन समाजके नेता थे। महात्माजीने इन साथियोंके साथ अपने जीवनकी अनुभूति-चित्रणमें जिस यथार्थवादी दृष्टिकोणको अपनाया है वह सराहनीय है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है। मूल्य भी कोई अधिक नही है।

—गुलाबचन्द चौधरी

कल्याण मंदिर स्तोत्र

लेखक—श्री कमलकुमार जैन शास्त्री

प्रकाशक—श्रीकुन्थुसागर स्वाध्याय सदन, खुरई (सागर)

पृष्ठ सं० १८० • मूल्य दो रुपये

जैन साहित्यमें कुछ ऐसे ग्रन्थ और स्तोत्र हैं जिन्हे प्रायः विशेष मान्यताका सौभाग्य प्राप्त है। भक्तामर एवं कल्याण-मन्दिर स्तोत्रोंको

जैनोंके सभी सम्प्रदाय मानते हैं। प्रस्तुत सस्करण अपनी अनेक विशिष्टताओंको लिये है। हिन्दी पद्य, हिन्दी और अंग्रेजी अनुवादके साथ प्रत्येक श्लोकके पीछे मंत्र भी दिये गये हैं। पीछे यंत्र और ऋद्धिका चित्रण हैं। यह पुस्तक भारतीय यंत्र मंत्र शास्त्रके अध्ययनमें, यदि सावधानीसे अध्ययन किया जाय तो, अवश्य विशेष योगदान कर सकती है। श्वेताम्बर और दिगम्बर यंत्र मंत्र विधिका तो इसमें एकीकरण ही दिया गया है। अनुवाद अच्छा बन गया है। पुस्तकको सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न श्लाघनीय है। भक्त जैनोंको अवश्य संग्रह करना चाहिये। ऐसी पुस्तकोंका मूल्य कुछ कम होना चाहिये।

—गुलाबचन्द चौधरी एम० ए०

ईसाका संदेश

लेखक—जे० सी० कुमारप्पा

प्रकाशक—हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी, इलाहाबाद ● मूल्य एक रुपया

'ईसा का सदेश' एक धार्मिक ग्रन्थ है। सेवाभावसे प्रेरित सज्जनोंको इसमें कामकी वस्तु मिल सकती है। अब उसी सेवाकी दृष्टिसे इस पुस्तककी आलोचना की जाय तो संक्षेपमें तीन बातें कही जा सकती हैं। वस्तु इसकी पढने योग्य है। पर भाषा इसकी ऐसी हिन्दुस्तानी है जिसके शब्द साधारण हिन्दी पाठककी समझमें नहीं आ सकते। भाषा हिन्दुस्तानी हो चाहे हिन्दी, उसमें शब्द वे ही अच्छे माने जाते हैं जो जनसमाजमें चल रहे हैं। क्योंकि ऐसे प्रचार-प्रधान ग्रन्थ साधारण जनताके लिए ही लिखे जाते हैं।

एक बात और है। भावकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका मैं स्वागत करता हूँ। ग्रन्थका लक्ष्य है सद्भाव उत्पन्न करके अपने विश्वास और अनुभवका प्रचार करना। यही लक्ष्य आज सभी धर्म-प्रचारकों और समाज-सेवकोंके सामने यदि रहे तो निश्चय ही सद्भाव और शान्तिकी वृद्धि होगी।

वस्तुके संबंधमें महात्मा गांधीके शब्दोंको दुहराकर मैं अपनी आलोचनाको पूरा समझूँगा।

"मैंने इन पन्नों को ध्यानसे देखा है, इसलिए हर आस्तिकसे, चाहे वह ईसाई हो या किसी दूसरे धर्मका माननेवाला हो, मेरी सिफारिश है कि इन्हें पढ़े।

इस किताबके अन्दर प्रोफ़ेसर जे० सी० कुमारप्पाने ईसाई मतके बारेमें अपने विचारोंका लुब्बे लुबाब पेश किया है। ईश्वरके आदमीके रूपमें ईसाकी यह एक इन्क़लाबी तसवीर है। फिर भी यह आँखें खोल देनेवाली और लुभावनी तसवीर है। ईश्वर की प्रार्थनाका जो मतलब इसमें बताया गया है वह दूसरे और बहुतसे मत-लबोंके जैसी नई और ताज़ी चीज़ है।

अगर प्रोफ़ेसर कुमारप्पाकी तरह सब लोग विश्वास करने लग जायें तो जात-जातमें, धर्म धर्ममें न एक दूसरेसे लड़ाइयाँ होंगी और न आपसमें रश्क-ईर्ष्या रहेगी।"

इस उद्धरणमें वस्तु, भाषा और भाव तीनोंका प्रमाण मिल जाता है।

—पद्मनारायण आचार्य

सम्पादकीय

समयकी चुनौती हम स्वीकार करें !

सागर विश्वविद्यालयके उपकुलपति श्री डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठीने अपने एक भाषणमें कहा है–

"वर्तमान विद्वद्जनोंका कथन है कि यदि नवीन परिवर्तनों और क्रान्तिके अनुसार अपने ढाँचेको बदलनेकी क्षमता संस्थाओं और जातियोंमें नहीं है, तो उनका ह्रास होता है, और अन्तमें उनका अस्तित्व, शून्यमें विलीन हो जाता है।

"हमारा समाज भूतकालमें आई हुई आपदाओंका सामना करके भी जीवित रह सका, इसका कारण यह है कि अनेक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् विश्व-सिद्धान्त हमारे पक्षमें थे। आज फिर, युग हमें चुनौती दे रहा है। केवल जीवित रह लेनेका कोई अर्थ नहीं होता। हमें समयकी इस चुनौतीको स्वीकार करना है और हमारे चरित्र, हमारी सभ्यता एवम् संस्कृतिकी शक्ति, और ग्रहण करनेकी क्षमता, फिरसे विश्वको दिखाना है।

"हम इस प्रयत्नमें लगे ही थे, कि राजनीति हम पर हावी हो गई। जनताके जीवन पर राजनीतिका अधिक प्रभाव पड़ने लगा, और वह उनके लिए अधिक महत्त्वकी वस्तु हो गई, बनिस्बत दर्शन और विचारकताके। प्रत्येक घटना पर राजनैतिक दृष्टिकोणसे विचार किया जाने लगा।

"उन्नीसवीं सदीके सुधार-आन्दोलनोंका यदि अध्ययन किया जाये; तो ज्ञात होगा कि उनका निर्देशन राजनैतिक विचार-धाराको ध्यानमें रखते हुए किया गया था। बड़ी कठिनाईसे पाश्चात्य-सभ्यतामें प्रवेश कर, हमने उसकी कुछ अच्छाइयोंको अपनानेमें सफलता प्राप्त की ही थी, कि दो भयानक विस्फोट हुए। उन्होंने भारतमें अँग्रेज़ोंके बलको समाप्त कर दिया और अब हमारे पास केवल हमारे अपने ही साधन रह गये।

"पाश्चात्य-शिक्षण भारतमें उस समय आया था जब कि विशाल मुग़ल-साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहा था और उसके साथ-ही-साथ हमारा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय ज्ञान—सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक—लुप्तप्रायः हो गया था। इंग्लैंडके व्यक्तियोंको—जो प्रधानतः व्यापारी ही थे—परिस्थितियोंने राजनीतिमें भाग लेने पर विवश कर दिया। उनके द्वारा पाश्चात्य-विचार-धारा और पाश्चात्य-शिक्षा-प्रणाली स्थापित किये जाने पर, कालान्तरमें यहाँकी जनता पर नौकरियोंका एक नशा-सा छा गया—एक पागलपन सवार हो गया।

"जन-साधारणकी राय है कि

वर्तमान शिक्षा प्रणालीको आमूल परिवर्तित करना होगा। इस कार्यके लिए नौकरियोंमें, त्याग-भावनासे ओत-प्रोत विद्वानोंको स्थान देना चाहिये।

"अत मैं शासन तथा जनता, दोनोंसे निवेदन करता हूँ कि राष्ट्रके जीवनमें शिक्षाके महत्त्व और उसके स्थानकी महत्ता अनुभव करें, और अपनी सस्कृतिको सबल बनानेमें सहयोग दें। सरकार शिक्षण-सस्थाओं एवम् शिक्षा-विशारदोंको इस दिशामें प्रयत्न करनेके सारे साधन सुलभ कर दे। यह पूँजीकी एक ऐसी लागत है जिससे बडे-बडे लाभ होंगे।"

मान्य त्रिपाठी जी हमारे देशके यशस्वी शिक्षा शास्त्री है और उनके ये विचार इतने प्रशस्त है कि किसी टीका-टिप्पणीकी प्रतीक्षा वे नही करते। फिर भी कुछ कहना ही हो, तो सन्त-प्रवर विनोबाकी यह सम्मति हमारे सामने है कि यदि तुरन्त हम अपने देशकी शिक्षामें परिवर्तन नही कर सकते और नई शिक्षा-प्रणालीके तैयार करनेमें कुछ समय चाहिये, तो हमें तुरन्त देशके स्कूल-कालेज बन्द कर देने चाहिये। इनके कुछ दिन बन्द रहनेसे उतना नुकसान नही होगा, जितना आजकी शिक्षासे हो रहा है।

जनता : अन्तिम निर्णय

पिछले दिनों पेरिसमें 'अराजकता-वादी सघ' के युवकोंने सयुक्त राष्ट्र-सघके सदस्यो पर सडे अण्डे और टमाटर फेंककर अपना विरोध प्रकट किया था। कुछ पर्चे भी इस अवसर पर फेंके गये थे, जिनमें कहा गया था—ससारकी जनता सयुक्त राष्ट्रसघ की बहसोंसे तग आ गई है और वह न स्टालिनके लिए मरनेको तैयार है, न ट्रूमैनके लिए। अपने पाखण्ड, अपनी नपुंसकता और अपनी सनकके कारण तुम सब युद्धापराधी हो।

लन्दनमें भारतके उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) श्रीकृष्ण मेननने लन्दनकी एक सभामें उन्हीं दिनो कहा था—विश्वशान्ति सब देशोंके बहुसख्यक जन-साधारणपर निर्भर करेगी। इस बीच राजनीतिज्ञ तथा शासकगण बीस वर्षों तक बातें कर सकते है, नि शस्त्रीकरण सम्मेलन और गरम-ठण्डी लडाइयाँ हो सकती है, पर अतमें शान्तिका निर्णय जनताकी यह दृढ इच्छा करेगी कि वह मिलजुलकर रहना चाहती है। आज दुनिया एक विश्व सम्मतिकी ओर अग्रसर हो रही है।

सन्त विनोबाने भी कहा था कि छोटी-मोटी लडाइया हो तो मुझे बुरा लगता है, पर महायुद्ध हो, तो बुरा नही लगता, क्योंकि जितने ही महायुद्ध होंगे, जनता उतना ही अहिंसा का महत्त्व समझेगी।

जनता अहिंसा यानी सहयोगी जीवनकी ओर तेजीसे बढे यही हमारे विचारकोंका जीवनधर्म होना चाहिये क्योंकि शत्रुता और खींचातानी राज-नीतिज्ञोंमें है, जनतामें नहीं, यहाँतक कि युद्धके मुख्य वाहन सैनिकोंमें भी परस्पर शत्रुता नही होती।

१४-१८ के जर्मन महायुद्धके घन-घोर दिनोंमें बडे दिनके कारण लडाई बन्द थी और एक ओर जर्मन फौजों-

की छावनी थी, तो दूसरी ओर अंग्रेज फ़ौजों की। दोनों तरफ़ बड़े दिनकी खुशियाँ मनाई जा रही थीं। अचानक ये दोनों खुशियाँ एक हो गईं और बीचके मैदानमें दोनो तरफ़के सिपाही आ मिले—खूब नाचे, खूब गाया और गले मिले!

दोनों तरफ़के नेता इस घटनासे बहुत परेशान हुए और दोनोंने ही सिपाहियोंमें आपसी नफ़रत पैदा करने के लिए लाखों रुपये खर्चे! यह संसारका कितना भयंकर चित्र है कि हमारे राजनीतिज्ञ ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करते है कि संसारके दो भोले नागरिक बिना किसी शत्रुताके एक-दूसरेका खून पीनेको बेचैन हो जाते हैं। सचमुच यह स्थिति बदलनी चाहिये।

दण्ड कड़ा होना चाहिये!

प्रयागके एक सम्पादक—प्रकाशक-को अपने पत्रोंमें अश्लील साहित्य प्रकाशित करनेपर १०० रुपये जुर्माना या दो महीनेकी कड़ी क़ैदकी सज़ा दी।

हमारे साहित्यमें बाजारूपनका जो तूफ़ान कुछ लोग ला रहे हैं, उसे देखते हुए हम इस दण्डका स्वागत करते हैं, पर क्या सचमुच यह कोई दण्ड है? कौन अभागा है जो १००) के लिए दो महीनेकी कड़ी सजा भोगेगा? और १००) देकर कोई चटपटा साहित्यिक अपनी आदत बदले यह सम्भव नही, तो क्या इस तरह मुकदमा, बहस और दण्डका यह लम्बा चक्कर व्यर्थ न होगा?

भ्रष्टाचारके एक मुक़दमेमें दिल्ली के अतिरिक्त जिलाधीशने ६ मासकी कड़ी क़ैद देते समय कुछ दिन हुए कहा था—समाजमें फैला भ्रष्टाचार एक-भयानक रोग है, जिसका इलाज तेज नुस्खोंसे ही हो सकता है।

सहकार भारती

हिन्दीके परिश्रमी साधक श्री अखिल विनयके तत्त्वावधानमें पिलानी में सहकार भारतीकी स्थापना की गई है। इसके उद्देश्योंमें कुछ बातें बड़े महत्त्वकी हैं। यह संस्था बंगला, गुजराती, मराठी आदि प्रान्तीय भाषाओंकी श्रेष्ठ रचनाओंको हिन्दीमें और हिन्दीकी श्रेष्ठ रचनाओंको इन भाषाओंमें पहुँचायेगी। विदेशी भाषाओंकी श्रेष्ठ रचनाओंको हिन्दीमें और हिन्दीकी श्रेष्ठ रचनाओंको विदेशी पत्रोंके माध्यमसे उन भाषाओंमें पहुँचायेगी। नये लेखकोंकी रचनाओंका सम्पादन करके उपयुक्त पत्रोंमें उनका प्रकाशन भी इसका एक विशेष कार्य होगा।

हम इस संस्थाकी सफलता चाहते हैं और साहित्यकारोंसे इसे अपने सहयोग द्वारा समृद्ध करनेका अनुरोध करते हैं।

ब्रज-साहित्य-मण्डल

ब्रज-साहित्य-मण्डल (प्रधान कार्यालय मथुरा) हमारे देशकी एक आवश्यक संस्था है। वह ब्रज-साहित्य, ब्रजलोक-साहित्य, ब्रजभाषा और ब्रज संस्कृतिके शोध-खोजका कार्य करती है और निश्चय ही जनपदीय कार्य करनेवाली संस्थाओंमें सबसे अधिक सुसंगठित है।

हाथरसमें अभी-अभी इस सस्थाका आठवां अधिवेशन हुआ है, जिसका उद्घाटन करनेको हमारे राष्ट्रपति महोदय पधारे थे। इस बार सस्थाने बहुत सोच-समझकर प्रस्ताव पास किये हैं और एक व्यवस्थित कार्यक्रम हाथमें लिया है।

हमें आशा है कि सस्थाके कर्ण-धार और कार्यकर्ताओकी साधना निरन्तर प्रगतिशील रहेगी।

सस्ता-साहित्य-मण्डल

नई दिल्लीका सस्ता साहित्य-मण्डल हमारे देशकी एक समर्थ प्रकाशक सस्था है। उसने सदैव ऐसा साहित्य प्रकाशित किया है, जो देशको नये विचार देनेवाला हो और एक भी ऐसी पुस्तक कभी नही प्रकाशित की, जो मनकी कुभावनाओ और कुवासनाओको भडकानेवाली हो।

प्रसन्नताकी बात है कि शीघ्र ही इस सस्थाकी रजत-जयन्ती मनाई जा रही है। उसके सुयोग्य मन्त्री श्री मार्तण्ड उपाध्याय इस उत्सवको एक प्रेरक उत्सवका रूप देनेकी आयोजना कर रहे हैं। भाषण आदिके साथ एक प्रदर्शनी भी इस अवसर पर होगी। हमारी प्रार्थना है कि इस प्रदर्शनीको एक ज्ञानवर्धक प्रदर्शनीका रूप दिया जाय और उसमे एक भाग ऐसा भी हो, जिसमें हिन्दीमें अनूदित प्रान्तीय भाषाओ और विदेशी भाषाओके ग्रन्थो का प्रदर्शन हो, जिससे यह जाना जा सके कि विश्व-साहित्यको अपनी भाषाके माध्यमकी दृष्टिसे पढनेमें हम कहां तक समर्थ है।

प्रदर्शनीमें पुस्तकोका बॅटवारा भी प्रकाशक या लेखकवार न होकर विषयवार रहे। आलोचना-साहित्य, जीवनसाहित्य, उपन्यास-साहित्य और कहानी-साहित्य इत्यादि रूपोमें वह रहे, जिसे अपनी-अपनी रुचिके अनुसार दर्शक देख सकें। एक भागमें अवतकके सव अभिनन्दन ग्रन्थ आने चाहियें, तो एक भागमें तुलसी-ग्रन्थावली आदि ग्रन्थावलियाँ रहें।

इस अवसरपर एक प्रकाशक सम्मेलन भी होना चाहिये, जिसमें आपसकी सहयोग भावना तो उत्पन्न हो ही, अगले प्रकाशन कार्यकी एक (भले ही अनौपचारिक) रूपरेखा पर भी बातचीत हो सके। अग्रेजीके माध्यमसे हम विश्व-साहित्यका अध्ययन कर सकते है। हिन्दीको भी हमें अगले १०-१५ सालमें यही रूप देना है। इस प्रकाशक-गोष्ठीमें ऐसी योजना पर भी विचार हो कि विश्व-साहित्यकी विचार-योग्य सूची बनाई जाये और उसके ग्रन्थोको परस्पर बाँट लिया जाय, जिससे काम शीघ्र हो और समय शक्तिका व्यय अपव्यय भी बचे।

हम इस उत्सवकी पूर्ण सफलता चाहते हैं।

प्रदर्शक चाहियें

प्रोफेसर श्री पद्मसिह शर्मा 'कमलेश' ने अपनी बनारस-यात्राके सस्मरणोमे लिखा है—"सारनाथ पहुँचते ही म्यूजियमके द्वार पर टिकट लिया और बौद्धकालीन शिल्पके वैभवका दर्शन कर आँखें तृप्त की। ×××

यद्यपि ये चीज़ें सारनाथके म्यूज़ियमकी विशेषताएँ हैं, तथापि सामान्य दर्शकोंके लिए मेरी सम्मतिमें म्यूजियम का यह विशाल संग्रह व्यर्थ है; क्योंकि जबतक कोई योग्य व्यक्ति उनकी व्याख्याके लिए न हो, तबतक जनताको उससे कोई लाभ नहीं। समस्त देशमें म्यूज़ियमोंकी यही स्थिति है, जो पथप्रदर्शक मिलते हैं, वे भी ऊपरी बातें ही बताते हैं, हमारी सम्मतिमें सरकारको इस ओर अविलम्ब ध्यान देना चाहिये।"

डा० वी० एल० आत्रेयने अमरीकासे लौटकर हमसे कहा था कि वहाँ ऐसे गाइड हर जगह मिलते हैं, जो दर्शककी योग्यताके अनुसार उसे सब चीज़ें दिखाते-समझाते हैं। आशा है, इस आवश्यक सुझावपर ध्यान दिया जायेगा।

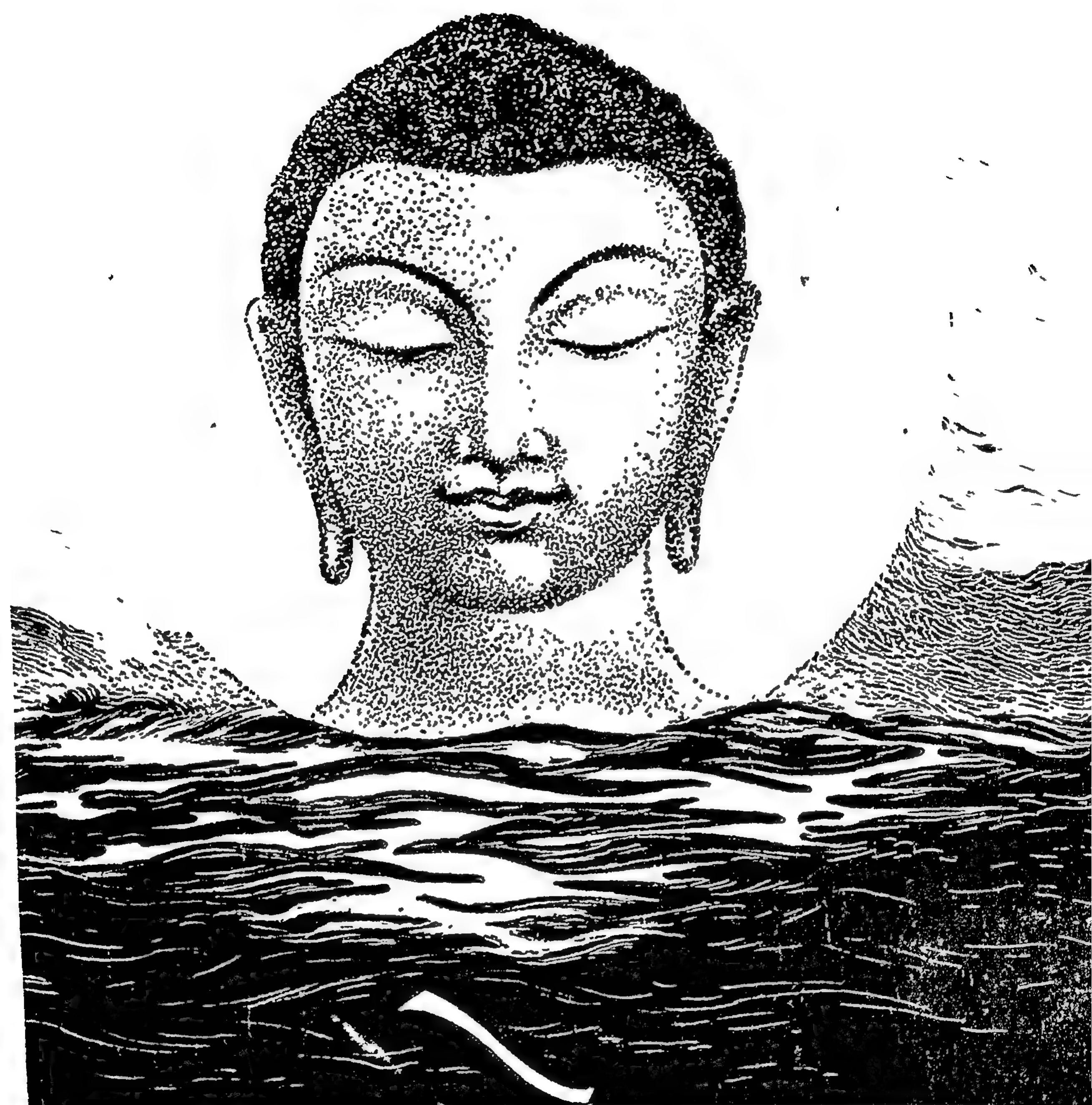
—क० ला० 'प्रभाकर'

सन् १९५१ की प्रकाशित पुस्तकें



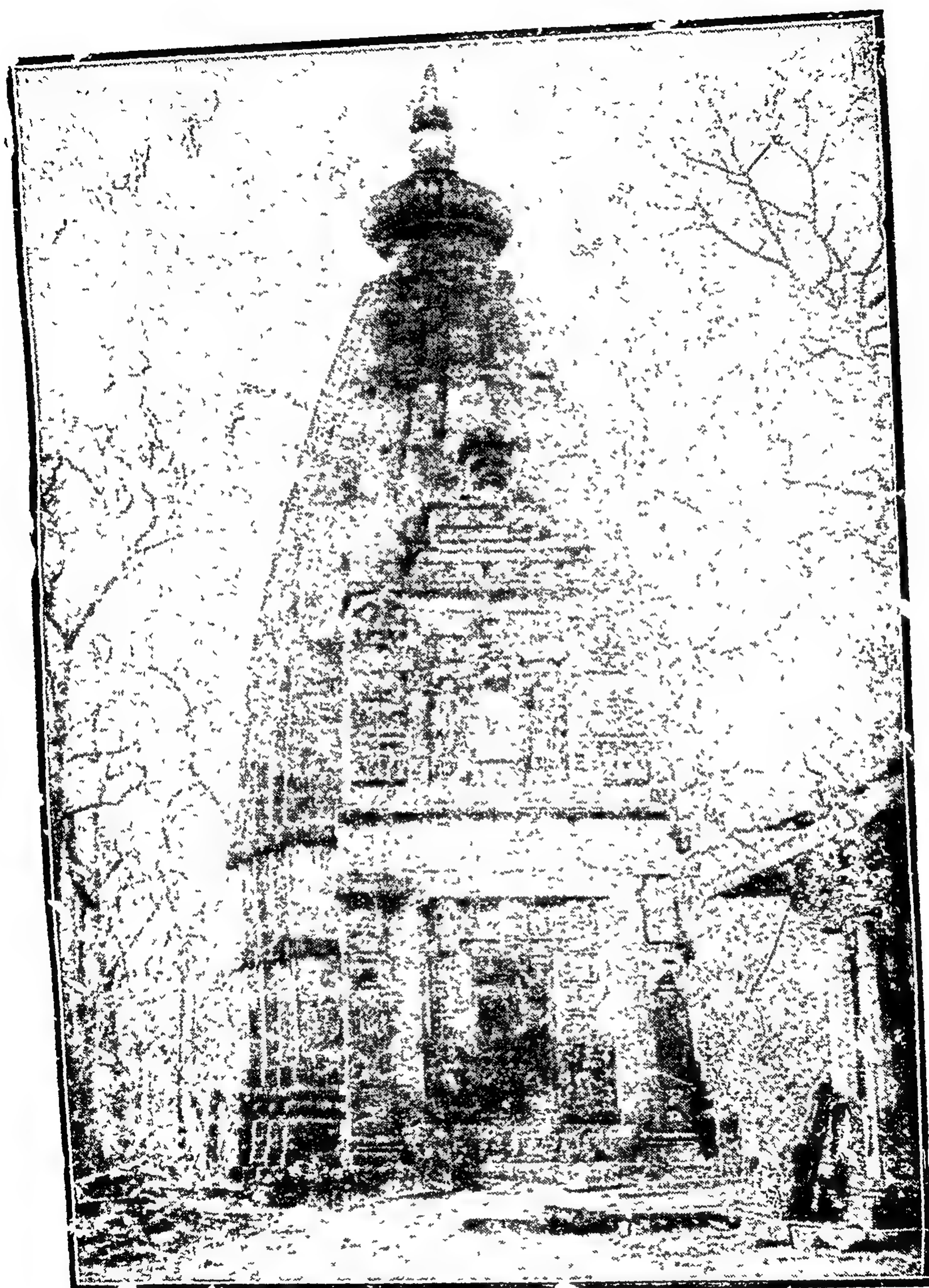
भा र ती य ज्ञा न पी ठ का शी

मुद्रक और प्रकाशक—बाबूलाल जैन फागुल्ल, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
ममार प्रेस बनारस



जून १९५२ [११] वी० नि० २४७८

भारतीय ज्ञानपीठ काशी



श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, देवगढ़



देवगढ़के श्री शान्तिनाथजीके बड़े मन्दिरकी दालानका दृश्य, मन्दिर नं० १२

सम्पादक—

मुनि कान्तिसागर • लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' • अयोध्याप्रसाद गोयलीय

इस अंक में—

वार्षिक ६) • **एक प्रति ॥=)**

लेख आदि भेजनेका पताः—

कृपालु लेखकोंसे निवेदन है कि लेख, कविता, कहानी, संस्मरण आदि निम्नलिखित पतेपर भेजें:—

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
विकास लिमिटेड, सहारनपुर

व्यवस्था संबंधी पताः—

विज्ञापन और व्यवस्था संबंधी समस्त प्रकारका पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पतेपर करें:—

ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ४

शलभ जल जीता है सौ बार
समाँ जी जलती है हर बार
कहेगा कौन शलभको प्यार
समाँको मधुभीगी रसधार

उठाकर जब इतने अरमान
लगाकर चिनगारी सी एक
बने जाते खुद ही अनजान
न क्यों उनको नादान कहूँ

सुधाके कलश लिये जब शीश,
सुनाता है शशि मीठे गीत
धराके खुल पड़ते हैं घाव
गगनमें छा जाते सङ्गीत,

झूम उठते तारक दल किन्तु
चकोरेको कब मिलता हास
वहाँ कब हुई सुधाकी कमी
यहाँ कब बुझी तनिक सी प्यास

जिन्दगीमें भर पलभर चाव
दिये जब अङ्गारे उपहार
कहूँ मैं क्यों फिर भी मधु पान
न क्यों उनको विषपान कहूँ

उठा करते जब काले मेघ
उदधिकी ले अनचाही दाह
समझता शशि कब उनका मर्म
गगन कब देता उन्हें पनाह

निहँस तब धरा उठाती बाँह
पपीहेकी सुन सुन मनुहार
कहाँ वे उपल, कहाँ यह प्यार
प्यारका यह कैसा व्यापार

जलाकर जब आशाके दीप,
आँधियोंसे उलझाये छोर
कहूँ मैं क्यों फिर स्वर्ग-विहान
न क्यों उनको तम-गान कहूँ

न क्यों उनको पाषाण कहूँ ?

तिब्बतमें ताल पोथियोंके पीछे

महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन

[१]

१९३६ ई० में यह मेरी तीसरी तिब्बत-यात्रा थी। स-स्क्या मठमें ताल-पोथियोंके बारेमें सफल होकर मै आगे चला। जिस वक्त मै स-स्क्या आया था उस वक्त चारों ओर सूखे-सूखे पहाड़ थे। बीरी और सफेदेके वृक्ष सूखे काँटे जैसे मालूम होते थे, लेकिन अब वर्षामें चारों ओर प्रकृति हरितवसना थी। खेतोंमें जहां नंगे जौ, गेहूँ, बकला और सरसोंकी हरियाली छायी हुई थी, वहां पहाड़ों पर दूर-दूर उगे तृण दूरसे बहुत घने मालूम होते थे। उस समयकी शोभा को देखकर कोई कह नही सकता था कि हम तिब्बतकी नीरस प्रकृतिमें आ गये हैं। गद्दीनशीन लामाने केवल अपने ही यहां हमारे आरामका ध्यान नहीं किया था, वल्कि रास्तेमें कष्ट न हो इसके लिए अपने प्रधान रसोइयेको हमारे साथ कर दिया था। दामो (महन्तानी)का स्त्रीजगत् था, इसलिए उनकी जिज्ञासाएँ भी छोटी थी, लेकिन वह भी अपने पतिसे कम मेरे साथ सहानुभूति नही रखती थीं। चलते वक्त उन्होंने रास्तेके लिए खाने-पीनेकी कितनी ही चीज़ें बाँध दी थी, डोल्मा (तारा) प्रासादसे भी पाथेय आया था, और वहाँके छोटे लामा तो वहुत कहा करते थे—"यहाँ के डाँड़ोंपर डाकू रहते हैं, आप ऐसे अकेले न चला करें।" मै उनको यह कहकर समझा-बुझा देता था : मृत्यु डांड़ेपर ही नहीं रहती, वह घरका भी रास्ता जानती है।

११ वजे हम खा-पीकर प्रासादसे निकले। लामा और उनकी पत्नी छतपर खड़े बड़ी देरतक हमारी ओर देखते रहे। कहाँ मैं पैदा हुआ और कहाँ यह लोग रहते हैं, सिवाय मानवताके और कौन-सी ऐसी वात थी, जिसने हमारे वीचमें इतना सौहार्द स्थापित कर दिया। ६ मईको आकर २३ जुलाईको स-स्क्या छोड़नेमें सचमुच ही हृदयमें कुछ उदासी सी मालूम होती थी। यद्यपि प्रस्थान करते वक़्त इसकी पूरी आशा थी, कि हमें इसी रास्ते लौटना होगा, यदि ल्हासाकी ओर नहीं वढ़े। हमारा दो आदमियों

और तीन खच्चरोका काफिला दो मील गया। चढाई यहीसे शुरू हुई। इसी वक्त रसोइयाको उसकी खचरीने दो वार पटका। मुझे अगर वैसी पटकी खानी पड़ी होती, तो शायद हाथ-पैर टूट जाता, लेकिन वह पट्ठा धूल झाडकर खडा हो गया और फिर सवार होकर चलनेका आग्रह करने लगा। रसोइया वैसे बहुत लम्बा-चौडा-तगडा जवान था, और अपनी दो हाथ लम्बी सीधी तलवारको बाँधे पुरानी कथाओंका कोई वीर-सा जान पडता था। वह ऐसे भयकर रास्तों में न जाने कितनी बार जा चुका था। खच्चर बहुत दुष्ट होते है, लेकिन वह बचपनसे ही खच्चरोंके स्वभावसे वाक़िफ था। पहिले तो वह उसीको ले चलनेका आग्रह कर रहा था, लेकिन मैने कहा अच्छा हो कि इसे दूसरे खच्चरसे बदल लाओ। दोनो महलोंके पास अपने बहुतसे घोडे और खच्चर थे, और सयोगसे कही वहीं पर वह चर भी रहे थे। २ घटे-की प्रतीक्षाके वाद रसोइया जिस खच्चरको लाया, वह भी वैसा ही बद-माश निकला। दरअसल इधर जो महीने भर खूब हरी हरी घास चरने और खुला घूमनेका मौका मिला था, तो खच्चर किसीको समझते ही नही थे। और प्रतीक्षा न कर हम उसी खचरीको लिये कुछ आगे चढे। उसी समय शि-गर्चेकी ओरसे कुछ खच्चर स-स्वया आ रहे थे। रसोइयाने एक सीधा सादा खच्चर बदलेमें ले लिया और हमारी यात्रा शुरू हो गई, जिसके साथ वर्षा भी आई। अब हम पहाडके ऊपरकी ओर चढ रहे थे। ऊपर जाकर देखनेपर खेतोंके हरे हरे जौ, गेहूँ और सरसोंके पीले फूल बहुत मनोहर मालूम होते थे। कुछ आगे बढने पर एक और घुडसवार साथी अगले पडाव तकके लिए मिल गया। पहिले हमें छोटा डाँडा—आटोला—पार करना पडा, इसके बाद मुख्य डाँडा—शोडाला आया। चढाई क्यों कडी मालूम होने लगी, जब कि हम घोडेकी पीठपर थे। सवा ६ बजे शामको हम डाँडा पार कर शोङम-चिक्-ग्यब नामक डापोंके गावमें रातको टिकनेके लिए ठहर गये। यह गाव डोग्पा यानी पशुपालोंका था, जिनका खेतीसे नाममात्रका सम्बन्ध था। एक ओर जहाँ वह अपनी भेडो और चमरियोंके दूध, मास और ऊनसे जीविका करते हैं, वहाँ रास्ते पर होने-के कारण टिकनेवाले लोगोंको टिकाने और घास चारा देनेसे भी आमदनी कर लेते हैं। यद्यपि हम घोडेपर आये थे, लेकिन ढाई मास तक जो जमकर बैठकी की थी, उसके कारण हाथ-पैर बहुत दुखने लगे थे।

२४ जुलाई या तिब्बती छठे महीने की छठी तिथिको सात बजे ही चाय सत्तू खाकर हम रवाना हुए। बूँदें पड रही थी, लेकिन उनके डरके मारे हम अपना समय थोडे ही बरबाद कर सकते थे। तिब्बतमें सूती कपडोंकी आवश्यकता केवल भीतर पहननेके लिए होती है, ऊपर ऊनी ही कपडे रखने पडते हैं, इसलिए अधिक भीगनेका डर भी नहीं होता। कुछ मील चलकर हमें परित्यक्त किला मिला, देशकी रक्षाके लिए ऐसे किले

और फौजी चौकियाँ जगह-जगहपर बनी हुई हैं, जिनमें कुछ पहिले ही छोड़ जा चुके थे, और कितने ही चीनके साथ संबंध-विच्छेद हो जानेके बाद (१९११–१२ में) छोड़ दिये गये। यहाँ तक हम पैदल ही चलकर आये। अब कई जगहकी पतली-पतली धाराएँ मिलकर कुछ बड़ा रूप ले चुकी थी, उनमें वर्षाका पानी भी अधिक आ रहा था, इसलिए घोड़ेपर सवार होना पड़ा। रास्ता कहीं-कही पर पानीके भीतरसे था। एक जगह खच्चर पुस्तकोंका बक्सा लिये ही गिर पड़ा। हमारा हृदय काँपने लगा। ढाई महीनेकी कमाई इसी बक्सेमें थी, कही बक्सेके भीतर पानी न चला गया हो, लेकिन पीछे टिकानपर खोलकर देखा, तो कोई नुक़सान नही हुआ था। रास्ता कही-कही और खराब था। अब हम बड़ी नदी (छारोङ) की उपत्यकामें आ गये। काफ़ी नीचे उतर आये थे, इसका पता इसीसे मालूम हो रहा था कि यहाँ खेतोंमें जौ फूल रहे थे, मटरमें भी फूल आ रहा था। एक बजेके क़रीब हम चाङशो (शेलिङ) गाँवमे पहुँचे। आशा तो यही थी कि चाय और सत्तू करके यहाँसे चल देंगे। अगर छाछ मिल जाय तो सत्तूमें हमें और भी स्वाद आ जाता था, यहाँपर छाछके साथ सत्तू खाया। हमें छारोङ नदी पार करके जाना था। गाँववालोंने बतलाया कि पानी छातीभर है, और यहाँ आस-पासमे उतार नही है, वर्षाके कारण पानी बढ़ गया था। कई मील नीचे जानेपर शबूमें पुल था। हमें वही चलकर नदी पार होनेकी आशा थी। खच्चर लादकर जब चलनेके लिए तैयार हुए तो जोरका पानी आया। यह तिब्बतकी वर्षा नहीं, भारतकी वर्षा थी। रसोइयाकी घरवालोंसे जान-पहचान थी, उन्होंने भी आग्रह किया और हम यह सोचकर, कि वैसे भी कल ही ङौर पहुँच सकेंगे, वहीं रातके लिए ठहर गये।

२५ जुलाईको भोजनके बाद साढ़े सात बजे रवाना हुए—भोजन-का मतलब ही है चाय-सत्तू, और कुछ मांस। कहीं-कही अंडा भी मिल जाता था। तिब्बतमें अहिंसाका एक प्रभाव यह पड़ा है कि वहाँ मछली और चिड़िया जैसे छोटे-छोटे जानवरोंका मांस अभक्ष्य समझा जाता है। पढ़े-लिखोंसे तर्क करनेपर वह यही बतलाते हैं कि एक प्राणकी हिंसासे सौ आदमियोंका भोजन हो, वह अच्छा या पाँच प्राणियोंको मार-कर भी एक आदमीका पेट न भरे वह अच्छा। यहाँ लोग मुर्गियाँ पालते हैं, लेकिन खाते है केवल उनके अंडों-को। नदियोंमें मछलियाँ हैं, लेकिन उनको प्रायः लोग नही खाते, या खानेवालोंको अच्छी दृष्टिसे नही देखते। शामके वक़्त हम जरूर कभी रोटी, कभी थुक-पा (गाढ़ा सूप) या कोई और चीज बनवा लिया करते थे। साढ़े सात बजे जब हम रवाना हुए, तो थोड़ी-थोड़ी बूँदें पड़ रही थीं, और नदीमे पानी बहुत बढ़ा हुआ था। दो घंटा चलनेके बाद क्यिदो-तक्पा गांवमें पहुँचे। गांव नदीकी धारसे बहुत दूर नही है। हमने समझा

शायद क्वा (चमडेकी नाव) मिल जाय, लेकिन वह वहाँ प्राप्त नहीं थी। गाँववाले वतला रहे थे कि यहाँसे नदीको पैदल पार किया जा सकता है। ३ घटे प्रवन्धमें लगे। यह सारे गाँव स-स्क्याकी रियासतमें है और स-स्क्याके महन्तराजका प्रधान रसोइया हमारी अर्दलीमें था, जिसका रौब-दाव माननेके लिए लोग तैयार थे। रसोइया वैसे शरीरमे वडा पहलवान-सा था, और था भी भिक्षु—यह दोनो बातें इकट्ठा बहुत भयानक रूप लेती है, लेकिन यह मेरे परिचित उन आदमियोंमेंसे था, जिनको सौजन्यकी मूर्त्ति कहा जा सकता था। आखिर गावसे दो आदमी लिये, और अपना सामान लेकर नदीके तटपर पहुँचे। आदमियोंने नदीमें घुसकर देखा कि पानी कमरभर है। पेटियोंका डर था लेकिन पुलपर जाते तो दो दिनका चक्कर लगाना पडता, इसलिए सीधे उतर गये। एक वक्सेके भीतर जरा-सा पानी चला गया। परले पार जाकर तुरन्त खोलकर देखा, लेकिन कोई नुकसान नही हुआ था। वैसे जहाँतक होना था, हम सावधानी रखते थे। हमें अफसोस इस बातका था कि तिव्वतके सार्थवाहोके पास जो चमडे मढे वक्से होते है, वह हमारे पास नही थे। अगर वह होते, तो पानी का कोई डर नही था। उपत्यका सारी हरी-भरी थी, पहाड हरियाली से ढँके हुए थे। रास्तेमें जहाँ तहाँ पानी भी अधिक वह रहा था। १९३४ में जव हम इधरसे गुजरे थे, तो वर्षा समाप्त होकर जाडा आने लगा था, उस वक्त इस भूमिका यह रूप हमने नहीं देखा था। आगे सेंगे-चे गाँवमें होते हम पिछले साल जिस घरमें ठहरे थे, वहाँ पहुँचे। भेडोकी शालामें जगह मिल रही थी, जिसका मतलव था पिस्सुओंसे युद्ध, इसलिए अपने माथो पर जोर देकर हम और आगे नढ शव्-देवे (थू-रिम्-पा) गाँवमें चले आये। यहाँ टिकान अच्छी मिली। आज डोर गुम्वा नहीं पहुँच सकते थे, और डाँडा भी पार करना था, इसलिए रातको यही ठहर गये।

अगले दिन साढे सात वजे चलते समय फुहार पड रही थी। डेढ घटा चलनेके वाद हम छाचालापर पहुँचे। यह वणिक् पथका डाँडा नहीं है, क्योंकि हमें शिगर्चे न जाकर डोर-गुम्वा जाना था। डाँडा उतरनेपर बूँदें कुछ ज्यादा पडने लगी और वादल भी गर्जन तर्जन करने लगा, इसलिए चे-गाँवमें ११ वजे पहुँचकर एक वडे घरमे ठहर गये। यहाके इन घरो और वस्तियोमें आनेपर एक विचित्रता-सी अवश्य अनुभव होती है। पद पदपर स्मरण होता है कि हम शताब्दियों बीते युगमें आ गये हैं। वहाँकी रहन-सहन, लोगोंके चाल व्यवहार, सबसे इसी वातका पता लगता था। कही अगर कडवे अनुभव होते, तो दूसरे समय मीठे अनुभव भी सामने आते, कहीपर ठहरनेके लिए भेडशालामे भी जगह मिलनी मुश्किल होती, तो कहीपर सजा-सजाया मकान मिलता था। पानीका रुख देखकर हमे डर लगा था, कि शायद हमे यही ठहर जाना पडे। एक वडे घरमें

जगह मिली थी इसलिए बादलको हम भी कह रहे थे—"अगर इच्छा है तो बरस लो, और खूब बरसो।"

१ बजे बादल फटता दिखाई पड़ा। हम फिर चल पड़े। आगे एक छोटा-सा डाँड़ा (लाचोला) मिला। उतरकर नदीके किनारे पहुँचते-पहुँचते बूँदें अधिक हो गईं। जिस धाराको पार करना था, वह भी तेज हो गई। वह देखकर मालूम होता था कि हम वर्षाकालमें हैं। और समयोंमें यह धाराएँ प्रायः सूखी रहती है, लेकिन इस वक़्त तो पत्थरोंपर उछलती हिमालयकी कोई पहाड़ी नदी-सी मालूम होती थी। कभी-कभी धारामें अधिक पानी आ जानेसे उनके किनारे बनाये गये खेतोंको नुक़सान हो जाता है, इसलिए लोग पत्थरोंको जमाकर पुश्ते बना लेते हैं, जिसमें धारापर नियन्त्रण रहे। शायद पुश्ते पर भी उनको अधिक विश्वास नहीं है, इसलिए उनके ऊपर देवता बैठा देते हैं। हम पानीमें भीगते हुए साढ़े पाँच बजे ङौरगुम्बामें पहुँचे। पिछले सालके परिचित कूडिंग और कूकुंग दोनों लामा यही थे। दोनों भद्र पुरुष थे, लेकिन इस वक़्त ध्यान-पूजा (छम्) मे थे, तो भी उनको जब खबर हुई, तो अच्छी जगहपर ठहरानेका हुक्म दिया। लेकिन मालूम हुआ, जिस लामाका इस वक़्त यहाँपर अधिकार है, उसका कारिन्दा अभी यहाँ नही पहुँचा। उसकी बातका कोई विश्वास भी नहीं था, इसलिए यहाँ बैठकर प्रतीक्षा करनेकी जगह बेहतर यही था कि शलू विहार चले चलें।

शलू—२७ जुलाईको कुडिंग लामासे मुलाक़ात हुई। उनको इस बातका बड़ा अफ़सोस था, कि कारिंदाकी बदमाशीसे हमारा काम नहीं हो रहा है, लेकिन चारा क्या था? हमने यहाँसे १० बजे शलूका रास्ता लिया। अच्छा रास्ता जाते तो शायद दो दिनमें भी मुश्किलसे पहुँचते, इसलिए हमने १२ वर्षका रास्ता छोड़ ६ महीनेका रास्ता पकड़ा—६ महीना भी नहीं बल्कि ६ घंटेका कहिये। गुम्बा विहारसे निकलते ही कठिन चढ़ाई शुरू हो गई, यहाँ रास्ता भी नहीं था। डोलाका डाँड़ा किसी तरह पार किया। फिर प्रायः दो मीलकी उतराई आई, जिसमे कुछ दूर तो वह इतनी कठिन थी कि खच्चरोंको भी बोझ लेकर चलना मुश्किल था। आदमी इसीलिए साथ ले आये थे, जिसमें बोझको पीठपर रखकर नीचे पहुँचाया जा सके। अब हमारे सामने चा-उपत्यकाकी हरी-भरी भूमि आई। आँखोंसे बिना देखे विश्वास नही होता कि इस जगहपर इतनी अच्छी आबादी होगी। यहाँ खेत बहुत ज्यादा थे और चा-नदीकी धार कहीं खेतोंको बहा न ले जाये, इसके लिए बन्धोंके ऊपर शिलापुत्रकके रूपमें देवता खड़े किये गये थे। जल देवताको इन देवताओंके विरुद्ध लड़नेकी शक्ति नही थी। पानी पार कर फिर कितनी ही दूर जा मामूली चढाईके बाद दूसरा डाँड़ा—श्वाला—मिला। यहाँ रास्ता उतना कठिन नही था। उतराई उतरते वक़्त एक शिशु-डांडा—कंगोला—उतरना पड़ा। आज तो पानीने बरसनेकी क़सम खा ली थी,

लेकिन चार बजे शलू विहारमें पहुँचने-पर वहाँके रिम्-र लामाने जो सुन्दर स्वागत किया, उससे मार्गके सारे कष्ट भूल गये। उन्होंने अपने निवासस्थानमें ही एक सुन्दर सजा हुआ कमरा रहनेके लिए दिया। हमने जापान और भारत से जो चित्र और दूसरी चीजें उनके पास भेजी थीं, वह पहुँच गई थीं।

पहिले यहाँकी ताल-पोथियोंको एक मर्तबे हमको देखना था। बैठकर लिखनेका ख्याल छोड यही अच्छा समझा कि गिगचें चलके वहाँसे तेजरत्न फोटोग्राफरको लायें। हमने चिट्ठी लिखकर कलकत्तासे फोटोका सामान भी मँगवाया था, उसके भी वहाँ पहुँचे होनेकी आशा थी। २८ जुलाईको ९ बजे ताल-पोथियोंको देखने गये। ११वीं-१२वीं शताब्दी तक तिब्बतमें विहार (गुम्बा) अधिकतर भारतीय नमूने पर बनते थे और मैदानी जगहमें स्थापित किये जाते थे, जिसमें कि आने-जानेवाले लोगोंको कोई कष्ट न हो। कष्टके अलावा यह भी ख्याल काम कर रहा था कि मैदानमें विहारों-के बनाने पर ही वहाँ नालदा या विक्रमशिलाकी तरहके बडे आगनवाले मन्दिर बनाये जा सकते है। शलू और सस्क्याके विहार उसी नमूने पर बने थे, लेकिन पीछे तिब्बतके लामाओंने गुम्बाओंको कठिनसे कठिन स्थानोंमें बनानेकी होड लगा दी थी। वह पहाडो-की दुर्गम रीढो पर उन्हे स्थापित करने लगे, जहाँ पर पानी ढोकर ले जानेमें ही आदमीकी जान निकल जाती है। शलू गुम्बाकी स्थापना ११वीं १२वीं शताब्दी में हुई थी। १४वीं शताब्दीमें तिब्बतके सबसे बडे आधे दर्जन विद्वानोंमें से एक बूतन लामा यही पर हुए। वह बहुत सालों तक स-स्क्यामें अध्यापक रहे। उस वक्त स-स्क्याका वैभव बहुत बढा चढा था, और भारतसे आई बहुत-सी ताल-पोथियाँ वहाँ पर थी। अन्तिम समयमें बू-तन् शलू चले आये, लेकिन पुराने विहारमें न रहकर उन्होंने पहाड की खड्डमें नई गुम्बा बनाई, जिसे शूल-रि-फुग (पर्वत दरी) कहते है। शायद बू-तन्के साथ ही स-स्क्यासे यह तालपोथियाँ आईं। उस समय तक सस्क्यामें विद्याका ह्रास हो चुका था। इसलिए इन पुस्तकोंकी खोज-खबर लेनेवाला कोई नही था, तभी तो अत्यन्त दुर्लभ सस्कृतकी ताल-पोथियोंमें से कुछ डोरममें और कुछ शलूमें चली आईं। यह भी सभव है कि सस्क्या सम्प्रदायके दूसरे मठोंमें और भी ताल पोथियाँ मिलें। रिफुग प्राय १ मील पर है। वहाका लाल देवालय बू-तन्का बनवाया है, जिसमें बू-तुन्की मूर्ति भी है। इस महाविद्वान्का चेहरा बन्दरसे ज्यादा मिलता था, यह मूर्ति देखनेसे ही नही मालूम होता, बल्कि परम्परा भी इसे स्वीकार करती है। यहाँकी एक छोटी सी कोठरीमें बहुत-सी हस्त-लिखित पुस्तकें तथा दूसरी चीजें है। पुस्तकालयके भीतर एक और भी छोटी कोठरी है, जिसपर सरकारकी मुहर लगी हुई है और उसको तब तक खोला नही जा सकता, जब तक तिब्बत सरकारकी आज्ञा न मिले। उस वक्त रिम्-र लामाके कहने पर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ कि उनमें कोई पुस्तक नही है, लेकिन अपनी

चौथी यात्रामें तिब्बत सरकारकी आज्ञा मिल जानेके कारण वह कोठरी मेरे लिए खोली गई, तो उसमे और ऐतिहासिक चीजें मिली, पर पोथी नही थी। हमने पाँचों अधिकारियोंके प्रतिनिधियोंके सामने मुहर तोड़ने और ताला खोलनेके वाद पुस्तकोंको देखकर अन्दाज किया कि १०-११ दर्जन प्लेटोंकी जरूरत होगी। उस दिन लौटकर हम शलू ही में रह गये।

शिगर्चे—२९ जुलाईको भोजन करके ७ वजे चले। शलूसे शिगर्चे जानेमें तीन छोटी-छोटी नदियाँ पड़ती हैं। पानी नही बरसा था, इसलिए हम उनके पार करनेमें कोई दिक्क़त नही हुई और दोपहरको शिगर्चे पहुँच गये। फोटोग्राफर तेजरत्नके यहाँ ही ठहरे। मालूम हुआ कि फोटो सामग्रीके चार पारसल आ गये हैं, ग्याँची उन्हे लेनेके लिए आदमी भी भेज दिया गया है। यह भी मालूम हुआ कि पंडित अभयसिह (न्यायाचार्य) जी टशी-लुम्पो गुम्बामें रघुवीरके पास रह रहे है। ४ बजे हम टशीलुम्पो गुम्बा गय। कनौर निवासी रघुवीर मेरी पहिली यात्रासे परिचित थे। उनकी पढ़ाईमें हर्ज होगा, इसी ख्यालसे मैंने अपनी यात्राओंमें रघुवीरको अपने साथ नही लिया। रघुवीर प्राइमरी तक पढ़े हुए थे, हिन्दी उर्दू दोनों जानते थे और यहाँ तिब्बतमें पिछले १० सालोंसे दर्शनका अध्ययन कर रहे थे। ऐसा आदमी शिक्षा प्राप्त करके भारत लौटेगा, तो वड़े कामका होगा, यह आशा मैंने उनपर लगाई थी। कुछ सालों वाद रघुवीर अपनी जन्मभूमिमें लौटे भी, लेकिन अधिक दिन तक जी नही सके और अपने सारे परिश्रमके फलको अपने साथ लेकर चल वसे। रघुवीर वहुत समझदार तथा ज़िन्दादिल आदमी थे, हँसाते रहना तो उनके वाये हाथका खेल था। रघुवीरसे भेंट हुई, वहुतसे पत्र-पत्रिकाएँ और चिट्ठियाँ अभयसिहजीने लाकर दी। जहाँ तक पढ़नेका संबंध था, अभयसिहने बहुत प्रगति नही की थी। टशीलुम्पोमें उस समय सम्लोगेशे जैसा तिब्बतके आधे दर्जन सर्वश्रेष्ठ विद्वानोंमें से एक रहता था। गेशे वूढ़े थे, लेकिन विद्याका प्रेम इतना था कि इस अवस्थामें भी वह संस्कृत पढ़नेकी इच्छा रखते थे। १९२३ ई० में तत्कालीन दलाई लामासे झगड़ा होनेके कारण अपना प्राण वचानेके लिए यहाँके महान् लामा पण्-छेन्-रिम्पो-छीको चीन भागना पड़ा और आखिरमें वह वही मरे। पणछेन् और दलाई लामाका यह झगड़ा उनके जीवनमें ही नही वल्कि तव तक चलता रहा, जब तक कि तिब्वत और चीनमे सुलह नही हो गई। पुराने पण-छेन् तो लौटकर तिब्वतको फिर नही देख सके, लेकिन उनके अवतार समझे जानेवाले पण-छेन् लामा १९५१ के अन्तमें अपने महान् विहारको लौट आये हैं। पूर्व पण-छेन्ने ही अम्दोसे ६ वड़े-वड़े विद्वानोंको वुलवा मँगवाया था, जिनमें से पाँच पीछे अपने देशको लौट गये, और अव सम्लॉ गेशे अकेले रह गये थे। पण-छेन् लामाके चले जानेके कारण टशीलुम्पोका श्रीहीन होना

शुरू किया, धोकर देखनेपर जब फोटो नहीं आया, तो तेजरत्न कहने लगे कि प्लेट पुरानी है। वस्तुत प्लेट पुरानी नहीं थीं, बल्कि वह बारीकसे बारीक रंगोंकी छाया लेनेवाली विशेष तौरकी प्लेट थीं, जिनका न तो हमें तजुर्बा था, न तेजरत्नको, वस्तुत उनको अधिक देर तक एक्सपोज करनेकी आवश्यकता थी। खैर, यह बात तो भारत लौटकर मालूम हुई। फोटो लेनेमें सुभीता देखकर हम लोग ६ अगस्तमे ही रीफुग में चले गये। कलकत्तेसे आई प्लेटोंकी यह हालत देखकर तेजरत्नके पास जितनी प्लेटें थीं, उनको काममें लाना शुरू किया। पुस्तकोंकी सूची मिलानेपर मालूम हुआ कि १९३४ में जितनी तालपोथियाँ हमने देखी थीं, उनमेंसे दो—"सद्धर्मपुण्डरीक" और "काशिका पंजिका" अब नहीं है। यदि दो सालोंमें दो पुस्तकें गुम हो सकती थीं, तो कई शताब्दियोंमें यहाँ रखी हुई इन पुस्तकोंमेंसे न जाने कितनी गुम हुई होंगी। मुझे याद है कि पहिली तिब्बत यात्रामें मुझे यहींसे सात-आठ सौ बरस पुरानी तालपत्रकी पोथी मिली थी, जिसे पढ़नेपर मालूम हुआ कि कजूरमें अनुवादित वह "वज्रडाक तन्त्र" है। पुस्तकको मैंने पटना म्यूजियममें रख दिया। यह तो निश्चय ही था कि अगर दस-पाँच हजार खर्च करनेके लिए कोई तैयार होता, तो मेरी देखी हुई पुस्तकोंमें आधी उसे आसानीसे मिल सकती थीं। इस प्रकार यहाँ होनेसे वह सुरक्षित हैं, यह नहीं कहा जा सकता था।

फोटो प्लेटोंकी ऐसी हालत देखकर फिर हमें अपनी कलमपर भरोसा करना पड़ा। १३ अगस्तको तेजरत्नको हिसाब करके ६० रुपयेके क़रीब (५ दोर्जे) दे दिये। रिसुर लामाने तीन महीनेके लिए हमें प्रमाणवार्तिकके ऊपर मनोरथ-नंदीकी वृत्तिको दे दिया। यह प्रमाणवार्तिक समझनेके लिए बड़ी सुन्दर टीका है, जिसमें एक-एक शब्दको स्पष्ट किया गया है। अनुवाद करनेके लिए वह तिब्बत गई थी, लेकिन अनुवाद नहीं किया जा सका। हम पुस्तकको लेकर शलू विहारमें चले आये।



पति महाराजकी शिकायत है

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

बड़ी बात भी थोड़ेमें कही जाती है और थोड़ी बात भी विस्तार मे। एक तरीका यह भी है कि पूरी बात पहले थोड़ेमें कह दी जाय और बादको उसका विस्तार होता रहे। मै भी आज यही तरीक़ा काममें लाना चाहता हूँ।

मै पुरुष हूँ, पति हूँ, पर इस 'हूँ' के उच्चारणमे जो सानुनासिक गूँज है, उसके पूरा होते न होते मै सोचता हूँ, जी हाँ, मै पुरुष हूँ, पति हूँ, जो कभी अपने गृह-मन्दिरका देवता था, पर आज बलपूर्वक दास बनाया जा रहा हूँ। क्या आप नहीं मानते कि मैंने इस तरह अपना अतीत और वर्तमान, कल और आज उधेड़कर आपके सामने रख दिया है ?

क्या कहा आपने—'तुम्हारे कहनेके ढंगमे शिकायतकी धुन मारती है!' ठीक है, आपकी बात ऐसी हल्की नही कि मैं उसे फूँक मारकर उड़ा दूँ और फिर जब मै आपकी बातको सही मान ही रहा हूँ, तो मुझे जरूरत कि मै उसे उड़ाऊँ ? मेरी बातमें शिकायतकी धुन है, तानेकी तेजी है, पर क्या यह कोई बेमतलब है ?

मै पुरुष हूँ और मेरा विश्वास है कि पुरुषका अर्थ है शासक। मै शासन करनेके लिए पैदा ही हुआ हूँ। यह कोई दक़ियानूसी बात नही है। मेरे एक मित्रकी राय है कि पुरुषके शासक होनेकी सबसे प्रामाणिक साक्षी स्वयं स्त्री है। आप पढ़ी-अनपढ़ी, देहाती-शहरी, काली-गोरी, सौ स्त्रियाँ इकट्ठी कीजिये और बातचीतमें किसी पुरुषका नाम लेकर कहिये कि वह तो अपनी स्त्रीका ग़ुलाम है। कहनेके साथ ही आप उन स्त्रियोके चेहरे ग़ौरसे देखिये, आपको उस पुरुषके प्रति घृणा और हल्कापन सब चेहरों पर एक साथ झलकता दिखाई देगा। बात साफ़ है कि स्त्री ऊपरसे चाहे जो कहे, उसका हृदय मानता है कि पुरुष शासक है और उसका ग़ुलाम होना स्त्रीके यथार्थवादी हृदयको पसन्द नही हो सकता ?

फिर पुरुषका शासक होना बहस-से दूर एक ऐतिहासिक सचाई है। यह सचाई एक प्रश्न खड़ा करनेसे खुलेगी। आज जो घर गृहस्थी दुनियामें है, इसे किसने बनाया ? पुरुष जन्मसे ही निडर और बहादुर। जंगलमें जिधर वह निकल जाय आतंककी आँधी उठ खड़ी हो। पर्वतकी जिस कन्दराकी ओर वह झाँक ले, शेर और भालू अदबके साथ उसे खाली नजर आएँ। भला उसे क्या जरूरत कि झाड़ पत्तोंकी झोपड़ी वह बनाता फिरे ? प्रकृतिका वरदान हो या शाप, स्त्री जन्मसे ही कमजोर और उसकी सबसे बडी कमजोरी उसका माँ होना। बीहड़ जंगलमे कहाँ वह अपने बच्चेको जन्म दे, कहाँ उसका पालन-पोषण करे ? यों उसने बनाई झोपड़ी, पर

कमजोरीकी उन घडियोंमें खूँखार जानवरोंमे वह मानवको कैसे बचाए और कैसे ये दो पेट भरे ? स्यौने यह सब सोचा और मजबूर हो, रक्षा और भोजनकी व्यवस्थाका भार पुरुषको बुलाकर सौंप दिया। यों पुरुषने घरमें अपना पहला कदम ही शासक होकर रक्खा। अब यदि पुरुष उस झोपडीको अपनी प्रतिभा और परिश्रमसे बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क और स्टालिनग्रादका रूप देनेके बाद, समाजमें, घरमें शासक होकर रहना चाहता है, तो क्या यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार नहीं है ? आज नारी पुरुषके इस अधिकारका अपहरण करनेके लिए भी हाथों जुटी हुई है, तो क्या पत्नीके प्रति उसका मन शिकायतोंसे न भरकर सन्तोषसे भरेगा ?

ये शिकायतें अनेक है और अनेक होकर भी एक। आप पूछते है क्यो कुछ नहीं, बात एक दम साफ है कि पत्नीको आज पतिका शासक होना, प्रधान होना स्वीकार नहीं। बस यह अस्वीकार अनेक रूपोंमें प्रकट होता है, इसलिए यह शिकायत शिकायता-का रूप धारण कर लेती है।

जी, आपकी समझमें नहीं आती, यह बात, तो कुछ नमूने लीजिये—हरेक पत्नी अपने पतिको कुछ ऐसे मामले हैं, जिनमें अपने मुकाबले मूर्ख मानती है। भले ही पत्नीजी एक और एक दो न जानती हों और पति व्यापार-वाणिज्यका आचार्य हो, पत्नी का अखण्ड विश्वास है कि पति बाजारसे कोई भी चीज ठीक तरह नहीं खरीद लाता। दूकानदार इतना होशियार है कि वह उन्हें जरूर मूड लेगा और ये महाराज इतने भेड है कि हँसते-खेलते मुंडकर चले आयेंगे।

प्रोफेसर चन्दनका विवाह तब हो गया था जब वे गिल्ली-डंडा ही खेला करते थे। उनका भाग्य है कि वे पढ-लिखकर यूनिवर्सिटीमें प्रोफेसर हो गये, पर पत्नीजीके लिए तो शीघ्रको शिघ्र और परमात्माको प्रमात्मा बना-कर लिखी गई चिट्ठी ही हिन्दू विश्व-विद्यालयकी डाक्टरेट बनाकर रह गई। उस दिन दोनों बाजारमें सामान खरीदने गये। प्रोफेसर चन्दनने एक प्रामाणिक दूकानसे पारकर फाउण्टेन पेन खरीदा। दूकानदारने नियत मूल्यका कैशमेमो काट दिया, चन्दनने रुपये दे दिये। एक साथीकी पत्नीके लिए उन्होंने एक धोती खरीदी। दाम उसपर छपे थे, वही दूकानदारने मागे और उन्होंने दे दिये।

अब प्रोफेसरनी जीका भाषण आरभ हुआ। बोली—"क्यों जी, लडकोंको तुम क्या पढाते होगे खाक-पत्थर ?"

प्रोफेसरने कहा—"क्यों क्या बात है, आपको मेरी पढानेकी योग्यतामें क्यों सन्देह हो गया ?"

बोली—'सन्देहकी क्या बात है, ठीक पूछ रही हूँ कि लडकोंको तुम क्या पढाते होगे, वे ही तुम्हें पढा देते होंगे। पेनवालेने २१) रुपये मांगे, वे उसे दे दिये। धोतीवालेने ७ रुपये मांगे, वे उसे दे दिये। भला दुनियामें कोई दूकानदार पहली बार सच भी कही बोला है ?"

प्रोफेसर साहब मुस्कराए। वे कुछ कहनेको ही थे कि सब्जीवाले-

की दूकान आ गई। श्रीमतीजी उधर मुड़ी, तो बढ़ते-बढ़ते प्रोफेसर साहबसे बोली—"अच्छा आपकी होशियारी तो देख ली, अब आप चुप रहियेगा। कहीं झट बटुआ हिलाने लगो!"

"अरे, परवरका क्या भाव है?" श्रीमतीजीने कुंजड़ेसे पूछा, तो कुजड़ेने उन्हें टटोला—"आपसे क्या भाव-ताव बहूजी, कितने लोगी?" श्रीमती जीने उसे हतोत्साह करते हुए कहा—"मैं लूंगी ५ मन या एक छटॉक, तुझे मतलब, तू भाव बता!" कुजड़ा अपने गाहकको समझ गया और तव उसने नया पैतरा लिया—"जितने आपकी मरजी हो उतने लो बहूजी, यहाँ तो आजकल परवल है नहीं; आप जैसे लोगोके लिए ये थोड़ेसे फ़ैज़ाबादसे मँगाये है। बेचे तो है सवा रुपये सेर, पर आपको एक रुपये सेर दूंगा।"

श्रीमतीजीने परवलोंपर एक नज़र डाली और तव कहा—"फ़ैज़ाबादसे क्यों, लन्दनसे बता भाई। ६ आने सेरके दाम लगाये, तो एक सेर दे दे।"

कुंजड़ा सरककर वारह आनेपर आया, श्रीमतीजी सात आनेपर चढ़ी, तराजू उठाते-उठाते वह दस आनेपर उतरा और श्रीमतीजी आठ आने कहकर चल दी। दस क़दम जानेपर कुंजड़ेने उन्हे बुलाया और परवल तौल दिये। कुजड़ा खुश था कि ६ आने सेर बिक रहे परवल उसने ८ आनेमें भिड़ाए और श्रीमतीजी खुश थी कि एक रुपये सेरके परवल उन्होंने आठ आने सेरमें उचक लिए। बड़े ही गर्वसे उन्होंने प्रोफेसर साहबकी तरफ़ देखा। वे मुस्कराए, तो बोली—"हँसते क्या हो, तुम तो सुनते ही रुयया दे देते। देखा किस तरह मैंने आठ आने छुड़ाए।"

प्रोफेसर सब कुछ समझ रहा है कि उसकी फेफड़ा-फाड़ कमाईके दो आने लुट गये, पर कुछ कह नही पाता! क्या अजब मुसीवत है! हाँ जी, अजब मुसीबत है, पर क्या मुसीबतका यहीं अन्त है? रामका नाम लो, आज तो मुसीवतका ही दूसरा नाम पति-जीवन है।

वावू बलदेवदास कभी तो हाई स्कूलमें एक हेडमास्टर थे, पर आज-कल अपना ही एक छोटा-सा प्राईवेट स्कूल चला रहे हैं। यह काम कोई आसान नहीं। ६ घंटे पढ़ाना ही पसीने ला देता है, फिर स्कूलका प्रबन्ध। आज ये मास्टरजी रूठ गये, कल वे भाग गये। आज इस क्लास-मे लड़के कम, कल उसमे। इस महीने फरनीचर टूट गया, उस महीने मकान का किराया नही पहुँचा। बेचारे स्कूल जाते है घबराए हुए-से और वहाँसे लौटते है, तो थकान और परेशानीसे चकनाचूर!

तन और मनकी उस चकनाचूर थकानमें वे घर पहुँचते है और हाथ-मुँह धोकर थालीपर पूरी तरह बैठ भी नही पाते कि श्रीमतीजी आँखें तरेरकर पूछती हैं—"वे चावल तुमने आज भी नही भेजे, न गुड़ भिजवाया। तुम काहेके हेडमास्टर हो? १०० लड़के तुम्हारे मदर्सेमे पढ़ते है, जिसके कान ऐंठो, वही काम करे, पर काम तो तब हो, जब तुम्हे याद

रहे। तुमने तो समझ रखा है कि मेरे भीतर खूनके कुएँ भरे हैं। पिओ, खूब पिओ, जिस दिन मर जाऊँगी, भूल जाओगे मदरसा चलाना!"

"अच्छा कल भेज देंगे, घटा भर तो चैन ले लेने दिया करो!" ठण्डे स्वरमें हडमास्टर साहब कहते हैं, तो जवाब मिलता है—"हाँ हाँ, आपको चैन कहाँ, चैनके लड्डू तो मैं फोडती हूँ। जबसे इस घरमें आई, एक दिन मनभर खाया नही, पहना नही, हाड झोककर गुजारा किया, कोई और मेम साहब मिलती, तो पता चलता मास्टर साहब को!" श्रीमती-जीका चेहरा अब भर्रा उठा है और आँखोंमें आँसू हैं। बेचारे मास्टरजी खाना भीतरको धकेल रहे हैं और सोच रहे हैं कि स्कूलमें वह हाय हाय, यहाँ यह स्यापा, पर श्रीमतीजीको कौन समझाये कि यह तकाजा तो भोजन करनेके बाद भी किया जा सकता है।

"जी, आप क्या कह रहे हैं—सब स्त्रियाँ मास्टरनीजी जैसी तो नही होती?" ठीक है, मैं आपकी बात मानता हूँ, पर वे आपके पडोसमें ही रहते हैं, बाबू नन्दनराम। बेचारे कचहरीमें क्लर्क हैं। आदमी ऐसी नौकरीसे भीख माँगकर खा ले। ऐसा सख्त अफसर पाले पडा है कि गाली, धमकी और घुडकीके सिवाय कुछ जानता ही नही। दफ्तरका समय पार करना बेचारोंको बवाल हो जाता है, पर शामको घर आते हैं, तो कोट-का पहना बटन भी पूरी तरह ख नही पाते कि घनघोर चालसे श्रीमती आ पहुँचती हैं। अक्सर उनकी बात-चीतका नमूना यही होता है—

"क्यों जी, शाहज़ादेको तो भेज दिया बी० ए० पास करने और यह साँपन बहू बैठा दी है मेरी छाती पर कि रात-दिन मुझे फुफकारा करे। बापने पढ-लिखकर खजाने भर दिए, अब बेटा भरेगा। सौ दफे कहा यही दस रुपयेकी नौकरी इसकी भी लगा दो, पर चिकने घडे पर एक नही टिकती?"

"अरे भाई, बाहरसे आकर साँस तो ले लेने दिया करो।" बाबूजीकी इस प्रार्थनाका भी वैसा ही स्वागत होता है—'ओहो, दफ्तरमें तो बडी कुश्ती लड के आते हो न? कुरसी बैठनेको मिलती है, ऊपर पखा चलता है, दस आदमी बाबूजी बाबूजी करते हैं, फिर बाबूजीका साँस ही ठीक नही रहता'। इसके बाद धमधम पैर पीटती वे चली जाती हैं और जोर-जोरसे बोलकर बहू पर अपना गुबार उतारने लगती हैं। उन्हें कौन समझाए कि ये बातें दो घडी बाद भी की जा सकती हैं और शान्तिके साथ भी!

हाँ जी, ये बातें दो घडी बाद भी की जा सकती हैं और शान्तिके साथ भी, पर दो घडी रुकनेके लिए जिस विवेककी आवश्यकता होती है, वह बाबू नन्दनरामकी श्रीमतीजीमें कहाँ? और एक श्रीरामकी श्रीमतीका ही जिक्र? बाबू सुलेखचन्दको तो आप जानते हैं? हाँ, हाँ वे ही विद्यापीठके मैनेजर। ७५ रु० बेचारोंको वेतन मिलता है और पहली तारीखको लाते ही पूरेके पूरे रुपये वे श्रीमतीजीको

थमा देते हैं, पर बीस तारीखसे ही श्रीमतीजी ठुनकने लगती हैं—नन्दूके पास नेकर नहीं है, मंगलाको चुनड़ी मँगाकर देनी है। अब कोई पूछे इस भलीमानुससे कि "जब पतिने पूरी आय लाकर तुम्हें दे दी, तो हाथ थामकर काम करो। वह कम भी है, तो सुनानेसे फ़ायदा !"

"हूँ···क्या कहा आपने कि फिर सुलेखचन्द अपनी आय उन्हें देते ही क्यों हैं, स्वयं घरका खर्च चलायें ? आपकी बात ठीक है, पर आमदनी अपने हाथमें रक्खें तो घरमें सुलताना डाकू आ बैठता है।"

"सुलताना डाकू ? जी हाँ, सुलताना डाकू, बल्कि महासुलताना। रोज श्रीमतीजीकी उँगलियाँ चुपचाप जेबकी पैमाइश करती हैं और आज चवन्नी तो कल रुपया उडंचू होता रहता है।"

"अरे भाई, निकाल ही लेती हैं तो क्या कही पार्सल भेजती हैं, समय पर घर हीमें लगा देती हैं।"

"ठीक है आपकी बात, पर उस दिन आप तो थे प्रभात होटलमे, जब भाई इकरामकी दुर्गति हुई। उन्हें याद था, ५ रुपयेका नोट जेबमे है। दफ़्तरके दोस्तोंको चाय पिलाने ले गये। बिल आया, तो जेबमें नोट नदारद। पैसे दोस्तोंने दिये। बेचारे ऐसे झेंपे कि उठना मुश्किल हो गया। बताइए आप, यह भी कोई तरीक़ा है ?"

स्त्रियोंको सबसे अधिक जेवर प्रिय है, पर सन्देह और तेरमेर उससे भी अधिक प्रिय है। पति किसी दूसरी स्त्रीकी जरा भी प्रशंसा कर दे, तो घरमें भूकम्प आ जाता है और सीताजीके सम्बन्धमें भाषण देनेवाले धोबीके भी कान काट लिये जाते हैं, पर स्वयं श्रीमतीजी दुनियाभरके पतियोंकी अपने पतिके मुकाबलेमें जो तारीफ़ोंके नित नये पुल बाँधती रहती है, वह हाईकोर्टकी नज़ीर है। आपके भाषणोंसे ऐसा पता चलता है कि ब्रह्माजीके यहाँ जब गुण बटे, तो सिर्फ़ आपके ही पति सो रहे थे !

पुराने जमानेसे सुनते आये हैं कि अपने वर्गमें हरेककी मित्रता होती है, पर यहाँ उल्टी बात है। नई बहू घरमें आती है, तो पतिके भाग्य खुलते है, श्वशुरके जीवनमें स्वर्गका दृश्य दिखाई देता है, देवरोंके मनमें दीवाली जगमगा उठती है और जेठजी अपने भाग्योदयका सन्देश पाते हैं, पर सासका जीवन कड़वा हो जाता है, देवरानियाँ परेशान रहने लगती हैं, जेठानीजीको साक्षात् कलियुग दीखने लगता है और ननदोंको खुफिया पुलिसका महकमा सौंप दिया जाता है। जल्सोंमें पुरुषोंके विरुद्ध खूब नारे लगाये जाते है, पर सच यह है कि नारीका सबसे बड़ा शत्रु नारी है और आजका घर नरनारीके नही, नारी-नारीके युद्धसे संत्रस्त है।

"अरे साहब, आप तो अशिक्षित या अर्धशिक्षित स्त्रियोंके किस्से गा रहे हैं, आजकी शिक्षित स्त्री जीवनके बहुत ऊँचे वातावरणमे साँस लेती है।"

"जी, यह आपकी राय है और आप चाहते है कि इस एक ही निशानेमें मेरी शिकायतोंका क़िला ढह जाये, पर साहब, इस ऊँचे वातावरणपर पर्दा ही पड़ा रहने दीजिये, नही तो जाने कितने युवक अपनी पत्नियोंके प्रमाणपत्रोंकी होली करते नजर आयेंगे। आपकी तरह वे भी इन प्रमाणपत्रोंको स्वर्गका सुमन समझकर एक दिन उलझ गये थे। रहने दीजिए, यह शिकायतोंका एक नया अम्बार लगानेकी भूमिका है।"

मन की प्रतिछाया !

श्रीमती विद्यावती मिश्र

तू रो देता है कह देता सावन है,
तू हँस देता मधुऋतु का आगमन है,
तेरे ही अनुरूप प्रकृति का सारा क्रम है।
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है।

श्वेत-पत्र है नियति कर्म ही लिखता अक्षर,
मान भविष्यत्, किंतु भाव ही भरते हैं स्वर,
शांति एक तेरा ही तो सुखमय भ्रम है।
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है।

तेरे ही तो चरण स्वयं हैं पथ बनाते,
फिर उसको ही इष्ट समझ हैं बढ़ते जाते,
तू साधन है तू प्रतिफल है यही नियम है।
यह सारा सुख-दुख तेरे ही मन का भ्रम है।



गुरुवर्य पं० गोपालदास बरैया

श्री पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

गुरुवर्य पं० गोपालदासजी बरैयाका नाम सबसे प्रथम बचपनमें मैंने हस्तिनागपुरके कार्तिकी मेलेके अवसरपर सुना था। उस समय मैं आठ वर्षका था और अपने माता-पिताके साथ मेलेमें गया था। लोगोंमें चर्चा थी कि पं० गोपालदासजी बरैया शास्त्र बाँचते हैं, बिना शास्त्र देखे ही घंटों व्याख्यान करते हैं। यह सुनकर मेरा बाल मन सोचता 'क्या मैं भी कभी ऐसा शास्त्र बाँच सकूंगा'? उस समय बनारस जाकर पढ़नेकी कल्पना भी नहीं थी।

× × ×

शायद सन् १९१७ की घटना है। मैं काशीके श्री स्याद्वाद महाविद्यालयमे पढ़ता था। पं० उमरावसिहजी विद्यालयके धर्माध्यापक और सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। वे गुरु गोपालदासजीके अन्यतम शिष्य थे। इन्दौरके पं० बंशीधरजी, स्व० पं० देवकीनन्दनजी, पं० मक्खनलालजी मोरेना, पं० खूबचन्दजी, ये सब विद्वान् उनके सहपाठी गुरुभाई थे।

उन दिनों गुरुजी आगरेमे बहुत सख्त बीमार थे। उनकी बीमारीकी खबर पाकर पं० उमरावसिहजी भी गुरुजीके दर्शनार्थ गये। जब लौटकर वापिस आये तो हम लोगोंको उन्होंने अपनी एक धोती दिखलाई, जो जगह-जगह जली हुई थी। मैंने पूछा—'पं० जी यह क्या है? बोले—'गुर्वाणीका प्रसाद है'। मैंने पूछा—'वह कैसे'। तब उन्होंने सारी गाथा सुनाई कि गुरुजीकी बीमारीकी खबर सुनकर उनके शिष्य, भक्त, प्रेमी वग़ैरह गुरुजीको देखने आये। इसपर गुर्वाणी बहुत रुष्ट हुई और जलती लकड़ी लेकर मारने दौड़ीं। हम लोगोने द्वार बन्द कर लिये तो उन्होने किवाड़ोके बीच मेंसे जलती लकड़ी घुसाकर यह धोती जला दी।

इस घटनाके कुछ ही दिनों बाद गुरुजीका देहान्त हो गया और जैनसमाजका वह चन्द्रमा सदाके लिए अस्त हो गया जिसने जैन समाजपर छाई हुई अज्ञानरूपी रात्रिमें उदित होकर उसे प्रकाशित किया था। यद्यपि अपने पीछे वह कुछ तारोको छोड़ गया, जिन्हे उसने अपने प्रकाशसे आलोकित किया था किन्तु

'एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च
तारागणोऽपि च'

एक चन्द्रमा जो काम कर सकता

है ताराओंका समूह भी वह काम नहीं कर सकता।

× × ×

गुरुजी स्वावलम्बी और निर्भीक विद्वान् थे और इसलिए खरी बात कहनेमें सकुचाते नहीं थे। उनके जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना दस्सा बीसा काण्ड है। उसमें उन्होंने जिस निर्भीकता और साहसका परिचय दिया, वह एक विद्वान्के लिए गौरव और अभिमानकी वस्तु है। ऐसे सामूहिक प्रबल प्रतिरोधका सामना किसी विरले ही विद्वान्ने किया होगा। संक्षेपमें घटना इस प्रकार है—

देहलीके निकट, मेरठ जिलेके अन्तगत हस्तिनापुर नामक तीर्थस्थानमें प्रतिवर्ष कार्तिकीय अष्टाह्निकाके दिनोंमें बड़ा भारी मेला भरता है, जिसमें मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर आदि जिलोंकी जैन जनता एकत्र होती है। पहले कई स्थानोंके लोग अपने साथ मन्दिर और मूर्ति भी लाया करते थे।

सन् १९०९ में इस मेलेके अवसरपर मेरठसे आये हुए मन्दिर जीमें अग्रवाल जैनोंकी एक बृहत् पचायत हुई। प्रस्ताव उपस्थित हुआ कि सरधना और खतौलीके दस्सा अग्रवाल, जैन प्राचीन दस्तूर और धार्मिक रिवाजके विरुद्ध नई बात अर्थात् जिनेन्द्रमूर्तिकी प्रक्षाल पूजा करना चाहते हैं, यह कहाँ तक ठीक है? अग्रवाल बिरादरीकी आम पचायतमें यह निश्चित हुआ कि प्राचीन दस्तूर और रिवाजके विरुद्ध दस्सा जातिवाले नया दस्तूर नहीं चला सकते, यानी पूजा-प्रक्षाल नहीं कर सकते।

उक्त प्रस्ताव २६ नवम्बर १९०९ की रात्रिमें पास हुआ और ५ दिसम्बर १९०९ के दिन इस पचायती फैसलेके कारण खतौलीके जैनोंमें मारपीट हो गई। मामला फौजदारी कचहरी तक पहुँचा। अन्तमें लोगोंके समझानेसे १८ जनवरी १९१० को राजीनामा हो गया। इसके बाद ३ फरवरी १९१० को खतौलीके लाला माडेलालने सबजजी मेरठमें बीसा अग्रवाल जैनियोंके विरुद्ध नालिश कर दी।

माडेलालके बैरिस्टर अब्दुल्लाशाहने अर्जीमें लिखा कि खतौलीके जैन मन्दिर मुहल्ला कानूनगोयानमें माडेलाल दस्सा अग्रवाल जैनीको प्रक्षाल-पूजासे रोकनेका कोई अधिकार बीसा अग्रवाल जैनियोंको न था। सब जज और हाईकोर्ट जजने फैसला दिया कि हस्तिनापुरकी पचायतके सामने माण्डेलालने यह स्वीकार कर लिया था कि उसके पुरखोंने कभी पूजा नहीं की थी, किन्तु जैन शास्त्रोंमें इसका निषेध नहीं है और उसको पूजा-प्रक्षालकी आज्ञा मिलनी चाहिए। इस बयानके ऊपर माण्डेलालका दावा और उसकी अपील खर्च समेत खारिज कर दिये।

इस मुकदमेमें माण्डेलालकी तरफसे दस्सा पूजाधिकारका समर्थन स्व० प० गोपालदासजी और प० जुगलकिशोरजी मुख्तारने किया। तथा बीसापक्षकी ओरसे स्व० प० पन्नालालजी न्याय दिवाकर और स्व० हकीम कल्याणरायने कहा कि पतित

जातिके लिए पूजा अधिकारका निषेध है।

सब जजके सामने बैरिस्टर अब्दुल्लाशाहके प्रश्नपर पं० गोपालदासजीने जो जवाब दिया वह उर्दूमें लिखनेवालेने इस प्रकार लिखा—'कई हजार वर्ष पहले बमूजिब त्रिवर्णाचार जैन शास्त्रके सब लोग ज़िनाकार थे। उसके पीछे उन्हींकी औलादमें तीर्थङ्कर वग़ैरह पैदा हुए, जिनकी मूर्ति पूजी जाती है। जिस त्रिवर्णाचारका मैंने हवाला दिया है, जिनसेनका बनाया हुआ है।

इस बयानको छपवाकर वितरण किया और द्वेषाग्नि भड़क उठी। जगह-जगह पण्डितजीके बहिष्कारका आन्दोलन किया जाने लगा—उनके मुखसे शास्त्रश्रवण न करनेकी प्रेरणा की जाने लगी। इस विषयको लेकर अजमेरमें एक सभा हुई। इस सभामें पं० जीको बुलानेका भी प्रयत्न किया गया, परन्तु आवश्यक कार्यवश पंडितजी अजमेर नही जा सके और अपना एक वक्तव्य लिखकर अजमेर भेज दिया। वक्तव्यका आवश्यक भाग इस प्रकार है—

'दस्से बीसोंका मुक़दमा सदरआला साहब मेरठकी अदालतमें था। बीसोंकी तरफ़से पं० पन्नालालजी और दस्सोंकी तरफ़से मैं तलब कराया गया था। पं० पन्नालालजीने दस्सोंके पूजा अधिकार निषेध श्लोक पेश किये थे और इज़हारोंमें यह भी कहा था कि व्यभिचारियोंकी सन्तान प्रतिसन्तान अनन्तकाल बीतनेपर भी कभी पूजनकी अधिकारी नहीं हो सकती।'

मैंने इसके विपक्षमें यह कहा था कि "यह अशुद्धता हमेशा तक नहीं रहती, किन्तु थोड़े काल तक रहती है। यदि यह अशुद्धता हमेशा तक मानोगे तो इस अशुद्धताका प्रसंग तीर्थकरोंमें भी आवेगा। क्योंकि छट्ठे और छट्ठम छट्ठे कालमें राजा, धर्म, और अग्निका सर्वथा लोप हो जाता है और सर्वमनुष्य पशुवत् नग्न और व्यभिचारी हो जाते हैं। उत्सर्पिणीके द्वितीय काल दुषमामे २०००० वर्ष तक कुलाचारका प्रचार नहीं होता है। एक हज़ार वर्ष शेष रहने पर कुलकरोंकी उत्पत्ति होती है और कुलकरोंके उपदेशसे कुलाचारका प्रचार होता है। इसके बाद जिस कुलमें १००० वर्ष तक शुद्धता रहती है उसी कुलमें तीर्थङ्कर उत्पन्न होते हैं और फिर उनकी प्रतिमादि बनाकर पूजी जाती है।"

यह मेरा इज़हार अदालतमें लगभग एक घंटे तक विस्तारसे हुआ था, इसलिए अदालतमे उसका सारांश लिखा गया है। इस सारांशकी टीका हमारे सुयोग्य न्यायदिवाकरजीने लोगोंको यों समझाई है कि—"गोपालदासने महावीर स्वामी आदि तीर्थङ्करोंको व्यभिचारियोंकी सन्तान कहा है। सो गोपालदासने हमारे पूज्य तीर्थङ्करोंपर मिथ्या आरोप करके जैन मजहबकी तौहीन की है" इससे हमारे बहुतसे भोले भाई आपेसे बाहर हो गये हैं। मैंने जो ऊपर बयान लिखा है वह त्रिलोकसार ग्रन्थके आधारपर लिखा है, सो आपसे छिपा नही है। ······अन्तमे मेरी प्रार्थना है कि यह

धर्मका मामला है। कुलियामें गुड फोड़कर भोले भाइयोंको अन्धकूपमें डालना कदापि न्यायसंगत नहीं हो सकता। इसलिए इस विषयमें पं० पन्नालालजीका और मेरा लिखित शास्त्रार्थ हो जाय और दोनों तरफके शास्त्रार्थके पर्चे समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हो जायें जिससे कि सर्वसाधारण विवादस्थ विषयको अच्छी तरह समझ लें।"

इस तरह जहाँ एक ओर पण्डितजीके विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था, दूसरी ओर गुणग्राहक सज्जन उनका समादर भी करते थे। कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अटर्नी बा० धन्नूलालजी अग्रवालने अपनी पूज्य माताके स्वर्गवासके उपलक्ष्यमें एक स्मृति समारोह किया था। जैनियोंमें यह एक बिल्कुल नई बात थी।

इस स्मृति-समारोहमें बाबू धन्नूलालजीने पं० गोपालदासजी, बाबू अर्जुनलालजी सेठी, कुँवर दिग्विजय सिंहजी और पं० माणिकचन्दजी आदि विद्वानोंको बहुत आग्रह और सत्कारके साथ बुलवाया और कलकत्तेके प्रसिद्ध प्रसिद्ध जैनेतर विद्वानोंके समक्ष उनके जैनधर्म सम्बन्धी व्याख्यान कराये।

६ जून १९११ को जो सार्वजनिक सभा हुई, इसके सभापति महामहोपाध्याय डाक्टर सतीशचन्द्र विद्याभूषण बनाये गये थे। इस सभामें स्याद्वादवारिधि पं० गोपालदासजी का 'जैन सिद्धान्त' के विषयपर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ। इस व्याख्यानकी प्रशंसामें जस्टिस सर गुरुदासजी बनर्जीने कहा—"मैंने आज जो परम तत्त्व पण्डितजीके मुखसे सुने हैं, वे अत्यन्त गम्भीर और महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे सुपण्डित और सुवक्ताको धन्यवाद देना मेरे लिए आनन्दजनक है।" इसके पश्चात् महामहोपाध्याय पं० प्रमथनाथ तर्कभूषणने कहा—'हम स्या० वा०, वादिगज केसरी पं० गोपालदासजीकी वक्तृता सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। मैं सारे बंगदेशकी ओरसे पण्डितजीको धन्यवाद देकर कहता हूँ कि पण्डितजीने जैनमतके कठिन तत्त्वोंको बहुत ही सरलतासे समझाया है। पण्डितजीका तत्त्वज्ञान प्रगाढ है। आपकी अन्य धर्मोंकी खण्डनशैली बहुत सुन्दर और तर्कयुक्त है।' अन्तमें सभापतिजीने कहा—'मैं बड़ी प्रसन्नतासे कहता हूँ कि आज तक मुझे जैनधर्मका जानकार एक भी विद्वान् आप जैसा नहीं मिला। पण्डितजीकी तत्त्व, द्रव्य, स्याद्वादनय, कर्मफिलासफी आदिकी धाराप्रवाह वक्तृता अद्वितीय है। मेरा अनुरोध है कि पण्डितजीके व्याख्यानोंके लिए और भी सभाएँ की जायें।'

उक्त घटनाके कुछ दिनों बाद ही जैन गजटमें कलकत्तेके ही एक जैन महाशयने एक लेख प्रकाशित कराया। उसका निष्कर्ष यह था कि "जैनियोंमें जो अशान्ति फैल रही है, उसका प्रधान कारण पण्डितजीको दी हुई स्याद्वादवारिधि, वादिगजकेसरी आदि उपाधियाँ हैं। यह भी बड़ा अन्याय है कि लोग उनके नामके साथ प्रातःस्मरणीय पण्डितवर्य्य विद्वच्छिरोमणि आदि विशेषण जोड़ने लगे हैं, क्योंकि वे कहींकी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हैं। अष्टसहस्री श्लोकवार्तिकादि कोई ग्रन्थ उन्होंने पढ़े नहीं हैं। लोगोंने छोटी-छोटी सभाओंमें सिद्धसाधक बनकर उनके पीछे यह पुछल्ले जोड़ दिये हैं और इन पुछल्लोंका प्रयोजन दक्षिणके भोले सेठोंके समान उत्तरके पण्डित सेठोंको जालमें फँसाना है।"

अपनी ओर देखिये !

प्रो० रामचरण महेन्द्र, एम० ए०

मनुष्यको व्याकुल तथा वेचैन करने-वाली मनोवृत्ति अभावरूप नहीं, भावरूप है। उसकी भावनाएँ उत्तेजित होकर उसके अन्तर्मनमें विक्षोभ उत्पन्न करती है। भावकी उत्तेजित अवस्था प्रायः इस कारण होती है कि दूसरे क्यों किन्हीं वस्तुओंका उपयोग कर रहे हैं, जब कि वे वस्तुएँ उनके पास नहीं हैं। हम इसलिए दुःखी नही रहते कि हमारे पास अच्छा मकान, सुन्दर वस्त्र, आरामकी वस्तुएँ, क्यों नही है। जो बात हमे परेशान करती है और चैन नही लेने देती वह यह है कि दूसरोंके पास वे वस्तुएँ क्यों है ? वे क्यों दो मकानोके मालिक हैं, जब कि उनके पास एक ही है।

हमारे एक मित्र है, जिन पर लक्ष्मीकी दया है। घरका मकान भी है। अभी कुछ दिन पूर्व कुछ साधारण स्थितिके अध्यापकोंको ज़मीनें मिली; एक छोटी-सी सहकार-समिति वनी और पारस्परिक सहायतासे उन्होंने मकान वनानेकी सोची। इन्हें जमीन न मिल सकी। दुःखी रहे। "इन लोगोंसे अधिक जमीन मेरे पास रहे, अधिक अच्छा मकान बने; अधिक शानसे रहे'—यह भाव निरन्तर उनके मनको अशान्त बनाये रहा।

स्त्रियोंमें यह प्रवृत्ति विशेष रूपसे विकसित रहती है। किसीका नया आभूषण वना कि उनके मनमें ईर्ष्याकी अग्नि लगी। हमें भी वही आभूषण चाहिए; वही नये ढंगका वस्त्र चाहिए, इस नये कटका, नये-नये डिजाइनोंका कपड़ा चाहिए, अमुककी साड़ी वड़ी सजती है, हमारे पास भी वैसी होनी चाहिए।

ऐसी अनेक बातें निरन्तर उनके मनको अशान्त किये रहती हैं।

एक सज्जनकी पत्नीके यहाँ एक सुशिक्षित स्त्री मिलनेके लिए आई। हमारे मित्रकी पत्नी निरक्षर भट्टाचार्य थी। उनके पास कोई ऊँचा विषय बातें करनेके लिए नहीं था। घूम फिर कर वही दो-चार विषय—पास-पडोसकी आलोचना, पर-छिद्रान्वेषण, गहनो, कपडों, सौन्दर्य-विज्ञानपर बातचीत। बातो-बातोमें बोलीं—

धनसम्पन्न पत्नी—"आपके हाथ खाली हैं। चूडियाँ नही पहनतीं ? मेरी चूडियाँ देखिये। आठ तोलेकी आठ बनी हैं—डिजाइन नया है। सुन्दर लगती हैं न ?"

सुशिक्षित पत्नी—"आजकल चूडियोंका रिवाज नहीं है। यह देखिये मेरी घडी। एक सौ पैंतीस की है। मेरेडिना कम्पनीकी, टाइम ठीक देती है। न तेज न स्लो। देखिये कैसी सुन्दर है।"

धन-सम्पन्न पत्नीके मनमें बात बैठ गई। उसकी चूडियोंकी प्रशसा नही की गई थी। उसके "अह" को चोट लगी थी। उसकी सहेलीके पास घडी और वह बिना घडी। दूसरे ही दिन उससे भी अच्छी घडी उनके हाथमें थी। न उन्हें टाइम देखना आता था, न ठीकसे चाबी देना ही। वे फिर भी प्रसन्न थीं। उनका अह शान्त हो चुका था। भावनाए शान्त थी।

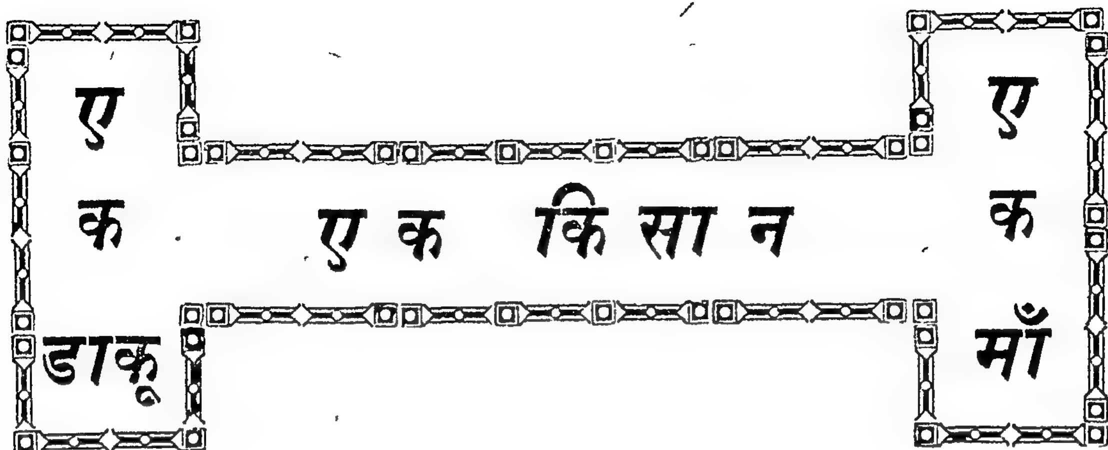
"दूसरेसे अच्छा रहूँ"—यह भाव मनुष्यकी अशान्ति, आन्तरिक दुख, क्लेश और ईर्ष्याका कारण है। इससे मन बेचैन रहता है। सब कुछ होते हुए भी मनुष्य अतृप्त रहता है।

ईर्ष्या एक छूतसे फैलनेवाले रोगके सदृश जल्दीसे विकसित होनेवाला मनोभाव है अभी आप शान्त गम्भीर और प्रसन्न हैं। दूसरेकी कोई भी उत्तम चीज देखी कि विखर पडे, मन मचल गया। लगे जलने।

स्मरण रखिये, आप चाहे सब कुछ पालें फिर भी किसी-न-किसी वस्तुका अभाव सदैव रहेगा। अभाव मनुष्य की भारी कमजोरी है। उत्तम व्यक्ति वही है जो कल्पनाके मायाजाल तथा ईर्ष्या जैसे मनोविकारके वशमें न होकर अपनी प्राप्त वस्तुओंका ही सबसे उत्तम उपयोग करता है।

स्वय काना बनकर दूसरोको अन्धा देखनेका उद्योग महा अनर्थकारी है। अपने साथ ईमानदारीसे काम लीजिए।





श्री रामनन्दन पाण्डेय, एम० काम०



प्रातःकाल मैं एक देहाती टमटम पर बैठकर काशी जानेके लिए आरा स्टेशनकी ओर चला जा रहा था। रास्तेमें सड़कपर कुछ आदमियोंकी भीड़में लाल मुरेठे वालोंके वीचसे शोर-गुल सुनाई पड़ा। नजदीक पहुँचा तो देखा, वहाँ एक नवयुवककी लाश खूनसे लथपथ और दो आदमियोंकी कमरमें रस्सा बँधा! पूछनेपर लोगोने कहा कि ये दोनों हत्यारे है, रातमे इस मरे नवयुवकके घरमे लूटने गये थे। इन सबोंने माल लूटा और भालोसे मार-मार इस नवयुवककी हत्या भी कर दी। दृश्य बहुत ही दर्दनाक था। मुझे गाड़ी पकड़नी थी; इसलिए मैं आगे बढा।

स्टेशनपर आया तो टिकट खरीदनेके लिए 'क्यू' में खड़ा होना पड़ा। टिकट-घरकी खिड़कीपर लिखा था "पाकेटमारोंसे होशियार।" अभी मैं टिकट ले ही रहा था, कि 'मारो-मारो' के शब्द सुनाई पड़े। मैं भी उधर दौड़ा। देखा, एक सज्जन अपना पाकेट दूसरे यात्रियोंको दिखाते हुए उत्तेजनाकी मुद्रामें कह रहे हैं—'इसमें एक मनिबेग था जिसे उस लड़केने इसे काटकर निकाल लिया और वह भागा जा रहा है।' पाकेटमार पकड़ा गया और भीड़ने उसके ऊपर लात-जूतोंकी वर्षा कर दी।

प्लेटफार्मपर पाकेटमारोंसे तो सतर्क रहना ही था, गाड़ीमें चढनेमे भी काफ़ी मोर्चा लेना पड़ा। खैर, किसी प्रकार धक्कमधुक्का कर गाडीमें बैठ गया। डब्बेकी भीड़में एक माता अपने बच्चेको गोदमें चिपकाये धक्का बर्दाश्त कर रही थी किन्तु किसी यात्रीको उसकी दशापर दया तक नही आयी।

खिड़कीसे बाहर दृष्टि गई तो देखा खेतोंमें किसान हल और कुदाल लिए शान्तिपूर्वक उत्पादन-कार्यमें

लगे हुए थे। भीतरकी भीडमें दम घुट रहा था।

किसी प्रकार बनारस कैण्ट स्टेशनपर उतरा। एक रिक्शापर बैठ विश्वविद्यालयकी ओर जा रहा था, इतनेमें भारतमाताके मन्दिरके पास चार-पाँच आदमी एक मधुमक्खीके छत्तेसे मधु निकालते दिखाई पड़े।

मुझे विश्वविद्यालयके छात्रा-छात्रालयमें ठहरना था। जब मैं स्थिर हुआ तो मेरी आँखोंके सामने न मालूम क्यों ये घटनाएँ बार-बार आने लगीं। ऐसा लगा मानो हमारे सामने ये घटनाएँ अलग अलग पाँच आर्थिक व्यवस्थाओंका प्रतिनिधित्व करनेके लिए ही आ उपस्थित हुई थीं। एक युवककी हत्या, धन लोलुपताके कारण की गई और इस प्रकार उसको सदाके लिए दुनियाकी सतहसे उठा दिया गया। ठीक इसी प्रकार सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु भी तो आचरण करते हैं। वे अपने पेटकी अग्नि बुझानेके लिए भेड़ आदि जैसे निरीह पशुओंका सदाके लिए अन्त कर देते हैं।

इस अन्तक आर्थिक प्रवृत्तिने हमारे समाजमें कैसे स्थान कर लिया, इसपर मैं कुछ देरतक सोचता रहा। मुझे लगा इस प्रवृत्तिके बाद ही तो पाकेटमार आता है और उसकी भी एक अपनी आर्थिक प्रवृत्ति है जो उससे दूसरोंकी थोडी-से-थोड़ी असावधानीसे लाभ उठानेको प्रेरित करती है। मैंने कृषकको खेतमें काम करते देखा था। वह अपने प्रयत्नोंसे नाज उत्पन्न करता है और उससे अपना जीवन निर्वाह करता है, अपने परिवारका पोषण भी। मधुमक्खियोंका दृश्य जहाँ एक ओर बहुत दयनीय मालूम हुआ वहाँ दूसरी ओर वे मानो मानवकी आँखें खोलनेके लिए यह उदाहरण रख रही थीं कि देखो, हम किस प्रकार मिलजुलकर रहती है, सामूहिक कल्याणके लिए कर्म करती हैं और अपना सचित धन जिसपर हममेंसे प्रत्येकका समान अधिकार होता है, हम दूसरोंको देती हैं।

गाडीकी उस भीडमें माँ अपने बच्चेको गोदमें चिपकाये परेशान खडी थी। ऐसा दिखता था वह सारी असुविधाओंको झेलकर बच्चेको सुखकी नींद सुलाना चाहती है। वह कौन-सी वस्तु थी जो माँके हृदयमें बच्चेके लिए इतना बडा त्याग उत्पन्न कर रही थी? मातृस्नेह—दूसरेके लिए ममता। इसके पीछे जो प्रवृत्ति है उसकी तहमें कितना त्याग और उत्सर्ग है। हत्या और ममतामें कितना अन्तर है। एक जहा अपने सुखके लिए दूसरेकी परमप्रिय जान तक ले लेती है वही दूसरी दूसरेकी सुख-कामनाओंसे अपने सुखोंका खुशी-खुशी बलिदान करती रहती है। दोनों जीवन-पथके दो छोरोंपर खडी हैं।

आधुनिक आर्थिक युगका एक अर्थशास्त्री इसपर एक आर्थिक दृष्टि डाले बिना नही रह सकता और वह अर्थशास्त्री गान्धी-विचारोंका पोषक श्री जे० सी० कुमारप्पा हो, तो कहेगा कि ये सारी बातें हमारी पाँच मौलिक आर्थिक प्रवृत्तियोंसे आ निकली थीं और वे प्रवृत्तियाँ होंगी—(क) अन्तक

या शोषण-परायण वृत्तिक (लालच-के कारण स्वार्थकी उत्पत्ति, हिंसक तृप्ति, शोषक-प्रवृत्ति) (ख) परभोज्य वृत्तिक (इच्छाके कारण स्वार्थकी उत्पत्ति, चोर प्रवृत्ति और हिंसक तृप्ति) (ग) प्रयत्न-विषयक (स्वार्थसे प्रेरित हो उत्पादन करना, न्यायसंगत, तथा उत्पादक प्रवृत्ति) (घ) सामूहिक-वृत्तिक (समूह-द्वारा प्रेरित, सामूहिक कार्यकी प्राथमिकता तथा सामूहिक प्रवृत्ति) (ङ) सेवा वृत्तिक (सहायतार्थ प्रेरित होना, निःस्वार्थ सेवा; अहिंसक उत्पादन, शासन और व्यवस्था)।

इन वृत्तियोंके पीछे जिनको हम आज आर्थिक प्रवृत्तियाँ कहकर पुकारते हैं जो तत्त्व काम कर रहे हैं वे पूर्वमें भी इसी प्रकार काम कर रहे थे। उन तत्त्वोंके तत्त्वदर्शी युगके अनुसार मनुष्यका ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। उन्होंने विश्वके प्राणियोंके जीवन-विकासको समझा था और वे इस नतीजे पर पहुँच सके थे कि किस प्रकार एक हत्यारे और गिरहकट से उठकर मानवी प्रकृति सार्वभौम सेवाके दायरेमे आ सकती है। उन्होने आध्यात्मिक प्रवृत्ति पर इसलिए वल दिया था कि मनुष्य जो विश्वके प्राणियोंमे अपनी अक़्लका सबसे अधिक उपयोग कर सकता है कहीं निरी आर्थिक प्रवृत्तियोंकी उलझनमें फँसकर न रह जाय।

सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्यकी इसीलिए आवश्यकता हुई। एक हत्यारा इनके द्वारा त्यागी, मानव-सेवी वन सकता है। महावीर, वुद्ध और ईसाकी शिक्षाओंने इन अर्थ-शास्त्रीय प्रवृत्तियोंको अपनी आँखोसे कभी ओझल नही होने दिया। अर्थ मानव नही है किन्तु मानवके साथ अर्थ लगा हुआ है और उसकी सार्थकता इसी वातमे है कि मानव उसका प्रयोग वहुजनहिताय वहुजनसुखाय कर सके।

भारत महायुद्धमे अर्जुनको गीता-का प्रवचन करनेवाले कृष्णके सामने भी यह प्रवृत्ति उस समय आ उपस्थित हुई जब पार्थ गाण्डीवको एक तरफ़ रख विषादमग्न हो गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमे समझाया कि किस प्रकार हमारी उन्मुखी आध्यात्मिक वृत्ति अर्थ की परम्परासे, जिसके पीछे भोग और ऐश्वर्यका अम्बार पड़ा है, निकलकर दैवी सम्पदाको पाती है।

भगवान् वुद्धके साथ अंगुलिमालका ज़िक्र आता है। उसका जीवन हत्याओं पर ही निर्भर करता था, वह उपर्युक्त प्रथम श्रेणीकी आर्थिक प्रवृत्ति-का प्रतीक है। उसने कोशलके एक अरण्यमे प्रवेश करते ही भगवान् वुद्ध-को ललकारकर कहा—"ठहरो!" वुद्ध ठहर गये और मुस्किराते हुए वोले, "मै तो ठहर गया, तुम कब ठहरोगे ?" वुद्धकी निष्काम लोक-भावना जो अन्तिम अर्थ-प्रवृत्ति मातृ-प्रवृत्तिके रूप-में उपस्थित थी; उस नर-राक्षसको वुद्धका शिष्य वनानेमे कारगर हुई।

आज हमारे सामने हमारा जीवन एक विशाल-काय प्रश्नवाचक चिह्नके रूपमे खड़ा है। इसके समाधानके लिए, यह भी ठीक है कि युग करवट वद-लनेकी तैयारी करता दीख पड़ रहा

हैं। सन्त विनोबा कहते हैं "जितने महायुद्ध होंगे, उतनी ही अहिंसा जल्दी आवेगी"। इस सन्तके इन शब्दोंसे यह साफ जाहिर होता है कि यह युग, जिसमें हम रह रहे हैं आज या कल अपना अस्तित्व खोनेवाला है और उसके बाद कुछ ऐसी स्थिति आनेवाली है जिसमें अहिंसा अधिक अंश-में बरती जा सकेगी। वह स्थिति चाहे महायुद्धकी राखसे पैदा हो या किसी और प्रकार। यदि महायुद्धोंके द्वारा महासंहार होनेके बाद अहिंसा आई तो उस अहिंसासे क्या विश्वको यह लाभ हो सकता है जो उपर्युक्त आर्थिक प्रवृत्तियोंको उन्मुखी करके और उन्हें सेवावृत्तिमें परिणत कर प्राप्त की हुई अहिंसा वृत्तिसे होगा ?

हम देखते हैं कि अर्थकी परम्परामें आज हममेंसे प्रत्येकके जीवनमें प्रथम दो अर्थ-प्रवृत्तियों यानी अन्तक या शोषण परायण वृत्तिक और परभोज्य वृत्तिरूपका ही हर पहलूसे प्राबल्य है और ये ही महायुद्धोंकी जननी हुआ करती हैं। ये स्वार्थ भावनाओंको विराट् रूप देती हैं। इन पर विजय पाकर ही अहिंसाका उदय किया जा सकता है। ये परिग्रहको खूंख्वार बना देती हैं, जिसके कारण मनुष्य, मनुष्यका शिकार करने लगता है और नैतिकता एक ओर कराहने लगती है। इसलिए हमारे सामने सबसे सरल और सीधा मार्ग एक ही है और वह यह है कि हम अपनी आर्थिक प्रवृत्तिको मातृ प्रवृत्तिके रूपमें बदल दें। इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिन मनुष्य इस आर्थिक युगमें अपनी अर्थनीतिको मातृवत्सला सेवा प्रवृत्तिको अर्पित कर देगा, उसी दिन हमारे घर अहिंसा आ जायेगी और वह सुख-शान्तिका बसेरा बन जायेगा।

कौन है वह ?

श्री अशान्त

मैं प्रतीक्षा कर रहा जिसकी न जाने कौन है वह ?

दृष्टि धुंधली, पथ छिपता जा रहा है।
किन्तु यह अनुमान—कोई आ रहा है !

मैं पुकारूँ, किन्तु मेरे पास आकर—
भी अभी तक किस लिए यों मौन है वह ?
मैं प्रतीक्षा कर रहा जिसकी न जाने कौन है वह ?

महाभारतके रत्न-भण्डारसे

उसे बहादुर माँ ने बचा लिया !

• • •

सिंधुराजसे पराजित होकर संजय लड़ाईका मैदान छोड़कर घर भाग आया और अकर्मण्य होकर पड़ रहा। उसकी यह दशा देखकर उसकी माता विदुलाको बड़ा ही क्लेश हुआ। विदुला अत्यन्त बुद्धिमत्ती, बहुश्रुत और राजनीति-कुशल नारी थी। अपने पुत्रका कायरपन देख उसका क्रोध भड़क उठा। उसके निकट जाकर वह बोली--

वाह, क्या कहना है बेटा, तेरी वीरताका ! लड़ाईका मैदान छोड़कर रनिवासमें स्त्रियोंकी तरह छिपकर तुमने कैसा नाम कमाया है ! अरे, कपूत ! आज तेरे शत्रु तेरी हँसी उड़ाते हैं और तुझे तनिक भी लज्जा नहीं आती ? क्या तुम मेरी ही कोख से जनमा है ? नहीं, हर्गिज नहीं। तू अपने पिताकी भी सन्तान नही है। कुलांगार, तू तो न जाने कहाँसे पैदा हुआ है।

शत्रुओके परिहासको सुनकर भी तुझे गुस्सा नही आता ? मर्द होकर भी तेरे कार्य नपुंसकों जैसे है। जीवित दशामें ही तूने आशाका परित्याग कर दिया है। दुनियामें तेरी कोई गिनती ही नहीं। तुझे धिक्कार है ! अरे मूर्ख, अपना कल्याण चाहता है तो इस अकर्मण्यताको छोड़कर पुरुषार्थकी सहायता ले।

कायर लड़के, जो मिल जाये उसीमें संतुष्ट होकर अपनी आत्माका अपमान मत कर। जीवनके कल्याणकी साधना कर। भय छोड़ और दुश्मन पर चोट कर।

लड़ाईके मैदानको छोड़कर कायरोंकी भाँति भागकर तू यहाँ आ बैठा है। तेरे शत्रु आज प्रसन्न हैं। तेरे भाई-बन्द लज्जासे मरे जाते हैं। संसारमें तेरा रत्ती भर भी मान नहीं रह गया है।

जैसे बरसाती नालेमें जरासे पानीसे बाढ़ आ जाती है, अन्नके दो-चार दानोंसे जैसे चूहेका खोबा (अंजलि) भर जाता है, उसी प्रकार कायर आलसी थोड़ेमें सन्तुष्ट हो जाता है।

पुरुषार्थहीन जीवन जीवन नहीं है, संजय ! उठ ! आगे बढ़ और शत्रुरूपी भयंकर सर्पके विषैले दाँत उखाड़ फेंक, इस प्रयत्नमें चाहे तुझे अपनी जान ही क्यों न देनी पड़े। प्राणोंका मोह छोड़ अपनी शक्तिको जाग्रत कर।

आकाशमें उड़नेवाले बाज पक्षीकी भाँति शत्रुओंके छिद्र ढूँढ और अवसर आते ही निःशंक होकर उन पर टूट पड़।

हाय संजय, तू तो मुर्दोकी भाँति निश्चेष्ट पड़ा है। ऐसा लगता है, जैसे तुझे वज्र मार गया हो। अरे कायर; उठ ! शत्रुसे मुँहकी खाकर निकम्मा मत पड़ा रह। अरे, इस तरह दीन बनकर संसारमें अपना

नाम मत डुबा। कम कर और यशस्वी बन। मध्यम और अधम पुरुषोंकी श्रेणीमें अपनी गिनती करा कर अपने को नीचे मत गिरा। ऊँचा उठ और श्रेष्ठ बन। एक पलके लिए ही सही, तेंदूकी सूखी लकडीकी भाँति भभक कर जल उठ। प्राणोंके मोहमें पडकर भुसकी आगकी तरह धुँआ मत। एक क्षणमें भस्म जलकर बुझ जाना कही अच्छा है। जिन्दगी भर गीली लकडीकी भाँति धुआँ देते रहना भी कोई जिन्दगी है?

हे भगवन, मैं प्रार्थना करती हूँ कि किसी मनस्विनी नारीके गर्भमें ऐसा कपूत मत पैदा करना।

धन्य है वे वीर, जो जीवन-संग्राम में शत्रुओंके समक्ष अपना महान् पराक्रम प्रकाशित करते है। वे अपने कर्तव्यका पालन कर धर्मके ऋणमे उऋण हो जाते हैं। वे किसी प्रकार अपनी आत्माको तुच्छ नही होने देते। ऐसे विवेकी जन फलकी चिन्ता तनिक भी नही करते। अपने प्राण होमकर भी वे दृढतासे अपने कर्तव्य-को करते है। सो संजय, या तो तू अपने दुर्दमनीय पराक्रमसे शत्रुओंको परास्त कर दे या फिर एक वीर पुरुषकी भाँति संग्राम-भूमिमें अपने प्राणोंकी बलि चढा दे, क्योंकि मेरे बेटे, कर्तव्यका पालन न करनेवालेका जीवन व्यर्थ है।

हाय संजय, तूने आज कापुरुषता दिखाकर अपने सब किये-करायेको चौपट कर दिया है। आज तूने अपनी कीर्तिको मिट्टीमें मिला दिया है। आज तेरी सुख-शान्ति नष्ट हो चुकी है। फिर मेरी समझमें नही आता कि तेरे जीवित रहनेसे क्या लाभ?

यदि युद्धमें पराजय होती है तो हो। यदि सम्मुख युद्धमें प्राण देना पडे तो दे। वीर पुरुष धैर्य नही खोते और अपने साथ अपने शत्रुको भी ले डूबते है।

मर्द संजय, इन घोडोंकी ओर देख। ये पशु होनेपर भी युद्धमें कैसा धैर्य और पराक्रम दिखाते है। तू तो फिर भी मनुष्य है। अपने स्वरूपको पहचान और अपनी ताकतके जौहर दिखा। अपने इस कायरपनसे केवल तू ही कलंकित नही हुआ है, सारे वंशको ही तूने डुबाया है। याद रख संजय, दुनियामें जिस आदमीके कार्यों का विस्मय और प्रसन्नताके साथ वर्णन न किया जाये, मेरी समझमें वह न तो पुरुष है और न स्त्री। वह केवल मनुष्य-जातिकी संख्या बढाने-वाला अधम प्राणी है।

इस संसारमें जिसने दानके द्वारा अपने यशका विस्तार नहीं किया, जिसने तपका आचरण कर कीर्ति नही प्राप्त की, सत्यके प्रति अपनी निष्ठा दिखाकर जो प्रकाशित नहीं हुआ, जिसने विद्याके द्वारा ख्याति नहीं पाई और जिसने अपने बाहुबलसे विजयश्री का अर्जन नही किया, मै उसे मनुष्य नहीं कहती, संजय। वह तो केवल हाड-मासका पुतला है।

जो अपने अध्ययन, अपनी तपस्या, अपने ऐश्वर्य और अपने पराक्रमसे द्वारा साधारणजनोंसे ऊँचा उठ सका, वही मेरी दृष्टिमें पुरुष है।

और तुम अपनी ओर देखो,

संजय ! तुम्हारा यह कैसा आचरण है ? आज तुमने ठगों और निठल्ले मुडियोंकी वृत्ति अपनाई है। याद रक्खो, यह भिक्षा-वृत्ति, यह परावलम्बी जीवन अत्यन्त घृणित और अपकीर्तिकर है। उसको स्वीकार करनेवाला नीच और कापुरुष है ।

सारा संसार जिसे घृणाकी दृष्टि-से देखता है, जो शक्तिहीन और अकिंचन है, जो प्राण धारणके लिए दूसरोंका मुँह जोहता है, उसका कैसा दुखी जीवन है ? ऐसा आदमी स्वयं और उसके भाईबन्द घड़ी भरको भी शान्ति नही पाते ।

संजय, आज तू अपने गौरवसे भ्रष्ट हो चुका है। तेरा राज्य शत्रुके हाथोमें है। क्षणभर भी चैनसे बैठने-के लिए तेरे पास स्थान नही है। फिर भी तू आलसी और कायरोंकी भाँति निठल्ला पड़ा है। क्या तेरी यही इच्छा है कि तू और तेरे संगी-साथी प्राणोंको बचानेके लिए अपने राज्यसे, अपनी जन्मभूमिसे, भाग जायँ और दरदर ठोकरे खाते और भिक्षा माँगते भिखारियोंकी भाँति प्राण त्यागे?

अरे संजय, सज्जनोंके सामने निन्दित आचरण करते तुझे लज्जा भी भी नही आई ? तूने कुलको कलंकित किया। तूने समूचे वंशका नाश किया। हाय-हाय, तुझ जैसे पुत्रके रूपमें साक्षात् कलियुग मेरे गर्भसे जन्मा है ! हे भगवन्, आगे किसी भी नारीको ऐसा निकम्मा, डरपोक और दुर्बल पुत्र पैदा करके लोक-समाजके आगे लज्जित न होना पड़े, यही मेरी विनती है ।

अरे संजय, यों धुँधुँआ मत । एक घड़ीके लिए—अरे, एक पलके लिए–बारूदकी तरह भभक उठ। टूट पड़ शत्रुओंपर और उखाड़ फेंक जड़से उन्हें ।

सच्चे मर्दकी पहचान तो यही है कि वह दूसरोके गर्वोद्धत मस्तकको एक पलके लिए भी नहीं सह पाता। वह आततायियोंको तनिक भी क्षमा नही कर सकता और वास्तवमे पुरुष केवल इसीलिए पुरुष है, नही तो बलवानोंकी ठोकरें खानेवाला दुर्बल पुरुष न तो पुरुष ही है, न स्त्री ।

याद रख संजय, जो आदमी जरा-सा टुकड़ा पाकर सन्तुष्ट हो जाता है, जो बात-बातमें हृदयकी दुर्बलता दिखाता है, जो निकम्मा जीवन बिताता है, वह किसी भी महान् कार्यके योग्य नहीं होता। इसलिए मेरे बेटे, इस दुर्बलताको छोड़। अपने हृदयको लोहे जैसा मजबूत बना और अपने अधिकारको पानेके लिए उद्यत हो जा ।

सुन संजय, चूँकि पुरुष पर (शत्रु) को सह नही सकता, इसीलिए वह पुरुष कहा जाता है और जो स्त्रियों-की भाँति अन्तःपुरमें ही अज्ञात भाव-से जीवन बिता दे, उसे किसलिए मर्द कहा जाये ।

जो शूर है, जिनके हृदय ऊर्ज्वसित है, जो शेरकी भाँति शानके साथ जीवनके मार्गपर पैर बढ़ाते है, ऐसे शासकके राज्यमें जनता अपनेको धन्य समझती है ।

जो अपने क्षुद्र स्वार्थोंकी बलि देकर राष्ट्रकी समृद्धिके लिए अपने

जीवनको अर्पित कर देना है, वही शासक अपने बन्धु-बान्धवों और प्रजाको आनन्दित करता है।

इस प्रकार माताके वचन सुनकर सजयको दुःख हुआ। उसने कहा—

"माँ, तुम कैसी जननी हो! तुम्हें सम्पत्ति और अधिकारकी चिन्ता मेरे प्राणोंसे भी अधिक है। आखिर जब मैं ही न रहूँगा, तो उस अधिकार का क्या होगा और समस्त पृथ्वीका राज्य किस काम आयेगा? क्या होगा भोग और सुखकी सामग्रियों का?"

ऐसा सुन विदुला बोली—

"तुम उलटा समझे हो सजय, कोई माता कितनी ही कठोर क्यों न हो, सन्तानकी अहित कामना वह कभी भी नहीं कर सकती। मैं तो यह चाहती हूँ कि तुम्हें पराजित और भयभीत देखकर जो शत्रु आज मूछों पर ताव दे रहे हैं, वे एक एक टुकडे-के लिए दर-दरकी भीख माँगें। सजय, याद रख, जब तक तू अपने शत्रुओंको परास्त नहीं कर देता तब तक तू और तेरे बन्धु आत्म-गौरवका अनुभव नहीं कर सकते। यह मत समझ कि तेरा कोई सहायक नहीं है। मत समझ कि तू दूसरेके दिए हुए टुकडे खानेके लिए ही सिरजा गया है। छोड दे यह दैन्य, साहसी बन।"

सजय, जैसे वर्षाका आश्रय लेकर चराचर प्राणी जीते हैं, जैसे इन्द्रके द्वारा देवगण सुरक्षित रहते हैं, उसी प्रकार तू भी पराक्रम दिखाकर अपने मित्रों और सत्पुरुषोंको अपने बाहुबल से निर्भय कर, क्योंकि पके फलोंवाले वृक्षके आश्रयमें रहनेवाले पक्षीकी भाँति जिस वीरकी बाहुओंके नीचे प्रजा निश्चित सुखसे रहती है, वास्तवमें उसी वीर पुरुषका जीवन सार्थक है।

यह निश्चय जान ले सजय, कि इस संसारमें जो केवल अपनी भुजाओंके बलपर ही भरोसा रखते हैं, वे मर्त्यलोकमें कीर्ति और सुख तथा परलोकमें शुभ गति पाते हैं।

सजय, क्या तुम ऐसे विषम सकट के समयमें आलसी और निकम्मे बनकर उन लोगोंमें अपनी गणना कराना चाहते हो, जिन्हें दुनिया अत्यन्त अधम और घृणास्पद समझती है? याद रक्खो सजय, यदि अपने प्राणोंके मोह में पडकर क्षत्रिय होकर भी क्षत्रियोचित तेज और पराक्रमको तुम प्रकट नहीं करते तो तुम चोर हो।

। हाय! मरनेवाले पर जैसे दवा का असर नहीं होता, उसी तरह मेरी तीखी बातें भी तुम्हारे लिए व्यर्थ हैं। अरे मूर्ख! क्या तू अपने शत्रुओं को अजर-अमर समझता है? नहीं, नहीं सजय, ऐसा मत समझ। तेरी विजय होगी। शत्रुको हराकर अपने नामको सार्थक कर। सिद्ध कर कि तू वीरप्रसविनी माताका पुत्र है। नहीं तो तेरा जीवन व्यर्थ है।

यदि इस युद्धमें तेरा सर्वस्व भी नष्ट हो जाय तो उसकी चिन्ता मत कर। मैदानमें आकर पैर पीछे रखने की गुजाइश कहाँ? याद रक्खो, पराजित होनेपर तुम्हारी वह दशा होगी जिसे मुनीश्वरोंने अत्यन्त हेय बताया है। दरिद्र आदमीका जीना

भी क्या कोई जीना है ? आज घरमें अन्न नही है, कल क्या होगा, ऐसी चिन्ता करते हुए जीनेसे मरना लाख गुना अच्छा। इस दुःखके समक्ष तो अपनी आँखोके आगे पति-पुत्रकी मृत्यु के देखनेका दुःख भी तुच्छ है।

संजय, मैं तेरी माता हूँ। अपने उत्तम कुल और ऐश्वर्यके कारण मैं सदैव सबके आदरकी पात्री रही हूँ। हाय, आज तेरे कारण सारी दुनिया मेरी और मेरे कुलकी वधू तेरी पत्नी की दुर्दशा होते देखेगी। तब क्या तुझे तनिक भी लाज नही आयगी ? तब भी क्या तू इसी तरह अपने प्राणोंका मोह करता रहेगा ? तुम्हारे दास-दासियाँ, तुम्हारे आचार्य्य जीविकाके अभावमें तुम्हारा साथ छोड़कर चले जायँगे ? तब भी क्या तू जीना चाहेगा ? हाय, उस दशामें जब कोई याचक मेरे सामने हाथ फैलायगा तो 'नहीं' कहते मेरा जी टुकड़े-टुकड़े न न हो जायगा ? आज तक मैंने और मेरे स्वामीने किसी याचकके समक्ष 'नही' नही कहा। संजय, यदि तेरे कारण मेरी ऐसी दशा हुई तो मैं एक क्षण भी जीवित न रह सकूँगी।

पुत्र संजय, जरा सोच तो आज अपने कुलकी, अपने वीर पूर्वजों की। सभीकी मान-प्रतिष्ठाकी रक्षाका भार तेरे ऊपर है। इस महान् कर्तव्यके लिए यदि तुम्हे बड़े-से-बड़ा भी त्याग करना पड़े, घोरसे घोर कष्ट भी सहने पड़ें, तो कोई बात नही। एक बार प्राणोंका मोह छोड़ और युद्ध-क्षेत्रमें निर्भय होकर उतर। बस समझ ले कि उसी क्षण तेरे शत्रु नष्ट हो जायँगे। इस अधम नपुंसक जीवनसे तो मर जाना ही अच्छा है।

पुत्र संजय ! यह मत समझ कि तुम्हारे शत्रु संख्यामे, बलमे, साधनमें, तुमसे अधिक है, इसलिए तुम उनका कुछ भी नही बिगाड़ सकते। नही, ऐसा नही है ! देखो कि तुम्हारा प्रधान शत्रु कौन है। साहसके साथ उसका काम तमाम कर दो। बाकी लोग तो स्वयं ही पके हुए धानकी तरह तुम्हारे पैरों तले झुक जायँगे।

एक भी महान् शत्रुपर विजय प्राप्त कर लेना एक बहुत बड़ी सफलता है। अकेले आसुरको मारकर इन्द्र समस्त देशोंमें कीतिमान हुए हैं। तुम्हारी दुर्बलता ही शत्रुका उत्साह बढ़ाती है। इसीलिए युद्ध-क्षेत्रमे कमजोरी दिखानेका बिलकुल अवसर नही है। आगे बढ़ो। साहसके साथ राज्य क्या, प्राणोंकी भी बाजी लगा दो, तो तुम्हारे शत्रुका विनाश निश्चित है।

अच्छी तरह जान लो संजय, स्वर्ग-द्वार बिना पौरुषके नही खुलता है। अमरता प्राणोके बलिदानके बिना नही पाई जाती है। इसलिए उठो और शत्रुओंपर जलते अंगारोंकी तरह बरस पड़ो। संजय, तू राजा है। तू क्षत्रिय है। शत्रुओंका मुकाबला करके अपने कर्तव्यका पालन कर।

बेटा, आज मैं तुझे कैसा कातर, कैसा दीन देख रही हूँ। हमारे बंधु-बांधव आज शोकातुर हैं। शत्रु मूँछों पर ताव देते हैं और तू अकर्मण्य पड़ा है। हाय भगवन्, यह दृश्य

देखनेके पहिले ही मेरी आँखें मिच जाती तो अच्छा था!

ऐसे उच्च कुलमें तूने जन्म लिया है और उच्च शिक्षा तुझे मिली है। उत्तम गुण, तरुण देह और निर्मल कीर्ति तूने पाई है। फिर भी तू आज बैलकी भाँति दूसरेका गुलाम बननेको तैयार है! क्या इस बातसे तेरा हृदय फट नहीं जाता?

हाय, जब मैं अपनी कोखसे जाये हुए पुत्रको दूसरेकी दासता करते हुए देखूंगी, तो मेरा हृदय कैसे धीरज धर सकेगा? आज तक इस वंशमें दूसरेकी गुलामी करनेवाली सन्तान नहीं पैदा हुई। सजय, तू क्षत्रिय है। तेरा हृदय कैसे इस अपमानको सहन करेगा?

"पवित्र क्षत्रिय कुलमें जन्म लेकर और अपने कर्तव्यको भली भाँति जानकर तू पामर जनकी भाँति अपने शत्रुके चरणोंमें झुकता है? नहीं, ऐसा मत कर। कोई भी मनस्वी पुरुष ऐसी नीच दशामें अपनेको नहीं रख सकता। इससे तो मौत लाख गुणी अच्छी। मस्त हाथियों जैसे बलशाली वीर पुरुषोंके मस्तक केवल विद्वानों और गुरुजनोंके सामने ही झुकते हैं। इसके अतिरिक्त सारी दुनियाको ये अपने वशीभूत करके छोड़ते हैं, भले ही उन्हें कोई सहायता न मिले। भले ही अपने प्राण क्यों न त्यागने पड़ें, वे कर्तव्य विमुख नहीं होते।"

सजयने कहा—

"माँ, तुम बड़ी कलहप्रिय हो। हमेशा तुम्हें लड़ाई-झगड़ेकी ही बात सूझती है। तुम्हारा दिल पत्थरका है। वह लोहेकी भाँति कठोर है। तुम इस तरह बातें करती हो, जैसे मेरा जन्म तुम्हारी कोखमें नहीं हुआ। तुम कभी मेरी जननी नहीं हो, जो मुझे इस तरह लड़ाईमें झोंक देना चाहती हो? अगर मैं मर गया, तो इस राज्यको लेकर तुम क्या करोगी?"

"नहीं नहीं पुत्र, तुम भूलते हो। मैं तुम्हारी जननी हूँ। मेरी कोखसे ही तुमने जन्म लिया है। मेरा तुमपर वैसा ही स्नेह है, जैसा संसारकी सब माताएं अपनी सतानपर करती है, पर बेटा, तू सोच तो! मेरा स्नेह यदि तेरे कर्तव्य पालनमें बाधक बने, यदि वह तुम्हें यशकीतिकर कार्यसे विमुख न कर सके, तो उस स्नेहको धिक्कार है। व्यर्थ है ऐसा स्नेह, जो पौरुषके प्रकट करनेके अवसर आनेपर अपनी सन्तान को कर्तव्य पथसे मोड़ दे! जो सन्तान कर्तव्य-विमुख होती है, वह केवल अपना ही अहित नहीं करती, अपितु माताके दूधको भी लजाती है। इस-लिए मेरे बेटे, इस मूर्खताको छोड़। बुद्धिमान् मनस्वी पुरुषोंके मार्गपर चल। तभी तेरे प्रति मेरे स्नेहकी सार्थकता है। कर्तव्य भ्रष्ट, संसार द्वारा निन्दित कार्य करनेवाले, तुम कभी मेरे स्नेहके पात्र नहीं हो सकते। सदाचारी और कर्तव्यनिष्ठ सन्तानके प्रति प्रेम ही सच्चा प्रेम है। इसलिए तू मेरे प्रेमको पानेके योग्य बन।

सजय, याद रख, इस तरहके अधम कार्य करनेवाले लोग न तो इस लोकमें शान्ति पाते हैं, न परलोकमें। तू निश्चय जान ले कि वीर पुरुषोंका

जन्म संसारमें संघर्षके लिए ही हुआ है। वह या तो विजय पाता है, या वीर गति। दोनों भाँति उसका कल्याण है। अपने शत्रुओंपर विजय पानेमें जो सुख है, उसके सामने स्वर्गका सुख तुच्छ है। और संजय, पराजयकी जो आग वीर पुरुषोंके हृदयमें जलती है, उसकी शान्तिके दो ही उपाय हैं। या तो शत्रुओंका समूल नाश या छातीपर घाव खाकर रण-क्षेत्रमें बहादुरकी मौत। तीसरा उपाय इस आगको बुझानेका नहीं है। बुद्धिमान् कभी क्षुद्र वस्तुको अपना लक्ष्य नहीं बनाते। थोड़ेसे संतुष्ट होनेवाले लोग जीवन भर 'हाय-हाय' करते रहते है। क्षुद्र वस्तु कभी कल्याणकारी नही होती।

संजय बोला—

"माँ, मै शत्रुसे पराजयकी असह्य चोट खाकर यहाँ लौटा हूँ और तुम घाव पर नमक छिड़कती हो। चाहिये तो इस समय तुम्हे यह था कि चुप रहकर शान्त भावसे तुम मुझपर करुणा और सहानुभूति दिखाती। पर तुम उलटे…।"

बिदुलाने कहा—ठीक कहते हो संजय। प्रत्येक माता अपनी सन्तानको दुःखमें धीरज और सहानुभूति देती है, लेकिन क्या तुम मेरे इन कठोर और रुक्ष वचनोके पीछे छिपी हुई करुणा और सहानुभूतिको नही अनुभव करते? इस समय मैंने माता होकर तुम्हारी—अपनी सन्तानकी—भर्त्सना की है, पर समय आयेगा—तुम अपने विपक्षियोंको युद्धमे पछाड़कर लौटोगे—तो मै तुम्हारी प्रशसा करते नहीं अघाऊँगी। आह! तुम्हारी विजय मैं कल्पनाकी आँखोंसे देखती हूँ तो कितना हर्ष और सन्तोष मिलता है!

सुनकर सजय कुछ स्वस्थ हुआ और बोला—माँ, आज न तो मेरे पास धन है, न सेना और न कोई सहायक फिर मै कैसे विजयकी आशा करूँ? पराजयके दारुण अपमानको मै अनुभव नही करता, यह मत समझो, लेकिन असहाय मै करूँ तो क्या करूँ? मेरे इहलोक और परलोक दोनों नष्ट हुए। अब मुझे कुछ भी नही सूझता।

विदुला बोली—वत्स, संजय अभी से मन छोटा करके तुम अपनी आत्मा का अपमान मत करो। सहायता और साधनोंकी चिन्ता क्या? वे आज नही है, कल हो भी सकते है और आज है तो कल नष्ट भी हो सकते है? समझदारीसे काम करनेवालेको साधन जुटा लेना कुछ भी कठिनाई नही। तुम कहोगे कि ज़्यादातर लोग प्रयत्न करने पर भी असफल होते है, लेकिन याद रक्खो कि वे लोग मूर्ख है और केवल आवेशके वश होकर ही बिना विचारे किसी कार्यको कर डालते है। फिर सफलता उन्हे कैसे मिले? वैसे तो किसी भी प्रयत्नका फल निश्चित नही है। जानकार भी जो ठीक तौर से प्रयत्न करता है, उसका उद्योग सफल भी हो सकता है और विफल भी, पर जो हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहे तो उसकी विफलता तो निश्चित ही है और विना विचार और दृढ़ निश्चयके काम करनेवालोंकी भी वही दशा समझो। इसलिए संजय, यह कार्य होकर ही रहेगा, यह दृढ़

निश्चय करो। मनकी कमजोरियोंको दूर करो। प्रमाद छोडो, उठो और शुभ कर्मोंमे प्रवृत्त होओ।

संजय, तुममें क्षमता है। तुममें योग्यता है, इसीसे तुमसे मैंने इतना कहा है? निश्शंक बनो। तुम सब कर सकोगे। एक बार तुम उद्योग प्रारम्भ तो करो। तुम्हारे सहायक अपने आप जुट जायँगे। क्या तुम्हारे शत्रुके कोई शत्रु नहीं हैं? हैं, अवश्य हैं। कितने ही हैं, जो उसके ऊपर क्रोधसे भरे बैठे हैं। कितने ही हैं, जिनका उसने अपमान किया है और कितने ही ऐसे स्वाभिमानी हैं, जो उस अहंकारीके गर्वको चूर्ण करनेके लिए उससे लडाईके मैदानमें निपटना चाहते हैं। उनका अपने झण्डेके नीचे आह्वान करो। उनको आशा और विश्वास दिलाओ। मीठे वचन बोलो। वे सब तुम्हें अपना नेता बनायँगे। इस प्रकार समर्थ बन, प्राणकी ममता छोड, जब तुम शत्रुपर आक्रमण करोगे तो वह उसी प्रकार तुमसे डरेगा जैसे बिलमें बैठे सर्पसे दुनिया डरती है। उस समय यदि शत्रु डरकर तुमसे संधि भी करना चाहेगा तो उसे तुम्हारे वशमें होना ही पडेगा।

संजय, तुम कहोगे कि ये सब हवाई बातें हैं। इनमें सचाई कुछ नहीं है, परन्तु नहीं, मैं खूब सोच-विचार कर ही ऐसा कह रही हूँ। इसमें पहली शर्त है तुम्हारी निर्भयता। यदि तुमने डरकर पैर पीछे हटाया तो फिर क्या आशा? उस दशामें तुम्हारे सहायक या तो भाग खडे होंगे या शत्रुसे मिल जायँगे। डरनेवालेका कोई भी साथ नहीं देता। विरले होते हैं ऐसे सहायक, जो अपने नेताको विपत्तिमें देखकर भी उसका साथ दे सकें। सो तुम अपना धैर्य खोकर उनको भयभीत न होने देना। तभी तुम्हें सफलता मिलेगी।

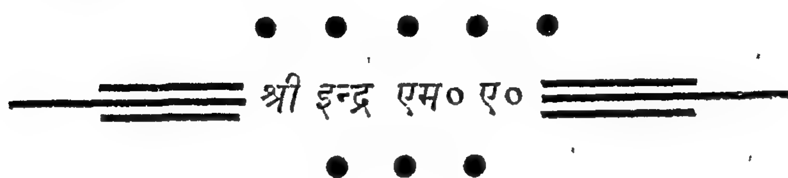
बेटा संजय, बस मुझे तुमसे इतना ही कहना था। मैंने बहुत कडवी और कठोर बातें तुमसे कही हैं। इसका विचार मत करना। ये सब तुम्हारे पराक्रम और बुद्धिको जाग्रत करनेके लिए ही मैंने कही हैं। यदि इनमें कुछ भी सचाई तुम्हें दीखे तो दृढ निश्चयके साथ उद्योग करनेके लिए तैयार हो जाओ।

विदुलाके इन वचनोंसे राखमें दबी हुई चिनगारी हवा लगते ही जैसे चमक उठती है, उसी भांति मनस्वी संजयके मनका पौरुष जाग उठा। उसका हृदय स्वस्थ हो गया। वह अपने मनमें निश्चय करता हुआ बोला—माँ, मैं भली-भाँति समझ गया! अब मुझे कोई डर नहीं है। जब भूत और भविष्यको प्रत्यक्ष देखनेवाली तुम मेरी पथ-प्रदर्शिका हो तो मुझे कैसा भय? अब या तो मैं अपने अधिकारोंका उद्धार करूँगा या फिर युद्धमें प्राण दे दूँगा।

माँ मुझे क्षमा करो! मैंने बीच-बीचमें तुम्हारी बातोंका प्रतिवाद किया है, किन्तु केवल इसलिए कि मैं तुम्हारे श्रीमुखसे कुछ और सुनना चाहता था। उत्साह और शक्ति देनेवाले तुम्हारे वचन सुनकर उसी प्रकार तृप्ति नहीं होती, जिस प्रकार अमृत पीकर।

माता, अब मैं तुम्हारी आज्ञाका पूर्ण रूपसे पालन करनेके लिए उद्यत हूँ। लो, मैं यह चला, शत्रुओंका समूल नाश करके और विजय प्राप्त करके ही अब इन श्रीचरणोंमें प्रणाम करूँगा।

सांस्कृतिक प्रगतिका प्रथम दिन



श्री इन्द्र एम० ए०

संसारमें प्रत्येक व्यक्ति अपनेको सच्चा मानता है। वह इस बातकी घोषणा करता है कि सत्यको स्वीकार करनेमें उसे किसी प्रकारकी हिचकिचाहट नही होगी, किन्तु यदि वह वास्तवमें ऐसा ही हो तो दुनियाके झगड़े मिट जायँ। व्यक्ति जिन बातोको तर्कसंगत और न्याय्य कहकर घोषित करता है, उनके पीछे उसके जातीय अभिमान, स्वार्थ, मिथ्या अभिनिवेश, जमे हुए संस्कार, बाह्य प्रभाव तथा अन्य बहुतसे तथ्य काम करते रहते हैं। वह सत्यको उन्हींका चश्मा लगाकर देखना चाहता है। यदि मानव उन्हे अलग रखकर सोचना सीख जाय तो विश्वमें सुख और प्रेम बरसने लगें।

कुछ दिन पहले नाजी यह मानते थे कि वे दुनियापर शासन करनेके लिए उत्पन्न हुए हैं। प्रत्येक नाजी इसे एक सच्चा और तर्कसंगत अधिकार समझता था। किन्तु वही मिथ्या अभिमान उनके विनाशका कारण बन गया। पंजाबके सिख 'राज करेगा खालसा' की रट लगा रहे हैं और इसे गुरुकी वाणी मानकर सारे भारतपर राज्य करनेके स्वप्न देख रहे है। नही कहा जा सकता, यह विश्वास उनके लिए कैसा फल लाएगा। वैदिक कालमें यह माना जाने लगा था कि ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न हुआ व्यक्ति किसी प्रकारका पाप नही करता। आजकल इंग्लैंडमे प्रचलित है कि 'राजा कभी ग़लती नही कर सकता।' यूरोप सरीखे जागृत महाद्वीपमें भी बहुतसे व्यक्ति ऐसे होगे जो इसे एक सत्य सिद्धान्त मानते हों।

हमें यह सोचना है कि इस प्रकारके विचारोंके निर्माणमें कौनसे तथ्य काम करते हैं। क्या व्यक्ति उनसे अलिप्त रहकर पूर्ण सत्यको प्राप्त कर सकता है ?

यदि इस प्रश्नका विचार दार्शनिक भूमिपर किया जाय तो यही उत्तर होगा कि सांसारिक कार्य-व्यवहारोंमे लगा हुआ व्यक्ति उस अवस्था तक नही पहुँच सकता। दार्शनिकोंका कथन है कि तर्क द्वारा सत्यको नहीं

पहिचाना जा सकता। उनके लिए साक्षात् अनुभूतात्मक ज्ञान होना चाहिए। वह ज्ञान सांसारिक द्वन्द्वोंसे विनिर्मुक्त प्राणी ही प्राप्त कर सकता है। वेदान्तसूत्र तो तर्कके मार्गको वहीं तक उपादेय मानता है, जहाँतक वह श्रुतिके अनुकूल है। जैन दर्शनके अनुसार तर्क नयोंपर आश्रित है जो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंको प्रकट करते हैं। उनमें सम्पूर्ण सत्य नहीं जाना जा सकता, किन्तु यहाँ हमें व्यवहार-भूमिपर विचार करना है।

बहुतसे व्यक्ति अपना निर्णय उपयोगिताके आधारपर करते हैं। वे उसी बातको सच्ची कहेंगे जिसे सच माननेपर वैयक्तिक या सामाजिक दृष्टिसे अधिक लाभ प्रतीत होता है। सामाजिक संस्थाओंमें इस प्रकारकी मनोवृत्ति अधिक पाई जाती है। यदि विद्यार्थी या अधिकारियोंमें किसी प्रकारका विवाद हो गया तो विद्यार्थियोंको झूठा कहकर चुप कर दिया जाता है। उनकी दृष्टिमें वह व्यक्ति कभी झूठा नहीं हो सकता जिसने संस्थाको मोटी-सी रकम दान की है। विद्यार्थी या तो चुप होकर बैठ जाते हैं या अपनेको सच्चा सिद्ध करनेके लिए हड़ताल करते हैं, तूफान मचाते हैं, अनशन करते हैं। संस्थाके अधिकारी उन्हें तभी सच्चा माननेके लिए तैयार होते हैं जब उन्हें अपना काम बिगड़ता दिखाई देता है। वहाँ सत्यकी कसौटी वस्तुस्थिति न रहकर ताकत हो जाती है।

यही राजनीतिक तथा सामाजिक नेताओंको देखा गया है कि वे सदा शक्तिके साथ रहते हैं। जिस पार्टीने जोर पकड़ा उसीके साथ हो लिए। किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि बल हमेशा सचाईके साथ ही रहता है। जिस व्यक्तिके पास अधिक पैसा है, प्रचारके विविध साधन हैं, छल-प्रपंच रचने तथा बगुला भगत बननेकी कला है वह अनेक सत्यवादियोंको पछाड़ देता है।

भारत सरकारने 'सत्यमेव जयते' अपना आदर्शवाक्य बना रखा है। किन्तु यदि इसका अर्थ यह मान लिया जाय कि जो जीतता है वह सच्चा होता है तो परिणाम उल्टा ही निकलेगा। सत्यका अर्थ ही बदल जायगा। जैन शास्त्रोंमें इसकी जगह एक दूसरा वाक्य है, "सच्चं लोगम्मि सारभूयं" अर्थात् सत्य ही संसारमें सारभूत है। जय और पराजयका सम्बन्ध मुख्यतया भौतिक एषणाओंसे है। उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि सत्यवादीकी ही जय हो। किन्तु यह निश्चित है कि विश्वका कल्याण सत्य पर निर्भर रहनेसे ही हो सकता है।

किसी एक बातमें सफल होनेपर देश या समाजके नेताओंमें यह मिथ्या अभिमान-सा हो जाता है कि वे कोई गलती नहीं कर सकते। वे अपने दोषको सुननेके लिए तैयार नहीं होते। जनतामें भी एक ऐसी अन्धमनोवृत्ति पाई जाती है कि किसी एक क्षेत्रमें विशेषता पाये हुए व्यक्तिको वह सर्वज्ञ मानने लगती है। गांधीजीके विषयमें ऐसा ही था। ऐसा कोई

विषय नहीं था जिसके लिए लोग उनकी सलाह न लेते हों। कोई साहित्यिक प्रश्न हो, भाषा सम्बन्धी हो, अर्थशास्त्र सम्बन्धी हो, अथवा चिकित्सा, ज्योतिष या अन्य किसी शास्त्रसे सम्बन्ध रखता हो। उन्हें प्रत्येक विषयपर बोलनेका अधिकार था। सम्भवतया भारतमें यह धारणा सर्वज्ञवादका भग्नावशेष है।

एक सज्जन जब कोई योजना तैयार करते हैं तो दूसरे द्वारा समर्थन प्राप्त करना चाहते हैं। वे उस पर निष्पक्ष राय माँगते हैं। जब तक दूसरा व्यक्ति उनकी बातोंका समर्थन करता रहता है तब तक तो प्रसन्नतासे सुनते रहते हैं किन्तु प्रतिकूलता आते ही बिगड़ खड़े होते हैं। वे अनुकूल बातोंके लिए तो दूसरेके निर्णयकी प्रशंसा करते हैं और उसे तर्कसंगत मानते हैं किन्तु यदि वही व्यक्ति प्रतिकूल बात करता है तो उसे त्रुटिपूर्ण मानने लगते हैं। उन्हे यह समझना चाहिए कि प्रतिकूलताके समय भी उस व्यक्तिकी वही योग्यता रहती है जो अनुकूलताके समय थी।

बहुतसे व्यक्ति सत्य और झूठका निर्णय ढोलकी आवाज़ पर करते हैं। वे उसीको सत्य मानते हैं जिसका ढोल जोरसे बजता है। सुनानेवालोंमें ऐसी मनोवृत्ति और भी अधिक पाई जाती है। एक सज्जन जब किसी विवादात्मक प्रश्न पर बात करते हैं दूसरेकी बात सुनना बन्द कर देते हैं और स्वयं जोर जोरसे बोलना शुरू करते हैं। वे समझते है, इससे उनकी बात सत्य सिद्ध हो जायेगी।

कई व्यक्ति सहृदय और सज्जन होने पर भी अपनी बात इतनी लम्बी कर देते हैं कि दूसरेको बोलनेका अवसर ही नहीं मिलता। परिणाम यह होता है कि दूसरा कुछ नहीं कह पाता और वे अपने निर्णय पर ज्योंके त्यों बने रहते हैं। पुराने आदमियोंमें यह मनोवृत्ति अधिक पाई जाती है।

उपदेश देनेका तो भारतमें रोग-सा है। एक आदमीकी लाखों रुपये वार्षिक आय है। उस पर भी दिनरात तोबा करता रहता है। जब एक मजदूर अनिवार्य आवश्यकताओंसे तंग आकर वेतनवृद्धि की प्रार्थना करता है तो वे सन्तोष पर व्याख्यान देने लगते हैं। उन्हें अपने उपदेश और व्यवहारमें कोई असंगति नही दिखाई देती। मजदूर आर्थिक दृष्टिसे निम्नस्तर पर हैं, इसलिए वे उसे प्रत्येक दृष्टिसे निम्न मानते हैं। बुद्धि, ईमानदारी, धर्म तथा अन्य सभी गुणोंमें वे अपनेको मज़दूरसे श्रेष्ठ मानते हैं। चाहे वे खुले आम शोषण कर रहे हों, फिर भी पसीनकी कमाई खानेवाले मज़दूरसे नैतिकता तथा चरित्र-बलमें भी अपनेको उच्च मानते हैं।

एक सज्जन जब किसीसे बात करते है और अपना पलड़ा हल्का होता देखते हैं तो दूसरे पर व्यक्तिगत आक्षेपोंकी बौछार शुरू कर देते हैं। प्राचीन तर्कशास्त्रमें इस प्रकारके हथकण्डोंको बल और जातिके नामसे गिनाया गया है। इनसे सत्य सिद्ध होनेकी अपेक्षा व्यक्ति उत्तरोत्तर दूर जाता है।

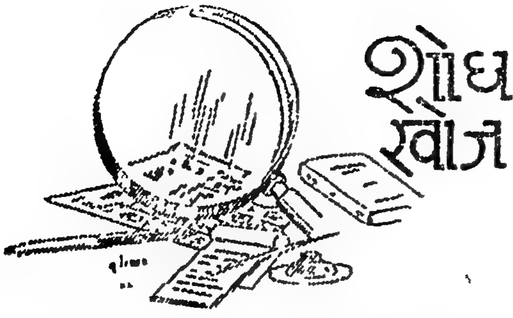
शास्त्र, परम्परा, भगवान् और धर्मगुरुकी दुहाई देकर सत्य पर परदा डालना तो आम बात है।

इन सब बातोंके होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि मनुष्य सत्यके पास पहुँच ही नहीं सकता। उसे प्राप्त करनेके लिए शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि की आवश्यकता है। उसके लिए अपने वैयक्तिक अभिनिवेश, पूर्वग्रह तथा जमे हुए संस्कारोंको छोड़कर शुद्ध-वस्तुस्थितिके आधार पर निर्णय करने की आदत डालनी होगी। वैयक्तिक अभिनिवेश जितने कम होंगे, सत्य उतना ही समीप आएगा।

एक व्यक्तिको हम अपना शत्रु मान लेते हैं, ऐसी दशामें उसकी प्रत्येक बात विपरीत दिखाई देती है। हम जिसे बेईमान मान लेते हैं, उसके प्रत्येक कार्यमें स्वार्थ दिखाई देता है। अपने पक्षवालेकी प्रत्येक बात उचित दिखाई देती है और दूसरेकी अनुचित। जिस व्यक्तिको हम अपना शत्रु मानते हैं उसके लिए हमें यह भी जानना चाहिए कि उसका मित्र उसके विषयमें क्या सोचता है। फिर, दोनों पक्षोंको सामने रखकर युक्तिके आधार पर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिए। सत्यका सम्बन्ध प्रतिपादित वस्तु या घटनासे है, प्रतिपादकसे नहीं। इसीका नाम वैज्ञानिक दृष्टि है। स्याद्वाद दृष्टि प्रत्येक तथ्यको भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे जाँचना सिखाती है। यदि मनुष्य यह करना सीख जाय और एकान्त दृष्टिको छोड़ दे तो सभी झगड़ोंका अन्त हो जाय।

आवश्यकता इस बात की है कि वह दृष्टि केवल पाण्डित्य प्रदर्शनकी वस्तु न रहकर अन्तस्तलमें उतर जाय। जीवनका आवश्यक अंग बन जाय। हमारे विचार और व्यवहारमें कितना ही अन्तर हो, वह अखरता नहीं। बेईमान ईमानदारीकी बातें करता है और व्यभिचारी ब्रह्मचर्यका उपदेश देता है। एक करोड़पति त्यागकी शिक्षा देते हुए लज्जित नहीं होता। विचार और व्यवहारका यह अन्तर जिस दिन अखरने लगेगा सांस्कृतिक प्रगतिका प्रथम दिन होगा।





ये उपेक्षित अवशेष

•

मुनि कान्तिसागर

भारतीय स्वाधीनताके बाद उपेक्षित विषयोंमें पुरातन कला-कृतियोंका भी स्थान है। संस्कृति और सभ्यताके प्रकाश-चिह्न-स्वरूप इन अवशेषोंकी कहानी बड़ी ही दुःखपूर्ण है। कलाप्रेमी वर्गने एवं प्रतिभा सम्पन्न सूक्ष्मदर्शी कलाकारोंने जो उत्तमोत्तम-भावसूचक शिल्पकला, सजीव की; उन्हींकी आज सुध लेनेवाले तक उँगलियोंपर गिननेवाले रह गये हैं। स्थपतियोंकी परम्पराको सुरक्षित रखना या उसमें आवश्यक सामयिक सुधार करना तो रहा दूर पर उन कृतियोंकी सुरक्षा भी एक जटिल समस्याका रूप धारण किये हुए है। हिसाब लगानेपर ज्ञात होगा कि बाह्य दृष्टिसे भले ही हम दिनोंदिन उन्नत पथपर अग्रसर हो रहे हों, पर वस्तुतः प्रतिदिन हम अपनी मूल्यवान् सम्पत्ति खो रहे हैं। सोचा गया था कि जनता द्वारा इन उपेक्षित–अरक्षित अवशेषोंकी समुचित सुरक्षा व उचित अन्वेषणपर स्वाधीन भारतकी सरकार ध्यान देगी। हाँ, कागजोंपर एतद्विषयक प्रस्ताव पास हुए **"प्राचीन स्मारक सुरक्षा विधान"** में आवश्यक परिवर्तन हुए, पुरातत्त्व विभागके दौरे हुए। इन सब बातोंके बावजूद भी आज सुन्दरसे सुन्दर एवं सर्वथा अखंडित कृतियां ग्रामीणों द्वारा क्षत-विक्षत हो रही हैं। स्वतन्त्र भारतीय शासनका इस विषय पर अधिक मौन आश्चर्यजनक ही नहीं अपितु महान् खेदजनक भी है।

मुझे प्रस्तुत प्रबन्धमें छत्तीसगढ़में मेरी हाल ही की पैदल यात्रामें मिले कुछ अवशेषोंका उल्लेख करना है जिनका सम्बन्ध जैनधर्मसे है। यों तो इस यात्रामें वैदिक संस्कृतिसे सम्बन्ध रखनेवाली तथ्यपूर्ण सामग्री भी पर्याप्त परिमाणमें उपलब्ध हुई जिस पर मैं अन्यत्र विस्तृत प्रकाश डाल चुका हूँ।

डोंगरगढ़ का नाम अत्यन्त सार्थक है। सचमुच यह पहाड़ियोंका दुर्गम दुर्ग ही है। जब इस नामसे अभिषिक्त किया गया होगा उस समय इसकी दुर्गमता कितनी दुर्बोध होगी; चतुर्दिक् सघन अटवियोंसे यह भू-भाग कितना आच्छादित होगा इसकी कल्पना प्रत्यक्षदर्शी कलाकार ही कर सकता है। प्रकृतिके अवशेष-स्वरूप आंगिक सौन्दर्य आज भी यहाँ सुरक्षित है। कलाकारके मनका न केवल उन्नयन होता है अपितु महत्त्वपूर्ण उदात्त भावनाका सूत्रपात भी होता है। अग्रसोची शासकोंने भले ही इसे सुरक्षाकी दृष्टिसे बसाया हो पर आज यह संस्कृति और सौन्दर्यकी साधनाके केन्द्रस्थानके रूपमें प्रसिद्ध है। लाखों जनपदोंकी हार्दिक भावनाका यह केन्द्र-स्थान है। यहाँ शाक्त और वैष्णवोंका किसी समय अवश्य ही समन्वयात्मक अस्तित्व रहा होगा। पहाड़ीके ऊपर बमलाईका शक्तिपीठ है तो ठीक उसके पीछेके नगमूलमें वैष्णव साधना का स्थान बना हुआ है। परंतु बहुत

कम लोग जानते हैं कि यहाँ पर किसी श्रमण परम्परामें विश्वास करनेवालों का भी साधनास्थान था जैसा कि तत्रस्थित विशृखलित अवशेषोंसे फलित होता है।

यों तो मुझे उन्नीस सौ तेंतालीस और उन्नीस सौ इक्कावनमें डोंगरगढ अपने विहार दर्मियान ठहरनेका अवसर मिला था। इच्छा रहते हुए भी पहाडीपर न जा सका एवं न वहाँके अवशेषोंका ही पता लगा सका, बल्कि मुझे ज्ञात ही न था कि बमलाई देवीको छोड़कर और किसी दृष्टिसे डोंगरगढका सांस्कृतिक व ऐतिहासिक महत्त्व भी है। उन्नीस सौ एक्यावन में जब डोंगरगढसे तीन चार मुकाम आगे बढ चुका था, तब मेरी डाकमें यवतमाल निवासी श्रीयुत महाजनजी का एक पत्र निकला। आपने मेरा ध्यान डोंगरगढकी पहाडीमें अरक्षित दो जैनमूर्तियोंपर आकृष्ट किया था, अस्तु।

जब मैं गत वर्ष राजनादगाँव चातुर्मास व्यतीत कर रहा था उस समय खैरागढ-निवासी श्रीयुत मेघराजजी मुणोतने मुझे बताया कि डोंगरगढकी बमलाई वाली पहाडीमें या उसके निकट कहीं बहुसंख्यक पुरातन शिल्पावशेष, लताओंसे परिवेष्टित व विशाल वृक्ष-मूलोंसे गठित दैनन्दिन विनाशकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। ३० वर्ष पूर्व आपने ग्रामवृद्धोंसे उपर्युक्त सवाद सुना था। महाजनजीके पत्रसे मुझे ऐसा लगा था कि डोंगरगढ जाकर भी मैंने वहाँ खोज न कर भूल की। इस सूचनाने मुझे डोंगरगढ पहाडीकी ओर जानेको विशेष रूपसे उत्प्रेरित किया। तदनुसार चातुर्मासानन्तर परम पूज्य गुरु महाराज उपाध्याय मुनि श्री सुखसागरजी महाराजके साथ क्रमश विहार करते हुए २२ मार्च १९५२ ई० को डोंगरगढ पहुँचा।

जैन अवशेष—२३ मार्चको अपनी शोध विषयक आवश्यक सामग्रीके साथ पहाडी पर चढा, यों तो ऊपर जानेके दो मार्ग हैं—एक तपसी तालसे एवं दूसरा श्मशान घाटसे। हमारे लिए दूसरा मार्ग ही उपयुक्त था। पहाडी पर चढते हुए मार्गमें कहीं-कहीं अवशेष दिखलाई पडे। उनमें से कुछ एक जैन परम्परासे सम्बद्ध भी ज्ञात हुए जिनका उल्लेख मैं आगे करूँगा। पहाडीसे नीचे उतरने पर मेरा इरादा तो यही था कि अभी तो निवासस्थानपर चलकर कुछ विश्राम किया जाय, क्योंकि पहाडीकी चढाई की अपेक्षा उतराई अधिक महगी पडती है। मेरे साथी पडित राजूलाल जी शर्मा व मुनि श्री मगलसागरजी का आग्रह ऐसा रहा है कि टोन्ही बमलाई व तपसीतालको देखकर ही स्थानपर जाना अधिक उचित होगा, क्योंकि २४ मार्चको हमें प्रस्थान करना था। अनिच्छासे मैं इन लोगों के साथ आगे बढा। मैं सोचता था कि दुपहरको अवशिष्ट स्थानोंको आरामके साथ देखना ठीक रहेगा, क्योंकि हमारा इस प्रकार भटकना केवल "देखनेके लिए" न था, पर उन उन स्थानों व तत्र स्थित अवशेषोंसे बातचीतका सिलसिला भी चलाना था।

मेरा विश्वास रहा है कि कलाकार खंड-हरमें प्रवेश करता है तब वहाँका एक एक पत्थर उससे बातें करनेको मानो लालायित रहता है ऐसा आभास होता है। कलाकार अवशेषोंको सहानुभूतिपूर्वक अन्तर मनसे देखता है, पर्यवेक्षण करता है, उनमें एकाकार होनेकी चेष्टा करता है तभी तो वह टूटे-फूटे पत्थरके टुकड़ोंमें बिखरे हुए संस्कृति और सभ्यताके बीजोंको एकत्र कर उनका नवीन सामयिक स्फूर्तिदायक संस्करण तैयार करता है।

आगे चलकर हम लोग शिव-मन्दिरके निकट रुके। एक पंडा भी हमारे पीछे पड़ गया। लगा वहाँकी किंवदन्तियाँ सुनाने। एक किंवदन्ती हमारे कामकी मिल गई। शंकरजीका मंदिर चबूतरेपर बना हुआ है; ज्योंही उसपर हम चढ़े, त्यों ही हमारी दृष्टि दाईं ओर पड़ी हुई पद्मासनस्थ जिनप्रतिमापर केन्द्रित हो गई। इसी प्रतिमापर श्रीयुत महाजन साहबने आकृष्ट किया था। यह प्रतिमा भगवान् ऋषभदेव स्वामी की है यद्यपि प्रतिमाकी निर्माण-शैलीको देखते हुए कहना पड़ेगा कि—इसके परिकर-निर्माणमें व्यवहृत कलात्मक उपकरण तो विशुद्ध महाकोशलीय ही हैं। इस प्रकारकी प्रतिमाएँ संपूर्ण महाकोशलमे पाई जाती है परन्तु सापेक्षतः मुझे इसमें एक नावीन्य दृष्टिगोचर हुआ। वह यह कि प्रान्तमें जितनी भी जैन-मूर्त्तियाँ अद्यावधि मैंने देखी हैं उनमें निम्न भागमें नवग्रहोंके स्थानपर केवल नव आकृतियाँ ही उत्कीर्णित रहती हैं पर इसके परिकरमें नवग्रहोंका अंकन सशरीर व सायुध है। मुझे ऐसा लगता है कि यह छत्तीसगढ़ प्रांत स्थित जैन मूर्ति-निर्माण-विषयक कला परम्पराका अनुकरण है। यों तो छत्तीसगढ़ महाकोशलमें अन्तर्भुक्त हो जाता है पर मूर्ति-निर्माणकलामे उत्तर और दक्षिण कोशलमें अन्तर है, उत्तर कोशलमें ऐसी जिन-मूर्तियाँ अत्यन्त उपलब्ध हुई है जिनमें गृहांकन सशरीर या सायुध हो, जब कि दक्षिण कोशलकी अधिकाँश मूर्तियाँ उपर्युक्त परम्पराका अपवाद है। परिकरमें सांचीके तोरणकी आकृतिके चिह्न अवश्य ही मिलेंगे। छत्तीसगढ़की जैन धातु-प्रतिमा मुझे सिरपुरसे उपलब्ध हुई थी; उसमें भी नवग्रहोंका सशरीर सायुध अंकन था। यह प्रतिमा नवम या दशम शताब्दी की थी। अधिष्ठाताके स्थानपर कुवेर एवं अधिष्ठात्रीके स्थानपर अम्बिका विराजमान है। डोंगरगढ़की यह ऋषभदेवकी प्रतिमा उपर्युक्त धातु मूर्तिके अनुकरणात्मक स्वरूपमें दिखती है। अन्तर इतना ही है कि कुबेर और अंबिकाके स्थानपर, गोमेध यक्ष एवं यक्षिणी चक्रेश्वरी है। तेरहवी शताब्दीके पूर्व ही शासनदेव देवियोके विभिन्न-स्वरूप व आयुध निश्चित कर दिये गये थे।

उपासक व उपासिकाओंका स्थान जैन परिकरमें आवश्यक माना गया है। यहाँपर भी ये दोनों स्पष्ट हैं; बल्कि पूजनकी सामग्री भी कलाकारने अंकित कर अंतिम गुप्तकालीन मूर्ति निर्माण कलाकी आभा बता दी है। सूचित समयकी जैन बौद्ध सपरिकर

मूर्तियाँ मन्दिरके आकारकी दीखती थीं। धूपदान, आरती, कलश एवं पुष्पपात्र भी अंकित रहते थे। इस परम्पराका विकास सिरपुरस्थ धातु-प्रतिमामें स्पष्टत परिलक्षित होता है। प्रस्तुत ऋषभदेव प्रतिमाके परिकरमें विवर्तित किरीट मुकुट बहुत ही आकर्षक बने हैं। मूर्ति सपरिकर चालीस इंच ऊँची छब्बीस इंच चौडी है। निस्सन्देह प्रतिमा किसी समय मंदिरके मुख्य गर्भद्वारकी रही होगी। अभी तो इसपर खूब तैल-युक्त सिन्दूर पोता जाता है, और आध्यात्मिक भावोंकी साकार आकृति द्वारपालका काम करती है।

इसी मंदिरके निकट और भी नागचूर्णसे अभिषिक्त कतिपय अवशेष पडे हुए हैं। इनमें कुंभ कलश मीन युगल व दर्पणकी आकृतियाँ, उनके जैन धर्मसे सम्बन्धित होनेके प्रमाण हैं। यहाँसे एक पडेके साथ हम लोग टोन्ही बमलाईकी ओर चले। यह स्थान सापेक्षत कुछ विकट और दुर्गम है। बिना मार्ग-दर्शकके वहाँ पहुँचना सर्वथा असंभव है। कारण कि इस ओर ले जानेवाली न तो कोई निश्चित पगडंडी है एवं न ऐसे कोई चरणचिह्न ही दिखलाई पडते हैं, जिनके सहारे यात्री सुगमतापूर्वक वहाँ पहुँच सकें। यह स्थान विकट चट्टानोंके बीच पडता है। बडी-बडी आडी टेढी और फिसलनेवाली चट्टानोंको पार कर जाना पडता है। यहाँकी बमलाईकी पूजा केवल नवरात्रके दिनों होती है। बली भी खूब जमकर होती है, पाठकोंको पढकर आश्चर्य होगा कि आजके युग में भी यहाँ पूजाके दिनोंमें एक बकरेका जीवित बच्चा जमीनमें गाडा जाता है।

उपर्युक्त जर्जरित टोन्ही बमलाईके स्थानमें ही सिन्दूरसे पोती हुई भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीकी एक प्रतिमा विराजमान है, कलाकी दृष्टिसे अति सामान्य है। ठीक इस स्थानके सम्मुख तीन फर्लांग जानेपर बहुसंख्यक अवशेष घनी झाडीमें फैले हुए हैं। तीन स्तम्भ छ फुटसे भी अधिक लंबे व अढाई फुटसे अधिक चौडे हैं, जो नीचेसे चतुष्कोण कुछ ऊपर षट्कोण एवं मध्यमें अष्ट कोणमें विभाजित है। सर्वोच्च भागमें दोनों ओर सुन्दर डिजाइन व एक भागमें खड्गासनमें जिनमूर्तियाँ खुदी हुई है, जो नग्न हैं। पासमें पडे हुए चौखटके मध्यभागमें उत्कीर्णित कलशाकृति इस बातकी सूचना देती है कि असंभव नहीं ये सभी अवशेष ध्वस्त जैनमंदिरके ही न हों। इन सब अवशेषोंके देखते करीब बारह बजनेका समय हो रहा था, अत हम लोग तपसी ताल नामक स्थानको सामान्य रूपसे देखकर ही स्वनिवासस्थानको लौटना चाहते थे, पर वहाँके वैष्णव महंत श्री मयरादास जीने पहाडीके दुर्गम गन्तव्य स्थानोंकी चर्चा की। उन्हें दुपहरके बाद हमने देखना तय किया।

प्राय चार बजे पुन मैं अकेला ही तपसीताल पहुँचा। उपर्युक्त पंक्तियोंमें मैंने पहाडीपर चढनेके दो मार्गोंका उल्लेख किया है। घने जंगल एवं टेढी-मेढी गोल चट्टानोंवाला एक मार्ग तपसीतालसे फूटता है।

आगे चलकर जंगलोंमें विभाजित हो जाता है। समय अधिक हो जानेके कारण मैं डेढ़ मीलसे अधिक आगे न जा सका, पर जितना मार्ग तय किया उस बीच मुझे दर्जनों गढ़े गढ़ाये पत्थर, आकृतियाँ खचित स्तम्भ, मूर्त्ति अवशेष व कहीं-कहीं भूमिस्थ डेढ़ फ़ीटसे अधिक लम्बी ईटें दिखलाई पड़ी; यद्यपि यहाँ जैन अवशेष तो दिखाई नही पड़े परंतु इतना निश्चित ज्ञात हुआ कि किसी समय इस पहाड़ीमें विस्तृत जनावास व देवमंदिरोंका समूह रहा होगा।

उपर्युक्त पंक्तियोंमें मैंने एक कामकी किंवदन्तीका सूचन किया है वह इस प्रकार है। कहा जाता है कि इस पहाड़ीपर किसी समय बड़ा दुर्ग था; एवं उसमें कामकन्दला नामक एक विख्यात गणिका रहती थी; यहीपर माधवानलके साथ उसकी प्रथम भेंट हुई थी। पंडेसे यह ज्ञात हुआ कि यह गणिका माधवानलकी पुनः प्राप्तिके लिए नग्न मूर्त्तियों का पूजन करती थी। उसीने उपर्युक्त दोनों मूर्त्तियोंका निर्माण करवाया। इस किवदन्तीमें विशेष तथ्य तो मालूम नही पड़ता, कारण कि उपर्युक्त पंक्तियोंका आंशिक समर्थन भी साहित्य एवं अन्य ऐतिहासिक साधनो से नही होता; बल्कि स्पष्ट कहा जाय तो डोंगरगढ़के भूभागपर प्रकाश डालनेवाले साधन ही अंधकारके गर्भ मे है। दूसरी बात यह भी है कि जबलपुर जिलेके विलहरी ग्राममे एक शैव-मंदिरका खंडहर मैंने देखा है उसके साथ भी कामकन्दलाका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। लोग मानते हैं कि वही उसका महल है। माधवानल कामकन्दलाके आख्यानोंमें शैव-मंदिर का उल्लेख पुनः पुनः आया है। छत्तीसगढ़में भी यह आख्यान बड़ा प्रसिद्ध रहा है; जहाँ पुरातन शैव-मंदिर दिखें वहाँ कामकन्दलाके सम्बन्ध की कल्पना निरर्थक है। किवदन्तीमें वर्णित नग्न मूर्त्तिके स्थानपर शिवलिगको थोड़ी देरके लिए मान लिया जाय तो कलचुरी या उसके वाद के भोंसले आदि शासक इसका जीर्णोद्धार कराये विना न रहते, जैसा कि रत्नपुर व श्रीपुर—सीरपुरके शैव-मन्दिरोंका कराया था।

अव प्रश्न रह जाता है गणिका द्वारा निर्मापित मन्दिर एवं मूर्त्तियोंका। यह प्रश्न जितना महत्त्वपूर्ण है उतना कठिन भी, पर उपेक्षणीय नही। इसे सुलझानेका न कोई साहित्यिक प्रमाण है न शिलालिपि ही, केवल प्रतिमा एवं मंदिर-अवशेषोंकी रचनाशैलीके आधार पर ही कुछ प्रकाश मिल सकता है। जो दो मूर्त्तियाँ विभिन्न स्थानो पर विराजमान कर दी गई हैं उनकी रचनाशैलीमें पर्याप्त साम्य है। भले ही वे दोनों विभिन्न कलाकारोंकी कृति ज्ञात होती हों पर टेकनिक एक है पाषाण एक है। स्तम्भों एवं मंदिरके गवाक्षोमे खचित आकृतियों पर कलचुरी कलाका प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है; बल्कि कहना चाहिये कि स्थपतिने अपने पूर्वजों द्वारा व्यवहृत शैलीको सुरक्षित रखनेका साधारण प्रयास किया है पर सफलता नही मिली। जिन्होंने कलचुरी

यलाके प्रधान केन्द्र त्रिपुरी और जिल-हरीकी गृह-निर्माण-कला एवं उनके विभिन्न उपकरणोंका अध्ययन किया है वे ही उपर्युक्त अवशेषोंकी अनुकरण-शैलीको समझ सकते हैं। मंदिरोंके चौखट विन्ध्य प्रदेशके सुन्दर बनते थे। कलचुरी कलाकारोंने कुछ परिवर्तनके साथ इस शैलीको अपनाया। उसी शैलीका साधारण अनुकरण दक्षिण-कोशल-छत्तीसगढमें किया गया। ऐसी स्थितिमें उत्तर भारतीय द्वार-निर्माण-शैलीका प्रभाव बना रहना स्वाभाविक ही है।

डोंगरगढकी पहाडीके अवशेषोंको मैं कलचुरी कालमें नहीं रखना चाहता कारण उपासक, उपासिका तथा पार्श्वदोंके तन पर पडे हुए वस्त्रोंपर गौड प्रभाव स्पष्ट है। आभूषण भी गौड और कलचुरी कलामें व्यवहृत अलकारोंसे मेल रखते हैं। ओठ भी मोटे हैं, मस्तकके वाल कुछ लम्बे बंधे हुए हैं, इन सब बातोंसे यह ज्ञात होता है कि इसकी रचना पन्द्रहवीं या सोल-हवीं सदीके बीच कभी हुई होगी। उन दिनों भंडारा जिलेमें जैनोंका अच्छा स्थान था, कारण जावे भट्टारकका दौरा नागरा तक हुआ था, साथ ही इस शताब्दीकी कुछ मूर्त्तियाँ लाजी, बालाघाट, पद्मपुर, आमगाव, कामठा और किरनापुरमें पाई जाती हैं, यद्यपि इन स्थानोंमेंसे कुछ एक तो डोंगरगढ-से काफी दूर पडते हैं पर लाजी वगैरह दूर होते हुए भी कलचुरियों द्वारा शासित प्रदेश था, अर्थात् शासनकी दृष्टिसे दूरत्व नहींके बराबर था इसी समयकी गंडईमें भी कुछ एक मूर्तियाँ पाई जाती हैं। डोंगरगढसे बारहवें मील पर तलाव स्टेशन पडता है। यहां पर आज भी इतना बीहड जंगल है कि रात्रिको ग्रामकी सीमा तक जाना असम्भव है। यों तो यह किसी समय विशेष रूपसे सुरक्षित जंगल माना जाता था, पर आज वहाँ एक शेरने ऐसा उपद्रव मचा रखा है कि दो वर्ष में १५५ व्यक्ति स्वाहा करनेके बाद भी वह मस्तीसे घूमता है, इसी जंगल के द्वार पर एक जलाशय बना हुआ है। जलाशयसे ठीक उत्तर चार फर्लांग घनघोर जंगलमें प्रवेश करने पर खंडित मूर्तियोंके एक दजनसे कुछ अधिक अवशेष दिख पडेंगे, इसमें मस्तक-विहीन एक ऋषभदेवकी प्रतिमा है, जिसपर "संवत् १५४८ जीवरा दुगराख्यनगरे नित्य प्रणमति।"

यह लेख भी उपर्युक्त मंदिर व मूर्तियोंके निर्माण कालीन परिस्थिति पर कुछ प्रकाश डालता है। जीवराज पापडीवालने सारे भारतमें मूर्तियाँ स्थापित करवानेकी न केवल किंवदंतियाँ ही प्रचलित हैं अपितु कई प्रांतोंमें मूर्तियाँ भी उपलब्ध होती हैं। लेखान्तरित "जीवरा" शब्दसे मैं जीव-राज पापडीवालका ही सम्बन्ध मानता हूँ, और डुगराख्य नगरसे डोंगरगढ। यदि लेखकी मिती मिल जाती तो अन्य मूर्तियोंकी मितियोंसे तुलना करते तो अवश्य ही नवीन तथ्य प्रकाशमें आता। सूचित समयमें निस्सदेह डोंगर-गढमें जैनोंका प्राबल्य रहा होगा। उसी समय जैन समाजकी किसी प्रति-ष्ठित नारीद्वारा डोंगरगढका उपर्युक्त मंदिर बना होगा। कुछ समय बाद

जब जैनोंका प्राबल्य घटा या जैन धर्मका आचरण करनेवाली जातिमेंसे आचार-विषयक परम्परा लुप्त हुई तब कामकन्दलावाली किंवदन्तीमें इस मंदिरको भी लपेट लिया गया हो तो इसमें आश्चर्य नहीं है। भारतमें बहुतसे ऐसे धार्मिक स्थान हैं जिनकी ख्याति के पीछे नारियोंका नाम जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ-पीसनहारीकी मढ़िया यह स्थान जबलपुरसे ५ वें मीलपर एक पहाड़ी पर बना है। कहा जाता है कि इसकी निर्मात्री रानी दुर्गावतीकी पीसनहारी थी, उसीने स्वोपार्जित संपत्तिसे मढ़ियाका निर्माण कराया। आज भी मढ़ियाके दोनों शिखरों पर, उसकी सुखद स्मृति स्वरूप चक्कीके दोनों पाट रखे हुए हैं।

प्रसंगतः एक बातका उल्लेख अत्यावश्यक जान पड़ता है कि उन दिनों डोंगरगढ़के निकटवर्त्ती भू-भागों पर जैन कलारों और जैन कहारों की बस्ती पर्याप्त प्रमाणमें रही होगी। संभव है उस समयकी बहुत-सी मूर्त्तियाँ इन्हीं लोगों द्वारा बनवाई गई हों। भंडारा जिलेमें जैन कलारोंकी बस्ती प्रायः हर एक गाँवमें मिलेगी। ये जैन कलार कलचुरियोंके अवशेष हैं। इनके नामके आगे जुड़ा हुआ जैन शब्द इस बातका सूचक है कि कुछ समय पूर्व निश्चित रूपसे वे जैन धर्मका पूर्णतया आचरण करते होंगे। इस जातिके कुछ शिक्षित भाई मुझे कामठामें मिले थे। वे स्वयं बोले कि किसी समय हमारे पूर्वज जैन थे; पर ज्यों-ज्यों हमारा संबंध परिस्थितिजन्य विषमताओंके कारण धार्मिक सिद्धान्तोंसे हटता गया; त्यों-त्यों हम इतने धर्मभ्रष्ट हो गये कि अहिंसाकी सुगन्ध भी आज हममें न रही।

मुझे अधिक अवकाश न मिलनेके कारण पहाड़ीकी पूर्णतः छानबीन तो नहीं कर सका पर जितने भागको देखकर समझ सका उसपरसे मैं निष्कर्षपर पहुँचा कि डोंगरगढ़ जैसा महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान विद्वानोंकी दृष्टिसे ओझल क्योंकर रहा—यहाँ तक कि स्वर्गीय डाक्टर हीरालाल जीने भी इसे उपेक्षित रखा।

आमगांव में गाँधी चौकमें एक पीपलके वृक्षके निम्न भागमें जैन मंदिरके एक स्तम्भका अवशेष पड़ा हुआ है; इसके चारों ओर खड़ी जिन-मूर्तियाँ खुदी हुई हैं; यह अवशेष यहाँपर क्यों आया और जनता द्वारा उपेक्षित क्यों पड़ा हुआ है? उत्तर सरल है। भारतविख्यात कवि भवभूतिका जन्मस्थान पद्मपुरसे आज भले ही १ मीलकी दूरीपर अवस्थित हो पर जिन दिनों पद्मपुर उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ रहा होगा उन दिनों दूरत्व न रहा होगा; कारण कि कुछ प्राचीन अवशेष आमगाँवमें भी पाये जाते हैं जिनकी समता पद्मपुरीय अवशेषोंसे की जा सकती है। उदाहरणार्थ आमगांवमें गांधी चौकमें ही एक सुंदर पुरातन वापिका बनी हुई है। इसकी आयु छः सौ वर्षोंसे कम न होगी। ज्ञात हुआ कि पीपलके नीचे पड़ा हुआ जैन शिल्पावशेष किसी जमानेमें इसी वापिकाके एक कोनेमें पड़ा था, कुछ असहिष्णु मनोवृत्तिवाले

सज्जनोके ध्यानमे आया कि मूर्तिका प्रक्षालित जल वापिकामें जायगा तो वह जल ही अपेय हो जायगा। फलस्वरूप इसे उठाकर पीपलके नीचे रख लिया।

कामठा—युद्धसमयमे यहाँ वायुयानका केन्द्र था। यो तो कामठा दुर्ग भारतीय जातिके इतिहासमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है परन्तु बहुत कम लोग जानते होगे कि इतिहास और पुरातत्वकी दृष्टिसे भी कामठा उपेक्षणीय नही। किसी समय यह बहुत बडा नगर था। यहाके लोधी (भूतपूर्व) जमीदार=का दुर्ग २०० वर्षसे भी प्राचीन है। कुछ वर्ष पूर्व दुर्गका एक हिस्सा परिवर्तनार्थ तुडवाना पडा था। उस समय बडे गड्ढेमें—जिसपर दुर्गकी सुदृढ दीवाल बनी हुई थी—शिखराकृति दिखलाई पडी थी। कुछ अधिक खुदाई करनेपर ऐसा ज्ञात हुआ कि जिस प्रकार इस मदिरके ऊपर किला बना हुआ है, ठीक उसी प्रकार मदिर भी किसी अवशेषके ऊपर बना प्रतीत होता है। जागीरदारीके प्रबन्धक बाबू तारासिंहजीने इसकी सूचना नागपुर अद्‌भुतालयके प्रधानको दी। जाँच करनेपर कुछ ताम्र-मुद्राएँ प्राप्त हुई, पर खेद है कि पुरातत्त्व विभागके उस अफसरने हफ्तोतक जमीदारके आतिथ्यसे लाभ उठाकर भी यथार्थत अपने कर्त्तव्यका लेशमात्र भी पालन न किया, यदि मदिरके नीचे और खुदाई की जाती—जैसा कि जमीदार साहब वैसा करवानेको तैयार थे—तो कुछ नवीन तथ्य प्रकाशमें आता। जितना भाग खोदा गया था, उसमें आधे दर्जनसे अधिक जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुई थी। कुछ एक तो नीवमें पुन भर दी गई। केवल एक प्रतिमा नमूनेके लिए दुर्गद्वारके अग्रभागमें विराजमान है। समीप ही दशावतारी विष्णुकी अत्यन्त प्रभावोत्पादक मूर्ति अवस्थित है। बाबू तारासिंहसे पता लगा कि मैंने जिस जगहपर खुदाई कार्य किया था, वहाँ भी जैन मूर्तियाँ निकली थी। इसमें कोई सशय नही कि कामठाके लोग शिल्पकलाके उन्नायक रहे थे।

बालाघाट जिलेका प्रमुख स्थान है। इसका इतिहास वाकाटक काल तक जाता है। सरकारी अफसरोंके आमोद-प्रमोदके लिए एक क्लब बना हुआ है। ठीक इसके पीछे एव न्यायालयवाले मार्गपर छत-विहीन साधारण कमानके सहारे कुछ जैन मूर्तियाँ टीकी हुई है। जिस रूपमें इन्हें मैंने उन्नीस सौ बयालीसके पराधीन भारतमें देखा था ठीक उसी रूपमें उन्नीस सौ बावन अप्रैलके स्वाधीन भारतमें देखा। बडा आश्चर्य है कि इतने वर्षोंके बाद भी हमारे शिक्षित-दीक्षित अफसर व मनियोका ध्यान इस ओर न जाने क्या नही गया। अब भी जाय तो कमसे कम नष्ट होनेवाली कलात्मक सपत्ति तो बचाई जा सकती है।

प्रातमें मैं सूचित कर देना चाहता हूँ कि ये उपर्युक्त पक्ति वर्णित समस्त अवशेष पुरातनकालीन इस भू-भाग पर फैली हुई जैन धर्मकी वैजयन्ती की सूचना देते है। साथ ही इस जिलेमें बसनेवाली, परिस्थितियोके कारण छोडे हुए धर्मको पुन प्राप्त कर सकें वैसे प्रयास अपेक्षित है। कमसे कम जिलेमें फैले हुए अरक्षित उपेक्षित अवशेषोको प्रकाशमें लाकर कलाकृतियोको नष्ट होनेसे बचावें। यही राष्ट्रीय स्वाधीनताकी आन्तरिक रक्षाका एक चरण है।

विश्वके ज्ञान-भंडारसे

पुस्तकों के इस अम्बार में !

स्वर्गीय डा० सेमुअल जानसन

[डाक्टर जानसन (१७०९–१७८४) अंगरेज़ीके पहले शब्द-कोष-रचयिता थे। शेक्सपीयर, मिल्टन आदि कवियोंके जीवनी-लेखक रूपमें हमें उनके आलोचक-स्वरूपका दर्शन मिलता है, पर अँगरेज़ी साहित्यमें उनको एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिलानेवाली तो उनकी वार्तालापकी कला थी, जिसे उनके साथी बासवेलने लिपिबद्ध कर उन्हें और अपनेको अमर कर दिया।

यह लेख डा० जानसनने दिसम्बर १७५९ में प्रकाशित कराया था, जिसे अब शताब्दियाँ बीत गईं। यह उस समयके अँगरेज़ी साहित्य की सर्वे है। आज वह साहित्य बहुत आगे बढ़ गया है, पर आश्चर्य है कि हमारा हिन्दी साहित्य आज बहुत कुछ उसी दशामें है और हम इस लेखको उसकी सर्वे कह सकते हैं।

ज्ञानका विकास संसार भरमें एक ही क्रमसे हुआ है, यह आश्चर्य-जनक सत्य हम संसारके साहित्यिक और राजनैतिक विकासको गह-राईसे पढ़कर पाते हैं। तो इस तरह यह लेख हमारे 'आज'की सर्वे है, तो कलकी आकाशवाणी भी है।—अनुवादक]

पुस्तकोंकी रेलपेल वर्तमान युगकी एक विचित्रता है। हर प्रातःकाल साहित्यिक-प्रवृत्तियोंके नवीन विज्ञा-पनोंके दर्शन होते हैं। पूर्वजोंकी अपेक्षा सस्ते दामोंपर बुद्धिमान् होनेके दावे बार-बार दोहराये जाते हैं। यह पुन-रावृत्ति हमें आनन्दसे भर देती है।

यह निर्णय करना किंचित् भी सरल नहीं है कि लेखकोंकी यह भीड़ किस सीमा तक हमारे ज्ञान अथवा आनन्दकी वृद्धि करती है।

अभी तक अपरिचित किसी भी तथ्यका ज्ञान करानेवाला मनुष्य सच-मुच गुरुके समान पूजनीय है। जो आनन्दमयी शैलीके माध्यमसे ज्ञान-दान करता है, वह परोपकारी पुण्यात्माके समान प्रेमका पात्र है। एवं जो जीवन-को निर्दोष आमोदसे भर दे, अवश्य ही

वह मुखद साथीके समान हृदयसे लगा लेने योग्य है, किन्तु ससारको पुस्तकालयमें परिणत करनेवालोंमेंसे बहुत ही कम लेखक यह दावा कर सकते हैं कि वे आनन्द अथवा शिक्षा प्रदान करनेकी आशा पूर्ण करेंगे। प्राय उनका एकमात्र कार्य दो पुस्तकोंका पठन कर एकत्रित सामग्रीमेंसे एक तृतीय पुस्तकका निर्माण कर देना है। इस निर्माणमें न तो उनका स्वयका कोई ईंट चूना होता है, नही वे पहलेके लेखक द्वारा प्रदत्त सामग्रीको विवेक की तराजूमें तोल उपयोगमें लाते हैं।

मैं यह नही कह सकता कि सभी सकलन प्रयोजनहीन होते हैं। ज्ञानके अनेक लघु तथ्य यत्र-तत्र विकीर्ण रहते हैं। विस्तृत ज्ञान वाले लेखक, प्रधान विषयसे विलग हो भिन्न प्रसगो पर भी सामयिक राय प्रकट करते रहते हैं। ये कथन बहुधा नियमित निबन्धोंकी अपेक्षा अधिक बहुमूल्य होते हैं, तथापि हमें इनका ज्ञान नही रहता, क्योंकि पुस्तकके नाममें इनकी ओर कोई इगित नही होता। वह लेखक सचमुच प्रशसनीय कार्यमें रत है, जो इनको उचित विभागोंमें व्यवस्थित कर देता है। यद्यपि माना कि इस कार्यमें वह अपनी योग्यताका महत्त्वपूर्ण उपयोग नही करता, तथापि वह दूसरोंका विकास सुगम कर देता है। जो कुछ भी लिखा जा चुका है, उसे वह सुप्राप्य बना देता है और इस प्रकार वह स्वयसे अधिक प्रभावशाली एव उद्योगी मस्तिष्कके लिए नवीन विचार एव मौलिक अभिप्रायोंको प्रकट करनेका अवकाश उपस्थित कर देता है, किन्तु हाल ही में प्रस्तुत किये हुए सग्रहोंमें न तो पर्याप्त समय और नही खोज-वृत्तिका उपयोग हुआ है। परिणाम-स्वरूप वे सच्ची आवश्यकता पूर्तिकी अपेक्षा हमारी पसन्दको ही धोखा देते हैं।

यह देखा गया है कि पथ-भ्रष्ट समाजमें नियमोंकी भरमार रहती है। मेरे मतानुसार यह तथ्य भी इतना ही सत्य है कि अज्ञानके युगमें पुस्तकोंकी भीड रहती है। जब प्राचीन ज्ञान भडारकी जाँच-पडताल नही होती, एव मौलिक लेखक उदासीनताके शिकार बनाकर भुला दिये जाते है, तभी, जो कुछ पहले हमारे पास था उसीकी पुनरावृत्ति करनेवाले सग्रह कर्ताओ एव साहित्यचोरोंको प्रोत्साहन प्राप्त होता है, जो कुछ आलस्यके कारण हमारी दृष्टिसे ओझल हो गया था उसीको पुन हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर ये व्यक्ति महान् बन जाते है। तथापि ये लेखक अन्धाधुन्ध आलोचनाके आघातसे प्रताडित हो अस्वीकृत होनेके पात्र नही हैं। सौन्दर्यके समान सत्य भी अपना साज बदलता है और विभिन्न हृदयोंमें इस सौन्दर्यका बोध विभिन्न साजबाजो द्वारा ही उत्तमतम ढगसे हो सकता है। जिस ज्ञानको समय पीछे छोड आगे बढ गया है, उसकी ओर यदि कोई लेखक मानव समुदायका ध्यान आकर्षित करता है, तो सचमुच वह अपने युगके साहित्यको प्रोत्साहित करता है। जैसे जैसे जातियोंके शिष्टाचारमें परिवतन होता है, वैसे-वैसे इस परिवर्तनको उतारनेवाले नवीन

विषय भी आवश्यक होते जाते हैं एवं चित्रोंके नवीन संयोगोंका प्रादुर्भाव होता है। जो मनुष्य वर्तमान रुचिसे अपना सहयोग स्थापित कर सकता है, उसे सतत ऐसे पाठक प्राप्त हो जाते हैं जो शायद सुन्दरतर कृतियोंसे परिचित नही हों।

प्रत्येक लेखकसे अपेक्षा रखना कि वह कोई नवीन विचारधारा प्रस्तुत करेगा, लेखकोंकी संख्या न्यूनतम करनेका प्रयत्न होगा। प्रचुर प्रतिभावालेको केवल नवोद्बोधन करनेके लिए अनुगृहीत करना भी उसके ग्रंथको कुछ पृष्ठोंकी सीमामें बाँध देना ही होगा, तथापि पुनरावृत्ति पर कोई बंधन होना तो आवश्यक है। भिन्न-भिन्न ढंगोंसे सुसज्जित, किन्तु एक ही प्रकारकी पुस्तकें पुस्तकालयके लिए कोई अर्थ नहीं रखती, इसी प्रकार भिन्न शैलियोंमे व्यक्त समान विचारोंका ढेर लग जाना भी उपादेय नही है।

ये मध्य कोटिके लेखक जो कुछ भी सत् अथवा असत्की रचना करते हैं, वह दीर्घ कालके थपेड़े नही सह सकती, क्योंकि इनके लेखकोंका अस्तित्व परिवर्तनशील व्यवस्थापर आधारित रहता है, इसलिए वे बहुधा नई व्यवस्थाके प्रादुर्भावपर लुप्त हो जाते हैं। वे लेखक जो किसी भी जातिमें युगोंकी सीमासे नही बँधते, अंगुलीकी नोकपर गिने जा सकते है, क्योंकि ऐसे बहुत कम लेखक हैं जिनका अस्तित्व, वर्तमान कौतूहलको केन्द्रबिन्दु बनाने और किसी आकस्मिक आकांक्षाको सन्तुष्ट करने अथवा किसी अस्थायी सुविधाको उत्पन्न करनेके अतिरिक्त किसी अन्य आधारपर पर अवलम्बित हो।

यद्यपि आजके लेखकोंके भाग्यमें भावी प्रसिद्धिकी ओरसे निराश ही वदी हो, उन्हें कमसे कम किसी भी वर्तमान दुष्ट प्रवृत्तिसे बाज आना चाहिए। यद्यपि वे प्रतिष्ठाके उच्च शिखरपर आसीन न हो सकें, किन्तु उन्हें स्वयंको तो निर्दोष रखना चाहिए। इससे पूर्व वे अन्य मनुष्योंको विज्ञ बनानेका प्रयास करें अथवा सत् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सचित, किंचित्से प्रभावको कार्यान्वित करें, उन्हें स्वयंको विज्ञ बनानेकी चिन्ता करनी चाहिए।

हमारे साहित्यकी वर्तमान अवस्था इतनी हल्की है कि उसे देख वह प्राचीन ऋषि, जिसके मतानुसार एक महान् ग्रंथ एक महान् दोष था, आज सोचेगा कि पुस्तकोंका बंडल दोषोंका समूह ही है। वह तो एक और सम्पूर्ण वर्षका उपयोग कर दीर्घाकार पुस्तक लिखनेवाले ग्रंथकार एवं दूसरी ओर घंटे घंटेमें रचित छोटी छोटी पुस्तिकाओके लेखकोंके समूहको एक समान ही मानव जीवनको व्यर्थ खोनेवाला ही समझेगा, एवं उनमे शिकारी पशु एवं टिड्डी दलके मध्यके अन्तरके अतिरिक्त और कोई अन्तर नही मानेगा।

अनुवादक—श्री शंकर विजयवर्गीय

तीर्थ और मंदिर

देवगढ़

श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि'

हम देवगढकी प्रतिभामयी विचित्र कारीगरी निरख-निरखकर शहरमें आये हुए नये ग्रामीणकी तरह चकित ही हो रहे थे कि सहसा बन्दूकके धाँय-धाँय गर्जनने हमें चौंका दिया। देवगढके माननीय मन्त्री सिंघईजी हमारे साथ थे। हमें चौकन्ना देखकर कहने लगे—"उधर क्या देखते हैं आप ? यहाँ यह हत्याकाड रोजकी बातें हैं, क्षेत्रपर अपना पूर्णाधिकार न होनेके कारण शिकारियोंने इसे शिकार-गाह बना रखा है और सरकारकी ओरसे अहिंसाकी छातीपर हिंसाकी मूग दलनेकी छूट है।"

दुःख है कि देवगढ जैसे इतने महान् क्षेत्रका अपना कोई अलग इतिहास उपलब्ध नही है। क्षेत्रपर अब तब शिला-लेखादिसे जो सामग्री एकत्रित हुई है, उसीसे क्षेत्रके सबधमें परिचय मिलता है। गुप्तवशके साम्राज्यसे पहलेकी बात है। सबसे पहले यहाँ सहीरियोंका साम्राज्यका पता चलता है। कुछ काल पश्चात् गोंडोंने सहीरियोंको परास्त किया। यहाँपर अपनी जय ध्वजा फहराई और गढको राष्ट्रकी अमूल्य-निधि समझते हुए यहाँ अनेको दर्शनीय-सुदर भवन एवम् देवालय बनवाये, किन्तु इनका भी आधिपत्य गढपर लम्बे काल तक न रह सका और देवगढ गुप्तवशके अधिकारमें चला गया। गुप्तकालमें स्कदगुप्त, देवपत खेवपत जुगीरवान गोमिलका जयकीर्ति तथा माधवचन्द्र इत्यादि अनेक राजाओंके नाम मिलते है जिनके द्वारा क्षेत्रपर वास्तविक रचनाका काय हुआ तथा क्षेत्रका

सुदृढ़ कोट, क़िलेकी उन्नत दीवारें, विशाल जिन-मन्दिर, भव्य प्रतिमाएँ, सुरम्य वाटिकाएँ, चित्ताकर्षक चित्र-कला, भीमकाय मानस्तम्भ, इत्यादि विभूतियोंका बेजोड़ निर्माण हुआ। इन सबके निर्माणके ढंगसे तथा महान् धन-जन शक्तिके व्ययके आधारपर निःसंकोच कहा जा सकता है कि इन राजाओंमें क्षेत्रकी सर्वांगीण विचित्रता-के प्रति अगाध स्नेह था, क्षेत्रको उपमाका रूप देनेका इन्हें महान् मोह रहा। और इस दिशामें उन्होंने कुछ उठा नही रखा।

गुप्तवंशके वाद क्षेत्रका अधिकार भोजवंशके हाथोंमें चला गया और उसके पश्चात् यह चंदेलवंशके अधि-कारमे आया। शिलालेखोसे पता चलता है कि तेरहवीं शताब्दिके मध्यसे १८११ ई० तक चन्देलोंका आधिपत्य रहा, इसके वाद सिप्पीयाके शासकने यहाँ वलपूर्वक अपना आधिपत्य जमाया और चन्देरीके वदलेमें इसे अंग्रेजोको दे दिया।

सन् १९१८ में भारत सरकारके पुरातत्त्व विभागका उस ओर ध्यान गया और उसकी ओरसे क्षेत्रपर अन्वे-षणके लिए विभागके महान् विशेषज्ञ माननीय दयारामजी साहनीकी नियुक्ति हुई। साहनीजीने ६ मास तक स्टाफ सहित क्षेत्रपर रहकर बड़ी योग्यतासे रिसर्च कार्य किया और अनेकों महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तत्त्वोंको भू-गर्भसे निकालकर एकत्रित किया। आपने अपनी विशद रिपोर्टमे प्राप्त सामग्रीका विस्तारसे वर्णन किया है, तथा क्षेत्रकी विशालता चित्रकला और निर्माणकर्ताओंकी धार्मिक रुचिकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

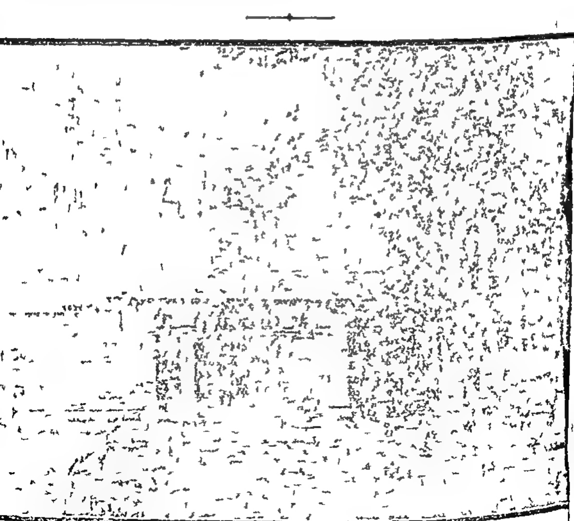
अन्वेषणमे खुदाईके समय एक पत्थर खण्ड मिला है। इसपर १२० संवत् लिखा हुआ है जिससे कि यह क्षेत्र १९०० वर्षका प्राचीन सिद्ध होता है। क्षेत्रपर २०० के क़रीव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुए हैं। उनमें ६० पर ९१९ से लेकर ११७६ तक विक्रम संवत्का समय अंकित है जो कालानुसार क्षेत्रपर बदलते हुए अधिकारोंका परिचय देता है। उनके अतिरिक्त क्षेत्रपर शेष ३१ महत्त्वपूर्ण जिनमन्दिर, सहस्रकूट चैत्यालय, ऋष-भदेवकी पुत्री ब्राह्मी द्वारा आविष्कृत १८ भाषाओंवाला शिलालेख, बाहु-बलि स्वामीकी विशाल मूर्ति, शान्ति-नाथ भगवान्की मनोज्ञ प्रतिमा, अधर 'सिद्ध गुफा' यक्षिणियोंकी मनोज्ञ मूर्तियाँ, खड्गासन चतुर्भुज सरस्वती, गरुड़ारूढ़ षोड़शभुजी चक्रेश्वरीकी मूर्ति, सुरम्य वाटिका, ज्वाला-मालिनीकी अष्टभुजी एवं खड्गासन पद्मावतीकी मूर्ति विशेष अनुपम और दर्शनीय है। इन मूर्तियोंकी रच-यित्री अधिकतर नारियाँ है जिनमें धर्मश्री, गोमती, आमोदनी, इन्दर पई, सोधरा, सरजा, लवनासरी आदिके नाम मुख्य है।

चित्रकलामे कही-कही तो साँची, अजन्ता और तक्षशिलाकी भी कारी-गरीको मात कर दिया है, कलागृहकी जालियोंमे कलाविद्की छैनियोंने पाषाणका सूक्ष्म विवेचन करके गायक के कोमल रागकी सजीवताको मानों

कुण्ठित कर दिया है, 'आबू'का कौशल इस पूर्णिमाके समक्ष केवल द्वितीयाका चन्द्र प्रतीत होता है। धन्य है वे मुक्त कर, जिन्होने शिलाखण्डो-में सजीवता भरी। धिक्कार की पात्र है वे प्रवृत्तियाँ जिन्होने औरगजेबके रूपमें सजीवताको पुन पत्थरका रूप दिया।

पुरातत्त्व विभागने परिश्रमपूर्वक यहाँ जो सग्रह एकत्रित किया उसमें ये कुछ मनोज्ञ जिनमूर्तियाँ तथा शिलालेख सरकारी म्यूजियममें भेजने का निश्चय किया। जब यह सवाद सर्वत्र फैला तो जैन समाजकी आखें खुली और उसने देवगढके वास्तविक मूल्यको उसी तरह पहिचाना जिस तरह विदेशियो द्वारा गीताञ्जलिपर नोबेल पुरस्कार मिलनेपर भारतने 'टैगोर' को पहिचाना। तथा महान् प्रयत्नो द्वारा उस आज्ञाको रद्द कराकर प्रतिमाओको अविनयसे बचाया।

देवगढ क्षेत्र जी० आई० पी० रेलवे लाइनपर है और ललितपुर स्टेशनसे १८ मीलकी दूरीपर है। क्षेत्र-पर पहुँचनेके लिए सवारियाँ आसानी से मिलती है।



श्री दिगम्बर जैन मन्दिर देवगढ़, नं० १५

[ऊपर मढियाका बेडा टूटा है]



****

पुस्तकोंकी दो प्रतियाँ आने पर ही समालोचना होगी

****

शहीद गाथा

लेखक—श्री धन्यकुमार जैन

प्रकाशक—जैन युवक मण्डल, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

पृष्ठ संख्या ४६ + ३० ◉ मूल्य सजिल्द १॥) अजिल्द १।)

शहीदगाथा "मध्यप्रदेशीय जैन युवक संघ"का द्वितीय सफल प्रयास है। लेखकने इस कृतिको दो भागोंमें विभक्त किया है। प्रथम भागमे उदय काव्यको लेखकने सरल किन्तु सरस भाषामें लिखा है, जो वरवस पाठकोके मानसको आकर्षित कर लेता है। द्वितीय भागमे ज्ञात और अज्ञात सभी शहीदोंके प्रति लेखकने अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की है।

वर्तमान प्रचलित हिन्दी-हिन्दुस्तानी एवं साम्प्रदायिकताके विषम वातावरणसे इस कृतिको अछूता रखा गया है, यही इस पुस्तककी विशेपता है एवं "युवक संघ"का सराहनीय साहस।

आशा और निराशाकी कशमकशसे लेखक कही-कही चिन्तित हो उठता है, अपने वतनके वास्ते। लेकिन बादमें वह स्वयं ही सम्हलकर "हमारा कर्त्तव्य है, कि हम अपने अतीतकी ओर एक बार दृष्टिपात करें, और उसके अञ्चलकी विभूतियोंके त्यागमय जीवन और उनकी निःस्वार्थ भावनाओंका अध्ययन कर उन्हें अपने दैनिक जीवनमे क्रियात्मक रूप देनेका यथासम्भव प्रयास करें, इससे हृदयोंमें देशभक्तिकी पावन मन्दाकिनी पुनः प्रवाहित हो उठेगी, और तब सम्भव है कि इस भारत माँके विषण्ण और निराशापूर्ण आननपर गौरवकी लालिमा ला सके" इस वाक्य द्वारा आगे बढ़नेकी आशापूर्ण प्रेरणा लेता है।

स्कूलों एवं पाठशालाओंमें ऐसी पुस्तकोके प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। —राजाराम जैन एम० ए०

मारनेकी हिम्मत

लेखक—महात्मा भगवानदीन :: प्रकाशक—भारत जैन महामण्डल, वर्धा

पृ० सं० ११८ ○ मूल्य एक रुपया

महात्मा भगवानदीनजी जीवन-तत्त्वके पारदर्शी विद्वान् है। मानवताको उतना भय पशुतासे नहीं है, जितना देवताका वाना पहने हुए राक्षस से। आज धर्म, संस्कृति, कला और सभ्यताका चमकीला वेश पहिनकर राक्षस मानवताका गला घोंट रहा है। महात्माजी उन विरल तपस्वियोंमेंसे हैं जो उस भ्रामक वेशको फाड़कर सर्वसाधारणके सामने उसका असली रूप रख देना चाहते है। उनकी दृष्टि प्रत्येक क्षेत्रमें तलस्पर्शिनी है। विश्लेपण सूक्ष्म तथा रोचक है। प्रस्तुत पुस्तकमें उन्होने जीवनके वास्तविक तत्त्वोंको कहानीके रूपमे रखा है। शैली सरल तथा आकर्षक है। हम आशा करते हैं, हिन्दी जगत् इसका हार्दिक स्वागत करेगा। —इन्द्र एम० ए०

श्री पन्नवणा सूत्रके थोकड़े-[प्रथम भाग]

प्रकाशक-श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था, बीकानेर

पृ० म० १०४  मूल्य आठ आना

जैन आगमोके अभ्यासको सुगम बनानेकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न विषयोका वर्गीकृत सग्रह थोकडा कहलाता है। आगमोमे प्रज्ञापना सूत्र द्रव्यानुयोगका ग्रन्थ है। उसके प्रथम १० पदोमेंसे जो ऐसे थोकडे बने है उनका सग्रह प्रस्तुत पुस्तक है। थोकडा यह कठस्थ करनेकी वस्तु है अतएव उसका पठन-पाठन श्रुतिकी तरह ग्रन्थको आधार नही बनाता। उसे गुरु-परम्परासे ही प्राप्त करना होता है। उसमें मात्र गिनती दी जाती है वस्तुका विवेचन नही।

कठस्थ होनेके कारण और भाषा प्राकृत होनेके कारण शब्दोके रूप कभी-कभी ऐसे बन जाते है जो पुस्तकपाठीके लिए अश्रुतपूर्व होते है। ऐसे कई शब्द इस पुस्तकमें मिलेंगे।

श्री भैरोदान सेठिया अपनी वृद्धावस्थामें ऐसे कठस्थ साहित्यका उद्धार करनेमें लगे हुए है और इस प्रकारका नया भी साहित्य निर्माण करते है यह उनकी शास्त्रभक्तिका फल है। हमारी उनसे प्रार्थना है कि उनके इस परिश्रमका फल सिर्फ राजस्थानी-को ही नही किन्तु सभी हिंदी भाषी-को मिलना चाहिए। ऐसे थोकडोका प्रकाशन करना हो तो उसे शुद्ध हिंदी रूप देकर ही प्रकाशित करना चाहिए, जिससे उसका प्रचार सिर्फ राजस्थानमें ही नही किन्तु समस्त भारतवर्षमें हो।

पुस्तक उपादेय है। मूल्य भी अधिक नही। —दलसुख मालवणिया

जैनागम न्याय-संग्रह

सग्राहक-जैनाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज

प्रकाशक-जैन शास्त्रमाला कार्यालय, जैन उपाश्रय, लुधियाना। मूल्य १)

जैनागमोके अभ्यासी आचार्य श्री आत्मारामजीने इस पुस्तकमें आगमोमें प्रमाण और नयके विषयमें जो पाठ आये है उनका टीकाके साथ सग्रह किया है। सग्रह उपयोगी है। किन्तु विषयानुक्रम और शब्द-सूचीका अभाव खटकता है। पुस्तकमें भूमिका भी नही है। फिर भी पुस्तकका महत्त्व इसलिए है कि आगमिक विशाल साहित्य-समुद्रमेंसे गोता लगाकर जो रत्न उन्होने निकाले है वह उस विषयके जिज्ञासुके लिए उपयोगी है। हर एक व्यक्तिके लिए आगम समुद्रका मथन करना सरल नही। यह तो आचार्यजी जैसे परिशीलन करनेवालोके लिए ही सहज है। अतएव उन्होने जिज्ञासु विद्वानोके समक्ष जो यह छोटी सी पुस्तिका उपस्थित की है उसके लिए विद्वान् उनके कृतज्ञ बनेंगे ही।

—दलसुख मालवणिया

सम्पादकीय

एक मर्मस्पर्शी प्रश्न !

रविवारका दिन । प्रभातका सुहावना समय । सेवासदन पुस्तकालयके विशाल भवनमें बैठे हुए देशबन्धु चितरंजनदास महोदय अपने कुछ आवश्यक कानूनी कागज़ोंकी पड़ताल कर रहे थे । चपरासीने आकर एक आगन्तुककी भेंट चिट्ठी पकड़ाई । कागज़के टुकड़े पर लिखा था—"उपेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, सम्पादक वसुमती ।"

'उनको अन्दर आने दो' दास बाबूने नौकरसे कहा । जी हाँ कहकर नौकर बाहर गया और उपेन्द्र बाबूको अन्दर ले आया । परस्पर नमस्कारकी विधि समाप्त होनेपर दास बाबूने पूछा—"कहो क्या आज्ञा है ।"

' आज्ञा तो कुछ नहीं । मैंने सुना है कि प्रति रविवारको प्रातःकाल आप कुछ न कुछ दान करते हैं। मैं भी दानकी अभिलाषासे यहाँ आया हूँ ।"

'मैं दान देनेवाला कौन होता हूँ। मेरी इसमें क्या सामर्थ्य है ?" दास बाबू खिलखिलाकर हँसते हुए बोले—"हम तो ठहरे वकील लोग । हमारा धन्धा तो देनेके बदले लेना कहा जाता है । लोगोंका परस्पर लड़ाई-झगड़ा कराएँ और मनचाहा पैसा निकलवाएँ ।"

"आपको शायद कुछ हँसी मालूम होती होगी, परन्तु मैं तो सचमुच ही दान लेने आया हूँ । आपको कदाचित् मालूम होगा कि अपने कितने ही महान् साहित्यकारोंकी सुन्दर कृतियाँ विशेष महँगी होनेके कारण ही सामान्य जन-समाज तक नहीं पहुँच पातीं । उनकी क़ीमत ही इतनी होती है कि वे उन्हें खरीद नहीं सकते । परिणामतः वे लोग ऐसी उच्च कोटिकी रचनाएँ पढ़नेसे सदा वञ्चित रह जाते हैं ।

"इस स्थितिको दूर करनेके लिए 'वसुमती' कार्यालयने ऐसी कृतियोंको सस्ते मूल्यमें प्रकाशित करनेका आयोजन किया है । बंकिम ग्रन्थावली तो हमने प्रकाशित भी कर दी है । ८०० पन्नेकी यह पोथी है । इसे हम लोग केवल डेढ़ रुपयेमें देते हैं । यह देखिए उसकी प्रति ।"

दास बाबूने पुस्तकके पन्ने उलटते

हुए आश्चर्यपूरक कहा—"यह घाटेका व्यापार है।"

"घाटेका व्यापार नहीं है। दस हजार प्रतियाँ एक साथ छपानेसे हानि नहीं आती—प्रत्युत लाभ रहता है, परन्तु इकट्ठे मुद्रणके लिए हमारे पास पैसा नहीं है। इसलिए हमारी गाड़ी अटकी हुई है। मैं चिन्तातुर हो रहा था। ईश्वरने मार्ग सुझाया है और मैं आपकी सेवामें आया हूँ।"

"परन्तु मेरी तो कुछ ख्याति नहीं है। कलकत्तेमें तो दो सौ रजवाड़े और ज़मींदार रहते हैं। उनके पास खूब पैसा है। तुम उनको क्यों नहीं पकड़ते ?"

"परन्तु उनमें चित्तरंजन बाबूका सा विशाल हृदय मैं कहाँ खोजने जाऊँ? चलते-चलते मेरी पनही फट गयी, परन्तु एक दमड़ी तक नहीं मिल पायी—ऐसे हैं वे सब।"

"बंगालके धनवानोंके औदार्यके विषयमें आप ऐसी संकुचित भावना रखते हैं, यह ठीक नहीं।"—कहते हुए दास बाबूने अपनी मेजकी दराजमेंसे चेक-पुस्तक निकाली और पचास हजारका चेक उपेन्द्र बाबूके हाथमें रख दिया।

चेकका आँकड़ा देखते ही उपेन्द्र बाबू अवाक् रह गये। कुछ क्षण तक तो वे एक अक्षर तक न बोल पाये। ज़रा ठहरकर और प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने कहा—"बताइये यह रक़म आपको कबतक लौट जानी चाहिए? इसका ब्याज भी निश्चित होना ही चाहिए। कुछ लिखा पढ़ी भी करनी चाहिए।"

"यह सब खटपट रहने दो। इतनी अधिक जल्दी क्या है? जब आपको सुविधा हो जाय, दे जाना। ब्याज और लेखे आदिकी भी कुछ आवश्यकता नहीं।" चित्तरंजन दासने फरमाया।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस पचास हज़ारकी रक़म द्वारा रवीन्द्र ग्रंथावली, रमेशचन्द्र ग्रंथावली, योगेन्द्र ग्रंथावली आदि तीन दर्जन ग्रन्थ मालाएँ प्रकाशित हुईं और मध्यम वर्गी जन समाजके लिए यह समस्त सुन्दर साहित्य सुलभ हो गया।

यह तो हुई बंग साहित्यकी बात। परदेशोंमें पेलिकन ग्रंथमाला, पेंगुइन ग्रंथमाला, पाकेट बुक सीरीज, परमा बुक्स, गिल्ड बुक्स आदि अनेक प्रकाशक विश्व साहित्यकी उत्कृष्ट रचनाएँ पानीके मूल्यमें वितरित कर रहे हैं। अपना हिन्दी-साहित्य दिनोंदिन महँगा होता जा रहा है और सामान्य जन समाजके लिए वह सुलभ नहीं है—ऐसी शिकायतें आये दिन सुनाई देती हैं। इन शिकायतोंको दूर करनेका आयोजन करके कौन हिन्दी पुस्तक-प्रकाशक सुयशका भागी बनेगा? वह दिन कब देखनेको मिलेगा जब श्री प्रेमचन्दजी की समस्त कृतियाँ दस बारह रुपयेमें जन-सामान्यको सुलभ हो जायेंगी?

× × ×

हिन्दीके विचारपूर्ण लेखक श्री शंकरदेव जीका यह मत हम हिन्दी संसारके सामने रखते हैं। प्रश्न सच-मुच मर्मस्पर्शी है, उपयोगी है, आव-

श्यक है और करणीय है, पर इसके करनेमें कुछ रुकावटें भी हैं। रुपयेकी रुकावटको हम विशेष महत्त्व नही देते, कापीराइटका क़ानून शायद इसके मार्गमे विघ्न बनेगा, पर विघ्नोंका काम बीचमे आना और कार्यकर्ताओं का काम उन्हे हटाकर आगे बढ़ना है। आशा है, हिन्दी संसारका कोई सपूत इस कामको अपने हाथमें लेकर आगे बढ़ेगा—उसकी सफलता तो निश्चित ही है। हम अभीसे उसका स्वागत करते हैं।

हमारे अस्पताल !

अबसे २०-२५ वर्ष पहले नगरोंमें चिकित्साका मुख्य केन्द्र सरकारी अस्पताल होता था और नगरके दूसरे चिकित्सक गौण, पर इन वर्षोंमें स्थिति यह हो गई है कि सरकारी अस्पताल तो हो गये हैं अनाथालय और हर नगरमें निजी प्रैक्टिस करनेवाले चिकित्सकोंके यहाँ जुड़ने लगे हैं मेले।

सरकारी अस्पतालोंमें अब भी डिग्रीश्वर डाक्टरोंकी भरमार है, उनके बड़े-बड़े वेतन है, ठाठ है, औषधियाँ भी है और भवन तो पहलेसे अधिक शानदार हैं ही, पर वे जैसे प्राणहीन हो गये है।

वहाँके चिकित्सक यदि लापरवाह हैं, तो कम्पाउण्डर और कर्मचारी पूरे बकलउचेड़। कोई भी रोगीके प्रति अपनी ज़िम्मेदारी अनुभव नही करता और 'ऊपरकी आमदनी' पर हरेककी गृद्धदृष्टि है। सरायकी तरह वहाँ भी पैसा देनेपर काम होता है और कभी-तो पैसा देनेपर भी काम नहीं होता।

डाक्टरों, कम्पाउण्डरों और निरीक्षकोंकी यह उपेक्षा किस हद तक पहुँच गई है, इसे अभी अभीकी एक घटनाने हमारे सामने ला दिया है। यह घटना भारतकी राजधानी नई दिल्लीके विख्यात अस्पताल—इरविन हॉस्पिटल—की है।

दैनिक 'हिन्दुस्तान'में प्रकाशित निम्नलिखित पत्रमे उस घटनाका सार इस प्रकार है।

महोदय,

मेरे युवक पुत्र दीनानाथ पारीक को ४ अक्तूबर, १९५१ की रातको नई दिल्लीमें मिन्टो पुलके निकट एक मोटर-दुर्घटनाका शिकार होना पड़ा। नई दिल्लीकी पुलिस उसे ५ अक्तूबर के बड़े सबेरे इरविन अस्पताल ले गई जहाँ उसका ७ अक्तूबरको सबेरे २ बजकर २० मिनटपर देहान्त हो गया।

मैंने अपना प्रिय पुत्र खो दिया है और संसारकी कोई शक्ति उसको मुझे पीछा नहीं दिला सकती। किन्तु इरविन अस्पतालमें रोगियोंके प्रति जो अमानुषिक, उपेक्षापूर्ण तथा हृदय-हीन व्यवहार किया जाता है, उससे जनताको परिचित कराना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

मेरे पुत्रकी शव-परीक्षा करनेपर उसके सिरके विभिन्न भागोंमें तथा अन्य अंगोंमें गहरी चोटें लगने तथा रक्तावरोध हो जानेके प्रमाण मिले। इन चोटोंके बावजूद (जिन्हें देखनेका डाक्टरोंने कोई प्रयास नहीं किया) हमें मृत्युके ७ घंटे पहले तक यही कहा जाता रहा कि मामला गंभीर नहीं है,

रोगी दुर्घटनाके धक्केसे केवल चकाचौंध हो गया है, उसे एक-दो दिनमें ही अस्पतालसे छुट्टी दे दी जायगी तथा उसे किसी स्पेशल वार्डमें ले जानेकी ज़रूरत नहीं है।

५ अक्तूबरको कई बार प्रार्थना करनेके बावजूद रोगीके पास रहनेका कोई पास नहीं दिया गया। हमें केवल भोजन लानेका एक पास दिया गया, जिससे केवल एक व्यक्ति भोजन लेकर कुछ मिनटोंके लिए अंदर आ सकता था। जब रोगीके चाचा ५ अक्तूबर के सवेरे १० बजे उससे मिले तो उन्हें रोगीके थूकमें खून दिखाई पड़ा। इसपर उन्होंने डाक्टरसे सम्पर्क स्थापित करनेकी चेष्टा की। २ घंटेतक वह परेशान होते रहे किन्तु कोई डाक्टर रोगीको देखने-भालने नहीं आया। उन्हें अस्पतालके सुपरिंटेंडेंट को इस बातकी रिपोर्ट करके ही संतोष करना पड़ा।

६ अक्तूबरको सवेरे मुझे मालूम पड़ा कि रातके समय मेरा लड़का बार-बार उठकर पानी माँगता रहा, किन्तु उसे किसीने पानी नहीं दिया और उसे चारपाईसे बाँध दिया गया। मैंने खुद उसके शरीरसे रस्सी बँधी देखी। मैंने उस वार्डमें तैनात डाक्टर-को इसकी सूचना दी, तब जाकर रोगीके पास रहनेके लिए एक पास दिया गया। मेरे लड़केको आधी रातके समय गश आए, किन्तु कोई डाक्टर उपलब्ध नहीं था तीन घंटे बाद वह बड़ी वेदनासे करा-हने लगा, फिर भी कोई डाक्टर नहीं आया। मेरे छोटे लड़केने, जो रोगीके पास मौजूद था, दौड़कर मुझे फोन द्वारा इसकी सूचना दी, जिस पर मैं तुरन्त अस्पतालके लिए चल पड़ा और १० मिनटके भीतर ही वहाँ पहुँच गया। पहुँचने पर मुझे बताया गया कि रोगीकी मृत्यु हो गई है। किन्तु चूँकि उसका बदन अभी तक गर्म था, मैंने उस वार्डके डाक्टरको बुलानेकी चेष्टा की, पर व्यर्थ। डाक्टरने उस वार्डमें आनेसे इन्कार कर दिया जहां वह सो रहे थे।

मैं इस पत्रमें अस्पताल अधिका-रियोंकी अन्य रोगियोंके प्रति उपेक्षा का विवरण नहीं दे रहा हूँ जो मैंने अपनी आंखोंसे देखी थी।

पत्र समाप्त करनेके पूर्व मैं यह कह देना चाहता हूँ कि अस्पतालके सुपरिंटेंडेंटको जब रोगीकी मृत्युकी सूचना दी गई तब उन्होंने इस पर आश्चर्य प्रकट किया। उन्होंने कहा कि मृत्युका कारण जाननेके लिए शव-परीक्षा की जाएगी, पर सच पूछा जाए तो रोगीका कोई बाहरी या आन्तरिक उपचार नहीं किया गया और उसके सिरका भी, जहाँ तक मुझे मालूम है, एक्स रे नहीं लिया गया, केवल रोगी को अस्पतालके निरीक्षणमें रखा गया। तब फिर रोगी की मृत्यु न होती तो क्या होता? अस्पतालकी कुव्यवस्था देखकर मुझे तो दुःखपूर्वक निराशा ही होती है।

—सुरेन्द्रनाथ एडवोकेट,
मुरादाबाद

पत्र-लेखकने दुःखकी आँधियोंके बीच बैठकर भी इतना शान्त पत्र लिखा, यह उनके लिए बहुत प्रशंसाकी

बात है, पर क्या हमारे देशका शासन इतना निकम्मा है कि इस शान्तिको ही ग्रहण करे, उन अशान्त आँधियोंको नही। इतने महीने बीतने पर भी हमने इस सम्बन्धमें किसी जाँच-पड़तालका समाचार नही पढ़ा, तो क्या सरकारने यह स्वीकार कर लिया है कि डाक्टरोको हत्याका वैधानिक लाइसेंस प्राप्त है?—ऊपरके पत्रमें जो कुछ है, वह क्या हत्याके अतिरिक्त कुछ है ?

हम पूरी शक्तिके साथ भारत और राज्यके स्वास्थ्य-मंत्रियोंको झकझोरकर उनका ध्यान इधर आकर्षित करना चाहते है।

नाईका चालान

खरगौनका समाचार है कि वहाँ एक हरिजन बालक बाल कटानेको नाईकी दूकानपर गया। नाईने उसे दो घण्टे तक टरकाया और तब बाल काटनेसे मना कर दिया।

संयोगसे वहाँ एक सामाजिक कार्यकर्ता आ पहुँचे। उन्होंने भी नाईको बहुत समझाया पर वह तैयार न हुआ। उसकी सम्मतिमें हरिजन बालकका सिर छूना धर्मके विरुद्ध था। अपनी धर्म-व्याख्याके लिए तो वही जिम्मेदार है, पर ऐसा करना निश्चय ही क़ानूनके विरुद्ध था।

कार्यकर्ता महोदयने क़ानूनका सहारा लिया और नाई बन्धुपर केस चलवा दिया। केस अदालतमें है और नाईजी जमानत पर, पर प्रश्न यह है कि क्या इस तरहके मुकदमोंसे कुछ लाभ है ?

भारतीय संविधानके अनुसार हरेक भारतवासीका समान अधिकार है और अब यहाँ कोई किसीसे हीन नही, पर यह प्रश्न क़ानूनका नही, संस्कारोंके परिवर्तनका है। संस्कारोंका परिवर्तन मानसिक शिक्षण पर निर्भर है, इसमें सन्देह नहीं, पर इस प्रकारके मुकदमे उस मानसिक शिक्षणमें सहायक ही है, यह भी स्वीकारयोग्य तथ्य है।

भारत जैन महामण्डलके लोक-प्रिय प्रकाशन

प्यारे राजा बेटा [भाग १ और २]–रिषभदास राका,
प्रत्येक भागका मूल्य ।।=)

जीवन जोहरी (जमनालालजी बजाज) पृष्ठ १७६ मूल्य १।)
रिषभदास राका

गीता प्रवचनें आचार्य विनोबा–डेढ रुपया हिन्दीमें १।), २।)

धर्म और संस्कृति जमनालाल जैन पृष्ठ १४४ मूल्य १।)

समाज और जीवन जमनालाल जैन पृष्ठ १२५ मूल्य १)

बुद्ध और महावीर कि० घ० मशरूवाला
तथा दो भाषण पृष्ठ १८८ मूल्य १)

उज्ज्वल प्रवचन सती उज्ज्वलकुमारीजी पृष्ठ ९६ मूल्य ।।=)

मणिभद्र (उपन्यास)–श्री सुशील मूल्य १।)

महावीर-वाणी (जैन गीता)–आउट आफ स्टाक है।

जो सन्तोंने कहा आउट आफ स्टाक है।

सर्वोदय यात्रा आचार्य विनोबा पृष्ठ २४४ मूल्य १।)

तत्त्व समुच्चय डा० हीरालाल जैन पृष्ठ २०० मूल्य २।।)

मारनेकी हिम्मत (कहानी संग्रह) महात्मा भगवानदीनजी मूल्य १)

मेरे साथी (जीवन संस्मरण) महात्मा भगवानदीनजी मूल्य १)

महावीरका जीवन-दर्शन (अध्यात्म)–रिषभदास राका मूल्य ।=)

आदर्श विवाह विधि जमनालाल जैन–रिषभदास राका मूल्य ।–)

तत्त्वार्थ सूत्र (विवेचन सहित) प० सुखलालजी पृष्ठ ६०० मूल्य ५।।)

जैन जगत [मासिक]

सर्वोदय विचार-धाराका सुरुचि-सम्पन्न, लोक-प्रिय मासिक। विविध विषयोंसे विभूषित। वार्षिक शुल्क ४)

हमारे यहाँ हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली आदिके प्रकाशन भी उचित मूल्य पर मिल सकेंगे।

भारत जैन महामण्डल, वर्धा

'साहित्य सन्देश' का आगामी जुलाई मासका अङ्क

आलोचनांकका परिशिष्टांक होगा

सम्मेलनकी परीक्षाएँ होनेके कारण हम अपने अक्टूबर-नवम्बर मासके आलोचना विशेषाङ्कको जल्दीमें पूरा न कर सके। अब उसका परिशिष्टाङ्क जुलाई १९५२ में निकल रहा है।

इस आलोचनाङ्कको उपयोगी बनानेके लिए इसमें उच्चकोटिके निम्न कुछ लेख प्रकाशित किये जायगे। जुलाईका अङ्क साहित्य सन्देशके नव वर्षका प्रथम अङ्क होता है। अतः जो सज्जन बराबर आगामी वर्षके लिए ग्राहक रहेंगे उन्हें यह अङ्क उनके वार्षिक शुल्कमें ही दिया जायगा। यह अङ्क साधारण अङ्कोंसे बड़ा होगा और सदाकी भाँति इस विशेषाङ्कका मूल्य भी १) रखा है लेकिन जो सज्जन जुलाई ५२ से नये ग्राहक बनेंगे उन्हें यह विशेषांक उसी शुल्कमें मिलेगा अतः आज ही अपने वार्षिक शुल्कके ८) मनीआर्डरसे भेज दें।

१—मनोविश्लेषण और आलोचना

२—संस्कृत समालोचना पद्धति

३—अंग्रेजी आलोचनाका साहित्य

४—आलोचक कौन ?

५—आलोचनाके स्वरूपका विकास

६—सूरके आलोचक

७—तामिलमें आलोचना साहित्य

८—बँगला साहित्यमें आलोचना

९—विभिन्न आलोचनाओंके उदाहरण

१०—आलोचना साहित्यमें 'साहित्य-सन्देश'का स्थान

मनीआर्डर भेजनेका पता :—

साहित्य सन्देश कार्यालय, ४ गांधी मार्ग, आगरा

हमारे सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

महापुराण [आदिपुराण]

भगवान् ऋषभदेवका पुण्यचरित्र

[भाग १ और २]

इस पुराणमें न केवल चरित्र ही है किन्तु जैनाचार, जैनसंस्कार आदिका सांगोपांग विस्तृत विवेचन है। अनेक ताडपत्रीय प्रतियोंके आधारसे इसका संशोधन और सम्पादन हुआ है। अर्थबोधक प्राचीन टिप्पणीसे अलंकृत है। ग्रन्थके आरम्भमें ८० पृष्ठकी महत्त्वपूर्ण विस्तृत प्रस्तावना लिखी गई है। स्वाध्याय प्रेमियोंके लिए अत्यन्त उपयोगी।

मूल्य प्रत्येक भागका दस रुपया

समयसार [अंग्रेजी]

भगवान् कुन्दकुन्दके सुप्रसिद्ध अध्यातम ग्रन्थ समयसार का अग्रेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद। विस्तृत व्याख्या, महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना।

सम्पादक—रायबहादुर प्रो० ए० चक्रवर्ती, मद्रास

मूल्य आठ रुपये

ज्ञानोदय की फाइलें

[वर्ष १, २ और ३]

प्र० वर्ष [१२ अंक] पृष्ठ सं० ९६०, मू० छः रु०

द्वि० वर्ष [१२ अंक] पृष्ठ सं० ९६०, मू० छः रु०

तृ० वर्ष [१२ अंक] पृष्ठ सं० ९६०, मू० छः रु०

आज ही १८ रु० भेजकर २८८० पृष्ठकी महत्त्वपूर्ण तीनों वर्षोंकी फाइलें मँगा लीजिए।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी, दुर्गाकुंड रोड, बनारस ५

रजि० सं० ए० ८२५



सन् १९५१ की प्रकाशित पुस्तकें
मेरे बापू
महापुराण
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
वर्द्धमान
भारतीय ज्ञानपीठ काशी
पथ-प्रदीप
शेर-ओ-सुखन
गहरे पानी पैठ
SMAYASARA
BHARTIYA JHANKPITHA KASHI
भारतीय ज्ञानपीठ का